माणिक्यचन्द्रजैनग्रन्थमालायाः एकत्रिंशतितमो ग्रन्थः

पुन्नाटसंघीय-श्रीजिनसेनसूरिकृतं

हरिवंशपुराणं

(पूर्वार्द्धम्)

साहित्यरत्न-पण्डित-दरबारीलाल-न्यायतीर्थेन संशोधितं सम्पादितं च

प्रकाशिका—माणिक्यचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला-समितिः

मूल्यं रूप्यकद्वयम्

पब्लिशर—
नाथूराम प्रेमी
मन्त्री, माणिक्यचन्द्रजैनग्रन्थमाला
हीराबाग, बम्बई, न० ४

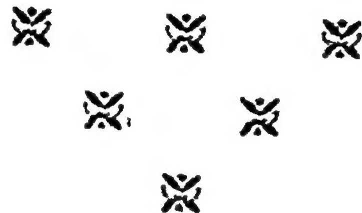

मुद्रक—
चिं० वा० परांजपे,
नेटिव ओपीनियन प्रेस,
आंबेवाडी, गिरगांव, मुंबई नं. ४.

प्रस्तावना

समयकी दृष्टिसे दूसरा ग्रन्थ

दिगम्बर-जैन-साहित्यमें हरिवंशपुराण एक प्रसिद्ध और प्राचीन ग्रन्थ है । प्रथमानुयोगके उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थोंमें समयकी दृष्टिसे यह दूसरा ग्रन्थ है । इसके पहलेका एक पद्मपुराण * ही है, जिसके कर्त्ता रविषेणाचार्य है और जिसका स्पष्ट उल्लेख इस ग्रन्थके प्रथम सर्गमें किया गया है—

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता ।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया ॥ ३४ ॥

आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जिनसेनका भी उल्लेख इसी सर्गके ४०—४१ वें श्लोकोंमें किया गया है; परन्तु उस समय आदिपुराणका निर्माण नहीं हुआ था, इस कारण उसे हरिवंशपुराणके बादका तीसरा ग्रन्थ मानना चाहिए ।

---

* पद्मपुराण भगवान् महावीरके निर्वाणके १२०३॥ वर्ष बीतने पर अर्थात् शक संवत ५९८ में रचा गया है ।

रचनाका समय

हरिवंशपुराण शक संवत् ७०५ अर्थात् विक्रम संवत् ८४० मे सम्पूर्ण हुआ है। यथा—

शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां,
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादिराजेऽपरां,
सौराणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥

अर्थात् शक संवत् ७०५ मे जब कि उत्तर दिशाकी इन्द्रायुध, दक्षिण दिशाकी कृष्णका पुत्र श्रीवल्लभ (गोविंद द्वितीय), पूर्वकी अवन्तिनरेश वत्सराज, और पश्चिममे सौरोंके अधिमण्डल (प्रदेश) की वीर जयवराह नामक राजा रक्षा करता था, उस समय यह ग्रन्थ समाप्त किया गया।

स्थान-परिचय

पहले वर्द्धमानपुर नामक विशाल नगरके नन्नराजकृत पार्श्वनाथ-मन्दिरमे और फिर दोस्तटिकाकी प्रजाद्वारा पूजित शान्त शान्तिनाथ-मन्दिरमे यह हरिवंशपुराण समाप्त हुआ—

कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुलश्रीवर्द्धमाने पुरे
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा।

पश्चाद्दौस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयं ॥ ५५ ॥

यह वर्द्धमानपुर कहाँ था, इसका अभी तक कुछ निर्णय नहीं हो सका है। यह कोई बड़ा नगर था और जान पड़ता है, उस समय उसमें जैनधर्मके अनुयायियोंका प्राचुर्य था। आचार्य हरिषेणने अपना बृहत् कथाकोश भी शक संवत् ८५३ मे इसी वर्द्धमानपुरमे रह कर बनाया था। वे इस नगरका वर्णन इन शब्दोंमें करते हैं—

जैनालयव्रातविराजितान्ते चन्द्रावदातद्युतिसौधजाले
कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्द्धमानाख्यपुरे... ... ...॥

अर्थात् जिसमें जैनमन्दिरोका समूह था, चन्द्रमा जैसे चमकते हुए महल थे और सोनेसे परिपूर्ण जननिवास थे, ऐसा वह वर्द्धमानपुर था।

हमारी समझमें यह कर्नाटक या पुन्नाट प्रान्तमे ही कहींपर होगा, क्यो कि जिनसेन और हरिषेण दोनों ही पुन्नाट संघके आचार्य थे और नन्नराज नाम भी कर्नाटकप्रान्तीय जान पड़ता है जिसके बनवाये हुए पार्श्वनाथमन्दिरमे—श्रीपार्श्वालयनन्नराज-वसतिमें—यह ग्रन्थ समाप्त किया गया था।

नहीं, ये नन्नराज अभिमानमेरु पुष्पदन्तके आश्रयदाता और राष्ट्रकूटनरेश कृष्ण या शुभतुगके मंत्री * नन्न ही थे या उनसे भिन्न कोई दूसरे। जिस समय हरिवंशपुराण समाप्त हुआ था, उस समय राष्ट्रकूटनरेश श्रीवल्लभ (गोविन्द द्वितीय) राज्य करता था और इस लिए उसके कुछ ही पहले, उसके पिता कृष्णके मन्त्री नन्नके बनवाए हुए पार्श्वनाथालयका होना संभव है; परन्तु अभीतक पुष्पदन्तका समय निश्चित नहीं हुआ है; उन्होंने अपने उत्तरपुराणके अन्तमें उसकी रचनाका समय ६०६ क्रोधन संवत्सर दिया है और साथ ही जिनसेन, वीरसेन आदि आचार्योंका तथा धवल जयधवल सिद्धान्तोंका उल्लेख किया है जो कि ठीक नहीं बैठता है, इस लिए इस विषयमें अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। ×

---

* कुंडिण्णगुत्तणहदिणयरासु वल्लहनारिंदघरमहतरासु।
णण्णहु मंदिर णिवसंतु संतु अहिमाणमेरु कइ पुप्फयंतु॥ इत्यादि
आश्रान्तदानपरितोषितवन्धवृन्दो दारिद्र्यरौद्रकरिकुंभविभेददक्षः।
श्रीपुष्पदन्तकविकाव्यरसाभितृप्तः श्रीमान्सदा जगति नन्दतु नन्ननामा॥
—यशोधरचरित

× देखो जैनसाहित्यसंशोधक खंड २, अंक १ में मेरा लिखा हुआ ' महाकवि पुष्पदन्त और उनका महापुराण ' शीर्षक विस्तृत निबन्ध।

गुरुपरम्परा

ग्रन्थकर्त्ताने ६६ वे सर्गमे अपनी गुरुपरम्परा खूब विस्तारके साथ दी है। यह परम्परा लोहाचार्य तक ही अन्य ग्रन्थकर्त्ताओंकी लिखी हुई परम्पराओसे मिलती है। उनके बादकी परम्परा बिल्कुल जुदी है। यह विभिन्नता इतिहासज्ञोंके लिए खास तौरसे विचारणीय है। यहाँ इस परम्पराके समस्त आचार्योंकी नामावली देनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। उनमें आचार्य अमितसेनको 'पवित्रपुन्नाटगणाग्रणी गणी' लिखा है, जो सौ वर्षसे अधिक जीवित रहे थे, बड़े भारी तपस्वी थे और जिन्होने सुशास्त्रदानसे, अपनी वदान्यता संसारमें प्रकाशित की थी। इनके अग्रज और धर्मसहोदर कीर्तिषेण थे, जिनके प्रधान शिष्य जिनसेनने इस ग्रन्थकी रचना की।

आदिपुराणके कर्त्तासे पार्थक्य

यहाँ हम यह प्रकट कर देना चाहते हैं कि हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनके साथ आदि-पुराणकार जिनसेनाचार्यका नाम-साम्यके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नहीं है। दोनो प्रायः समकालीन थे, इस कारण बहुतसे इतिहासज्ञोने दोनोंको एक समझ लिया है, परन्तु नीचे लिखी बातोंपर विचार करनेसे पाठकोंको इनका पार्थक्य अच्छी तरह समझमें आ जावेगा—

१—हरिवंशपुराणके कर्त्ताके गुरुका नाम कीर्तिषेण है जब कि आदिपुराणके कर्त्ताके गुरु वीरसेन थे।

२—हरिवंशपुराणके कर्त्ता पुन्नाटसंघके आचार्य थे और आदिपुराणके कर्त्ता सेनसंघके या पंचस्तूपान्वयके। दोनोंकी गुरुपरम्परा भी भिन्न है।

३—हरिवंशपुराणके प्रारंभके ३९—४० वें श्लोकोंमें उसके कर्त्ताने स्वयं ही पार्श्वाभ्युदयके कर्त्ता जिनसेन और उनके गुरु वीरसेनकी स्तुति की है जिससे दोनोंका पृथक्त्व बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि पार्श्वाभ्युदयकर्त्ता जिनसेन ही आदिपुराणके कर्ता हैं। वे श्लोक ये हैं—

जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिन.।
वीरसेनगुरो. कीर्तिरकलंकावभासते ॥ ३९ ॥
यामिताऽभ्युदये पार्श्वे जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिः।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्त्तिः संकीर्तियत्यसौ ॥ ४० ॥

४—दोनों ग्रन्थोंका अच्छी तरह स्वाध्याय करनेसे भी भलीभाँति समझमे आजाता है कि इनके रचयिता भिन्न भिन्न हैं। दोनोंकी काव्यशैली, कथा कहनेका ढंग, उत्प्रेक्षायें, कल्पनायें आदि सभीमें बहुत बड़ा

अन्तर दिखाई देता है। इसके सिवाय जिनसेन स्वामीके शिष्य गुणभद्राचार्यद्वारा रचित उत्तरपुराणके अन्तर्गत जो हरिवंशका चरित्र है, उसमें और इस हरिवंशपुराणके कथानकमे भी यत्र तत्र भिन्नता है।

पुन्नाटसंघ और पुन्नाटदेश

हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन पुन्नाटसंघकी परम्परामें हुए है, जैसा कि ग्रन्थप्रशस्तिसे विदित होता है—

व्युत्सृष्टापरसंघसंततिबृहत्पुन्नाटसंघान्वये।

श्रीयुत वामन शिवराम आपटेके सुप्रसिद्ध संस्कृत—इंग्लिश-कोशमें 'पुन्नाट' का अर्थ 'कर्नाटक देश' लिखा हुआ है। कई संस्कृत कोशोमें 'नाट' शब्द भी मिलता है और उसका अर्थ भी कर्नाटक किया गया है। सो पुन्नाट और नाट दोनों लगभग समानार्थवाची है। ग्रीक-पण्डित टालेमीने अपने भूगोलमें इसी पुन्नाट देशका 'पौनट' नामसे उल्लेख किया है। कनड़ी साहित्यमें भी 'पुन्नाड' राज्यका प्रचुरतासे उल्लेख है। मैसूर जिलेकी 'होग्गडेवन्कोटे' नामकी तहसीलमे कित्तूर नामका ग्राम है, जिसका प्राचीन नाम कीर्त्तिपुर था। यह पुन्नाट-राज्यकी राजधानी था।

आचार्य हरिषेणने अपने बृहत् कथाकोशके भद्रबाहु-कथानकमे लिखा है—

अनेन सह संघोऽपि समस्तो गुरुवाक्यतः ।
दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ ॥ ४० ॥

अर्थात् उनके साथ सारा संघ भी गुरु-आज्ञासे चला और दक्षिणापथके पुन्नाट प्रान्तको प्राप्त हुआ । इससे मालूम होता है कि कनड़ीके समान संस्कृत साहित्यमें भी 'पुन्नाट' शब्दका पुन्नाट देशके अर्थमें व्यवहार होता था और दक्षिणापथमें श्रवणबेल्गोलके आसपासके प्रान्तको ही पूर्व कालमें पुन्नाट कहते थे जहाँ कि भद्रबाहुस्वामीका संघ पहुँचा था ।

अभिमानमेरु महाकवि पुष्पदन्तने अपने आदिपुराणके पाँचवे परिच्छेदमें द्रविड, गौड़, कर्नाट, वराट, पारस, पारियात्र आदि विविध देशोंका उल्लेख करते हुए पुन्नाटका भी नाम लिया है—

दविड-गउड-कण्णाड-वराडवि, पारस-पारियाय-पुण्णाडवि ।

इससे मालूम होता है कि अपभ्रंश भाषाके लेखकोंके लिए भी पुन्नाट देश अपरिचित नहीं था ।

इस पुन्नाट देशके नामसे ही वहाँके मुनिसंघका नाम पुन्नाट संघ प्रसिद्ध हुआ होगा । देशोंके नामको धारण करनेवाले और भी कई संघोंको हम जानते हैं, जैसे कि द्रविड़ देशका संघ द्राविड़ संघ, मथुराका माथुर संघ, लाट-बागड़का लाड-बागड़ संघ । पुन्नाटकी राजधानी कित्तूर

थी, इस कारण जान पड़ता है कि पुन्नाट संघ कित्तूरसंघ भी कहलाता था । श्रवणबेल्गोलके १९४ वें नम्बरके शिलालेखमें—जो शक संवत् ६२२ के लगभगका लिखा हुआ है—कित्तूरसंघका उल्लेख है और प्रो० हीरालालजी भी इसे पुन्नाट संघका ही दूसरा नाम अनुमान करते है ।

पुन्नाट शब्दका एक अर्थ नागकेसर भी है * और कर्नाटक प्रान्तमें नागकेसर कसरतसे होती है । वहाँ नागकेसरके जंगलके जंगल नज़र आते है । जान पड़ता है, इसी कारण इस देशको पुन्नाट संज्ञा प्राप्त हुई होगी । पुंनाग और पुंनाट पर्यायवाची शब्द है ।

मुनिसंघ और उनका इतिहास ।

संघ शब्दका अर्थ समूह है । यद्यपि मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकारूप चतुर्विध संघ प्रसिद्ध है; परन्तु मुख्यतः यह शब्द मुनिसमूहके लिए ही व्यवहृत होता है । मुनिसंघोंका इतिहास अभीतक प्रायः अन्धकारमें छुपा हुआ है और शायद आगे भी उसपर पूरा प्रकाश नहीं डाला जा सकेगा । क्योंकि उनके बतानेवाले साधनोंका प्रायः अभाव है । फिर भी इस विषयमे जो कुछ मालूम हो सका है, उसे लिपिबद्ध कर देना उचित मालूम होता है ।

* देखो श्रीयुत् एल० आर० वैद्यकी ‘ दि स्टेण्डर्ड संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी ’।

मूल-संघ और निर्ग्रन्थ-श्रमण-संघ ।

यद्यपि बहुत समयसे दिगम्बर-सम्प्रदायके लिए मूलसघ शब्द व्यवहृत हो रहा है; परन्तु सातवीं आठवीं शताब्दिके पहलेके ग्रन्थों या लेखोंमें इस शब्दका व्यवहार नहीं देखा जाता। जान पड़ता है, द्राविड़संघ, काष्ठासघ, श्वेताम्बरसघ आदिसे अपना पृथक्त्व और मौलिकत्व प्रकट करनेके लिए 'मूलसघ' शब्दकी योजना की गई है और इसलिए पिछले साहित्यमें ही दिगम्बर-सम्प्रदायके लिए मूलसंग बहुतायतसे व्यवहृत हुआ देखा जाता है।

कदम्बवंशी राजाओंके जो तीन दानपत्र देवगिरि (धारवाड़) मे तालाब खोदते समय मिले थे और जो रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई–ब्राचके ३४ वें जर्नलमे प्रकाशित हुए हैं, उनमेंसे दूसेर दानपत्रमें कालवंग नामक ग्राम शिवमृगेश वर्माकी ओरसे दान किया गया है। उसके इस अंशको देखिए—

"...श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा कालवङ्गग्रामं त्रिधा विभज्य दत्तवान्। अत्र पूर्वमर्हच्छाला-परमपुष्कलस्थाननिवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्रदेवताभ्यः एको भागः द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्मकरण-परस्यश्वेतपटमहाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो निर्ग्रंथमहाश्रमण–संघोपभोगायेति।......"

अर्थात् उक्त ग्रामका एक भाग अर्हत्शालापरमपुष्कलस्थाननिवासी भगवान् अरहंतदेवके लिए * दूसरा भाग अर्हत्प्रोक्तसद्धर्मके पालनेवाले श्वेताम्बर-महाश्रमणसंघके उपभोगके लिए और तीसरा भाग निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघके उपभोगके लिए दिया गया ।

इन दानपत्रोको विद्वानोने ईसाकी पाँचवीं शताब्दिके पहलेका निश्चय किया है × और उस समय हम देखते है कि दिगम्बर-सम्प्रदायका मुनिसंघ मूलसंघ नहीं; किन्तु निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ कहलाता था ।

---

* जैनहितैषी भाग १, अंक ५–६ में एक अध्ययनशील विद्वानका लिखा हुआ 'प्राचीन कालमें जिन-मूर्तियाँ कैसी थीं ?' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें यह बतलाया गया है कि पहले तमाम जिनमूर्तियाँ दिगम्बर—वस्त्रादिचिह्नरहित—होती थीं और उन्हें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायके अनुयायी पूजते थे। इस दानपत्रसे भी उक्त बातकी पुष्टि होती है । क्योंकि इसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर संघोके लिए तो कालवंग ग्रामके दो जुदा–जुदा अंश दान किये गये थे, परन्तु जिनेन्द्रदेवका मन्दिर जान पड़ता है कि संयुक्त ही था और इसलिए उसके लिए उक्त ग्रामका तीसरा अंश दिया गया था । यदि ऐसा न होता, तो दोनों संघोंके मन्दिर भी जुदा जुदा होते और उनके लिए पृथक् पृथक् दानकी व्यवस्था होती ।

× देखो जैनहितैषी भाग १४, अक ७–८, पृष्ठ २२४–२९ ।

श्रुतावतारोक्त संघभेद

दिगम्बर-सम्प्रदाय या मूलसंघके आगे चलकर अनेक भेद और उपभेद हो गये हैं। इन भेद और उपभेदोंके विषयमें अभीतक हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है। आचार्य इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें लिखा है कि आचार्य अर्हद्वलिने पुण्ड्रवर्धनपुरमें शतयोजनवर्ती मुनियोंको एकत्र करके युगप्रतिक्रमण किया और समागत मुनियोंसे पूछा कि क्या सब मुनि आ गये? तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'हाँ भगवन्, हम सब अपने अपने संघ सहित आ गये।' यह सुनकर उन्होंने निश्चय किया कि अब यह जैनधर्म गणपक्षपातके सहारे ठहर सकेगा, उदासीन भावसे नहीं और तब उन्होंने संघ या गण स्थापित किये। जो मुनि गुहाओंसे आये थे उनमेंसे कुछको 'नन्दि' और कुछको 'वीर' संज्ञा दी, जो अशोकवटिकासे आये थे उनमेंसे कुछको 'अपराजित' और कुछको 'देव' बनाया, जो पंचस्तूपोंसे आये थे, उनमेंसे कुछको 'सेन' और कुछको 'भद्र' किया, जो शाल्मलिमहावृक्ष (सेमर) के मूल (कोटर) से आये थे, उनमेंसे कुछको 'गुणधर' और कुछको 'गुप्त' किया, जो खण्डकेसर (नागकेसर) वृक्षोंके मूलसे आये थे, उनमेंसे कुछको 'सिंह' और कुछको 'चन्द्र' किया। *

---

* ... गुहायाः समागता ये यतीश्वरास्तेषु । कॉश्चिन्नंद्यभिधानान् कॉश्चिद्वीराह्वयानकरोत् ॥ ९१ ॥
प्रथितादशोकवाटात्समागता ये मुनीश्वरास्तेषु । कॉश्चिदपराजिताख्यान्कॉश्चिद्देवाह्वयानकरोत् ॥ ९२ ॥

मतभेद

इन संज्ञाओंके विषयमें कुछ मतभेद भी है, जिनका आचार्य इन्द्रनन्दिने 'अन्ये जगुः' कहकर उल्लेख किया है ×। कुछके मतसे जो गुहाओंसे आये थे, उन्हें 'नन्दि', जो अशोकवनसे आये थे उन्हें 'देव', जो पंचस्तूपोंसे आये थे उन्हें 'सेन', जो सेमरके नीचेसे आये थे उन्हे 'वीर' और जो नागकेसर वृक्षोंके नीचेसे आये थे उन्हें 'भद्र' संज्ञा दी गई। कुछके मतसे गुहानिवासी 'नन्दि', अशोकवननिवासी 'देव', पंचस्तूपवाले 'सेन', सेमरवृक्षवाले 'वीर' और नागकेसरवाले 'भद्र' तथा 'सिंह' कहलाये।

पंचस्तूप्यनिवासादुपागता येऽनगारिणस्तेषु। कॉश्चित्सेनाभिख्यान्कॉश्चिद्भद्राभिधानकरोत् ॥ ९३ ॥
ये शाल्मलीमहाद्रुममूलाद्यतयोऽभ्युपागतास्तेषु। कॉश्चिद्गुणधरसंज्ञान्कॉश्चिद्गुप्ताह्वयानकरोत् ॥ ९४ ॥
ये खण्डकेसरद्रुममूलान्मुनयः समगतास्तेषु। कॉश्चित्सिंहाभिख्यान्कॉश्चिच्चन्द्राह्वयानकरोत् ॥ ९५ ॥

× अन्ये जगुर्गुहायाःविनिर्गता नन्दिनो महात्मानः। देवाश्चाशोकवनात्पंचस्तूप्यास्ततः सेनः ॥ ९७ ॥
विपुलतरशाल्मलीद्रुममूलगतावासवासिनो वीराः। भद्राश्चखण्डकेसरतरुमूलनिवासिनो जाताः ॥ ९८ ॥
गुहायां वासितो ज्येष्ठो द्वितीयोऽशोकवाटिकात्। निर्यातौ नन्दिदेवाभिधानावाद्यावनुक्रमात् ॥ ९९ ॥
पंचस्तूप्यास्तु सेनानां वीराणां शाल्मलीद्रुमः। खण्डकेसरनामा च भद्रः सिंहोऽस्य सम्मतः ॥ १०० ॥

मतभेदका कारण

इन मतभेदोंसे साफ माळूम होता है कि आचार्य इन्द्रनन्दिको भी इस विषयका यथेष्ट और स्पष्ट ज्ञान नहीं था और गुणधर तथा धरसेन मुनिके पूर्वापरक्रमकी चर्चा करते हुए उन्होने इसे स्वीकार भी किया है कि इस विषयके कथन करनेवाले आगम और मुनियोका अभाव है * । इसी लिए इस संज्ञा-प्रकरणकी कोई स्पष्ट उपपत्ति समझमे नहीं आती है । यह नहीं जान पड़ता है कि गुहानिवासी क्यों ' नन्दि ' कहलाये और अशोकवाटिकावालोको क्यो ' अपराजित ' संज्ञा दी गई, अथवा पचस्तूपोंसे 'सेन' शब्दका और नागकेसरसे 'सिंह' शब्दका क्या संबंध है । यह भी नही माळूम होता है कि ये संज्ञायें अमुक अमुक समूहके मुनि-नामोंके साथ ही लगाई जाती थीं या जुदा जुदा मुनिसमूह इन संज्ञाओंसे अभिहित किये जाते थे । क्योंकि एक ही परम्पराके मुनियोमे भी इन नामान्त संज्ञाओंका व्यतिक्रम देखा जाता है ।

---

* गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः ।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात् ॥ १५१ ॥
—श्रुतावतार

चार प्रसिद्ध संघ

इन सब संज्ञाओ मे नन्दि, सेन, देव और सिंह संज्ञाओसे हम विशेष परिचित है, क्योकि भट्टारक इन्द्रनन्दि आदिके पिछले साहित्यने * दिगम्बर-सम्प्रदायके ये ही चार संघ अर्हद्बल्याचार्यद्वारा स्थापित बतलाए है—

सिंहसंघो नन्दिसंघः सेनसंघो महाप्रभः ।
देवसंघ इति स्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥ ७ ॥

—नीतिसार

परन्तु अन्य वीर, अपराजित, भद्र, गुणधर, गुप्त और चन्द्र नामके संघोसे हम सर्वथा अपरिचित है । हॉ, कुछ ऐसे आचार्योंके नाम हमें अवश्य मालूम है जिनके नामोके अन्तमे इनमेसे गुप्त, वीर, भद्र और चन्द्र संज्ञाये जुड़ी हुई पाई जाती है । जैसे सर्वगुप्त[1], श्रुतगुप्त[2], शिवगुप्त[3], मित्रवीर[4], समन्तभद्र, गुणभद्र, श्रीचन्द्र, विमलचन्द्र, कनकचन्द्र आदि । परन्तु अपराजित और

---

* देखो श्रवणबेलोलका १०५ वें नम्बरका शक संवत १३२० का शिलालेख । इसमें अर्हद्बल्याचार्यद्वारा स्थापित सिंह—सेन—देव—नन्दिसंघोंका उल्लेख है ।

१ भगवती आराधनाके कर्त्ता शिवार्यके गुरु । २—३—४ देखो हरिवंशपुराणके ६६ वें सर्गमें लोहाचार्यकी परम्पराके प्रारंभके आचार्योंके नाम ।

गुणधर अन्तवाले नाम हमें नहीं मालूम और शायद इस प्रकारके नाम जिनके अन्तमें ये संज्ञाये हों बन भी नहीं सकते हैं। क्योंकि ये स्वयं सम्पूर्ण नाम हैं, बल्कि इन नामोंके कुछ आचार्य हुए भी हैं *।

आगे चलकर सिंह, नन्दि, सेन और देव नामके जो चार संघ प्रसिद्ध हुए हैं और जिनके विषयमें कविवर मंगराजने लिखा है कि अकलंकदेवके स्वर्गगत हो जाने पर यह संघभेद हुआ था × उन्हें पूर्वोक्त अर्हद्वलिआचार्यनिर्मित संघोंका ही स्थूलरूप समझना चाहिए जिनका कि श्रुतावतारमें जिक्र है।

संघ, गण, गच्छ और बलि

उक्त चार संघोंके भी आगे अनेक भेद और उपभेद हो गये हैं। यों तो संघ, गण, गच्छ, अन्वय आदि लगभग एकार्थवाची हैं और इस लिए मुनिसंघोंके लिए ये सभी शब्द यत्र तत्र व्यवहृत हुए हैं; परन्तु साधारणतः संघोंके भेदोंको गण और उपभेदोंको गच्छ कहनेकी परिपाटी देखी जाती है, जैसे नन्दिसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दान्वये, अथवा नन्दिसंघे देशीयगणे पुस्तकगच्छे कुन्दकुन्दान्वये आदि। अनेक स्थानोंमें संघोंको 'गण' कहा है, जैसे नन्दिगण, सेनगण, द्रमिलगण आदि।

---

* भगवती आराधनाकी विजयोदया टीकाके कर्त्ताका नाम अपराजित और दोषप्राभृतके रचयिता-का नाम गुणधर है जिसका कि उल्लेख श्रुतावतार (११५) में किया गया है।

× देखो श्रवणबेलगोलाका १०८ वें नम्बरका शिलालेख (जैनशिलालेखसंग्रह पृष्ठ २०९–११)

कहीं कहीं संघोंको 'अन्वय' भी कहा है जैसे सेनान्वय। गच्छके समान 'बलि' भी गणकी शाखाको कहते है, जैसे देशीयगणकी एक शाखा इंगुलेश्वर बलिका और दूसरी शाखा हनसोगे बलिका उल्लेख श्रवण-बेल्गोलके १०५, १०८, १२९ और ७० वे शिलालेखोंमे पाया जाता है।

अभीतक गणोंमे बलात्कार गण, देशीय गण और काणूर[1] गण इन तीन गणोंके और गच्छोमे पुस्तक गच्छ, सरस्वती गच्छ, वक्र गच्छ, और तगरिल[2] गच्छ इन तीन गच्छोंके उल्लेख मिले है। अरुंगलान्वय, श्रीपुरान्वय[3] और दिण्डिगूर देशीय गणकी कोई स्थानीय शाखायें जान पड़ती है।

कोलातूर संघका श्रवणबेल्गोलके ४९६ वे शिलालेखमे और नविलूर या मयूरसंघका २७, २०७ और २१५ वे शिलालेखोमे उल्लेख है। संभव है, ये भी देशीय गणकी कोई स्थानीय शाखा ही हो।

इंडियन एण्टिक्वेरी (२।१५६–५९) मे पृथ्वीकोङ्गणि महाराजका शक संवत् ६९८ का

१–२ काणूरगण और तगरिलगच्छका उल्लेख श्रवणबेल्गोलके ५०० वें नम्बरके शिलालेखमें है।

३–देखो श्रवणबेल्गोलका २२० वॉ लेख।

४–लेख नं० ४९६।

लिखा हुआ एक दानपत्र × प्रकाशित हुआ है, उसमें विमलचन्द्राचार्यको नन्दिसंघके 'एरेगित्तूर्' नामक गण और 'मूलिकल्' नामक गच्छका बतलाया है। अभीतक इन गण-गच्छोंका उल्लेख अन्यत्र नहीं मिला है।

ऊपर हमने कहा है कि नन्दि, सेन, सिंह और देव सघ ही अर्हद्वलिआचार्यनिर्मित पंचस्तूपान्वय आदि भेदोंके स्थूल या समयविकसित रूप हैं, इसे सिद्ध करनेके लिए हम पाठकोंके सम्मुख कुछ प्रमाण उपस्थित करते हैं—

पंचस्तूप, पुंनागवृक्षमूल और श्रीमूलमूल

१—सब जानते हैं कि आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जिनसेन सेनसघके थे। उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने अपने उत्तरपुराणमे लिखा है—

श्रीमूलसंघवाराशौ मणीनामिव सार्चिषाम्।
महापुरुषरत्नानां स्थानं सेनान्वयोऽजनि ॥

अर्थात् मूलसंघरूपी समुद्रमें चमकती हुई मणियोंके तुल्य महापुरुषरत्नोंका स्थानभूत सेनान्वय

× इस दानपत्रका कुछ अंश आगे उद्धृत किया गया है।

या सेनसंघ हुआ । अन्यान्य ग्रन्थकर्त्ताओंने भी उन्हें सेनसंघका बतलाया है; परन्तु स्वयं जिनसेनने अपनी जयधवलाटीकाकी प्रशस्तिमें * आपको ‘ पंचस्तूपान्वयी ’ बतलाया है—

यस्तपोदीप्तकिरणैर्भव्यांभोजानि बोधयन् ।
व्यद्योतिष्ट मुनी... पंचस्तूपान्वयाम्बरे ॥ २० ॥
प्रशिष्यश्चन्द्रसेनस्य यः शिष्योप्यार्यनंदिना ।
कुलं गुणं च संतानं स्वगुणैरुदजिज्वलत् ॥ २१ ॥
... ...
तस्य शिष्योऽभवच्छ्रीमान् जिनसेनसमिद्‌बुधीः ।
अविद्धावपि यत्कर्णौ विद्धौ ज्ञानशलाकया ॥ २३ ॥

इसका भावार्थ यह है कि पंचस्तूपान्वयरूप आकाशमें अपनी तपश्चर्याकी प्रदीप्त किरणोंसे भव्य-कमलोंको प्रबुद्ध करनेवाले (वीरसेन स्वामी) उदित हुए जो आर्यनन्दिके शिष्य और चन्द्रसेनके

---

* देखो जैनहितैषी भाग १५, अंक ९–१० में ‘ पं० जुगलकिशोरजीका भगवज्जिनसेनका विशेष परिचय ’ शीर्षक लेख ।

प्रशिष्य थे ।....उनके शिष्य जिनसेन हुए, जिनके कान अविद्ध होनेपर भी ज्ञानशलाकासे वेधे गये । ×

इसी तरह जिनसेनस्वामीके गुरु वीरसेनने भी धवलाटीकाकी प्रशस्तिमे अपना संघ पंचस्तूपान्वय बतलाया है—

अज्जज्जणंदिसिस्सेणुज्जवकम्मस्स चंदसेणस्स ।
तह्णतुवेण पंचस्थूहण्णयभाणुणा मुणिणा ॥ ४ ॥

अर्थात् आर्य आर्यनन्दिके शिष्य, चन्द्रसेनके प्रशिष्य और पचस्तूपान्वयके सूर्य वीरसेनस्वामीने।

इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि पंचस्तूपान्वय और सेनान्वय एक ही हैं और श्रुतावतारमे जो 'अन्ये जगुः' कहकर दूसरा मत दिया गया है कि पंचस्तूपोंसे आनेवालोको सेन संज्ञा दी गई, सो ठीक ही है । पंचास्तूपान्वयी मुनियोंने ही सेन संज्ञा धारण की थी, जो आगे चलकर प्रधान बन गई और भगवज्जिनसेनके शिष्य गुणभद्राचार्यने अपने उत्तरपुराणमे केवल उसीका उल्लेख करना आवश्यक समझा, पंचस्तूपान्वयका जिक्र भी न किया ।

× जिनसेनस्वामी आविद्धकर्ण थे, इसका भाव यह है कि कर्णवेध-संस्कार होनेके पहले ही—बहुत ही थोड़ी अवस्थामें—उन्होंने दीक्षा ले ली थी ।

२—राष्ट्रकूटनरेश द्वितीय प्रभूतवर्षका एक दानपत्र शक संवत् ७३५ का लिखा हुआ इंडियन एण्टिक्वेरी (१२।१३–१६) में प्रकाशित हुआ है, जिसमे मान्यपुरके शिलाग्राम नामक जिन-मन्दिरको जालमंगल ग्राम दान किया गया है। उसका निम्नलिखित अंश देखिए—

“.. . ... श्रीयापनीयनन्दिसंघपुंनागवृक्षमूलगणे श्रीकीर्त्याचार्यान्वये बहुष्वाचार्येष्वतिक्रान्तेषु व्रतसमितिगुप्तिगुप्तमुनिवृन्दवन्दितचरणकुवलियाचार्याणामासीत (?) तस्यान्तेवासी समुपंनतजनपरिश्रमाहारः स्वदानसंतर्पितसमस्तविद्वज्जनोजनितमहोदयः विजयकीर्ति नाम मुनिप्रभुरभूत् ।

अर्ककीर्तिरिति ख्यातिमातन्वन्मुनिसत्तमः ।
तस्य शिष्यत्वमायातो नायातो वशमेनसाम् ॥

तस्मै मुनिवराय.........दत्तवान्......”

इसके ‘श्रीयापनीय-नन्दिसंघ-पुंनागवृक्षमूलगणे’ पदपर विशेष विचार करनेकी आवश्यकता है। श्रुतावतारमे खण्डकेसरद्रुममूलेस आनेवाले मुनियोका उल्लेख है। खण्डकेसर और पुंनाग पर्यायवाची शब्द हैं, अतएव खण्डकेसरद्रुममूल और पुंनागवृक्षमूलका एक ही अर्थ होगा। जिस तरह वीरसेन और जिनसेन पंचस्तूपान्वयके आचार्य थे, उसी प्रकार पूर्वोक्त दानपत्रवाले विजयकीर्ति और अर्ककीर्ति आचार्य पुंनागवृक्षमूलान्वयके थे और जिस तरह वीरसेन जिनसेनको सेनसंघ–पंचस्तूपान्वय

या सेनसंघ–पंचस्तूपगण कहा जा सकता है, उसी तरह विजयकीर्ति–अर्ककीर्तिको नन्दिसंघ–पुंनागवृक्ष-मूलगणका लिखा है।

३–पृथ्वीकोङ्गणि महाराजके दानपत्रके निम्नलिखित अशको पढ़िए——

"...... श्रीमूलमूलशरणाभिनन्दितनन्दिसघान्वय–एरेगित्तुर्नाम्नि गणे मूलिकल्गच्छे स्वच्छतर-गुणकिरणततिप्रच्छादितसकललोकश्चन्द्र इवापरश्चन्द्रनन्दिनाम गुरुरासीत् । तस्य शिष्यः समस्तविबुधलोकपरिरक्षणक्षमात्मशक्तिः परमेश्वरलालनीयमहिमा कुमारवद्द्वितीयः कुमारनन्दिनामा मुनिपतिरभवत् । तस्यान्तेवासी समधिगतसकलतत्त्वार्थसमर्पितबुधसार्थसपत्संपादितकीर्तिः कीर्तिनन्द्याचार्यो नाम महामुनि. समजनि । तस्य प्रियशिष्य. शिष्यजनकमलाकरप्रबोधजनकः मिथ्याज्ञानसंततसन्तमसन्मानात्तक(?)सद्धर्मव्योमावभासनभास्करो विमलचन्द्राचार्यः समुदपादि । तस्य महर्षेधर्मोपदेशनया....... "

इसका 'श्रीमूलमूलशरणाभिनन्दितनन्दिसघान्वय–' पद स्पष्ट नहीं होता है । यह पाठ हमने निर्णयसागर प्रेसकी प्राचीन लेखमालाकी पहली जिल्दसे* उद्धृत किया है। जान पड़ता है कि दानपत्रके पढ़नेवाले या कापी करनेवालेने भूलसे 'गण' को 'शरण' लिख दिया है। 'श्रीमूलमूलगणाभिनन्दितनन्दि-

* पृष्ठ ५५–५९

संघान्वय' होना चाहिए। 'पुंनागवृक्षमूलगण' से ही मिलता जुलता यह कोई 'श्रीमूलमूलगण' है। पुन्नाग के समान श्रीमूल नामका ही कोई वृक्ष होना चाहिए, जिसके मूलसे आनेवाले मुनिसमूहको यह नाम दिया गया होगा। संस्कृत कोशोंमे यह शब्द नहीं मिला। संभव है यह पुरानी कनड़ी भाषाका कोई शब्द हो और इसका अर्थ शाल्मलि या अशोक हो, जिन वृक्षोंके मूलसे आनेवाले मुनियोंका श्रुतावतार-मे उल्लेख है।

श्रुतावतारके अनुसार खण्डकेसरद्रुममूलसे आनेवालोको सिंह चन्द्र या भद्र संज्ञा दी गई थी, परन्तु पुंनागवृक्ष-मूलगणके पूर्वोक्त नामोके अन्तमे 'कीर्ति' है, तथा श्रीमूल-मूलगणके उक्त आचार्योंके नाम नन्धन्त तथा चन्द्रान्त है जो श्रुतावतारके अनुसार नही है, सो इसके विषयमें हम पहले ही कह चुके है कि एक तो यह संज्ञानिर्माण उपपत्तिपूर्वक समझमे ही नहीं आता है, दूसरे और बहुतसी परम्पराओके नामोंमे इन संज्ञाओका व्यतिक्रम भी देखा जाता है। उदाहरणके लिए पचस्तूपान्वयको ही ले लीजिए। श्रुतावतारके कथनानुसार इस अन्वयके तमाम मुनि सेन और भद्र अथवा मत विशेषके अनुसार केवल सेनसंज्ञान्त होने चाहिए थे, परन्तु हम देखते है कि वीरसेनके दादागुरु आर्यनन्दिके और जिन-सेनके सधर्मा दशरथ गुरुके नामोमे ये संज्ञा नही है। इसी प्रकार श्रवणबेल्गोलाके १८९ वे शिलालेखमे

पचस्तूपान्वयके 'वृषभनन्दि' नामक एक आचार्यका उल्लेख है * और उक्त शिलालेख शक संवत् ५७२ के लगभगका है। यह नाम भी आर्यनन्दिके ही समान है। अन्य देवसंघ आदिके मुनियोंके नामोंमें भी किसी एक नियमका पालन नहीं किया गया है। इस लिए पुंनागवृक्षमूलान्वयके नामोंके अन्तमें कीर्ति और श्रीमूलमूलगणके नामोंके अन्तमें नन्दि या चन्द्र रहनेमें हमे आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

श्रुतावतारके अनुसार गुहाओंमेंसे आनेवाले मुनि नन्दि संज्ञासे युक्त किये गये थे, तब पुंनागवृक्षमूलान्वयके और श्रीमूलमूलगणके साथ नन्दिसंघका सम्बन्ध कुछ समझमे नहीं आता है। इस विषयमे यही कहा जा सकता है कि वास्तवमे हमारे पास ऐसा कोई साधन ही नहीं है जिससे इस प्राचीन मुनि-परम्पराके विषयमें कोई अधिकारयुक्त फैसला दिया जा सके।

द्राविडसंघ नन्दिसंघका भेद है

पार्श्वनाथचरितके कर्त्ता सुप्रसिद्ध तार्किक वादिराजसूरि द्राविडसंघकी अरुङ्गल शाखाके आचार्य

* ममा(पञ्च ?)स्तूपान्व...स कले...गद्गुरुः।
ख्यातो वृषभनन्दीति तपोज्ञानाब्धिपारगः॥

थे और यह द्राविड़संघ या द्रमिलसंघ + नन्दिसंघका एक भेद था जैसा कि नगर ताल्लुकेके ३९ वें शिलालेखके इस पद्यसे मालूम होता है—

श्रीमद्द्रमिलसंघेऽस्मिन्नन्दिसंघेऽस्त्यरुङ्गल: ।
अन्वयो भाति योऽशेषशास्त्रवाराशिपारग: ॥

श्रवणबेल्गोलके ४९३ वे कनड़ी शिलालेखमें श्रीपालदेवको भी नन्दिसंघके द्रमिलगणके अरुंगलान्वयका बतलाया है—

"आकुलतिलकङ्गे गुरुकुलमाद श्रीमद्द्रमिलगणद्—
नदिसंघदरुङ्गलान्वयदाचार्यावलियेन्तेन्दोडे ।"

अर्थात् श्रीपालदेव नन्दि-संघ-द्रमिलगणके अरुंगलान्वयमे हुए ।

परन्तु स्वयं वादिराजसूरिने पार्श्वनाथचरितमे अपनी गुरुपरम्परा बतलाते हुए केवल नन्दि-संघका उल्लेख किया है—द्रविड़संघका नहीं—

+ द्रमिल द्रविड़का ही पर्यायवाची शब्द है । स्वर्गीय डॉ० भाण्डारकरने अपने 'हिस्ट्री आफ दि डेक्कन' में इसका उल्लेख किया है । (देखो उक्त ग्रन्थका मराठी अनुवाद पृष्ठ १६९)

श्रीजैनसारस्वतपुण्यतीर्थनित्यावगाहामलबुद्धिसत्त्वैः ।
प्रसिद्धभागी मुनिपुंगवेन्द्रैः श्रीनन्दिसंघोऽस्ति निवर्हितांहः ॥

इससे ऐसा जान पडता है कि जिस तरह वीरसेन-जिनसेनस्वामी पंचस्तूपान्वयी थे, फिर भी गुणभद्र स्वामीने उनका केवल सेनसंघका कहकर उल्लेख किया है, उसी प्रकार द्रविडसंघके होने पर भी वादिराजसूरिने अपनेको नन्दिसंघका बतलाया है—द्रविडसंघकी अपेक्षा नन्दिसंघको प्रधानता दी है। संभव है कि पुनागवृक्षमूलगणका जिस तरह एक भेद यापनीय—नन्दिसंघ था, उसी प्रकार दूसरा भेद द्राविडीय-नन्दिसंघ भी हो।

इतिहासज्ञपाठक जानते हैं कि यापनीय और द्रविड़संघ दोनोंको पाच जैनाभासोंमे गिनाया है—

गोपुच्छिकः श्वेतवासा द्राविड़ो यापनीयकः ।
निःपिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

—नीतिसार

अर्थात् गोपुच्छिक (काष्ठासंघी), श्वेताम्बर, द्राविड़संघी, यापनीय और निःपिच्छ (माथुर[1]-

---

१ काष्ठासंघकी पट्टावलीमें माथुरसंघको काष्ठासंघका ही एक गच्छ माना है। इसके सिवाय काष्ठासंघके बागड़, लाट—बागड़ और नन्दितट नामके तीन गच्छ और भी हैं, जो देशभेदजन्य हैं।

संघी) ये पांच जैनाभास बतलाये गये है ।

पुन्नाटसंघ भी नन्दिसंघकी शाखा

अपने पिछले कई लेखोंमे मैने यह अनुमान किया था कि पुन्नाटसंघ द्राविड़संघका ही नामान्तर होगा * क्योंकि पुन्नाट कर्नाट या कर्नाटक देशको कहते है और द्रमिल या द्रविड़ उससे लगे हुए देशको; परन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि नन्दिसंघकी देशभेदके कारण बनी हुई एक शाखा द्रविड़-संघ थी, उसी प्रकार पुन्नाटसंघ भी रही होगी जिसमे हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन हुए है ।

पुन्नाट शब्दका एक अर्थ पुन्नाग या नागकेसर वृक्ष भी होता है × । कर्नाटक प्रान्तमे इस समय भी नागकेसर कसरतसे होती है और जान पड़ता है, इन्ही वृक्षोकी बहुलताके कारण उक्त देशका नाम पुन्नाट प्रसिद्ध हुआ होगा । इसपरसे यदि हम यह अनुमान करे कि पूर्वकालीन पुन्नागवृक्ष-

* देखो जैनहितैषी भाग १३ अंक ५–६ में ‘ दर्शनसारविवेचना ’ शीर्षक लेख और जैनहितैषी भाग १४ अंक ४–५ में ‘वनवासी और चैत्यवासी सम्प्रदाय’ शीर्षक लेख ।

× देखो प्रो० एल० आर० वैद्य, बी० ए०, एलएल० बी० की ‘दि स्टेण्डर्ड-संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी’ पृष्ठ ४४१ ।

मूलगण ही आगे चलकर संक्षिप्त पुन्नाटसंघ नाममें परिणत हो गया होगा, तो कुछ अनुचित न होगा और ऐसी दशामें यापनीय, द्राविड़ और पुन्नाट ये तीनों संघ एक ही वृक्षमूलके तीन स्कन्ध समझे जाने चाहिए ।

इन संघोंका जैनाभासत्व

अब रही, इनके जैनाभास कहलाये जानेकी बात । सो हमारी समझमें पुन्नागवृक्षमूलान्वय या नन्दिसंघभुक्त होनेपर भी इनमें जैनाभासत्व हो सकता है । जिस प्रकार वर्तमान भट्टारकोंको हम शिथिलाचारी भ्रष्ट या जैनाभास कहते हैं, यद्यपि ये भी अपनेको नन्दिसंघ बलात्कारगण और कुन्दकुन्दाचार्यान्वयभुक्त बतलाते हैं, उसी प्रकार दर्शनसारके कर्त्ता देवसेन द्रविड़संघ यापनीयसंघ आदिके मुनियोंके आचार देखकर उन्हें जैनाभास कह सकते हैं ।

इस विषयकी हमने अपने 'वनवासियों और चैत्यवासियोंके सम्प्रदाय' शीर्षक लेखमें विस्तृत चर्चा की है । संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि इन संघोंके साधु महन्तों या भट्टारकोंके ढँगपर मठों और मन्दिरोंमें रहने लगे थे, राजसभाओंमें आने जाने लगे थे, इनके मन्दिरोंको जागीरें लगी हुई थीं जिनका ये प्रबन्ध करते थे और तिलतुषमात्र परिग्रह न रखनेके आदर्शसे नीचे गिर गये थे ।

भट्टाकलंकदेवके न्यायविनिश्चयपर—वादिराजसूरिकी एक टीका है जो 'न्यायविनिश्चयविवरण'

या 'न्यायविनिश्चय-तात्पर्यावद्योतिनी व्याख्यानरत्नमाला' कहलाती है । इसके अन्तमे टीकाकार अपना परिचय इस प्रकार देते हैं—

श्रीमत्सिंहमहीपतेः परिषदि प्रख्यातवादोन्नति—
स्तर्कन्यायतमोपहोदयगिरिः सारस्वतः श्रीनिधिः ।
शिष्यः श्रीमतिसागरस्य, विदुषां पत्यु,स्तपः श्रीभृतां
भर्तुः, सिंहपुरेश्वरो विजयते स्याद्वादविद्यापतिः ।

स्याद्वादविद्यापति वादिराजसूरिका उपनाम है । वे सिंहमहीपति अर्थात् चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंहकी सभाके प्रख्यात वादी थे, तर्कन्यायके अन्धकारको भगानेवाले उदयाचल, सरस्वतीके सेवक, श्रीनिधि, मतिसागरके शिष्य, विद्वानोके पति, तपस्वियोके भर्त्ता और सिंहपुरेश्वर अर्थात् सिंहपुर नामक स्थानके राजा थे । यह स्थान उन्हें जागीरके तौरपर मिला हुआ होगा ।

इन्हीं वादिराजसूरिने अपने दादागुरु श्रीपालदेवको भी 'सिंहपुरैकमुख्य,' या 'सिंहपुराधीश' कहा है—

सूरिः स्वयं सिंहपुरैकमुख्यः
श्रीपालदेवो नयवर्त्मशाली ।

—पार्श्वनाथचरित

आयहोलीके जैनमंदिरकी प्रसिद्ध प्रशस्ति + शक संवत् ५५६ की लिखी हुई है। यह महाकवि कालिदास और भारविकी समता करनेवाले + रविकीर्तिकी रचना है। उसमे वे लिखते हैं–

प्रशस्तेर्वसतेश्चास्या जिनस्य त्रिजगद्गुरोः।
कर्त्ता कारयिता चापि रविकीर्तिः कृती स्वयम् ॥

अर्थात् इस प्रशस्ति (शिलालेख) और त्रिजगद्गुरु जिनदेवकी वसति (मन्दिर) का कर्त्ता और कारयिता (बनवानेवाला) स्वयं रविकीर्ति है।

प्रशस्तिमें यह नहीं लिखा है कि रविकीर्ति किस संघके आचार्य थे; परन्तु संभवतः वे द्रविड़ संघके ही होंगे। क्योंकि देवसेनसूरिने द्रविड़ संघके उत्पादक वज्रनन्दिके विषयमे लिखा है कि उसने वसति (मन्दिर) आदि बनवाकर प्रचुर पापका संग्रह किया ×। रविकीर्तिने भी उक्त मन्दिर निर्माण

---

* यह प्रशस्ति इंडियन एण्टिक्वरी जिल्द ५, पृष्ठ ६७–७१ और 'प्राचीनलेखमाला' भाग १, पृ॰ ७०–७२ में मुद्रित हो चुकी है।

+ स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।

× सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो।
णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो ॥ २४ ॥

कराया है, अतएव वे एक प्रकारसे मठाधीश थे और उनके सम्प्रदायमे मन्दिर आदि बनवाना जायज था।

जब वज्रनन्दि पूज्यपाद या देवनन्दिके शिष्य थे और देवनन्दि नन्दिसंघके आचार्य गिने जाते है, तब यदि द्राविड़संघके आचार्य वादिराज अपनी गुरुपरम्पराको नन्दिसंघका बतलाते है, तो ठीक ही है। आश्चर्य नही, जो पुन्नाटसंघ भी द्राविड़संघकी तरह नन्दिसंघकी ही एक शाखा हो। हरिवंशपुराणके कर्त्ताने पूर्वोक्त द्राविड़संघके उत्पादक वज्रनन्दिकी स्तुति निम्नलिखित शब्दोमें की है—

वज्रसूरेर्विचारिण्यः सहेत्वोर्बन्धमोक्षयोः।
प्रमाणं धर्मशास्त्राणां प्रवक्तॄणामिवोक्तयः॥ ३२॥

—हरिवंश, प्रथम सर्ग

अर्थात् वज्राचार्यकी सहेतुक बन्धमोक्षसम्बन्धी विचारणाये धर्मशास्त्रोके प्रवक्ता गणधरोकी उक्तियोके समान प्रमाणभूता है। अवश्य ये वज्रसूरि वज्रनन्दि ही है, क्योकि देवनन्दि (पूज्यपाद) के बाद ही इनका स्मरण किया गया है।

कच्छं खेत्तं वसहिं वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो।
ण्हंतो सीयलनीरे पावं पउरं स संजेदि॥ २७॥

—दर्शनसार

इससे प्रतीत होता है कि देवसेनकी दृष्टिमें जो संघ जैनाभास था, वह हरिवंशपुराणके कर्त्ताकी दृष्टिमें पूज्य था और इस कारण हम पुन्नाटसंघको भी द्राविडसंघकी ही कोटिका समझ सकते हैं।

गंगवंशीय नरेश सत्यवाक् कोङ्गणिवर्माके राज्यकालका नवमी शताब्दिका एक शिलालेख है * जिसमें एरेयप्पा नामक किसी राजपुरुषने कुमारसेन भट्टारकको जिनेन्द्रभवनके लिए एक ग्राम दान किया है। कुमारसेन किस संघके थे, यह उक्त लेखमें नहीं लिखा; परंतु संभवतः वे पुन्नाटसंघ या द्राविड़संघके ही होंगे, जिन संघोंमे ग्रामादि दान ग्रहण करनेकी परिपाटी थी और इसलिए जिनकी गणना जैनाभासोंमें हो सकती है।

प्रयत्न करनेसे इस प्रकारके और भी अनेक प्रमाण मिल सकते है।

हरिवंशपुराणकी रचना वर्द्धमानपुरके नन्नराजवसति नामके पार्श्वनाथ-मन्दिरमें रहकर की गई थी। इससे भी मालूम होता है कि पुन्नाटसंघके मुनि जैनमन्दिरोंमे रहते थे, अर्थात् चैत्यवासी थे और इसलिए भी उन्हें देवसेनसूरिके शब्दोंमें जैनाभास कहा जा सकता है।

हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनसूरिने और किसी ग्रन्थकी रचना की या नहीं, यह नहीं

* एपिग्राफिआ कर्नाटिकाकी दूसरी जिल्दका १४८ वाँ लेख।

मालूम। अन्य विद्वानोकी रचनाओ और लेखोमें भी इसका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आया। उनके जीवनके सम्बन्धमे भी हमे इसके सिवाय और कुछ विदित नहीं है कि वे पुन्नाटसंघके आचार्य थे, उनके गुरुका नाम कीर्तिषेण था और वर्द्धमाननगरके नन्नराजवसति नामके जैनमन्दिरमें रहकर उन्होंने शक संवत् ७०५ (विक्रम संवत् ८४०) में यह ग्रन्थ समाप्त किया था।

इच्छा थी कि इस ग्रन्थकी अन्तरङ्ग बातोंपर भी कुछ प्रकाश डाला जाय—यह बतलाया जाय कि प्राचीन जैनधर्मके अनुयायी कितने उदार थे, उस समयकी सामाजिक व्यवस्था कितनी सुधरी हुई थी, विवाह कितनी प्रौढ अवस्थामे होते थे, वर चुननेके लिए कन्याये कितनी स्वतन्त्र थीं, ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्योंमे किस प्रकार परस्पर विवाहसम्बन्ध होते थे और धर्मका द्वार किस प्रकार पुण्यात्माओके समान पापियों और व्यभिचारियोके लिए भी खुला हुआ था; परन्तु समयके अभावसे यह न हो सका। यदि बन सका, तो एक स्वतन्त्र लेखके द्वारा इस इच्छाकी पूर्ति की जायगी। तबतक इस ग्रन्थके विद्वान् पाठकोसे प्रार्थना है कि स्वाध्याय करते समय वे स्वयं इन बातोपर विचार करे और जनसाधारणमे जो इस विषयका अज्ञान फैल रहा है, उसे जैसे बने तैसे दूर करके जैनधर्मकी वास्तविक प्रभावना करनेका पुण्य सम्पादन करें।

ग्रन्थ-मुद्रणके विषयमें

सुप्रसिद्ध ग्रन्थोद्धारक पं० पन्नालालजी बाकलीवालने कलकत्तेकी जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्थाकी ओरसे इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेका निश्चय किया था और प्रारंभके चार फार्म मुद्रित भी करा लिये थे; परन्तु कुछ अज्ञात कारणोंसे उन्हे मुद्रण-कार्य रोक देना पड़ा। इधर ८–१० वर्ष बीत जानेपर भी जब वहाँसे प्रकाशित होनेकी आशा नहीं रही, तब मैंने माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालाके द्वारा इस कार्यको सम्पन्न करनेका विचार किया और मेरी प्रार्थनापर 'गुरुजी'ने छपे हुए फार्म और शेष सम्पूर्ण 'प्रेस-कापी' भेज दी। मुख्यतः उक्त चार फार्मों और शेष कापी परसे ही यह ग्रन्थ छपाया गया है। इस कापीका टिप्पणीमें क–प्रतिके नामसे उल्लेख किया गया है। यह मालूम न हो सका कि संस्थाके पण्डितोंने उक्त प्रेस-कापी किस मूल प्रतिके आधारसे की थी।

ख—यह प्रति 'वैशाखकृष्णत्रयोदश्या चद्रवासरे संवत् १९७१' की लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है। जैनमित्रमडल देहलीके उत्साही कार्यकर्त्ता बाबू पन्नालालजीकी कृपासे यह हमें प्राप्त हुई थी।

ग—यह प्रति अधूरी है। इसमें शुरूसे दसवें सर्गके ७२ वे श्लोक तकके और फिर २३ वें

सर्गके ३८ वें सर्गके ४७ वें श्लोकसे ३८ वे सर्गके ४४ वें श्लोकतकके ही पत्र है । यह मालूम न हो सका कि इसे कब और किस लेखकने लिखा था। परन्तु प्रति हालकी ही लिखी हुई मालूम होती है।

इन तीनो प्रतियोकी सहायतासे साहित्यरत्न पं० दरबारीलालजीने इस ग्रन्थका संशोधन सम्पादन किया है । प्रत्येक सर्गकी विस्तृत विषयसूची भी आपने तैयार कर दी है, जो ढूँढ़ खोज करनेवालेंके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

पद्मपुराण जैसे विशाल ग्रन्थको प्रकाशित करनेके बाद ही इस बृहद्ग्रन्थका जीर्णोद्धार करना इस ग्रन्थमालाकी शक्तिसे बाहर होता, यदि उस्मनाबादके सुप्रसिद्ध वकील और जिनवाणीभक्त श्रीयुत नेमीचन्दजी बालचन्दजी ठीक समयपर ७००) सात सौ रुपयोकी सहायता न देते । आप इसके पहले भी ग्रन्थमालाको कई बार सहायता दे चुके है । इस दानके लिए ग्रन्थमालाकी प्रबन्धसमिति आपकी चिरकृतज्ञ रहेगी।

पाठक जानते होगे कि इस ग्रन्थप्रकाशिनी संस्थाके पास बहुत ही कम पूँजी है। अब तक लगभग १५ हजार रुपया ही इसे समाजकी ओरसे मिला होगा और वह भी अबतक प्रकाशित हुए ३२ ग्रन्थोंमें लग चुका है । संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थोंकी विक्री इतनी कम होती है कि यदि हम पूर्वप्रकाशित

ग्रन्थोंकी विक्रीसे ही ग्रन्थमालाका आगामी कार्य चलाना चाहें, तो अब वर्ष भरमे मुश्किलसे एक दो छोटे छोटे ग्रन्थ ही प्रकाशित हो सकेंगे, जिनसे किसी प्रकार सन्तोष नहीं हो सकता है। हमारे सामने स्याद्वादविद्यापति वादिराजसूरिका न्याय-विनिश्चयालंकार, प्रभाचन्द्राचार्यका न्यायकुमुदचन्द्रोदय, अनन्तवीर्यकी सिद्धिविनिश्चय-टीका, हरिषेणका बृहत्कथाकोश आदि अनेक बड़े बड़े अलभ्य और अतिशय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिए रक्खे हुए हैं और इन चारोंकी तो अधूरी प्रेस-कापियाँ तक हमने तैयार करा ली हैं; परन्तु धनके अभावसे इन्हें प्रकाशित नहीं कर सकते। क्या हम आशा करें कि धर्मके नामसे प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च करनेवाला जैनसमाज इस ओर ध्यान देगा और अपने पूर्वजोंकी बहुमूल्य कृतियोंको संसारके विद्वानोंके सम्मुख उपस्थित करनेका श्रेय प्राप्त करेगा?

अन्तमें यह कह देना अनुचित न होगा कि इस ग्रन्थमालाने थोड़ीसी पूँजीसे जितने अधिक और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका उद्धार किया है, उतना और किसी भी संस्थाने नहीं किया और इसलिए यह सहायता पानेकी सबसे अधिक अधिकारिणी है।

घाटकोपर, बम्बई
२१–१०–३०

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी

हरिवंशपुराणस्य विषयसूची ।

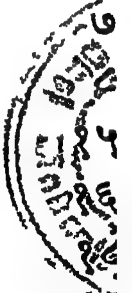

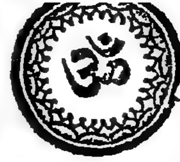

श्रीमज्जिनसेनाचार्यविरचितं

हरिवंशपुराणं ।

सिद्धं ध्रौव्यव्ययोत्पादलक्षणद्रव्यसाधनं । जैनं द्रव्याद्यपेक्षातः साद्यनाद्यथ शासनं ॥ १ ॥
शुद्धज्ञानप्रकाशाय लोकालोकैकभानवे । नमः श्रीवर्द्धमानाय वर्द्धमानजिनेशिने ॥ २ ॥
नमः सर्वविदे सर्वव्यवस्थानां विधायिने । कृतादिधर्मतीर्थाय वृषभाय स्वयंभुवे ॥ ३ ॥
येन तीर्थमभिव्यक्तं द्वितीयमजितायितं । अजिताय नमस्तस्मै जिनेशाय जितद्विषे ॥ ४ ॥
शं भवे वा विमुक्तौ वा भक्ता यत्रैव शंभवे । भेजुर्भव्या नमस्तस्मै तृतीयाय च संभवे ॥
तीर्थं चतुर्थमर्थ्यर्थ-यश्चकाराभिनंदनः । लोकाभिनंदनस्तस्मै जिनेंद्राय नमस्त्रिधा ॥ ६ ॥

१ ध्रौव्यव्ययोत्पादलक्षणं ग पुस्तके । २ कल्याणं ।

पंचमं संप्रपंचार्थं[1] तीर्थं वर्तयतिस्म यः । नमः सुमतये तस्मै नमः सुमतये सदा ॥ ७ ॥
ककुभो[2]ऽभासयद्यस्य जितपद्मप्रभा प्रभा । पद्मप्रभाय पद्माय तस्मै तीर्थकृते नमः ॥ ८ ॥
यस्तीर्थं स्वार्थसंपन्नः परार्थमुदपादयत् । सप्तमं तु नमस्तस्मै सुपार्श्वाय कृतात्मने ॥ ९ ॥
अष्टमस्येंद्रजुष्टस्य कर्त्रे तीर्थस्य तायिने[3]। चंद्रप्रभजिनेंद्राय नमश्चंद्राभकीर्तये ॥ १० ॥
देहदंतप्रभाक्रांतकुंदपुष्पत्विषे नमः । पुष्पदंताय तीर्थस्य नवमस्य विधायिने ॥ ११ ॥
शुचिशीतलतीर्थस्य जंतुसंतापनोदिनः । दशमस्य नमः कर्त्रे शीतलायापथाशिने ॥ १२ ॥
तीर्थं व्युच्छिन्नमुद्भाव्य भव्यानामाजवंजवं । चिच्छेदैकादशो योऽर्हस्तस्मै श्रीश्रेयसे नमः॥१३॥
कुतीर्थध्वांतमुद्धूय द्वादशं तीर्थमुज्ज्वलं । नमस्कृतवते भर्त्रे वासुपूज्यविवस्वते ॥ १४ ॥
विमलाय नमस्तस्मै यः कापर्थमलाविलं[4] । त्रयोदशेन तीर्थेन चकार विमलं जगत ॥ १५ ॥
तस्मै नमः कुसिद्धांततमोभेदनभास्वते । चतुर्दशस्य तीर्थस्य यः कर्ताऽनंतजिज्जिनः ॥ १६ ॥
अधर्मपथपातालपतदुद्धरणक्षमं । कर्त्रे पंचदशं तीर्थं धर्माय मुनये नमः ॥ १७ ॥
स्रष्ट्रे षोडशतीर्थस्य कृतनानेतिशांतये । चक्रेशाय जिनेशाय नमः शांताय शांतये ॥ १८ ॥

१ सविस्तारार्थे । २ दिशः । ३ पालकाय । ४ 'कषायमलाविलं' इत्यपि पाठः ।

येन सप्तदशं तीर्थं प्रावर्त्ति पृथुकीर्त्तिना । तस्मै कुंथुजिनेंद्राय नमः प्राक्चक्रवर्त्तिने ॥ १९ ॥
नमोऽष्टादशतीर्थाय प्राणिनामिष्टकारिणे । चक्रपाणिजिनाराय निरस्तदुरितारये ॥ २० ॥
तीर्थेनैकोनविंशेन स्थापितस्थिरकीर्त्तये । नमो मोहमहामल्लमाथिमल्लाय मल्लये ॥ २१ ॥
स्वं विंशतितमं तीर्थं कृत्वेशो मुनिसुव्रतः । अतारयत् भवाल्लोकं यस्तस्मै सततं नमः ॥ २२ ॥
नमये मुनिमुख्याय नमितांतर्वहिर्द्विषे । एकविंशस्य तीर्थस्य कृताभिव्यक्तये नमः ॥ २३ ॥
भास्वते हरिवंशाद्रिश्रीशिखामणये नमः । द्वाविंशतीर्थसच्चक्रनेमयेऽरिष्टनेमये ॥ २४ ॥
धर्ता धरणनिर्धूतपर्वतोद्धरणासुरः । त्रयोविंशस्य तीर्थस्य पार्श्वो विजयतां विभुः ॥ २५ ॥
इत्यस्यामवसर्पिण्यां ये तृतीयचतुर्थयोः । कालयोः कृततीर्थास्ते जिना नः संतु सिद्धये ॥ २६ ॥
येऽतीतापेक्षयाऽनंताः संख्येया वर्तमानतः । अनंतानंतमानास्तु भाविकालव्यपेक्षया ॥ २७ ॥
तेऽर्हंतः संतु नः सिद्धाः सूर्युपाध्यायसाधवः । मंगलं गुरवः पंच सर्वे सर्वत्र सर्वदा ॥ २८ ॥
जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनं । वचः समंतभद्रस्य वीरस्येव विजृंभते ॥ २९ ॥
जगत्प्रसिद्धबोधस्य[1] वृषभस्येव निस्तुषाः । बोधयंति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥ ३० ॥

---

१ जगत्प्रबोधसिद्धस्य इत्यपि पाठः ।

इंद्रचंद्रार्कजैनेंद्रव्यापिव्याकरणेक्षणाः । देवस्य देवसंघस्य न वंद्यंते गिरः कथं ॥ ३१ ॥
वज्रसूरेर्विचारिण्यः सहेत्वोर्बंधमोक्षयोः । प्रमाणं धर्मशास्त्राणां प्रवक्तॄणामिवोक्तयः[3] ॥ ३२ ॥
महासेनस्य मधुरा शीलालंकारधारिणी । कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना[4] ॥ ३३ ॥
कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्त्तिता । मूर्त्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः[6] प्रिया ॥ ३४ ॥
वरांगनेव सर्वांगैर्वरांगचरितार्थवाक् । कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरं ॥ ३५ ॥
शांतस्यापि च वक्रोक्ती रम्योत्प्रेक्षाबलान्मनः । कस्य नोद्घाटितेऽन्वर्थे रमणीयेऽनुरंजयेत् ॥३६॥
योऽशेषोक्तिविशेषेषु विशेषः पद्यगद्ययोः । विशेषवादिता तस्य विशेषत्रयवादिनः ॥ ३७ ॥
आकूपारं यशो लोके प्रभाचंद्रोदयोज्ज्वलं । गुरोः कुमारसेनस्य विचरत्याजितात्मकं ॥ ३८ ॥
जितात्मपरलोकस्य कवीनां चक्रवर्तिनः । वीरसेनगुरोः कीर्तिरकलंकावभासते ॥ ३९ ॥
याऽमिताभ्युदये पार्श्वजिनेंद्रगुणसंस्तुतिः । स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्त्तिः संकीर्तयत्यसौ ॥४०॥
वर्धमानपुराणोद्यदादित्योक्तिगभस्तयः । प्रस्फुरंति गिरीशांतःस्फुटस्फाटिकभित्तिषु ॥ ४१ ॥

१ व्याकरणेशिनः इत्यपि पाठः । २ देववंद्यस्य देवनन्दस्य इत्यपि पाठो । ३ गणधरदेवानां । ४ सुनेत्रा सुलोचना नाम्नी कथा च । ५ कमलं पद्मपुराणं च । ६ रविषेणाचार्यस्य ।

निर्गुणाऽपि गुणान् सद्भिः कर्णपूरीकृता कृतिः । बिभर्त्त्येव वधूवक्त्रैश्चूतस्येवाग्रमंजरी ॥ ४२ ॥
साधुरस्यति काव्यस्य दोषवत्तामयाचितः । पावकः शोधयत्येव कलधौतस्य कालिकां ॥ ४३ ॥
काव्यस्यांतर्गतं लेपं कुतश्चिदपि सत्सभाः । प्राक्षिपंति बहिः क्षिप्रं सागरस्येव वीचयः ॥ ४४ ॥
मुक्ताफलतयाऽऽदानात् परिषद्भिः कृतिः स्फुरेत् । जलात्मापि विशुद्धाभिस्तोयधेरिव शुक्तभिः ४५
दुर्वचो विषदुष्टांतर्मुखे स्फुरितजिह्वकान् । निगृह्णंति खलव्यालान् सन्नरेंद्राःस्वशक्तिभिः ॥४६॥
रजोबहुलमारूक्षं[1] खलं कालं विदाहिनं । संतः काले कलध्वानाः शमयंति यथा घनाः ॥४७॥
साध्वसाधुसमाकारप्रवृत्तमबुधं बुधाः । वारयंति तमोराशिं रवींदोरिव रश्मयः ॥ ४८ ॥
इत्थं साधुसहायोऽहमनातंकमनुद्धतं । देहं काव्यमयं लोके करोमि स्थिरमात्मनः ॥ ४९ ॥
बद्धमूलं भुवि ख्यातं बहुशाखाविभूषितं । पृथुपुण्यफलं पूतं कल्पवृक्षसमं परं ॥ ५० ॥
अरिष्टनेमिनाथस्य चरितेनोज्ज्वलीकृतं । पुराणं हरिवंशाख्यं ख्यापयामि[2] मनोहरं ॥ ५१ ॥
द्युमणिद्योतनं द्योत्यं द्योतयंति यथाणवः । मणिप्रदीपखद्योतविद्युतोऽपि यथायथं ॥ ५२ ॥
द्योतितस्य तथा तस्य पुराणस्य महात्मभिः । द्योतने वर्ततेऽत्यल्पो मादृशोऽप्यनुरूपतः ॥५३॥

१ बहुलकं रूक्षं इत्यपि पाठः । २ कथयामि इत्यपि पाठः ।

विप्रकृष्टमपि ह्यर्थं सौकुमार्ययुतं मनः । सूरिसूर्यकृतालोकं लोकचक्षुरिवेक्षते ॥ ५४ ॥
पंचधा प्रविभक्तार्थं क्षेत्रादिप्रविभागतः । प्रमाणमागमाख्यं तत्प्रमाणपुरुषोदितं ॥ ५५ ॥
तथाहि मूलतंत्रस्य कर्ता तीर्थंकरः स्वयं । ततोऽप्युत्तरतंत्रस्य गौतमाख्यो गणाग्रणीः ॥ ५६ ॥
उत्तरोत्तरतंत्रस्य कर्त्तारो बहवः क्रमात् । प्रमाणं तेऽपि नः सर्वे सर्वज्ञोक्त्यनुवादिनः ॥ ५७ ॥
त्रयः केवलिनः पंच ते चतुर्दशपूर्विणः । क्रमेणैकादश प्राज्ञा विज्ञेया दशपूर्विणः ॥ ५८ ॥
पंचैवैकादशांगानां धारकाः परिकीर्तिताः । आचारांगस्य चत्वारः पंचधेति युगस्थितिः ॥५९॥
वर्धमानाजिनेन्द्राऽऽस्यादिंद्रभूतिः श्रुतं दधे । ततः सुधर्मस्तस्मात्तु जंबूनामांत्यकेवली ॥ ६० ॥
तस्माद्विष्णुः क्रमात् तस्मान्नंदिमित्रोऽपराजितः । ततो गोवर्धनो दध्रे भद्रबाहुः श्रुतं ततः ६१
दशपूर्वी विशाखाख्यः प्रोष्ठिलः क्षत्रियो जयः । नागसिद्धार्थनामानौ धृतषेणगुरुस्ततः ॥ ६२ ॥
विजयो बुद्धिलाभिख्यो गंगदेवाभिधस्ततः । दशपूर्वधरोऽन्त्यस्तु धर्मसेनमुनीश्वरः ॥ ६३ ॥
नक्षत्राख्यो यशःपालपांडुरेकादशांगधृक् । ध्रुवसेनमुनिस्तस्मात् कंसाचार्यस्तु पंचमः ॥ ६४ ॥
सुभद्रोऽतो यशोभद्रो यशोबाहुरनंतरः । लोहाचार्यस्तुरीयोऽभूदाचारांगधृतस्ततः ॥ ६५ ॥

१ द्रव्यक्षेत्रकालादिभिरंतरितार्थं मूर्तामूर्तं ।

पूर्वाचार्येभ्य एतेभ्यः परेभ्यश्च वितन्वतः । एकदेशागमस्यायमेकदेशोऽपदिश्यते ॥ ६६ ॥
अर्थतः पूर्व एवायमपूर्वो ग्रंथतोऽल्पतः । शास्त्रविस्तरभीरुभ्यः क्रियते सारसंग्रहः ॥ ६७ ॥
मनोवाक्कायशुद्धस्य भव्यस्याभ्यस्यतःसदा । श्रेयस्करपुराणार्थो वक्तुः श्रोतुश्च जायते ॥ ६८ ॥
बाह्याभ्यंतरभेदेन द्विविधेऽपि तपोविधौ । अज्ञानप्रतिपक्षत्वात् स्वाध्यायः परमं तपः ॥ ६९ ॥
यतस्ततः पुराणार्थः पुरुषार्थकरः परः । वक्तव्यो देशकालज्ञैः श्रोतव्यस्त्यक्तमत्सरैः ॥ ७० ॥
लोकसंस्थानमत्रादौ राजवंशोद्भवस्ततः । हरिवंशावतारोऽतो वसुदेवविचेष्टितं ॥ ७१ ॥
चरितं नेमिनाथस्य द्वारावत्या निवेशनं । युद्धवर्णननिर्वाणे पुराणेऽष्टौ शुभा इमे ॥ ७२ ॥
संग्रहादधिकारैः स्वैः संगृहीतैरलंकृताः । अधिकाराः सूत्रिताः प्राक्सूरिसूत्रानुसारिभिः ॥ ७३ ॥
संग्रहेण विभागेन विस्तारेण च वस्तुनः । शासने देशना यस्माद् विभागः कथ्यते ततः॥७४॥
वर्धमानजिनेंद्रस्य धर्मतीर्थप्रवर्तनं । गणभृत्गणसंख्यानं भूयो राजगृहागमं ॥ ७५ ॥
गौतमश्रेणिकप्रश्नं क्षेत्रकालनिरूपणं । ततः कुलकरोत्पत्तिमुत्पत्तिं वृषभस्य च ॥ ७६ ॥
कीर्त्तनं क्षत्रियादीनां हरिवंशप्रवर्त्तनं । मुनिसुव्रतनाथस्य तत्र वंशे समुद्भवं ॥ ७७ ॥
दक्षप्रजापतेर्वृत्तं वसुवृत्तांतमेव च । जननं वृष्णिपुत्राणां सुप्रतिष्ठस्य केवलं ॥ ७८ ॥

वृष्णिदीक्षां तथा राज्यं समुद्रविजयस्य तु। वसुदेवस्य सौभाग्यमुपायेन च निर्गमं ॥ ७९ ॥
लाभं कन्यकयोस्तस्य सोमाविजयसेनयोः। वन्यहस्तिवशीकारं श्यामया सह संगमं ॥ ८० ॥
अंगारकेण हरणं, चंपायां च विमोचनं। लाभं गंधर्वसेनाया मुनेर्विष्णोर्विचेष्टितं ॥ ८१ ॥
चरितं चारुदत्तस्य तस्यैव मुनिदर्शनं। चारुनीलयशोलाभं सोमश्रीलाभमेव च ॥ ८२ ॥
वेदोत्पत्तिमुपाख्यानं सौदासस्य नृपस्य तु। कपिलाकन्यकालाभं पद्मावत्युपलंभनं ॥ ८३ ॥
संप्राप्तिं चारुहासिन्या रत्नवत्यास्ततोऽपि च। सोमदत्तसुतालाभं वेगवत्याश्च संगमं ॥ ८४ ॥
लाभं मदनवेगाया बालचंद्रावलोकनं। प्रियंगुसुंदरीलाभं बंधुमत्या समन्वितं ॥ ८५ ॥
प्रभावत्याः परिप्राप्तिं रोहिण्याश्च स्वयंवरं। संग्रामे विजयं तस्य भ्रातृभिः सह संगमं ॥ ८६ ॥
बलदेवसमुत्पत्तिं कंसोपाख्यानमेव च। जरासंधस्य वचनात् सिंहस्यंदनबंधनं ॥ ८७ ॥
तथा जीवद्यशोलाभं कंसस्य पितृबंधनं। देवक्या सह संयोगं ततोऽप्यानकदुंदुभेः ॥ ८८ ॥
सत्यातिमुक्तकादेशं कंससंक्षोभकारणं। प्रार्थनं वसुदेवस्य देवकीप्रसवं प्रति ॥ ८९ ॥
आनकेन मुनेः प्रश्नमष्टपुत्रभवांतरं। चरितं नेमिनाथस्य पापप्रमथनं तथा ॥ ९० ॥

१ वसुदेवस्य।

उत्पत्तिं वासुदेवस्य गोकुले बालचेष्टितं । ग्रहणं सर्वशास्त्राणां बलदेवोपदेशतः ॥ ९१ ॥
चापरत्नसमारोपं कालिंद्यां नागनाथनं । वाजिवारणचाणूरमल्लकंसवधं ततः ॥ ९२ ॥
उग्रसेनस्य राज्यं च सत्यभामाकरग्रहं । सर्वज्ञातिसमेतस्य प्रीतिं च परमां हरेः ॥ ९३ ॥
जीवद्यशोविलापं च जरासंधरुषं ततः । प्रेषितस्य रणे कालयवनस्य पराभवं ॥ ९४ ॥
तथाऽपराजितस्यापि मारणं हरिणा रणे । शौरीणां परमं तोषमकुतोभयतः स्थितिं ॥ ९५ ॥
शिवादेव्याः सुतोत्पत्तौ षोडशस्वप्नदर्शनं । फलानां कथनं पत्या नेमिनाथसमुद्भवं ॥ ९६ ॥
मेरौ जन्माभिषेकं च बालक्रीडामहोदयं । जरासंधातिसंधानं शौरिसागरसंश्रयं ॥ ९७ ॥
देवताकृतमायातो जरासंधनिवर्तनं । विष्णोः साष्टमभक्तस्य दर्भशय्याविरोहणं ॥ ९८ ॥
गौतमेनेंद्रवचनात् सागरस्यापसारणं । कुबेरेण क्षणात्तत्र द्वारावत्या निवेशनं ॥ ९९ ॥
रुक्मिणीहरणं भास्वद्भानुप्रद्युम्नसंभवं । रौक्मिणेयहृतिं पूर्ववैरिणा धूमकेतुना ॥ १०० ॥
विजयार्द्धस्थितिं पित्रोर्नारदेनेष्टसूचनं । प्राप्तिं षोडशलाभानां प्रज्ञप्तेरुपलंभनं ॥ १०१ ॥
कालशंवरसंग्रामं पितृमातृसमागमं । शंबोत्पत्तिशिशुक्रीडां प्रश्नं चापि पितुःपितुः ॥ १०२ ॥
तेन स्वहिंडनाख्यानं कुमाराणां च कीर्त्तनं । वार्तोपलंभाद्द्दूतस्य प्रेषणं प्रतिशत्रुणा ॥ १०३ ॥

यादवानां सभाक्षोभं सेनयोरुपसर्पणं । विजयार्धे खगक्षोभो वसुदेवपराक्रमं ॥ १०४ ॥
अक्षौहिणीप्रमाणं च रथिनोऽतिरथांस्तथा । महासमरथान् सर्वान् नृपानर्धरथानपि ॥ १०५ ॥
चक्रव्यूहव्यपोहार्थं गरुडव्यूहकल्पनं । सिंहगारुडविद्यासु रथाप्तिं बलकृष्णयोः ॥ १०६ ॥
नेमेः सारथिरूपेण मातुलेरुपसर्पणं । नेम्यनावृष्णिपार्थैश्च चक्रव्यूहस्य भेदनं ॥ १०७ ॥
कदनं पांडुपुत्राणां धृतराष्ट्रसुतैःसह । सेनापत्योर्महायुद्धं कृष्णमागधयोरतः ॥ १०८ ॥
चक्रोत्पत्ति तदा विष्णोर्जरासंधवधस्ततः । विजयं वसुदेवस्य खेचरीभिर्निवेदितं ॥ १०९ ॥
कृष्णकोटिशिलोत्क्षेपं वसुदेवागमं ततः । ततो दिग्विजयं दिव्यं रत्नानां च समुद्भवं ॥ ११० ॥
भ्रात्रोः राज्याभिषेकं च द्रौपदीहरणं सह । पांडवैर्धातकीखंडाद् विष्णुनानयनं पुनः ॥ १११ ॥
नेमिसामर्थ्यविज्ञानं मज्जनं तदनंतरं । पूरणं पांचजन्यस्य विवाहारंभसंभ्रमं ॥ ११२ ॥
मृगमोक्षविधानं च दीक्षणं केवलोदयं । देवागमविभूतिं च समवस्थानकीर्तनं ॥ ११३ ॥
राजीमत्यास्तपःप्राप्तिं द्विधा धर्मोपदेशनं । धर्मतीर्थविहारं च षट्सहोदरसंयमं ॥ ११४ ॥
ऊर्जयंतनगारोहं देवकीप्रश्नसंकथां । रुक्मिणीसत्यभामादिमहादेवीभवांतरं ॥ ११५ ॥
कुमारस्य गजाख्यस्य संभवं तस्य दीक्षणं । वसुदेवेतरोद्विग्ननवभ्रातृतपस्यनं ॥ ११६ ॥

त्रिषष्टिपुरुषोद्भूतिं सजिनांतरविस्तरं । बलदेवपरिप्रश्नं ततः प्रद्युम्नदीक्षणं ॥ ११७ ॥
रुक्मिण्यादिहरिस्त्रीणां दुहितॄणां च संयमं । द्वीपायनमुनेःक्रोधात् द्वारवत्या विनाशनं ॥११८॥
रामकेशवयोः प्लुष्टबंधुपुत्रकलत्रयोः । निर्गमं दुर्गमं शोकं कौशांबवनसेवनं ॥ ११९ ॥
शौरिरक्षणमुक्तस्य प्रमादाद्दैवयोगतः । जरत्कुमारमुक्तेन शरेण हननं हरेः ॥ १२० ॥
ततो घातकशोकं च शोकं रामस्य दुस्तरं । सिद्धार्थबोधितस्यास्य निर्विण्णस्य तपस्यनं॥१२१॥
ब्रह्मलोकोपपादं च कौंतेयानां तपोवनं । ऊर्जयंतगिरावंते नेमिनाथस्य निर्वृतिं ॥ १२२ ॥
उपसर्गजयं पंचपांडवानां महात्मनां । दीक्षां जरत्कुमारस्य संतानं तस्य चायतं ॥ १२३ ॥
हरिवंशप्रदीपस्य जितशत्रोश्च केवलं । पुरप्रवेशमंते च श्रेणिकस्य पृथुश्रियः ॥ १२४ ॥
वर्धमानजिनेशस्य निर्वाणं गणिनां तथा । देवलोककृतं वक्ष्ये प्रदीपमहिमोदयं ॥ १२५ ॥
हरिवंशपुराणस्य विभागोयं ससंग्रहः । श्रूयतां विस्तरः सिद्धचै भव्यैः सभ्यैरतः परं ॥१२६॥
एकस्यापि महानरस्य चरितं पापस्य विध्वंसनं, सर्वेषां जिनचक्रवर्त्तिहलिनामेतद्बुधाः किं पुनः
वार्येकस्य महाघनस्य महतस्तापस्य विच्छेदकं, लोकव्यापिघनाघनौघनिपतद्धारासहस्रं न किं

१ मित्रकलत्रयोरित्यपि पाठः ।

मुक्त्वा लोकपुराणतिर्यगपथभ्रांतिं विवेकी जनो, गृह्णातु प्रगुणां पुराणपदवीमेतां हितप्रापिणीं ॥
दिग्मूढं विरहय्य मोहबहुलं संशुद्धदृष्टिः परो, विस्तीर्णे जिनभास्करप्रकटिते मार्गे भृगोः कःपतेत् २८

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ संग्रहविभागवर्णनोनाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः ।

अथ देशोऽस्ति विस्तारी जंबूद्वीपस्य भारते । विदेह इति विख्यातः स्वर्गखंडसमःश्रियः ॥१॥
प्रतिवर्षनिनिष्पन्नधान्यगोधनसंचितः । सर्वोपसर्गनिर्मुक्तः प्रजासौस्थित्यसुंदरः ॥ २ ॥
सखेटकर्वटाटोपिमटंबपुटभेदनैः । द्रोणामुखाकरक्षेत्रग्रामभूपैर्विभूषितः ॥ ३ ॥
किं तत्र वर्ण्यते यत्र स्वयं क्षत्रियनायकाः । इक्ष्वाकवः सुखक्षेत्रे संभवंति दिवश्च्युताः ॥ ४ ॥
तत्राखंडलनेत्रालीपद्मिनीखंडमंडनं । सुखांभःकुंडमाभाति नाम्ना कुंडपुरं पुरं ॥ ५ ॥
यत्र प्रासादसंघातैः शंखशुभ्रैर्नभस्तलं । धवलीकृतमाभाति शरन्मेघैरिवोन्नतैः ॥ ६ ॥
चंद्रकांतकरस्पर्शाच्चंद्रकांतशिलाः निशि । द्रवंति यद्गृहाग्रेषु प्रस्वेदिन्य इव स्त्रियः ॥ ७ ॥
सूर्यकांतकरासंगात् सूर्यकांताग्रकोटयः । स्फुरंति यत्र गेहेषु विरक्ता इव योषितः ॥ ८ ॥

पद्मरागमणिस्फीतिर्यत्र प्रासादमूर्धनि । इनपाद[1]परिष्वंगादंगनेवातिरज्यते ॥ ९ ॥
मुक्तामरकतालोकैर्वज्रवैडूर्यविभ्रमैः । एकमेव सदा धत्ते यत्समस्ताकरश्रियं ॥ १० ॥
शालशैलमहावप्रपरिखापरिवेषिणः । यस्योपरि परं गच्छत्यमित्रेतेर[2]मंडलं ॥ ११ ॥
एतावतैव पर्याप्तं पुरस्य गुणवर्णनं । स्वर्गावतरणे तद्यद्वीरस्याधरतां गतं ॥ १२ ॥
सर्वार्थश्रीमतीजन्मा तस्मिन् सर्वार्थदर्शनः । सिद्धार्थोऽभवदर्काभो भूपःसिद्धार्थपौरुषः ॥ १३ ॥
यत्र पाति धरित्रीयमभूदेकत्रदोषिणी । धर्मार्थिन्योऽपि यत्त्यक्तपरलोकभयाः प्रजाः ॥ १४ ॥
कस्तस्य तान् गुणानुद्यान्नरस्तुलयितुं क्षमः । वर्धमानगुरुत्वं यः प्रापितः स नराधिपः ॥ १५ ॥
उच्चैःकुलाद्रिसंभूता सहजस्नेहवाहिनी । महिषी श्रीसमुद्रस्य तस्यासीत् प्रियकारिणी ॥ १६ ॥
चेतश्चेटकराजस्य यास्ताः सप्तशरीरजाः । अतिस्नेहाकुलं चक्रुस्तास्त्वाद्या प्रियकारिणी ॥ १७ ॥
कस्तां योजयितुं शक्तस्त्रिशलां गुणवर्णनैः । या स्वपुण्यैर्महावीरप्रसवाय नियोजिता ॥ १८ ॥
सर्वतोऽथ नमंतीषु सर्वासु सुरकोटिषु । प्रभावान्निपतंतीषु नभसो वसुवृष्टिषु ॥ १९ ॥
वीरेऽवतरति त्रातुं धरित्रीमसुधारिणः । तीर्थनाच्युतकल्पोच्चैः पुष्पोत्तरविमानतः ॥ २० ॥

१ सूर्यकिरण । २ सूर्यमंडलं ।

सा तं पोडशसुस्वप्नदर्शनोत्सवपूर्वकं। दध्रे गर्भेश्वरं गर्भे श्रीवीरं प्रियकारिणी ॥ २१ ॥
पंचसप्ततिवर्षाष्टमाससमासार्धशेपकः। चतुर्थस्तु तदा कालो दुःखमः सुखमोत्तरः ॥ २२ ॥
आषाढशुक्लषष्ठ्यां तु गर्भावतरणेऽर्हतः। उत्तराफाल्गुनीनीडमुडुगजाद्विजः श्रितः ॥ २३ ॥
दिक्कुमारीकृताभिख्यां द्योतिमूर्तिं घनस्तनीं। प्रच्छन्नोऽभासयद्गर्भस्तां रविःप्रावृषं यथा ॥ २४ ॥
नवमासेष्वतीतेषु स जिनोऽष्टादिनेषु च। उत्तराफाल्गुनीष्विंदौ वर्तमानेऽजनि प्रभुः ॥ २५ ॥
ततोऽस्यजिनमाहात्म्याल्लुठत्पीठकिरीटकाः। प्रणेमुरवधिज्ञाततद्वृत्तांताः सुरेश्वराः ॥ २६ ॥
शंखभेरीहरिध्वानघंटानिर्घोपघोपणं। समाकर्ण्य सुरास्तूर्णं घूर्णितार्णवराविणः ॥ २७ ॥
सप्तानीकमहाभेदाः सस्त्रीकाः कृतभूपणाः। सेंद्राश्चतुर्णिकायास्ते प्रापुः कुंडपुरं पुरं ॥२८॥ युग्मं
त्रिःपरीत्य पुरं देवाः पुरंदरपुरस्सराः। जिनमिंदुमुखं देवं तद्गुरू च ववंदिरे ॥ २९ ॥
मातुः शिशुं विकृत्यान्यं सुप्तायाः सुरमायया। इंद्राणी प्रणता नीत्वा जिनेंद्रं हरये ददौ ॥३०॥
गृहीत्वा करपद्माभ्यां तमभ्यर्च्य चिरं हरिः। चक्रे नेत्रसहस्रोरुपुंडरीकवनार्चितं ॥ ३१ ॥
ततश्चंद्रावदातांगमिंद्रस्तुंगमतंगजं। शृंगौघमिव हेमाद्रेर्मुक्ताधोमदनिर्झरं ॥ ३२ ॥
गंडस्थलमदामोदभ्रमद्भ्रमरमंडलं। तमिवाधित्यकावस्थतमालवनमंडितं ॥ ३३ ॥

कर्णांतरतताशक्तरक्तचामरसंहतिं । तं यथाधित्यकाधीनरक्ताशोकमहावनं ॥ ३४ ॥
सुवर्णरिक्षया चार्व्या परिवेष्टितविग्रहं । तमेव च यथोपात्तकनत्कननमेखलं ॥ ३५ ॥
अनेकरदसंवृत्तानृत्यसंगीतपोषितं । तमिवोत्तुंगशृंगाग्रनृत्यद्गायत्सुरांगनं ॥ ३६ ॥
सुवृत्तादीर्घसंचारिकररुद्धदिगंतरं । तमिवात्यायतिस्थूलस्फुरद्भोगभुजंगमं ॥ ३७ ॥
ऐशानधारितस्फीतधवलातपत्रारणं । तमिवोर्ध्वस्थिताभ्यर्णसंपूर्णशशिमंडलं ॥ ३८ ॥
चामरेंद्रभुजोत्क्षिप्तचलचामरहारिणं । तं यथा चमरीक्षिप्तबालव्यजनवीजितं ॥ ३९ ॥
ऐरावतं समारोप्य जिनेन्द्रं तस्य मंडनं । देवैः सह गतः प्राप मंदरं स पुरंदरः ॥४० ॥ (कुलकं)
तं पांडुकवने रम्ये मंदरस्य जिनं हरिः । पांडुकायां प्रसिद्धायां शिलायां सिंहविष्टरे ॥ ४१ ॥
संस्थाप्य विबुधानीतक्षीरसागरवारिभिः। सातकुंभमयैः कुंभैरभिषिच्य समं सुरैः ॥ ४२ ॥
वस्त्रालंकारमालाद्यैरलंकृत्य कृतस्तुतिः । आनीय मातुरुत्संगे जिनं कृत्वा कृतोचितः ॥ ४३ ॥
सिद्धार्थप्रियकारिण्योः सममानंददायकं । वर्धमानाख्यया स्तुत्वा सदेवो वासवोऽगमत् ॥४४॥
मासान्पंचदशाऽऽजन्म द्युम्नधारा दिनेदिने । याः पूर्वमापतंस्ताभिस्तर्पितोऽर्थी जनोऽखिलः॥४५
वर्धमानः सुरैः सेव्यो ववृधे स यथा यथा । पितृबंधुत्रिलोकानामनुरागस्तथा तथा ॥ ४६ ॥

सुरासुरनराधीशमौलिमालार्चितक्रमः । त्रिंशद्वर्षप्रमाणोऽभूद्वीरो भोगैः परिष्कृतः ॥ ४७ ॥
शुद्धवृत्तं न भोगेषु चित्तं तस्य चिरं स्थितं । कुटिलेषु यथा सिंहनखरंध्रेषु मौक्तिकं ॥ ४८ ॥
शांतचित्तं कदाचित् तं स्वयंबुद्धमबोधयन् । नत्वा सारस्वतादित्यमुख्याःलौकांतिकाः सुराः॥४९
सौधर्माद्यैःसुरैरेत्य कृतोऽभिषवपूजनः । आरुह्य शिविकां दिव्यामुह्यमानां सुरेश्वरैः ॥ ५० ॥
उत्तराफाल्गुनीष्वेव वर्तमाने निशाकरे । कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यामगमद्वनं ॥ ५१ ॥
अपनीय ततः सर्वं वस्त्रमाल्यविभूषणं । पंचमुष्टिभिरुद्धृत्य मूर्धजानभवन्मुनिः ॥ ५२ ॥
केशकुंडलसंघातं जिनस्य भ्रमरासितं । प्रतिगृह्य सुराधीशो निदध्यौ दुग्धवारिधौ ॥ ५३ ॥
इंद्रनीलचयेनेव क्षिप्तेनेंद्रेण चात्यभात् । जिनेंद्रकेशपुंजेन रंजितः क्षीरसागरः ॥ ५४ ॥
जिननिष्क्रमणं दृष्ट्वा तुष्टाः सर्वे नरामराः । कृत्वा तृतीयकल्याणपूजां जग्मुर्यथायथं ॥५५॥
मनःपर्ययपर्यंतचतुर्ज्ञानमहेक्षणः । तपो द्वादशवर्षाणि चकार द्वादशात्मकं ॥ ५६ ॥
विहरन्नथ नाथोऽसौ गुणग्रामपरिग्रहः । ऋजुकूलापगाकूले जृंभिकग्राममीयिवान् ॥ ५७ ॥
तत्रातापनयोगस्थसालाभ्याशशिलातले[1] । वैशाखशुक्लपक्षस्य दशम्यां षष्ठमाश्रितः ॥ ५८ ॥

---

१ शालवृक्षनिकटस्थशिलोपरि ।

उत्तराफाल्गुनीं प्राप्ते शुक्लध्यानी निशाकरे । निहत्य घातिसंघातं केवलज्ञानमाप्तवान् ॥ ५९ ॥
केवलस्य प्रभावेण सहसा चलितासनाः । आगत्य महिमां चक्रुस्तस्य सर्वे सुरासुराः ॥ ६० ॥
षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन् विभुः । आजगाम जगत्ख्यातं जिनो राजगृहं पुरं ॥६१॥
आरुरोह गिरिं तत्र विपुलं विपुलश्रियं । प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा ॥ ६२ ॥
ततः प्रबुद्धवृत्तांतैरापतद्भिरितस्ततः । जगत्सुरासुरैर्व्याप्तं जिनेंद्रस्य गुणैरिव ॥ ६३ ॥
सौधर्माद्यैस्तदा देवैः परितोऽभात् स भूधरः । नाभेयाधिष्ठितः पूर्वं यथाष्टापदपर्वतः[1] ॥ ६४ ॥
चतुराशामुखद्वारस्थितद्वादशगोपुरं । कृतं रत्नमयं देवैः प्राकारवलयत्रयं ॥ ६५ ॥
जाते योजनविस्तीर्णे शरणे समवादिके । विभागा द्वादशाभासन्नभः स्फाटिकभित्तयः ॥ ६६ ॥
प्रातिहार्यैर्युतोऽष्टाभिश्चतुस्त्रिंशन्महाद्भुतैः । तत्र देवैर्वृतोऽभासीत् जिनश्चंद्र इव ग्रहैः ॥ ६७ ॥
इंद्राग्निवायुभूत्याख्याः कौंडिन्याख्याश्च पंडिताः । इंद्रेणोदयनयाऽऽयाताःसमवस्थानमर्हतः ॥६८॥
प्रत्येकं राहिताः सर्वे शिष्याणां पंचभिः शतैः । त्यक्तांबरादिसंबंधाः संयमं प्रतिपेदिरे ॥ ६९ ॥
सुता चेटकराजस्य कुमारी चंदना तदा । धौतैकांबरसंवीता जातार्याणां पुरःसरी ॥ ७० ॥

1 कैलास इत्यपि ।

श्रेणिकोऽपि च संप्राप्तः सेनया चतुरंगया । सिंहासनोपविष्टं तं प्रणनाम जिनेश्वरं ॥ ७१ ॥
छत्रचामरभृंगारैः कलशध्वजदर्पणैः । व्यञ्जनैः सुप्रतीकैश्च प्रसिद्धैरष्टमंगलैः ॥ ७२ ॥
स्रजचक्रदुकूलाब्जगजासिंहवृषध्वजैः । गरुडध्वजसंयुक्तैरष्टभेदैर्महाध्वजैः ॥ ७३ ॥
मानस्तंभस्तथा स्तूपैश्चतुर्भिश्च महावनैः । वाप्यंभोरुहखंडैश्च वल्लीवनलतागृहैः ॥ ७४ ॥
तैस्तैर्दिव्यैः कृतैः सर्वैरन्यैश्चातिशयैस्तथा । यथास्थानस्थितैर्जैनी समवस्थानभूरभात् ॥ ७५ ॥
अथेंदोरिव शुक्राद्या निषण्णा गुर्वधिष्ठिताः । साधवोऽभाज्जिनस्यांते जातरूपाच्छविग्रहाः ॥७६॥
ततः कल्पनिवासिन्यो देव्यः कल्पलताभुजः । मेरोरिव जिनस्यांते ता बभुर्भोगभूमयः ॥ ७७ ॥
ततोऽलंकृतनारीभिरार्यिकाततिराबभौ । स्फुरद्विद्युद्भिराश्लिष्टशारदीव घनावली ॥ ७८ ॥
ज्योतिर्देवस्त्रियोऽतश्च रेजुरुज्ज्वलमूर्तयः । तास्तारा इव संक्रांताः समवस्थानसागरे ॥ ७९ ॥
कांता व्यंतरदेवानां ततस्तत्र विरेजिरे । करकुड्मलहारिण्यः साक्षादिव वनश्रियः ॥ ८० ॥
ततो नागकुमारादिदेव्यो नागफणोज्ज्वलाः । नागलोकसमायाता नागवल्य इवाबभुः ॥८१॥
ततोऽप्यग्निकुमाराद्या देवाः पातालवासिनः । ज्वलितोज्ज्वलनेशास्ते दशभेदा बभासिरे ॥८२॥
ततः किन्नरगंधर्वयक्षकिंपुरुषादयः । षोडशार्द्धविकल्पास्ते व्यंतराश्च चकासिरे ॥ ८३ ॥

सप्रकीर्णकनक्षत्रसूर्याचंद्रमसो ग्रहाः । पंचभेदास्तदाऽनल्पवपुषो ज्योतिषो बभुः ॥ ८४ ॥
मौलिकुंडलकेयूरप्रालंबकटिसूत्रिणः । हारिणः कल्पवृक्षाभास्ततोऽभात्कल्पवासिनः ॥ ८५ ॥
सपुत्रवनितानेकविद्याधरपुरस्सराः । न्यषीदन् मानुषा नानाभाषावेषरुचस्ततः ॥ ८६ ॥
ततोऽहिनकुलेभेंद्रहर्यश्वमहिषादयः । जिनानुभावसंभूतविश्वासाः शमिनो बभुः ॥ ८७ ॥
इति द्वादशभेदेषु परीतिं विनुतिं नतिं । गणेषु प्रथमं कृत्वा स्थितेषु परितो जिनं ॥ ८८ ॥
प्रत्यक्षीकृतविश्वार्थं कृतदोषत्रयक्षयं । जिनेंद्रं गोतमोपृच्छत्तीर्थार्थं पापनाशनं ॥ ८९ ॥
स दिव्यध्वनिना विश्वसंशयच्छेदिना जिनः । दुंदुभिध्वनिधीरेण योजनांतरयायिना ॥ ९० ॥
श्रावणस्यासिते पक्षे नक्षत्रेऽभिजिति प्रभुः । प्रतिपद्यह्नि पूर्वाह्णे शासनार्थमुदाहरत् ॥ ९१ ॥
आचारांगस्य तत्त्वार्थं तथा सूत्रकृतस्य च । जगाद भगवान् वीरः संस्थानसमवाययोः ॥ ९२ ॥
व्याख्याप्रज्ञप्तिहृदयं ज्ञातृधर्मकथास्थितं । श्रावकाध्ययनस्यार्थमंतकृद्दशगोचरं ॥ ९३ ॥
अनुत्तरदशस्यार्थं प्रश्नव्याकरणस्य च । तथा विपाकसूत्रस्य पवित्रार्थं ततः परं ॥ ९४ ॥
त्रिषष्टिः त्रिशती यत्र दृष्टीनामभिधीयते । दृष्टिवादस्य यस्यार्थं पंचभेदस्य सर्वदृक् ॥ ९५ ॥

---

१ सुपुत्रानामिता इत्यपि पाठः ।

जगाद जगतां नाथः प्रथमं परिकर्मणः । सूत्रस्याद्यानुयोगस्य तथा पूर्वगतस्य च ॥ ९६ ॥
उत्पादपूर्वपूर्वस्य परगार्थं ततः परं । अग्रायणीयपूर्वार्थमग्रणीरमणद्विदां ॥ ९७ ॥
वीर्यप्रवादपूर्वार्थमस्तिनास्तिप्रवादजं । ज्ञानसत्यप्रवादार्थमात्मकर्मप्रवादयोः ॥ ९८ ॥
प्रत्याख्यानस्य विद्यानुवादकल्याणपूर्वयोः । प्राणावायस्य पूर्वस्य तत्त्वार्थं तदनंतरं ॥ ९९ ॥
क्रियाविशालपूर्वस्य विशालार्थमशेषवित् । सल्लोकबिंदुसारार्थं चूलिकार्थं सवस्तुकं ॥ १०० ॥
अंगप्रविष्टतत्त्वार्थं प्रतिपाद्य जिनेश्वरः । अंगबाह्यमवोचत्तत्प्रतिपाद्यार्थरूपतः ॥ १०१ ॥
सामायिकं यथार्थाख्यं सचतुर्विंशतिस्तवं । वंदनां च ततः पूतां प्रतिक्रमणमेव च ॥ १०२ ॥
वैनयिकं विनेयेभ्यः कृतिकर्म ततोऽवदत् । दशवैकालिकां पृथ्वीमुत्तराध्ययनं तथा ॥ १०३ ॥
तं कल्पव्यवहारं च कल्पाकल्पं तथा महा—कल्पं च पुंडरीकं च सुमहापुंडरीककं ॥ १०४ ॥
तथा निषद्यकां प्रायः प्रायश्चित्तोपवर्णनं । जगत्त्रयगुरुः प्राह प्रतिपाद्यं हितोद्यतः ॥ १०५ ॥
मत्यादेः केवलांतस्य स्वरूपं विषयं फलं । अपरोक्षपरोक्षस्य ज्ञानस्योवाच संख्यया ॥ १०६ ॥
मार्गणास्थानभेदैश्च गुणस्थानविकल्पनैः । जीवस्थानप्रभेदैश्च जीवद्रव्यमुपादिशत् ॥ १०७ ॥
सत्संख्याद्यनुयोगैश्च सन्नामादिकमादिभिः । द्रव्यं स्वलक्षणैर्भिन्नं पुद्गलादि त्रिलक्षणं ॥ १०८ ॥

द्विविधं कर्मबंधं च सहेतुं सुखदुःखदं । मोक्षं मोक्षस्य हेतुं च फलं चाष्टगुणात्मकं ॥ १०९ ॥
बंधमोक्षफलं यत्र भुज्यते तत् त्रिधाकृतं । अंतःस्थितं जगौ लोकमलोकं च बहिःस्थितं॥११०॥
अथ सप्तर्द्धिसंपन्नः श्रुत्वार्थं जिनभाषितं । द्वादशांगश्रुतस्कंधं सोपांगं गौतमो व्यधात् ॥१११॥
त्रैलोक्यं संसदि स्पृष्टं जिनार्कवचनांशुभिः । मुक्तमोहमहानिद्रं सुप्तोत्थितमिवाबभौ ॥ ११२ ॥
जिनभाषाऽधरस्पंदमंतरेण विजृंभिता । तिर्यग्देवमनुष्याणां दृष्टिमोहमनीनशत् ॥ ११३ ॥
ततो जिनोक्ततत्त्वार्थमार्गश्रद्धानलक्षणं । शंकाकांक्षानिदानादिकलंकविगमोज्ज्वलं ॥ ११४ ॥
सम्यग्दर्शनसद्रत्नं ज्ञानालंकारनायकं । स्वकर्णहृदयेष्वेकं पिनद्धमखिलांगिभिः ॥ ११५ ॥
कायेंद्रियगुणस्थानजीवस्थानकुलायुषां । भेदान् योनिविकल्पांश्च निरूपागमचक्षुषा ॥ ११६ ॥
क्रियासु स्थानपूर्वासु वधादिपरिवर्जनं । षण्णां जीवनिकायानामहिंसाद्यं महाव्रतं ॥ ११७ ॥
यद्रागद्वेषमोहेभ्यः परतापकरं वचः । निवृत्तिस्तु ततः सत्यं तद् द्वितीयं महाव्रतं ॥ ११८ ॥
अल्पस्य महतो वापि परद्रव्यस्य साधुना । अनादानमदत्तस्य तृतीयं तु महाव्रतं ॥ ११९ ॥
स्त्रीपुंसंगपरित्यागः कृतानुमतकारितैः । ब्रह्मचर्यमिति प्रोक्तं चतुर्थं तु महाव्रतं ॥ १२० ॥
बाह्याभ्यंतरवर्तिभ्यः सर्वेभ्यो विरतिर्यतः । स्वपरिग्रहदोषेभ्यः पंचमं तु महाव्रतं ॥ १२१ ॥

चक्षुर्गोचरजीवौघान् परिहृत्य यतेर्यतः । ईर्यासमितिराद्या सा व्रतशुद्धिकरी मता ॥ १२२ ॥
त्यक्त्वा कार्कश्यपारुष्यं यतेर्यत्नवतः सदा । भाषणं धर्मकार्येषु भाषासमितिरिष्यते ॥ १२३ ॥
पिंडशुद्धिविधानेन शरीरस्थितये तु यत् । आहारग्रहणं सा स्यादेषणासमितिर्यतेः ॥ १२४ ॥
निक्षेपणं यदादानमीक्षित्वा योग्यवस्तुनः । समितिः सा तु विज्ञेया निक्षेपादाननामिका ॥१२५
शरीरांतर्मलत्यागः प्रगतासु सुभूमिषु । यत्तत्समितिरेषा तु प्रतिष्ठापनिका मता ॥ १२६ ॥
एवं समितयः पंच गोप्यास्तिस्रस्तु गुप्तयः । वाङ्मनःकाययोगानां शुद्धरूपाः प्रवृत्तयः ॥१२७॥
चित्तेंद्रियनिरोधश्च षडावश्यकसत्क्रियाः । लोचास्नानैकभक्तं च स्थितिभुक्तिरचेलता ॥१२८॥
भूमिशय्याव्रतं दंतमलमार्जनवर्जनं । तपःसंयमचारित्रं परीषहजयः परः ॥ १२९ ॥
अनुप्रेक्षाश्च धर्मश्च क्षमादिदशलक्षणः । ज्ञानदर्शनचारित्रतपोविनयसेवनं ॥ १३० ॥
इति श्रमणधर्मोऽयं कर्मनिर्मोक्षहेतुकः । सुरासुरनराध्यक्षं जिनोक्तेस्तं तदा नराः ॥ १३१ ॥
संसारभीरवः शुद्धजातिरूपकुलादयः । सर्वसंगविनिर्मुक्ताः शतशः प्रतिपेदिरे ॥ १३२ ॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः शुद्धैकवसनावृताः । सहस्रशो दधुः शुद्धा नार्यस्तत्रार्यिकाव्रतं ॥ १३३ ॥

१ गच्छतः । २ 'जिनेनोक्तस्तदा नराः' इति सुष्ठु भाति ।

पंचधाणुव्रतं केचित् त्रिविधं च गुणव्रतं । शिक्षाव्रतं चतुर्भेदं तत्र स्त्रीपुरुषा दधुः ॥ १३४ ॥
तिर्यंचोपि यथाशक्ति नियमेष्ववतस्थिरे । देवाः सद्दर्शनज्ञानाजिनपूजासु रेमिरे ॥ १३५ ॥
श्रेणिकेन तु यत्पूर्वं बह्वारंभपरिग्रहात् । परिस्थितिकमारब्धं नरकायुस्तमस्तमे ॥ १३६ ॥
तत्तु क्षायिकसम्यक्त्वात् स्वास्थितिं प्रथमांक्षितौ । प्रापद्वर्षसहस्राणामशीतिं चतुरुत्तरां ॥ १३७ ॥
त्रयस्त्रिंशत् समुद्राः क क चेयमपरा स्थितिः । अहो क्षायिकसम्यक्त्वप्रभावोयमनुत्तरः ॥१३८॥
अक्रूरो वारिषेणो यो योऽभयः स तथा परे । कुमारा मातरश्चैषां पराश्चांतःपुरस्त्रियः ॥ १३९ ॥
सम्यक्त्वं शीलसद्दानं प्रोषधं जिनपूजनं । प्रतिपद्य विनेमुस्तं जिनेंद्रं त्रिजगद्गुरुं ॥ १४० ॥
ततः प्रणम्य देवेंद्रा जिनेंद्रं स्तोत्रपूर्वकं । यथायथं ययुर्युक्ता निजवर्गैर्निजास्पदं ॥ १४१ ॥
श्रेणिकोऽपि गुणश्रेणीमुच्चकैरभिरूढवान् । अभिष्टुत्य जिनं नत्वा प्रविष्टस्तुष्टधीः पुरं ॥१४२ ॥
निःसरद्भिर्विशद्भिश्च सभा जैनी जनोर्मिभिः । चुक्षोभ क्षुभितैर्वेला नदीपूरैरिवांबुधेः ॥ १४३ ॥
आकीर्णमेव तैर्नित्यं सभामंडलमर्हतः । हीयते वा कदा स्फीतैर्भानुभिर्भानुमंडलं ॥ १४४ ॥
नोदयास्तमितं तत्र ज्ञायते ऽघ्नमंडलं । धर्मचक्रप्रभाचक्रप्रभामंडलरोचिषा ॥ १४५ ॥

१ नारकायुस्तु सप्तमे इत्यपि । २ सूर्यमंडलं ।

तत्र तीर्थंकरः कुर्वन् प्रत्यहं धर्मदेशनं । सेवितः श्रेणिकेनास्य न हि तृप्तिस्त्रिवर्गजा ॥ १४६ ॥
गौतमं च समासाद्य तदा तदुपदेशतः । सर्वानुयोगमार्गेषु प्रवीणः स नृपोऽभवत् ॥ १४७ ॥
ततो जिनगृहैस्तुंगैः राज्ञा राजगृहं पुरं । कृतमंतर्बहिर्व्याप्तमजस्रमहिमोत्सवैः ॥ १४८ ॥
कृतः सामंतसंघातैर्महामंत्रिपुरोहितैः । प्रजाभिर्जिनगेहाढ्यो मगधो विषयोऽखिलः ॥ १४९ ॥
पुरेषु ग्रामघोषेषु पर्वताग्रेष्वदृश्यत । नदीतटवनांतेषु तदा जिनगृहावली ॥ १५० ॥
तिष्ठन्नेव महोदये विघटयन् मोहांधकारोन्नतिं, प्राग्देशप्रजया विधाय मगधादेशं प्रबुद्धप्रजं ।
तस्मात्या पृथुमध्यदेशमगमन्मध्यांदिनश्रीधरं, मिथ्याज्ञानहिमांतकृज्जिनरविर्बोधप्रभामंडलः ॥१५१॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ धर्मतीर्थप्रवर्तनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ।

मध्यदेशे जिनेशेन धर्मतीर्थे प्रवर्तिते । सर्वेष्वपि च देशेषु तीर्थमोहो न्यवर्तत ॥ १ ॥
आशयाः स्वच्छतां जग्मुर्जिनेंद्रोदयदर्शनात् । लोकेऽगस्त्योदये यद्वत् कलुषाश्च जलाशयाः ॥२॥
काशिकौशलकौशल्यकुसंध्यास्वष्टनामकान् । साल्वत्रिगर्तपंचालभद्रकारपटच्चरान् ॥ ३ ॥

मौकमत्स्याकनीयांश्च सूरसेनवृकार्थपान्। मध्यदेशानिमान्मान्यान् कलिंगकुरुजांगलान् ॥ ४ ॥
कैकेयाऽऽत्रेयकांबोजबाह्लीकयवनश्रुतीन्। सिंधुगांधारसौवीरसूरभीरुदशेरुकान् ॥ ५ ॥
वाडवानभरद्वाजक्वाथतोयान् समुद्रजान्। उत्तरांस्तार्णकार्णांश्च देशान् प्रच्छालनामकान् ॥ ६ ॥
धर्मेणायोजयद् वीरो विहरन् विभवान्वितः। यथैव भगवान् पूर्वं वृषभो भव्यवत्सलः ॥ ७ ॥
द्योतमाने जिनादित्ये केवलोद्योतभास्करे। क लीना इति न ज्ञातास्तीर्थखद्योतसंपदः ॥ ८ ॥
सर्वज्ञवीतरागस्य वपुर्वचनवैभवं। तदोपलभमानानां शक्तिर्नाभूत्परोक्तिषु ॥ ९ ॥
नित्यं निर्मलनिःस्वेदं गोक्षीरनिभशोणितं। दिव्यसंहतिसंस्थानरूपसौरभलक्षणं ॥ १० ॥
अनंतवीर्यपर्याप्तं स्वहितप्रियभाषणं। स्वाभाविकपवित्रात्मदशातिशयशोभितं ॥ ११ ॥
निमेषोन्मेषविगमप्रशांतायतलोचनं। सुव्यवस्थितसुस्निग्धनखकेशोपशोभितं ॥ १२ ॥
त्यक्तभुक्ति जरातीतमच्छायं छाययोर्जितं। एकतो मुखमप्यच्छचतुर्मुखमनोहरं ॥ १३ ॥
द्वियोजनशतक्षोणीसुभिक्षत्वोपपादकं। उपसर्गासुमत्पीडाव्यपोहं गगनायनं ॥ १४ ॥
सर्वविद्यास्पदं कर्मक्षयोद्भूतदशाद्भुतं। दृष्टं श्रुतं वपुर्जैनं व्यधत्त जगतः सुखं ॥ १५ ॥ कुलकं
अमृतस्येव धारां तां भाषासर्वार्धमागधीं। पिबन् कर्णपुटैर्जैनीं ततर्प त्रिजगज्जनः ॥ १६ ॥

अन्योन्यगंधमासोढुमक्षमाणामपि द्विषां । मैत्री बभूव सर्वत्र प्राणिनां धरणीतले ॥ १७ ॥
अहंयव इवाजस्रं फलपुष्पानतद्रुमाः । सहैव षडपि प्राप्ता ऋतवस्तं सिषेविरे ॥ १८ ॥
स्वांतःशुद्धिं जिनेशाय दर्शयंतीव भूवधूः । सर्वरत्नमयी रेजे शुद्धादर्शतलोज्ज्वला ॥ १९ ॥
जनितांगसुखस्पर्शो ववौ विहरणानुगः । सेवामिव प्रकुर्वाणः श्रीवीरस्य समीरणः ॥ २० ॥
विहरत्युपकाराय जिने परमबांधवे । बभूव परमानंदः सर्वस्य जगतस्तदा ॥ २१ ॥
देवा वायुकुमारास्ते योजनांतर्धरातलं । चक्रुः कंटकपाषाणकीटकादिविवर्जितं ॥ २२ ॥
तदनंतरमेवोच्चैस्तनिताः स्तनिताभिधाः । कुमारा ववृषुर्मेघीभूता गंधोदकं शुभं ॥ २३ ॥
पादपद्मं जिनेंद्रस्य सप्तपद्मैः पदे पदे । भुवेव नभसाऽगच्छदुद्गच्छद्भिः प्रपूजितं ॥ २४ ॥
रेजे शाल्यादिशस्यौघैर्मेदिनी फलशालिभिः । जिनेंद्रदर्शनानंदप्रोद्भिन्नपुलकैरिव ॥ २५ ॥
जिनेंद्रकेवलज्ञानवैमल्यमनुकुर्वता । घनावरणमुक्तेन गगनेन विराजितं ॥ २६ ॥
नीरजोभिरहोरात्रं जनताभिरिवेश्वरः । आशाभिरपि नैर्मल्यं बिभ्रतीभिरुपासितः ॥ २७ ॥
धर्मदानं जिनेंद्रस्य घोषयंतः समंततः । आह्वानं चक्रिरेऽन्येषां देवा देवेंद्रशासनात् ॥ २८ ॥
सहस्रारं हसद्दीप्त्या सहस्रकिरणद्युति । धर्मचक्रं जिनस्याग्रे प्रस्थानास्थानयोरभात् ॥ २९ ॥

इति देवकृतैर्भूमौ चतुर्दशभिरद्भुतैः । विजहार जिनो युक्तः सध्वजैरष्टमंगलैः ॥ ३० ॥
अशोकनगमाभासीदशोकानोकहाश्रिया । नमद्भुवनमाकाशं महत्त्वं किमतः परं ॥ ३१ ॥
पुष्पवृष्टिभिरानम्रशिरोभिरमरैः करैः । आवर्जिताभिराकाशादाशा विश्वंभरा बभुः ॥ ३२ ॥
चतुर्दिक्षु चतुःषष्टिचमैररमरैर्जिनः । वीजितोऽभात् पतद्गांगतरंगैर्हिमवानिव ॥ ३३ ॥
अभिभूयाबभौ धाम्ना मंडलं चंडरोचिषः । प्रभामंडलमीशस्य प्रध्वस्ताहर्निशांतरं ॥ ३४ ॥
धीरमध्वनि देवानां जज़ृंभे दुंदुभिध्वनिः । कर्मशत्रुजयं जैनं घोषयन्निव विष्टपे ॥ ३५ ॥
एकातपत्रमैश्वर्यं भुवि भुक्तवतोऽर्हतः । आतपत्रत्रयैश्वर्यमाबभौ भुवनत्रये ॥ ३६ ॥
सिंहासनं नरेंद्रौघैर्वृतं त्यक्तवतो बभौ । सिंहासनं जिनस्यान्यत्सुरेंद्रपरिवारितं ॥ ३७ ॥
धर्मोक्तौ योजनव्यापी चेतःकर्णरसायनं । दिव्यध्वनिर्जिनेंद्रस्य पुनाति स्म जगत्त्रयं ॥ ३८ ॥
प्रातिहार्यादिविभवैर्विहृत्य विषयान् बहून् । अर्च्यमानः सुरैरायान्मागधं विषयं विभुः ॥ ३९ ॥
प्राप्तसप्तर्द्धिसंपद्भिः समस्तश्रुतपारगैः । गणेंद्रैरिंद्रभूत्याद्यैरेकादशभिरन्वितः ॥ ४० ॥
इंद्रभूतिरिति प्रोक्तः प्रथमो गणधारिणां । अग्निभूतिर्द्वितीयश्च वायुभूतिस्तृतीयकः ॥ ४१ ॥
शुचिदत्तस्तुरीयस्तु सुधर्मः पंचमस्ततः । षष्ठो मांडव्य इत्युक्तो मौर्यपुत्रस्तु सप्तमः ॥ ४२ ॥

अष्टमोऽकंपनाख्यातिरचलो नवमो मतः। मेदार्यो दशमोऽन्त्यस्तु प्रभासः सर्व एव ते ॥ ४३ ॥
तप्तदीप्तादितपसः सुचतुर्बुद्धिविक्रियाः। अक्षीणौपधिलब्धीशाः सद्रसर्द्धिबलर्द्धयः ॥ ४४ ॥
पंचानामानुपूर्व्येण गणसंख्या गणेशिनां। द्वे सहस्रे शतं त्रिंशत् प्रत्येकमृषयः स्मृताः ॥ ४५ ॥
ततः परं द्वयोर्ज्ञेयाः पंचविंशा चतुःशती। चतुर्णां षट्शती तेषां पंचविंशा तपोभृतां ॥ ४६ ॥
तत्र पूर्वधरास्त्रीणि शतानि नवै वैक्रियाः। त्रयोदश शतान्यासन्नवधिज्ञानचक्षुषः ॥ ४७ ॥
शतानि सप्त कालेन केवलज्ञानलोचनाः। शतानि पंच संख्यातास्तथा विपुलबुद्धयः ॥ ४८ ॥
चतुःशतानि जेतारो वादिनः परवादिनां। शिक्षका नव विज्ञेयाः सहस्राणि[3] शतानि च ॥४९॥
सैकादशगणाधीशश्चतुर्दशसहस्रकः[1]। ऋषिसंघो जिनस्याभात् सनघोघ इवांबुधिः ॥ ५० ॥
मुक्तः प्राप जिनो जैन्या जगद्विस्मयनीयया। लक्ष्म्या लक्ष्मीगृहं राजद्गृहं राजगृहं पुरं ॥५१॥
पंचशैलपुरं पूतं मुनिसुव्रतजन्मना। यत्परध्वजिनीदुर्गं पंचशैलपरिष्कृतं ॥ ५२ ॥
ऋषिपूर्वो गिरिस्तत्र चतुरस्रः सनिर्झरः। दिग्गजेंद्र इवेंद्रस्य ककुभं भूषयत्यलं ॥ ५३ ॥
वैभारो दक्षिणामाशां त्रिकोणाकृतिराश्रितः। दक्षिणापरदिग्मध्यं विपुलश्च तदाकृतिः ॥ ५४ ॥

१ शिष्यसंख्या। २–९०० । ३–९९००

सज्यचापाकृतिस्तिस्रो दिशो व्याप्य वलाहकः । शोभते पांडुको वृत्तः पूर्वोत्तरदिगंतरे ॥ ५५ ॥
फलपुष्पभरानम्रलतापादपशोभिताः । पतन्निर्झरसंघातहारिणो गिरयस्तु ते ॥ ५६ ॥
वासुपूज्यजिनाधीशादितरेषां जिनेशिनां । सर्वेषां समवस्थानैः पावनोरुवनांतराः ॥ ५७ ॥
तीर्थयात्रागतानेकभव्यसंघनिषेवितैः । नानातिशयसंबद्धैः सिद्धक्षेत्रैः पवित्रिताः ॥ ५८ ॥
तत्र तस्थौ जिनः शैले विपुले विपुलेशितः । शतक्रतुकृताशेषसमवस्थितिसंस्थितौ ॥ ५९ ॥
सौधर्मादिषु देवेषु मर्त्येषु श्रेणिकादिषु । संस्थितेषु तदा भूभृत् देवमर्त्यार्चितो बभौ ॥ ६० ॥
ऋषयः प्राक्तनस्तस्थुर्जिनांते प्राप्तलब्धयः । यतयश्च कषायांता मुनयोऽतींद्रियेक्षिणः ॥ ६१ ॥
अनगारास्तथाऽन्ये ते संख्याताः संख्ययाऽखिलाः । चतुर्दशसहस्राणि साधिकानि गणाधिपैः॥६२॥
पंचात्रिंशत्सहस्राणि आर्यिकाणां गणस्थितिः । श्रावकास्त्वेकलक्षाश्च त्रिलक्षाः श्राविकास्तदा॥६३
तेऽपि तस्थुर्यथास्थानं देव्यो देवाश्चतुर्विधाः। तिर्यंचोऽप्यावृतोऽभासीद् वीरो द्वादशभिर्गणैः॥६४
ततस्त्रिभुवने तत्र धर्मशुश्रूषया स्थिते । बभाण भगवान् धर्मं गणेशप्रश्नपूर्वकं ॥ ६५ ॥
सिद्धः सिद्धेतरश्च द्वौ सामान्यादुपयोगिनौ । जीवभेदौ विशेषात्तावनंतानंतभेदिनौ ॥ ६६ ॥

१ फलपुष्पलताभारनम्रपादपशोभिताः इत्यपि । २ प्रवर्त्तिताः इत्यपि । ३ देवमर्त्यार्चितो, इत्यपि ।

सद्दृग्बोधक्रियोपायसाधितोपेयसिद्धयः । सिद्धास्तत्र प्रसिद्धात्मसिद्धिक्षेत्रमधिष्ठिताः ॥ ६७ ॥
प्रक्षयात्पंचभेदस्य ज्ञानावरणस्य कर्मणः । दर्शनावरणस्यापि नवभेदस्य भेदनात् ॥ ६८ ॥
सातासातविकल्पस्य वेदनीयस्य नोदनात् । अष्टाविंशतिभेदस्य मोहनीयस्य हानितः ॥ ६९ ॥
चतुर्विधस्य निःशेषप्रक्षेपणादायुषस्तथा । द्विचत्वारिंशतो नाशान्नाम्नो गोत्रद्वयस्य च ॥ ७० ॥
पंचसंख्यस्य विध्वंसादंतरायस्य कर्मणः । सिद्धानुपेत्य तिष्ठंति सिद्धास्त्रैलोक्यमूर्द्धनि ॥ ७१ ॥
सम्यक्त्वपरमानंतकेवलज्ञानदर्शनाः । अनंतवीर्यतात्यंतसूक्ष्मत्वगुणलक्षिताः ॥ ७२ ॥
स्वभावगहनाहीनगुणावगाहनान्विताः । अव्याबाधात्मकानंतसुखिनोऽगुरुलाघवाः ॥ ७३ ॥
प्रसिद्धाष्टगुणाः सिद्धा असंख्येयप्रदेशिनः । वर्णादिविंशतेर्नाशादमूर्त्तात्मतया स्थिताः ॥ ७४ ॥
ईषदूनसमाकारा वपुषश्चरमस्य ते । मूषापतितसद्व्योमस्वभावानुविधायिनः ॥ ७५ ॥
मृत्युजन्मजरानिष्टसंयोगेष्टवियोगजैः । क्षुत्तृष्णाव्याधिजैर्दुःखैरखिलैरखलीकृताः ॥ ७६ ॥
द्रव्यभावभवक्षेत्रकालभेदप्रपंचितैः । वियुक्ताः पंचभिर्मुक्ताः परिवर्त्तैः सुखात्मकाः ॥ ७७ ॥
असंयतचतुःस्थानात् संयतासंयतास्थितेः । नवधा संयतस्थानादसिद्धास्त्रिविधः स्मृतः ॥ ७८ ॥

१ सिद्धक्षेत्र अधिष्ठिताः, इत्यपि ।

मोहस्योदयतो जीवः क्षयोपशमतद्द्वयात् । पारिणामिकभावस्थो गुणस्थानेषु वर्तते ॥ ७९ ॥
मिथ्यादृष्टिर्यथार्थोऽन्यः सासादन इतीरितः । सम्यग्मिथ्यादृगन्योऽस्ति सम्यग्दृष्टिरसंयतः ॥८०॥
संयतासंयतोऽन्वर्थस्तत ऊर्ध्वमुदीरितः । प्रमत्तसंयतस्तस्मादप्रमत्तश्च संयतः ॥ ८१ ॥
उपशांतकषायाद् प्रागपूर्वकरणादिषु । क्षपकाः सोपशमकास्त्रिषु स्थानेषु वर्णिताः ॥ ८२ ॥
ऊर्ध्वं क्षीणकषायोऽस्मात् सयोगः केवली प्रभुः । अयोगकेवली चेति गुणस्थानक्रमस्थितिः ॥८३॥
नवस्थानेषु निर्ग्रंथाः रूपभेदविवर्जिताः । अध्यात्मकृतनानात्वादुपर्युपरिशुद्धयः ॥ ८४ ॥
संयतासंयतांतेषु गुणस्थानेषु पंचसु । रूपं प्रत्यभिभेदोऽस्ति यथाध्यात्मकृतस्तथा ॥ ८५ ॥
तत्र केवलिनां सौख्यं सयोगानामयोगिनां । लब्धक्षायिकलब्धीनामनंतं नेंद्रियार्थजं ॥ ८६ ॥
कषायप्रशमोद्भूतं कषायक्षयजं तथा । अपूर्वकरणादीनामुभयेषां परं सुखं ॥ ८७ ॥
निद्रेंद्रियकषायारिविकथाप्रणयात्मकैः । प्रमादैरप्रमत्तानां सुखं प्रशमसद्रसं ॥ ८८ ॥
हिंसानृतपरादत्तग्रहाब्रह्मपरिग्रहात् । निवृत्तानां प्रमत्तानामपि सौख्यं शमात्मकं ॥ ८९ ॥
हिंसादिभ्यो यथाशक्ति देशतो विरतात्मनां । संयतासंयतानां च महातृष्णाजयात् सुखं ॥ ९
यद्यप्यविरता तृष्णा हिंसादेरपि देशतः । सम्यक्त्व[illegible]तत्त्वश्रद्धानजं सुखं ॥ ९१ ।

परस्पराविरुद्धात्मसम्यग्मिथ्यादृगंगिनां । सम्यग्मिथ्यादृशामंतः सुखदुःखविमिश्रिताः ॥ ९२ ॥
सम्यक्त्वं वमतामंतर्भावः सासादनात्मनां । यथा क्षीरघृतोन्मिश्रशर्करोद्गारकारिणां ॥ ९३ ॥
सप्तप्रकृतिमिश्रेण मोहेन मतिभेदिना । राज्येनेव विमूढस्य मिथ्यादृष्टेः कुतः सुखं ॥ ९४ ॥
पटप्रकृतिना सम्यग्बोधावृतिविधायिना । प्रतीहारात्मनान्येन ज्येष्ठदर्शनरोधिना ॥ ९५ ॥
मधुदिग्धोग्रखड्गाग्रधारामाधुर्यधारिणा । मद्येनेव परेणातिमतिविभ्रमकारिणा ॥ ९६ ॥
दृढेन निगडेनेव गतिधारणकारिणा । तथा चित्रकरेणेव विचित्राकारसर्गिणा ॥ ९७ ॥
कुलालेनेव चान्येन नीचैरुच्चैर्नियोगिना । भांडाकरकरेणेव लभ्यविघ्नविधायिना ॥ ९८ ॥
कर्मणोऽष्टविधस्येवं भेदेन फलदायिना । मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बाध्यंते जंतवो भवे ॥ ९९ ॥
स्थानेषु नियमेनोर्ध्वं त्रयोदशसु भव्यता । जीवानां प्रथमस्थाने भव्यताऽभव्यताद्वयं ॥ १०० ॥
सद्दृष्टिज्ञानचारित्रप्रतिपत्तिपुरःसराः । मोक्षप्राप्तिक्षमा भव्या अभव्यास्तद्विलक्षणाः ॥ १०१ ॥
आसन्नभव्यता हेतोरर्वाग्दर्शिभिरुच्यते । विशुद्धदर्शनज्ञानचरित्रत्रयलक्षणात् ॥ १०२ ॥
सदाप्तवचनादेव बोद्धव्या दूरभव्यता । अभव्यता च भूतानामहेतुविषया ततः ॥ १०३ ॥
जीवस्वभावभावोऽयं भव्याभव्यत्वलक्षणः । एकाधारचुटन्मापककंटूकात्ममापवत् ॥ १०४ ॥

अनादिरंतवान् भव्यव्यक्तीनां भवसागरः । भव्यसंतानसामान्याचिंतनादंतवर्जितः ॥ १०५ ॥
अनादिरपि चानंतः संतानाद् व्यक्तितोऽपि च । अभव्यजीवराशीनां भवव्यसनसागरः ॥ १०६ ॥
भव्याभव्या भवेऽनंता जीवराशिद्वये स्थिताः। मिथ्यात्वाद् भुंजते दुःखं कालद्रव्यवदक्षयाः।१०७॥
द्रव्यपर्यायरूपत्वान्नित्यानित्योभयात्मकाः। मिथ्यात्वासंयमैर्योगैः कषायैः कलुषीकृताः ॥१०८॥
बध्नानाः सततं पाप-कर्म दुर्मोचबंधनं। जंतवः परिवर्त्तंते चतुर्गतिषु दुःखिनः ॥ १०९ ॥
रौद्रध्यानाविलात्मानो बह्वारंभपरिग्रहाः। मिथ्यात्वाष्टमदक्लिष्टा विशिष्टानिष्टदृष्टयः ॥ ११० ॥
स्वप्रशंसापरा निंद्याः परनिंदाभिनंदिनः। परस्वहरणे लुब्धा भोगतृष्णातिरेकिणः ॥ १११ ॥
मधुमांससुराहारा मानुषाः कर्मभूमिजाः । तिर्यंचो व्याघ्रसिंहाद्या बंधका नारकायुषः ॥ ११२ ॥
जायंते चातिशीतोष्णदह्यमानशरीरिषु। चंडा नरककुंडेषु नारकाः खंडकात्मकाः ॥ ११३ ॥
न तद् द्रव्यं न तत् क्षेत्रं न सा कालकलाऽपि च। स्वभावो यत्र दुःखस्य विश्रामो नरकाश्रितां॥११४॥
लाभः साधारणस्तेषामकाले मरणं न यत् । वल्लभं जीवलोकस्य सुलभं चिरजीवितं ॥ ११५ ॥
रत्नप्रभादिषु ज्ञेयं पृथिवीष्वथ सप्तसु । महातमःप्रभांतासु प्रमाणमिदमायुषः ॥ ११६ ॥
एकस्त्रयस्ततः सप्त दश सप्तदश क्रमात् । द्वाविंशतिस्त्रयस्त्रिंशत् सागराः परमा स्थितिः ॥११७॥

पूर्वात्पूर्वादधोऽधः स्यात् जघन्या समयाधिका । दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां क्षितौ स्थितिः॥११८॥
क्रोधमानमहामायालोभचिंतावशीकृताः । आर्तध्यानमहावर्त्तसततभ्रांतमानसाः ॥ ११९ ॥
तिर्यंचो मानुषा देवा नारका वा कुदृष्टयः । तिर्यग्गतिं प्रपद्यंते त्रसस्थावरसंकुलां ॥ १२० ॥
पृथिव्यप्कायभेदेषु ते तेजोऽनिलमूर्तिषु । वनस्पतिषु चाश्नंति जन्मदुःखं पुनः पुनः ॥ १२१ ॥
कृम्यादिद्वींद्रियेष्वेके यूकादित्रींद्रियेष्वपि । चतुरिंद्रियभेदेषु भ्रमंति भ्रमरादिषु ॥ १२२ ॥
पंचेंद्रियप्रकारेषु पक्षिमत्स्यमृगादिषु । ते भजंते चिरं दुःखं तिर्यग्जन्मनि जंतवः ॥ १२३ ॥
अंतर्मुहूर्त्तकालस्य तिरश्चामधरा स्थितिः । पूर्वकोटीः परा भोगभूमौ पल्योपमत्रयं ॥ १२४ ॥
स्वभावादार्जवोपेताः स्वभावान्मृदवो मताः । स्वभावाद् भद्रशीलाश्च स्वभावात् पापभीरवः १२५
प्रकृत्या मधुमांसादिसावद्याहारवर्जिताः । अर्जयंति सुमानुष्यं कुमानुष्यं कुकर्मभिः ॥ १२६ ॥
पापनिर्जरणात् कैश्चित् तिर्यग्नारकजंतुभिः । प्राप्यते प्रियमानुष्य देवैश्च शुभकर्मभिः ॥ १२७ ॥
मनुष्यत्वेऽपि जंतूनामार्यम्लेच्छकुलाकुले । दुःखमेवेप्सितालाभाद् विप्रयोगात्प्रियैर्जनैः ॥ १२८ ॥
नापि प्राप्तेप्सितार्थानां संयुक्तानां प्रियैर्जनैः । विषयेंधनदीप्तेच्छापावकानां नृणां सुखं ॥१२९॥
यदेव जायते नृत्वं केषांचिन्मोक्षकारणं । आसन्नभव्यसत्त्वानां दर्शनादिनिषेविणां ॥ १३० ॥

॥ १३१ ॥
तदेव जायतेऽन्येषां दीर्घसंसारकारणं । सुदूरभव्यसत्त्वानां नरत्वं मुग्धचेतसां ॥ १३२ ॥
कर्मभूमिषु सर्वासु भोगभूमिषु च स्थिती । तिरश्चामिव निश्चेये नृस्थिती च परावरे ॥ १३३ ॥
अब्भक्षा वायुभक्षाश्च मूलपत्रफलाशिनः । उपशांतधियोऽभ्यस्तकषायेंद्रियनिग्रहाः ॥ १३४ ॥
तापसा बालतपसः कायक्लेशपरायणाः । अकामनिर्जरायुक्तास्तिर्यंचो बंधरोधिनः ॥
भावना व्यंतरा देवा ज्योतिष्काः कल्पवासिनः । अल्पर्द्धयो हि जायंते ते मिथ्यात्वमलीमसाः ॥
देवाः कंदर्पनामानो नित्यं कंदर्परंजिताः । आभियोग्याः सभाऽयोग्याः क्लिष्टाः किल्विषकादयः ॥
ते महर्द्धिकदेवानां दृष्ट्वैश्वर्यं महोदयं । देवदुर्गतिदुःखार्ताः दुःखमश्नंति मानसं ॥ १३७ ॥
सम्यग्दर्शनलाभस्य दुर्लभत्वादभव्यवत । भव्या अपि निमज्जंति भवदुःखमहोदधौ ॥ १३८ ॥
भावनानां भवत्यब्धिः साधिकः परमा स्थितिः । भौमानां पल्यमन्या तु दशवर्षसहस्रिका॥१३९॥
ज्योतिषां साधिकं पल्यं पल्याष्टांशोऽवरा परा । स्वर्गिणां सागराः पल्यं साधिकं ह्यपरा स्थितिः१४०
भव्यसत्त्वैर्यदा कैश्चित् लभ्यंते पंच लब्धयः । क्षयोपशमसंशुद्धिक्रियाप्रायोग्यदेशनाः ॥ १४१ ॥
अधःप्रवृत्तकरणमपूर्वकरणं तदा । तथाऽनिवृत्तिकरणं विधाय करणं त्रिधा ॥ १४२ ॥
ततो दर्शनमोहस्य विधायोपशमं ततः । क्षयोपशमभावं च क्षयं चात्मविशुद्धितः ॥ १४३ ॥

पूर्वमेवौपशमिकं क्षायोपशमिकं क्रमात् । क्षायिकं तैः समुत्पाद्य सम्यक्त्वमनुभूयते ॥ १४४ ॥
तथा चारित्रमोहस्य क्षयोपशमलब्धितः । चारित्रं प्रतिपद्यामी क्षयं कुर्वंति कर्मणां ॥ १४५ ॥
ततोऽनंतसुखं मोक्षमनंतज्ञानदर्शनं । अनंतवीर्यमध्यास्य तेऽधितिष्ठंति निर्वृताः ॥ १४६ ॥
ये तु चारित्रमोहस्य नितांतबलवत्तया । दर्शनादेव निष्कंपा देवायुष्कस्य बंधकाः ॥ १४७ ॥
संयतासंयता ये च नराः कल्पेषु तेऽमराः । सौधर्माद्यच्युतांतेषु संभवंति महर्द्धयः ॥ १४८ ॥
सरागसंयमश्रेष्ठाः संयता ये तु तेऽनघाः । कल्पे सुरा भवंत्येके कल्पातीतास्तथा परे ॥ १४९ ॥
नवग्रैवेयकावासा नवानुदिशवासिनः । कल्पातीतास्तथा ज्ञेयाः पंचानुत्तरवासिनः ॥ १५० ॥
इंद्राद्याः कल्पजा देवा अहमिंद्राश्च सत्पथे । सुखं सुविहितस्यामी भुंजते तपसः फलं ॥ १५१॥
सौधर्मैशानयोरायुः साधिके सागरोपमे । सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पयोः सप्त सागराः ॥ १५२ ॥
दशार्णवोपमायुष्का ब्रह्मब्रह्मोत्तरामराः । लांतवेऽपि च कापिष्टे स्युश्चतुर्दश सागराः ॥ १५३ ॥
आयुः शुक्रमहाशुक्रकल्पयोः षोडशाब्धयः । शतारे च सहस्रारे तथाऽष्टादश सागराः ॥१५४॥
विंशत्यब्धिसमायुष्का आनतप्राणतामराः । आरणाच्युतयोर्देवा द्वाविंशत्यब्धिजीविनः ॥१५५॥
एकोत्तरा तु वृद्धिः स्यान्नवग्रैवेयकेष्वियं । उत्कृष्टस्थितिरेषोर्ध्वं साधिका त्वपरा स्थितिः॥१५६॥

नवस्वनुदिशेषु स्याद् द्वात्रिंशत्सागरोपमा । परा स्थितिर्जघन्या स्यादेकत्रिंशत्पयोधयः॥१५७॥
त्रयस्त्रिंशदुदन्वंतः पराऽनुत्तरपंचके । सर्वार्थसिद्धितोऽन्यत्र द्वात्रिंशदधरा स्थितिः ॥ १५८ ॥
पल्यानि पंच सौधर्मे देवीनां परमा स्थितिः। आसहस्रारकल्पात्तु तान्येव द्व्यधिकानि तु॥१५९॥
ततः सप्तभिराधिक्ये पंच पंचाशदुच्यते। पल्यानि स्वल्पकालास्ताः परतस्तु न योषितः॥१६०॥
उपपादश्च सर्वासां कर्मशक्तिनियोगतः । कल्पवासीसुरस्त्रीणामाद्ये कल्पद्वये सदा ॥ १६१ ॥
ज्योतिषो भावना भौमाः सौधर्मैशानवासिनः। देवाः कायप्रवीचारास्तीव्रमोहोदयत्वतः॥१६२॥
सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पद्वयसमुद्भवाः । देवाः स्पर्शप्रवीचारा मध्यमोहोदयत्वतः ॥ १६३ ॥
ब्रह्मब्रह्मोत्तरोद्भूताः कांताः लांतवकल्पजाः । देवा रूपप्रवीचाराः कापिष्टप्रभवास्तथा ॥ १६४ ॥
देवाः शुक्रमहाशुक्रशतारस्थितयस्तथा । सहस्रारोद्भवाः शब्दप्रवीचारा भवंत्यमी ॥ १६५॥
आनतप्राणतोद्भूता आरणाच्युतवासिनः। देवा मनःप्रवीचारा मंदमोहोदयत्वतः ॥१६६॥
परतस्त्वप्रवीचारा यावत्सर्वार्थसिद्धिजाः शमप्रधानशर्माढ्या मोहाव्यक्तोदयत्वतः ॥१६७॥
यथा स्थित्या तथा द्युत्या प्रभावेन सुखेन ते। विशुद्ध्यापि च लेशानामिंद्रियावधिगोचरैः॥१६८॥
उपर्युपरि सौधर्मात् पूर्वतः पूर्वतोऽधिकाः। अल्पा गतितनूत्सेधैरभिमानपरिग्रहैः॥ १६९ ॥

मुक्तिमूल्यमहानर्घ्यरत्नस्यायत्नसाधनं । ध्यानस्वाधीनसर्वार्थं भुक्त्वा ते वैबुधं सुखं ॥ १७० ॥
दिवश्च्युता विदेहेषु भरतैरावतेषु वा । कर्मभूमिविभागेषु भवंति पुरुषोत्तमाः ॥ १७१ ॥
षट्खण्डप्रभवः केचिन्निधिरत्नोपलक्षिताः । सिद्धिसौख्यानुसंधानसमर्थचरमक्रियाः ॥ १७२ ॥
केचिद्द्वित्रिभवाश्चान्ये बलाः स्वर्गापवर्गिणः । निदानिनस्तु तत्रान्ये केशवप्रतिशत्रवः ॥ १७३ ॥
केचिच्च पूर्वभवाभ्यस्तशुभषोडशकारणाः । कीर्त्यास्तीर्थकृतो भूत्वा प्रभवंति जगत्त्रये ॥ १७४ ॥
सम्यक्त्वस्थिरमूलस्य ज्ञानकांडधृतात्मनः । चारित्रस्कंधबंधस्य नयशाखापशाखिनः ॥ १७५ ॥
नृसुरश्रीप्रसूनस्य जिनशासनशाखिनः । सेवितस्य लभंतेऽग्रे ते निर्वाणमहाफलं ॥ युग्मं ॥ १७६ ॥
परमानंदरूपं ते निर्वाणबलसंभवं । सारसौख्यरसं प्राप्ताः सिद्धाः तिष्ठंति निर्वृताः ॥ १७७ ॥
इत्थमाकर्ण्य सा धर्मं भुवनत्रयपाविनी । मोक्षमार्गार्कसंपर्कात् चकासेति प्रमोदिनी ॥ १७८ ॥
प्राक् प्रशस्तानुरागाढ्या धर्मश्रवणतो दधुः । लोकस्त्रयोऽग्निशुद्धाच्छरत्नजातिचयश्रियं ॥ १७९ ॥
सद्धर्मदेशना जैनी जगत्त्रयतनूभृतां । भ्रांतिशेषरजाशेषमशालीवाभ्यशीशमत् ॥ १८० ॥
अथ दिव्यध्वनेरंते जैनस्य तदनंतरं । चक्रुस्तदनुसंधानं देवा दुंदुभिनिःस्वनाः ॥ १८१ ॥
पुष्पवृष्टिं प्रवर्षंतो रत्नवृष्टिं च तुष्टुवुः । देवास्तत्र वनोद्देशे मुहुश्चैकं महामुनिं ॥ १८२ ॥

तं निशम्य मुनिश्रेष्ठं पूज्यमानं सुरेश्वरैः । श्रेणिको गौतमं नत्वा पप्रच्छ बहुविस्मयः ॥ १८३ ॥
भगवन्! ब्रूहि किंनामा मुनिः सुरगणैरयं। पूज्यते पूज्य! किंवंशः प्राप्तो वाऽद्य किमद्भुतं ॥ १८४ ॥
गदतिस्म ततस्तस्मै विस्मिताय गतस्मयाः । आगमानुमितिज्ञाप्यविज्ञेयः श्रुतकेवली ॥ १८५ ॥
श्रीमतोऽस्य महाराज! श्रृणु श्रेणिक सन्मतेः । मुनेर्नाम च वंशं च माहात्म्यं च वदामि ते ॥ १८६ ॥
जितशत्रुः क्षितौ ख्यातो धरित्रीपतिरत्र यः । प्राप्त एव धरित्रीश! भवतः श्रोत्रगोचरं ॥ १८७ ॥
हरिवंशनभोभानुरभिभूतनृपस्थितिः । राज्यश्रियं परित्यज्य प्राव्राजीज्जिनसंनिधौ ॥ १८८ ॥
तपो दुष्करमन्येषां बाह्यमाध्यात्मिकं च सः । कृत्वा प्राप्तोऽद्य घात्यंते केवलज्ञानमद्भुतं ॥१८९॥
तेनायममरैः सर्वैर्जैनमार्गोपबृंहकैः । स पुनर्बोधिलाभार्थं भक्तितोऽत्यर्चितो यतिः ॥ १९० ॥
पुनः प्रणम्य भक्त्याऽसौ समुद्भूतकुतूहलः । पृच्छति स्म गणाधीशमिति श्रेणिकभूपतिः ॥ १९१॥
क एष भगवान्! वंशो हरिशब्दोपलक्षितः । जातःकदा क वा कीर्त्यः को वास्य प्रभवःपुमान्१९२
कियंतः समतिक्रांताः प्रजारक्षणदक्षिणाः । धर्मार्थकाममोक्षाढ्या हरिवंशक्षितीश्वराः ॥ १९३ ॥
इह भारतजातानां जिनानां चक्रवर्तिनां । हलिनां वासुदेवानां तथा चैषां प्रतिद्विषां ॥ १९४ ॥
श्रृणोमि चरितं सर्वं वंशानां च समुद्भवं । लोकालोकविभागोक्तिपूर्वकं वक्तुमर्हसि ॥ १९५ ॥

जगाद गोतमः स्थाने राजन्! प्रश्नस्त्वया कृतः । शृणु सर्वं यथावत्ते कथयामि यथायथं॥१९६॥
त्रैलोक्यस्य सुखासुखानुभवनाधिष्ठानभूमेः स्थिरं संस्थानं प्रथमं तथैव विविधान् वंशावतारांस्तव ॥
श्रव्यार्थं हरिवंशसंभवमतस्तद्वंशजान् भूपतीन् श्रीमच्छ्रेणिक! कीर्तयामि भवते शुश्रूपवे श्रूयतां१९७
भव्यत्वादिप्रकृष्टेष्वपिचतनुभृतोदेशकालस्वभावैर्भावैष्वाप्तोपदेशाद्विदधतिविधिवन्निश्चयंनिश्चितार्थं
सद्दृष्टीनां हि मोहःप्रभवतिभुवने तावदेवार्थदृष्टौ यावन्नात्राभ्युदेतिप्रथितजिनरविर्ज्ञानभास्वन्मरीचिः

इति " अरिष्टनेमि पुराणसंग्रहे हरिवंशे " जिनसेनाचार्यकृतौ श्रेणिकप्रश्नवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ।

सर्वतोऽनंतविस्तारमनंतस्वप्रदेशकं । द्रव्यांतरविनिर्मुक्तमलोकाकाशमिष्यते ॥ १ ॥
न लोक्यंते यतस्तस्मिन् जीवाजीवात्मकाःपरे । भावास्ततस्तदुद्गीतमलोकाकाशसंज्ञया ॥ २ ॥
न गतिर्न स्थितिस्तत्र जीवपुद्गलयोस्तयोः । निमित्तयोरभूतत्वात् धर्माधर्मास्तिकाययोः ॥ ३ ॥
अनाद्यनिधनस्तस्य मध्ये लोको व्यवस्थितः। असंख्येयप्रदेशात्मा लोकाकाशविमिश्रितः॥ ४ ॥
कालः पंचास्तिकायाश्च सप्रपंचा इहाखिलाः । लोक्यंते येन तेनायं लोक इत्यभिलप्यते ॥५॥

वेत्रासनमृदंगोरुझल्लरीसदृशाकृतिः । अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक् च यथायोगमिति त्रिधा ॥ ६ ॥
मुरजार्धमधोभागे तस्योर्ध्वं मुरजो यथा । आकारस्तस्य लोकस्य किं त्वेष चतुरस्रकः ॥ ७ ॥
कटिस्थकरयुग्मस्य वैशाखस्थानवर्तिनः । बिभर्ति पुरुषस्यायं संस्थानमचलस्थितेः ॥ ८ ॥
अधोलोकस्य सप्ताधः स्वविस्तारेण रज्जवः । प्रदेशहानितो रज्जुस्तिर्यग्लोकेऽवशिष्यते ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं प्रदेशवृद्धयातः पंच ब्रह्मोत्तरांतरे । ततःप्रदेशहान्योर्ध्वं रज्जुरेकावशिष्यते ॥ १० ॥
आयामस्तु त्रिलोकानां स्याच्चतुर्दशरज्जवः । सप्ताधो मंदरादूर्ध्वं सार्द्धं तेनैव सप्त ताः ॥ ११ ॥
चित्राधोभागतो रज्जुर्द्वितीयांते समाप्यते । द्वितीयातस्तृतीयांते चतुर्थ्यंते ततोऽपरा ॥ १२ ॥
पंचम्यंते चतुर्थी च षष्ठ्यंते पंचमी ततः । सप्तम्यंते च षष्ठी सा लोकांते सप्तमी स्थिता ॥१३॥
चित्राधोदेशतस्तूर्ध्वं सार्धा रज्जुः समाप्यते । ऐशानांते ततः सार्द्धा माहेंद्रांते तु तिष्ठति ॥१४॥
ततः कापिष्टकल्पाग्रे रज्जुरेकावतिष्ठते । सा सहस्रारकल्पाग्रे ततोऽप्येका समाप्यते ॥ १५ ॥
आरणाच्युतकल्पांतवर्तिनी सा ततोऽपरा । सप्तमी तु ततो रज्जुरूर्ध्वलोकांतनिष्ठिता ॥ १६ ॥
रज्जुः प्रथमरज्ज्वंते सा षड्भिः सप्तभागकैः । अधोलोकस्य विस्तारो लोकविद्भिरुदाहृतः॥१७॥
रज्जू द्वितीयरज्ज्वंते पंचभिः सप्तभागकैः । तिस्रस्तृतीयरज्ज्वंते चतुर्भिः सप्तभागकैः ॥ १८ ॥

चतस्रस्तुर्यरज्ज्वंते सप्तभागैस्त्रिभिर्युताः। पंच पंचमरज्ज्वंते सप्तभागद्वयेन ताः ॥ १९ ॥
षडेताः सप्तभागेन षष्ठरज्ज्वंतगोचरे। सप्त सप्तमरज्ज्वंते विस्तारो रज्जवः स्मृताः ॥ २० ॥
ऊर्ध्वं च सार्धरज्ज्वंते रज्जू द्वे सप्तभागकैः। पंचभिः सह विस्तारो लोकस्य परिकीर्त्तितः ॥२१॥
परतः सार्धरज्ज्वंते सप्तभागैस्त्रिभिर्युताः। चतस्रो रज्जवो ज्ञेया विस्तारो जगतस्ततः ॥ २२ ॥
ततोऽर्धरज्जुपर्यंते सब्रह्मोत्तरमूर्धनि। विस्तारो रज्जवः पंचभुवनस्य निरूपितः ॥ २३ ॥
कापिष्टाग्रेऽर्धरज्ज्वंते सप्तभागैस्त्रिभिः सह। चतस्रो रज्जवो व्यासो जगतः प्रतिपादितः ॥२४॥
ततोऽर्धरज्जुमानांते महाशुक्राग्रवर्तिनि। षट् सप्तभागसंयुक्तास्तिस्रो व्यासो जगद्गतः ॥ २५ ॥
अर्धरज्ज्ववसानेऽतः सहस्रारांतमिश्रिते। द्विसप्तभागसंयुक्ता व्यासस्तिस्रोऽस्य रज्जवः ॥ २६ ॥
प्राणताग्रार्धरज्ज्वंते पंचसप्तांशमिश्रिते। द्वे रज्जू जगतो व्यासो व्यासविद्भिः प्रकाशितः ॥ २७ ॥
अच्युतांतार्धरज्ज्वंते सप्तभागेन सम्मिते। द्वे रज्जू रज्जुरेवांतरज्ज्वंते लोकमस्तके ॥ २८ ॥
अधोलोकोरुजंघादिस्तिर्यग्लोककटीतटः। ब्रह्मब्रह्मोत्तरोरस्को माहेंद्रांतस्तु मध्यभाग् ॥ २९ ॥
आरणाच्युतसुस्कंधो द्विपर्यंतमहाभुजः। नवग्रैवेयकग्रीवोऽनुदिशोद्धहनुद्वयः ॥ ३० ॥
पंचानुत्तरसद्वक्त्रः सिद्धक्षेत्रललाटभृत्। सिद्धजीवश्रिताकाशदेशविस्तीर्णमस्तकः ॥ ३१ ॥

स्वोदरस्थितनिःशेषपुरुषादिपदार्थकः। अपौरुषेय एवैष सल्लोकपुरुषः स्थितः ॥ ३२ ॥
घनोदधिरिमं लोकं घनवातश्च सर्वतः। तनुवातश्च तिष्ठंति त्रयोऽप्यावेष्ट्य वायवः ॥ ३३ ॥
आद्यो गोमूत्रवर्णोऽत्र मुद्गवर्णस्तु मध्यमः। संपृक्तानेकवर्णोऽन्त्यो बहिर्वलयमारुतः ॥ ३४ ॥
दंडकारा घनीभूता ऊर्ध्वाधोभागभागिनः। भंगुराकृतयो लोकपर्यंतेषु प्रभंजनाः ॥ ३५ ॥
योजनानां सहस्राणि प्रत्येकं विंशतिः स्मृताः। अधोविस्तारतस्तूर्ध्वं त्रयोऽप्यूनैकयोजनाः ॥३६॥
दंडाकारपरित्यागे यथाक्रमममी पुनः। सप्तपंचचतुःसंख्या योजनानि वितन्वते ॥ ३७ ॥
प्रदेशहानितः पंच चत्वारि त्रीणि च क्रमात्। बाहुल्यं योजनान्येषां तिर्यग्लोके भवत्यतः ॥३८॥
प्रदेशवृद्धितः सप्त पंच चत्वारि च क्रमात्। योजनान्युपचीयंते ब्रह्मब्रह्मोत्तरांतिके ॥ ३९ ॥
पुनः प्रदेशहान्यैवं पंच चत्वारि च क्रमात्। त्रीणि चैव भवंत्येषां योजनानि शिवांतके ॥४०॥
अर्धयोजनबाहुल्यो मस्तकेषु घनोदधिः। घनवातस्तदर्धः स्यात्तनुवातस्तदूनकः ॥ ४१ ॥
भ्राजते वातवलयैः सर्वतस्त्रिभिरावृतः। कवचैरिव लोकस्तैर्महालोकजिगीषया ॥ ४२ ॥
अत्र रत्नप्रभाद्येयं द्वितीया शर्कराप्रभा। प्रथिता पृथिवी लोके तृतीया वालुकाप्रभा ॥ ४३ ॥
पंकप्रभा चतुर्थी तु पंचमी पृथिवी तथा। धूमप्रभा विनिर्दिष्टा षष्ठी चापि तमःप्रभा ॥ ४४ ॥

महातमःप्रभा भूमिः सप्तमी च घनोदधौ । वलयाधिष्ठिताः ह्येताः सप्ताधोऽधो व्यवस्थिताः ॥४५॥
गोत्राख्यया तु ताः ख्याता घर्मा वंशा यथाक्रमं । मेघांजनाप्यरिष्टा च मघवी माघवीति च ॥४६॥
लक्षैका योजनानां स्यात् सहाशीतिसहस्रिका । त्रिभिर्भागैर्विभक्तं च बाहुल्यं प्रथमक्षितेः ॥४७॥
योजनानां सहस्राणि खरभागेऽत्र षोडश । अशीतिः पंकबहुले चतुर्भिरधिकानि तु ॥ ४८ ॥
तथैवाब्बहुले भागे बाहुल्यं सुविनिश्चितं । शास्त्रेऽशीतिसहस्राणि योजनानि जिनेशिनां ॥ ४९ ॥
तं पंकबहुलं भागं भासयंति यथायथं । रक्षसामसुराणां च निवासा रत्नभासुराः ॥ ५० ॥
खरभागं नवानां तु वासा भवनवासिनां । भूषयंति महाभासा बहुभेदाः स्वयंप्रभाः ॥ ५१ ॥
चित्राख्यं पटलं पूर्वं वज्राख्यं तु ततः परं । वैडूर्याख्यं ततो ज्ञेयं लोहितांकाख्यमप्यतः ॥५२॥
मसारगल्वगोमेदप्रवालपटलान्यतः । द्योती रसांजनाख्ये च तथैवांजनमूलकं ॥ ५३ ॥
अंगस्फटिकसंज्ञे च चंद्रभाख्यं च वर्चकं । बहुशिलामयं चेति पटलानि हि षोडश ॥ ५४ ॥
एकैकस्य तु बाहुल्यं सहस्रगुणयोजनं । पटलस्य तदात्मासौ खरभागः प्रभासुरः ॥ ५५ ॥
विज्ञेयाः पंकबहुलाच्छेषाः षडपि भूमयः । स्वस्वबाहुल्यहीनैकरज्ज्वायामानिजांतराः ॥ ५६ ॥
द्वात्रिंदशथ बाहुल्यमष्टाविंशतिरेव च । चतुर्विंशतिरप्यासां विंशतिः षोडशाष्ट च ॥ ५७ ॥

योजनानां सहस्राणि षण्णामपि यथाक्रमं। पृथिवीनां विनिर्दिष्टं दृष्टतत्त्वैर्जिनेश्वरैः ॥ ५८ ॥
दशानामसुरादीनां प्रथमायां च सद्मनां। संख्या सा प्रतिपत्तव्या परिपाट्या व्यवस्थिता॥५९॥
चतुःषष्टिः स्मृता लक्षा अशीतिश्चतुरुत्तरा। द्वासप्ततिस्तथा लक्षाः षण्णां षट्सप्ततिस्ततः ॥६०॥
भवनानां तथा लक्षा नवतिश्च षडुत्तरा। चैत्यालयाश्च विज्ञेयाः प्रत्येकं सद्मसंख्यया ॥ ६१ ॥
चतुर्दश सहस्राणि षोडशापि यथाक्रमं। भूतानां राक्षसानां च संति सद्मान्यधो भुवः ॥ ६२ ॥
असुरा नागनामानः सुपर्णतनयामराः। द्वीपोदधिकुमाराश्च तथैव स्तनितामराः ॥ ६३ ॥
विद्युत्कुमारनामानो दिक्कुमारास्तथाऽपरे। देवा अग्निकुमाराश्च कुमारा वायुपूर्वकाः ॥ ६४ ॥
मणिद्युमाणिनित्याभे पाताले निवसंति ते। यथायथं निवासेषु देवा भवनवासिनः ॥ ६५ ॥
असुराणां च तत्रायुः साधिकः सागरः स्मृतः। तथा नागकुमाराणां ज्ञेयं पल्योपमत्रयं ॥६६॥
तत् सुपर्णकुमाराणां सार्धं पल्योपमद्वयं। द्वयं द्वीपकुमाराणां शेषाणां पल्यमर्द्धभाक् ॥ ६७ ॥
असुराणां धनूंषि स्यादुत्सेधः पंचविंशतिः। भौमैर्दशैव शेषाणां ज्योतिषां सप्त तत्त्वतः ॥६८॥
सौधर्मैशानयोर्देवाः सप्तहस्तोच्छ्रयास्ततः। एकार्धहानौ सर्वार्थसिद्धौ हस्तोऽवशिष्यते ॥ ६९ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु श्रेणिक! लेशतः। सप्तानामपि भूमीनां क्रमेण नरकालयान् ॥७०॥

भवंत्यब्बहुले भागे घर्मायां नारकाश्रयाः। योजनानां सहस्रं तु मुक्त्वोर्ध्वाधोविभागयोः ॥७१॥
अयमेव क्रमो ज्ञेयः शेपास्वपि च भूमिषु। सप्तम्यां मध्यदेशेऽमी सार्त्रिंशे क्रोशपंचके ॥ ७२ ॥
लक्षा नरकभेदानां स्युस्त्रिंशत्पंचविंशतिः। तासु पंचदशैवैता दश तिस्रस्तथैव च ॥ ७३ ॥
पंचोनापि च लक्षैका पंच चैव यथाक्रमं। लक्षाश्चतुरशीतिः स्युस्तेषां संग्रहसंख्यया ॥ ७४ ॥
त्रयोदश यथासंख्यमेकादश नवापि च। सप्त पंच त्रयश्चैकः प्रस्तारास्तासु भूमिषु ॥ ७५ ॥
सीमंतको मतः पूर्वो नरको रौरुकस्ततः। भ्रांतोद्भ्रांतौ च संभ्रांतः परोऽसंभ्रांत एव च ॥ ७६ ॥
विभ्रांतश्च तथा त्रस्तो घर्मायां त्रसितः परः। वक्रांतश्चाप्यवक्रांतो विक्रांतश्चेंद्रकाः स्मृताः ॥७७॥
स्तरकः स्तनकश्चैव मनको वनकस्तथा। घाटसंघाटनामानौ जिह्वाख्यो जिह्वकाभिधः ॥ ७८ ॥
लोलश्च लोलुपश्चापि तथाऽन्यस्तनलोलुपः। वंशायामिंद्रका ह्येते जिनैरेकादशोदिताः ॥ ७९ ॥
तप्तश्च तापितश्चान्यस्तपनस्तापनः परः। पंचमश्च निदाघाख्यः षष्ठः प्रज्वलितो मतः ॥ ८० ॥
तथैवोज्ज्वलितो ज्ञेयस्ततः संज्वलितोऽष्टमः। संप्रज्वलित इत्यन्यस्तृतीयायां नवेंद्रकाः ॥८१॥
आरस्तारश्च मारश्च वर्चस्कस्तमकस्तथा। खडः खडखडश्चेति[1] चतुर्थ्यां सप्त वर्णिताः ॥ ८२ ॥

१ खड्खड इति ग पुस्तके।

तमो भ्रमो झषोंऽतश्च तमिश्रश्चेत्यमी स्मृताः। इंद्रका नगराकाराः पंचम्यां पंच संहिताः ॥८३॥
हिमवर्दललल्लुकास्त्रयः षष्ठ्यामपींद्रकाः। सप्तम्यामप्रतिष्ठानमेकमेवेंद्रकं विदुः ॥ ८४ ॥
ज्ञेया ह्येकोनपंचाशदिंद्रकाः संयुतास्त्वमी। अधोऽधो न्यूनका द्वाभ्यामुपर्युपरि वृद्धयः ॥ ८५ ॥
सीमंतके चतुर्दिक्षु प्रत्येकं नारकालयाः। तिष्ठंत्येकोनपंचाशत् श्रेणिबद्धा महांतराः ॥ ८६ ॥
तावंत एव चैकोनाः श्रेणिबद्धाः विदिक्षु च। प्रत्येकं बहवस्तेभ्यस्ताभ्योऽन्यत्र प्रकीर्णकाः॥८७॥
एकैको हीयते चाधः सीमंतनरकादिषु। चतुःशेषोऽप्रतिष्ठानो न श्रेणी न प्रकीर्णकाः ॥८८॥
शतं षण्णवतं दिक्षु चतुरूनं विदिक्षु तत्। सीमंतकस्य तन्मिश्रमष्टाशीतं शतत्रयं ॥ ८९ ॥
शतं द्वानवतं दिक्षु साष्टाशीति विदिक्षु तत्। कुंडानां नरकस्यैतद् युक्त्वाशीत्या शतत्रयं ॥९०॥
अष्टाशीतं शतं दिक्षु चतुरूनं विदिक्षु तत्। रौरुकस्य विमिश्रं तद् द्वासप्तत्या शतत्रयं ॥९१॥
शतं चतुरशीतिश्च भ्रांते दिक्षु विदिक्षु तत्। साशीति नारकं मिश्रं चतुःषष्ट्या शतत्रयं ॥९२॥
साशीतिकं शतं दिक्षु षट्सप्तत्या विदिक्षु तत्। षट्पंचाशद्विमिश्रं स्यादुद्भ्रांतस्य शतत्रयं ॥ ९३ ॥
षट्सप्तत्या शतं दिक्षु द्वासप्तत्या विदिक्षु तत्। द्व्यूनपंचाशता मिश्रं संभ्रांतस्य शतत्रयं ॥ ९४ ॥
द्वासप्तत्या शतं दिक्षु साष्टषष्ट्या विदिक्षु तत्। असंभ्रांतस्य मिश्रं तच्चत्वारिंशं शतत्रयं ॥ ९५ ॥

साष्टषष्टिशतं दिक्षु चतुःषष्ट्या विदिक्षु तत् । द्वात्रिंशं तद्द्वयं युक्तं विभ्रांतस्य शतत्रयं ॥९६॥
चतुःषष्ट्या शतं दिक्षु शतं षष्ट्या विदिक्षु च । त्रस्तस्य तद्द्वयं मिश्रं चतुर्विंशं शतत्रयं ॥९७॥
शतं षष्ट्याधिकं दिक्षु षट्पंचाशं विदिक्षु तत् । त्रसितस्य समायुक्तं षोडशाग्रं शतत्रयं ॥९८॥
षट्पंचाशं शतं दिक्षु द्वापंचाशं विदिक्षु तत् । वक्रांतस्य समायुक्तमष्टोत्तरशतत्रयं ॥ ९९ ॥
द्विपंचाशं शतं दिक्षु चत्वारिंशं सहाष्टभिः । विदिक्षु मिश्रितं तत्स्यादवक्रांते शतत्रयं ॥१००॥
चत्वारिंशं शतं दिक्षु विक्रांतस्य सहाष्टभिः। चत्वारिंशं चतुर्भिस्तद् विदिक्षु परकीर्त्तितं ॥१०१॥
द्वयं तच्च समायुक्तं द्वयं द्वानवतं शतं । इंद्रके नरकाणां स्यात् परिवारस्त्रयोदशे ॥ १०२ ॥
श्रेणिबद्धान्यमूनि स्युः सहस्राणींद्रकैः सह । त्रयस्त्रिंशच्चतुःशत्या चत्वारि समुदायतः ॥ १०३ ॥
ये लक्षास्त्रिंशदेकोना नवतिः पंच पंचाभिः । सहस्राणि शतैस्तेऽपि सप्तषष्ट्या प्रकीर्णकाः॥१०४॥
चत्वारिंशं शतं दिक्षु चतुर्भिस्तरकस्य तत् । विदिक्षु चतुरूनं द्वे अशीत्या चतुरंतया ॥ १०५ ॥
चत्वारिंशं शतं दिक्षु षट्त्रिंशं तु विदिक्षु तत् । स्तनकस्य समस्तं तत् षट्सप्तत्या शतद्वयं॥१०६॥
षट्त्रिंशं हि शतं दिक्षु द्वात्रिंशं तु विदिक्षु तत् । मनकस्य समस्तं तत् साष्टषष्टि शतद्वयं ॥१०७॥
द्वात्रिंशं हि शतं दिक्षु त्वष्टाविंशं विदिक्षु तत् । वनकस्य समस्तं तत् षष्ट्या युक्तं शतद्वयं ॥१०८॥

अष्टाविंशं शतं दिक्षु चतुर्विंशं विदिक्षु तत्। घाटस्यापि समस्तं तत् द्वापंचाशं शतद्वयं ॥१०९॥
चतुर्विंशं शतं दिक्षु विंशमेव विदिक्षु तत्। संघाटस्य चतुर्युक्तं चत्वारिंशं शतद्वयं ॥ ११० ॥
दिक्षु विंशं शतं ज्ञेयं षोडशाग्रं विदिक्षु तत्। जिह्वाख्यस्य समस्तं तत् षट्त्रिंशं हि शतद्वयं॥१११॥
षोडशाग्रं शतं दिक्षु द्वादशाग्रं विदिक्षु तत्। जिह्वाख्यस्य युक्तं स्यादष्टाविंशं शतद्वयं ॥११२॥
द्वादशाग्रं शतं दिक्षु विदिक्ष्वष्टोत्तरं शतं। लोलस्यापि समस्तं तत् विंशत्यग्रं शतद्वयं ॥११३॥
अष्टोत्तरशतं दिक्षु विदिक्षु चतुरुत्तरं। लोलुपस्य समस्तं तत् द्वादाशाग्रं शतद्वयं ॥ ११४ ॥
चतुर्भिश्च शतं दिक्षु विदिक्षु शतमायतं। तत्तनुलोलुपाख्यस्य चतुर्युक्तं शतद्वयं ॥ ११५ ॥
श्रेणिबद्धानि चैतानि द्वे सहस्रे च षट्शती। नवतिः पंचाभिर्युक्ता भवंति नरकानि तु ॥११६॥
चतुर्विंशतिलक्षाश्च नवतिः सप्तभिस्त्विह। सहस्रगुणिताः पंच त्रिशती च प्रकीर्णकाः ॥११७॥
तप्तस्यापि शतं दिक्षु नरकाणां विदिक्षु तत्। मता षण्णवतिर्युक्तं शतं षण्णवतं तु तत् ॥११८॥
दिक्षु षण्णवतिर्द्वाभ्यां विदिक्षु नवतिर्युता। तपितस्य न तद् युक्तमष्टाशीतं शतं मतं ॥ ११९ ॥
दिक्षु द्वानवतिः सा स्यादष्टाशीतिर्विदिक्षु तत्। तपनस्य तु तद्युक्तमशीत्या सहितं शतं ॥१२०॥
अष्टाशीतिर्महादिक्षु विदिक्षु चतुरुत्तरा। अशीतिस्तापनस्यैतत् द्वासप्तत्या शतं युतं ॥ १२१ ॥

अशीतिश्चतुरूर्ध्वा स्याद् दिक्ष्वशीतिर्विदिक्षु तत्। निदाघस्यापि तद्युक्तं चतुःषष्टियुतं शतं ॥ १२२ ॥
दिक्ष्वशीतिर्विदिक्षु ज्ञैः षट्सप्ततिरुदाहृता। युक्तं प्रज्वलितस्यापि षट् पंचाशं शतं हि तत् ॥ १२३ ॥
दिक्षु षट् सप्ततिर्ज्ञेया चतुरूना विदिक्षु सा। शतमुज्ज्वालितस्योभे चत्वारिंशं तथाऽष्टकं ॥ १२४ ॥
दिक्षु द्वासप्ततिः सा स्यादष्टाषष्टिर्विदिक्षु तत् । युक्तं संज्वालितस्यापि चत्वारिंशं शतं मतं ॥ १२५ ॥
अष्टाषष्टिर्महादिक्षु चतुःषष्टिर्विदिक्षु तत् । संप्रज्वलितसंज्ञस्य द्वात्रिंशत्संयुतं शतं ॥ १२६ ॥
श्रेणिबद्धानि चामूनि सहस्रं च चतुःशती । पंचाशीतिश्च जायंते नवस्वपि सहेंद्रकैः ॥ १२७ ॥
लक्षाश्चतुर्दशाष्टाभिर्नवतिश्च प्रकीर्णकाः । सहस्रताडिता पंच—शती पंचदशापि च ॥ १२८ ॥
चतुःषाष्टिर्महादिक्षु षष्टिरेव विदिक्षु च । आरस्यापि शतं मिश्रं चतुर्विंशतिसंमतं ॥ १२९ ॥
षष्टिरेव महादिक्षु षट्पंचाशद्विदिक्षु च । तारस्यापि च तन्मिश्रं षोडशाग्रं शतं मतं ॥ १३० ॥
षट् पंचाशन्महादिक्षु द्वापंचाशद्विदिक्षु च । मारस्यापि च तन्मिश्रं मतमष्टोत्तरं शतं ॥ १३१ ॥
द्वापंचाशन्महादिक्षु चत्वारिंशत् सहाष्टभिः । वर्चस्कस्य विदिक्षु स्यात्तन्मिश्रं शतमेव तु ॥ १३२ ॥
चत्वारिंशत् सहाष्टाभिर्महादिक्षु विदिक्षु तु । तमकस्य चतुर्भिश्च युतं वा नवतिर्द्वयं ॥ १३३ ॥
चत्वारिंशच्चतुर्भिश्च महादिक्षु विदिक्षु तु । चत्वारिंशत् षडस्येयमशीतिश्चतुरुत्तरा ॥ १३४ ॥

चत्वारिंशन्महादिक्षु षट्त्रिंशच्च विदिक्षु च । युता षडषडस्येयं षट्सप्ततिरुदाहृता ॥ १३५ ॥
इंद्रकैः सह सप्त स्युः शतान्येतानि सप्त च । श्रेणीबद्धानि सर्वाणि नरकान्यत्र संभवात् ॥१३६॥
लक्षा नवसहस्राणि नवतिर्नवभिः सह । नवतिश्च त्रिभिर्युक्ता द्विशती च प्रकीर्णकाः ॥१३७॥
षट्त्रिंशच्च महादिक्षु द्वात्रिंशत्तु विदिक्षु तत् । तमःश्रुतेर्द्वयं मिश्रमष्टाषष्टिरुदाहृता ॥ १३८ ॥
द्वात्रिंशत्तु महादिक्षु तमस्याष्टौ च विंशतिः । विदिक्षु मिश्रितं तच्च षष्टिरिष्टा मनीषिभिः ॥१३९॥
अष्टाविंशतिरुद्दिष्टा महादिक्षु विदिक्षु तु । ऋषभस्य चतुरूना स्याद्द्वापंचाशद्द्वयं युता ॥ १४० ॥
चतुर्विंशतिरंध्रस्य महादिक्षु विदिक्षु तु । विंशतिर्मिश्रितं तस्य चत्वारिंशच्चतुर्युता ॥ १४१ ॥
विंशतिस्तु महादिक्षु विदिक्ष्वपि च षोडश । तमिश्रस्य विमिश्रं तत् षट् त्रिंशन्नरकाणि तु॥१४२॥
इंद्रकैःसह सर्वाणि श्रेणीबद्धान्यमून्यपि । द्वे शते नरकाण्युक्ते पंचषष्टिविमिश्रिते ॥ १४३ ॥
द्वे लक्षे च सहस्राणि नवभिर्नवतिस्तथा । शतानि सप्त कथ्यंते पंचत्रिंशत् प्रकीर्णकाः ॥१४४॥
षोडशैव महादिक्षु द्वादशैव विदिक्षु च । हिमस्यापि विमिश्रं स्यादष्टाविंशतिरेव तत् ॥१४५॥
द्वादशैव महादिक्षु विदिक्ष्वष्टौ तु तद्द्वयं । सहितं नरकाणां स्याद् वर्दलस्य तु विंशतिः॥१४६॥
अष्टावेव महादिक्षु चत्वार्येव विदिक्षु च । लल्लकस्य समेतं तु द्वादशैव तु तद्द्वयं ॥ १४७ ॥

त्रिषष्टिरिंद्रकैः सार्धं श्रेणीबद्धान्यमून्यपि। नवतिश्च सहस्राणि नवभिः सहितानि तु ॥ १४८ ॥
शतानि नव तत्रापि द्वात्रिंशच्च प्रकीर्णकाः। प्रकीर्णनारकाकीर्णाः प्रणीताः प्राणिदुःसहाः॥१४९॥
एकमेव महादिक्षु विदिक्षु नरकं न हि। अप्रतिष्ठानयुक्तानि पंचस्युर्न प्रकीर्णकाः ॥ १५० ॥
कांक्षाख्यश्च महाकांक्षः पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः। पिपासातिपिपासाख्यौ दक्षिणोत्तरयोस्तथा ॥१५१॥
सीमंतकेंद्रकस्यामी चत्वारोऽनंतराः स्थिताः। दुर्वर्णनारकाकीर्णाः प्रसिद्धा नारकालयाः ॥१५२॥
अनिच्छाख्यो महानिच्छो निरयो विंध्यनामकः। महाविंध्याभिधानश्च तरकस्य तथा स्थिताः॥१५३॥
दुःखाख्यश्च महादुःखो निरयो वेदनाभिधः। महावेदननामा च तप्तस्यामी तथा स्थिताः॥१५४॥
निसृष्टातिनिसृष्टाख्यौ निरोधो निरयोऽपरः। महानिरोधनामा च तेऽप्यारस्य तथा स्थिताः॥१५५॥
निरुद्धातिनिरुद्धाख्यौ तृतीयश्च विमर्दनः। महाविमर्दनाख्यश्च तमोनाम्ना तथा स्थिताः॥१५६॥
नीलाख्यश्च महानीलो निरयो मघवाश्रितौ। दिक्षु पंकमहापंकौ हिमनाम्नस्तथा स्थितः॥१५७॥
स्थिताः कालमहाकालरौरवा निरयास्तथा। महारौरवनामा च स्वाप्रतिष्ठानदिक्षु ते ॥ १५८ ॥
नवतिश्च सहस्राणि त्रिशती च प्रकीर्णकाः। लक्षाश्चैव त्र्यशीतिःस्युश्चत्वारिंशच्च सप्तभिः ॥ १५९ ॥
सहस्राणि नव श्रेणी-गतानां पट्शतींद्रकैः। त्रिभिः पंचाशता लक्षा अशीतिश्चतुरुत्तरा॥१६०॥

तेषु संख्येयविस्तारा: षट्लक्षाः प्रथमक्षितौ । संत्यसंख्येयाविस्ताराश्चतुर्विंशतिरेव ताः ॥१६१॥
संति संख्येयविस्ताराः पंचलक्षास्तु विंशतिः। ततोऽसंख्येयविस्तारा नरकौघा ह्यधःक्षितौ॥१६२॥
लक्षास्तिस्रस्तृतीयायां ख्याताः संख्येययोजनाः। असंख्येयास्तु विस्तारा लक्षा द्वादश तु क्षितौ॥
लक्षद्वयं चतुर्थ्यां तु नारकाणां क्षितौ ततः। संख्येययोजनानां स्यादन्येषामष्ट लक्षिताः ॥१६४॥
अधःषष्टिसहस्राणि संख्येया ध्वनितान्यतः । चत्वारिंशत्सहस्राणि द्विलक्षाण्यपराण्यपि ॥१६५॥
एकोनविंशतिः षष्ठ्यां सहस्राणि नवोत्तरा । नवतिर्नवशत्यामा संख्येया ध्वनितानि तु ॥१६६॥
सप्ततिश्च सहस्राणि नवासंख्येययोजनाः। शतानि नारकावासा नवषण्णवतिस्त्विह ॥ १६७ ॥
एकं संख्येयविस्तारं सप्तम्यां नरकं मतं। ततोऽसंख्येयविस्तारं नरकाणां चतुष्टयं ॥ १६८ ॥
तत्र संख्येयविस्तारा इंद्रकाः सर्व एव ते । श्रेणीबद्धास्त्वसंख्येयविस्तारा नरकालयाः ॥१६९॥
केचित्संख्येयविस्ताराः सर्वभूमिप्रकीर्णकाः। केऽप्यसंख्येयविस्तारा इत्थं ते तूभयात्मकाः१७०॥
सीमंतकस्य विस्तारो योजनानां मतं ततः । विद्वाद्भिः प्रमितो लक्षाश्चत्वारिंशच्च पंच च॥१७१॥
चत्वारिंशच्चतस्रश्च लक्षाः साष्टसहास्त्रिकाः । त्रिशती च त्रयस्त्रिंशत् सत्र्यंशो नारकस्य सः॥१७२॥
त्रिचत्वारिंशदिष्टास्ताः सहस्राणि च षोडश । षट्शतानि च षट्षष्टिर्द्वौ त्र्यंशौ रौरवस्य च ॥१७३

द्विचत्वारिंशदुक्तास्ताः सहस्राणि च विंशति । पंचोत्तराणि विस्तारो भ्रांतस्यापि समंततः ॥१७४॥
चत्वारिंशच्च लक्षा सैकोद्भ्रांतस्य शतत्रयं । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्तु भागवान् ॥ १७५ ॥
चत्वारिंशत्स संभ्रांते ततः पट्षष्टि पट्शती । चत्वारिंशत्सहस्राणि सैकानि द्वौ त्रिभागकौ ॥१७६॥
ताश्चत्वारिंशदेकोना असंभ्रांतस्य विस्तृतिः । पंचाशच्च सहस्राणि योजनानां समंततः ॥१७७॥
अष्टात्रिंशत् स विभ्रांते ताः पंचाशत् सहस्रकैः । सह त्र्यंशस्त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताष्टसहस्रकैः ॥१७८॥
सप्तत्रिंशदतो लक्षा सपट्षष्टिसहास्रिकाः । शतानि षट् त्रिभागौ द्वौ पट्षष्टिस्त्रस्तनामनि ॥१७९॥
पट्त्रिंशच्च तथा लक्षाः सहस्राणि च सप्ततिः । पंचोत्तराणि विस्तारस्त्रासितस्य परिस्फुटः ॥१८०॥
पंचत्रिंशदतो लक्षा वक्रांतस्य त्रिभागवान् । त्र्यशीतिश्च सहस्राणि त्रयात्रिंशच्छतत्रयं ॥ १८१ ॥
चतुस्त्रिंशदतो लक्षा नवत्येकसहास्रिकाः । पट्षष्टिः पट्शती त्र्यंशाववक्रांतस्य सर्वतः ॥ १८२ ॥
चतुस्त्रिंशत्ततो लक्षा योजनानामवस्थिताः । विक्रांतस्यापि विस्तारः समस्तो विस्तरेरितः ॥ १८३॥
स्तरकस्य त्रयस्त्रिंशत् लक्षाः साष्टसहास्रिकाः । शतानि त्रीणि सत्र्यंशः त्रिंशच्च त्रीणि विस्तृतिः ॥१८४॥
स्तनकस्य तु विस्तारो लक्षा द्वात्रिंशदंशकौ । पोडशापि सहस्राणि पट्षष्टिः पट्शती मता ॥१८५॥
मनकस्यापि विस्तारो त्रिंशल्लक्षा सहैककाः । योजनानां सहस्राणि पंचविंशतिरेव च ॥१८६॥

वनकस्यापि विस्तारः त्रिंशल्लक्षाः शतत्रयं । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्त्रिभागवान् ॥ १८७॥
घाटस्य विंशतिर्लक्षा नव षट्षष्टिश्च षट्शतं । चत्वारिंशत्सहस्राणि सैकानि त्र्यंशकौ हि सः॥१८८॥
अष्टाविंशतिलक्षास्तु विस्तारः परिकीर्तितः । स पंचाशत् सहस्राणि संघाटस्य निरंतरः ॥१८९॥
सप्तविंशतिलक्षाः स त्रयस्त्रिंशं शतत्रयं । पंचाशच्च सहस्राणि साष्टौ जिह्वस्त्रिभागवान् ॥ १९० ॥
लक्षाः षड्विंशतिः प्रोक्ताः सषट्षष्टिसहस्रिकाः । षट्षष्टिःषट्शती त्र्यंशो विस्तारो जिह्विकाश्रयः ॥
पंचविंशतिलक्षास्तु लोलस्य परिकीर्तितः। सहस्राणि च विस्तारः समस्तः पंचसप्ततिः ॥१९२॥
चतुर्विंशतिलक्षाश्च लोलुपस्य त्रिभागवान् । त्र्यशीतिश्च सहस्राणि त्रिशती त्रिंशता त्रयं ॥१९३॥
त्रयोविंशतिलक्षास्तु विस्तारः स्तनलोलुपे । सहस्राण्येकनवतिस्त्र्यंशौ षट्षष्टि षट्शतं ॥ १९४ ॥
त्रयोविंशतिलक्षास्तु तप्ते द्वाविंशतिः परे । त्रिभागोऽष्टौ सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतत्रयं ॥ १९५ ॥
एकविंशतिलक्षा वै सहस्राणि च षोडश । तपनस्य त्रिभागौ च षटषष्टिः षट्शती च सः ॥१९६॥
लक्षाः विंशतिरुद्दिष्टा मुनिभिः पंचविंशतिः। सहस्राणि च विस्तारस्तापनस्यापि सर्वतः॥१९७॥
एकोनविंशतिर्लक्षा निदाघस्य शतत्रयं । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रिभागास्त्रिंशता त्रयं ॥ १९८ ॥
स चाष्टादश लक्षास्ताः षट्षष्टिः षोडशात्मकं । शतं प्रज्वलितस्यासौ चत्वारिंशत्सहस्रकैः॥१९९॥

लक्षाः सप्तदश प्रोक्ता विस्तारस्तत्त्वदर्शिभिः। सहैवोज्ज्वलितस्यासौ चत्वारिंशत्सहस्रकैः॥२००॥
लक्षाः षोडश विस्तारो ह्यष्टापंचाशदप्यतः। सहस्राणि त्रिंशत्यंशास्त्रिंशत्संज्वलिते त्रिभिः॥२०१॥
लक्षाः पंचदश त्र्यंशो षट्षष्टिः षट्शती च सः। सहस्राणि च षट्षष्टिः संप्रज्वलितनामनि॥२०२॥
लक्षाश्चतुर्दशैवोक्ताः पंचसप्ततिरप्यतः । सहस्राणि स विस्तारस्तस्यारस्यापि सर्वतः ॥ २०३ ॥
लक्षास्त्रयोदश त्र्यंशस्त्रयस्त्रिंशच्छतत्रयं । त्र्यशीतिश्च सहस्राणि विस्तारस्तारगोचरः ॥ २०४ ॥
लक्षा द्वादश त्र्यंशौ च षट्षष्टिः षट्शती तथा । सहस्राण्येकनवतिर्विस्तारो मारगोचरः ॥२०५॥
लक्षा द्वादश वर्चस्के लक्षोनास्तनके तु ताः । त्र्यंशश्चाष्टसहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतत्रयं ॥ २०६ ॥
लक्षा दश षडस्योक्ताः सहस्रं षोडशात्मकं । षट्शती च त्रिभागौ च षट्षष्टिः स प्रकीर्तितः२०७
लक्षा नव सहस्राणि पंचविंशतिरेव च । विस्तारो विस्तरेणोक्तस्तज्ज्ञैः षडषडस्य सः ॥ २०८ ॥
लक्षास्तमःश्रुतेरष्टौ योजनानां शतत्रयं । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्त्रयं च सः ॥ २०९ ॥
लक्षाः सप्त भ्रमस्यासौ चत्वारिंशत्सहस्रकैः । शतानि षोडशांशौ च षट्षष्टिरपि भाषितः ॥२१०॥
लक्षाःषडेव विस्तारः सपंचाशत्सहस्रिकाः । योजनानां समंतात्तु झषस्य परिभाषितः ॥ २११ ॥
लक्षाः पंचैव चांध्रस्य त्रयस्त्रिंशच्छतत्रयं । त्र्यंशश्चाप्यष्टपंचाशत् सहस्राणि स वर्णितः ॥२१२॥

लक्षाश्चतस्त्र उद्दिष्टास्तमिश्रे त्र्यंशकद्वयं । पट्षष्टिश्च सहस्राणि षट्षष्टिः षट्शती च सः ॥२१३॥
लक्षास्तिस्रो हिमस्यापि विस्तारः पंचसप्ततिः । सहस्राणि समादिष्टःशुद्धकेवलदृष्टिभिः ॥२१४॥
लक्षद्वयं विभागश्च विस्तारो वर्दलस्य तु । त्र्यशीतिश्च सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतत्रयं ॥ २१५ ॥
लल्लकस्य तु लक्षैका षट्षष्टिः शट्शती तथा । सहस्राण्येकनवतिर्विस्तारः त्र्यंशकद्वयं ॥ २१६ ॥
केवलैव तु लक्षैका योजनानां प्रकीर्तितः । अप्रतिष्ठानविस्तारो वस्तुविस्तरवेदिभिः ॥ २१७ ॥
इंद्रकेषु च बाहुल्यं घर्मायां क्रोश एव च । श्रेणिष्वेषु स सत्र्यंशो द्वौ सत्र्यंशौ प्रकीर्णके ॥२१८॥
क्रोशःसार्धस्तु वंशायामिंद्रकेषु तदीरितं । श्रेणीगतेषु तु क्रोशो त्रयः सार्धाः प्रकीर्णके ॥२१९॥
मेघायामिंद्रकेषूक्तं बाहुल्यं क्रोशयोर्द्वयं । स द्वित्र्यंशं तु तच्छ्रेण्यां संयुक्तं तत्प्रकीर्णके ॥२२०॥
सार्धौ द्वाविंद्रकेष्वेतौ चतुर्थ्यां त्र्यंशकस्त्रयः । श्रेण्यां प्रकीर्णकेष्वेते षट्भागैः पंच पंचभिः॥२२१॥
इंद्रकेषु त्रयः क्रोशाश्चत्वारः श्रेण्युपाश्रयः । सप्त प्रकीर्णकेष्वेते पंचम्यामुपवर्णिताः ॥ २२२ ॥
सार्धाः षष्ठ्यां त्रयः क्रोशा इंद्रके श्रेण्युपाश्रिताः। चत्वारस्त्र्यंशकावष्टौ ते षड्भागाः प्रकीर्णके२२३
सप्तम्यामप्रतिष्ठाने चत्वारस्ते समुच्छ्रयाः । श्रेणिबद्धेषु पंचैव सत्रिभागाःप्रकीर्तिताः ॥ २२४ ॥
योजनानां चतुःषष्टिः शतानि प्रथमाक्षितौ । नवतिर्नवसंयुक्ता क्रोशयोश्च द्वयं तथा ॥ २२५ ॥

क्रोशद्वादशभागाश्च तथैवैकादशापरे । इंद्रकाणामिदं ज्ञेयमेकैकस्यांतरं बुधैः ॥ ॥ २२६ ॥
चतुःषष्टिशतान्येन नवतिश्च नवोत्तरा । श्रेणिगतांतरं क्रोशौ तथा पंचनवांशकाः ॥ २२७ ॥
नवतिर्नव चैतानि चतुःषष्टिशतानि तत् । क्रोशाः सप्तदशान्येषां क्रोशषट्त्रिंशदंशकाः ॥२२८॥
इंद्रकाणां द्वितीयायां पृथिव्यां तु पृथुश्रुताः । तद्योजनशतान्याहुरेकान्नत्रिंशदंतरं ॥ २२९ ॥
नवभिश्च नवत्या च योजनैः सहितानि तु । चत्वारिंशच्छतैर्युक्ता तथा सप्तधनुःशती ॥२३०॥
तानंत्येव च जायंते योजनान्यन्यथाऽनया । श्रेणिबद्धस्थितानां च या षट्त्रिंशद्धनुः शती॥२३१॥
तावंत्येव पुनस्तानि योजनानि परस्परं । प्रकीर्णकांतरं तस्यां तृतीयं तु धनुःशतं ॥ २३२ ॥
विनैकेन तु पंचादशदिंद्रकाणां शतान्यपि । द्वात्रिंशच्च तृतीयायां पंचत्रिंशद्धनुःशतैः ॥२३३॥
योजनानि हि तावंति द्विसहस्रधनूंषि च । श्रेणीगतांतरं तस्यां लब्धवर्णैः प्रवर्णितं ॥ २३४ ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वात्रिंशच्च शतानि वै । धनूंषि पंचपंचाशच्छतान्येतत्प्रकीर्णके ॥ २३५ ॥
पंच षष्टिश्च षट्त्रिंशच्छतानींद्रकगोचरं । धनुःशतानि तद्वेद्यं चतुर्थ्यां पंचसप्ततिः ॥ २३६ ॥
योजनानि हि तावंति श्रेण्यां पंचनवांशकैः । धनूंषि पंचपंचाशत्तावंत्येव शतानि तत् ॥ २३७॥
चतुःषष्टिश्च षट्त्रिंशद् योजनानां शतानि तु । सप्तसप्ततिसंख्यानैस्तथा चापशतैरपि ॥२३८॥

द्वाविंशतिधनुर्भिश्च नवभागद्वयेन च। प्रकीर्णकांतरं बोध्यं तस्यामेव प्रकीर्त्तितं ॥ २३९ ॥
सहस्राणि तु चत्वारि तच्चत्वारि शतानि च। योजनानि समस्तानि नवतिश्च नवोत्तरा ॥२४०॥
धनुःशतानि पंचैव पंचम्यामिंद्रकेष्विदं। भेदांतरप्रपंचज्ञैरंतरं प्रतिपादितं ॥ २४१ ॥
सहस्राणि च चत्वारि श्रेण्यां तावच्छतानि च। अष्टानवति नन्वेतत् षट्सहस्रधनूंषि च ॥२४२॥
तच्चत्वारि सहस्राणि शतान्यपि च सप्तभिः। नवतिः शेषके चापपंचषष्टिशतानि च ॥ २४३ ॥
सहस्राणि च षट् षष्ठ्यां शतानि नव चाष्टभिः। नवतिः पंचपंचाशद्धनुःशतवतींद्रके ॥२४४॥
तावंत्येव भवंत्यस्यां योजनानि तदंतरं। श्रेणीबद्धेषु वक्तव्यं द्विजसहस्रधनुर्युतं ॥ २४५ ॥
सहस्राणि षडेवास्यां नवतिश्च षडुत्तरा। शतानि नव सप्तत्या शेषे पंचधनुःशती ॥ २४६ ॥
ऊर्ध्वाधस्त्रिसहस्राणि नवतिश्च नवोत्तरा। शतानि नव गव्यूतिः सप्तम्यामिंद्रकांतरं ॥२४७॥
श्रेणीबद्धांतरं चास्यां योजनानि भवंति हि। गव्यूतेश्च त्रिभागेन तावंत्येवेति निश्चयः ॥२४८॥
दशवर्षसहस्राणि नारकाणां लघुस्थितिः। सीमंतके विनिर्दिष्टा नवतिस्तु परा स्थितिः ॥२४९॥
साधिका तु परे चासावपरा स्थितिरिष्यते। इंद्रके नारकाभिख्ये लक्षास्तु नवतिः परा ॥२५०॥
इयमेव जघन्या स्यात् रौरुके समयाधिका। पूर्वकोटयसंख्येयया परमा परिकीर्तिता ॥२५१॥

एषा चैवापरा भ्रांते स्थितिः स्यात् समयोत्तरा। सागरस्य परो भागो दशमोऽत्र परा स्थितिः॥
इयमेव जघन्या स्यादुद्भ्रांते परमा पुनः। द्वावेव दशमौ भागाविति तत्त्वविदां मतं ॥२५३॥
संभ्रांते तु जघन्येयं दशभागास्त्रयः परा। अवराऽसावसंभ्रांते परा भागचतुष्टया ॥ २५४ ॥
अवराऽसौ च विभ्रांते परा सैकांशवर्द्धिता। त्रस्ते त्ववरा सा स्यात् पर् परा तु दशांशका ॥२५५॥
त्रसिते त्वपरा प्रोक्ता परा सप्त तदंशका। वक्रांते साऽपरा प्रोक्ता परा चाष्टौ दशांशकाः ॥२५६॥
एषैवोक्ता विपाश्चिद्भिरवक्रांतेऽवरा स्थितिः। नवैते दशमा भागास्तत्रैव परमा स्थितिः ॥२५७॥
इयमेव तु विक्रांते जघन्या परमा दश। दश भागा स्थितिः सैषा घर्मायां सागरोपमा॥२५८॥
सातिरेकाऽवरा सैव स्तरके सागरोपमा। सागरैकादशांशौ च सागरस्य परा स्थितिः ॥२५९॥
स्थितिरेषैव विज्ञेया स्तनकेऽनंतरावरा। चतुरेकादशांशाश्च सागरश्च परा तथा ॥ २६०॥
अनंतरा विनिर्दिष्टा मुनिभिर्मनकेऽवरा। षडेकादशभागाश्च सागरश्च तथा परा ॥ २६१ ॥
एषैवावादि विद्वद्भिर्वनके चावरा स्थितिः। अष्टैकादशभागाश्च सागरश्च परा तथा ॥ २६२ ॥
सैषैवाद्या विघाटेऽपि पटुभिः प्रकटाऽवरा। दशैकादशभागाश्च सागरश्च परा तथा ॥ २६३ ॥
इंद्रके त्वियमेव स्यात् संघाटेऽनंतराऽवरा। तत्रैकादशभागश्च सागरौ च परा स्थितिः ॥२६४॥

स्थितिरेषैव बोधव्या जिह्वाख्येऽपींद्रकेऽवरा । त्रयस्त्वेकादशांशास्ते सागरौ च तथा परा ॥२६५॥
असावेव समादिष्टा जिह्विकाख्येंद्रकेऽवरा । पंचैकादशभागाश्च सागरौ च परा स्थितिः ॥२६६॥
एषैवानंतरा वेद्या लोलनामेंद्रकेऽवरा । सप्तैकादशभागाश्च सागरौ च परा तथा ॥२६७॥
भवत्यनंतरैवैषा लोलुपेऽपींद्रकेऽवरा । नवैकादशभागाश्च सागरौ च परा तथा ॥ २६८ ॥
अवरैषा परापीष्टा स्तनलोलुपनामनि । सागरत्रयमेतेषु वंशायां सागरास्त्रयः ॥ २६९ ॥
सागरत्रयमेवासाववरा तप्तनामनि । चत्वारो नवभागाश्च परमा सागरास्त्रयः ॥ २७० ॥
इयमेवाऽवरा वर्ण्या तपितेऽपींद्रके स्थितिः । तथाऽष्टौ नवभागाश्च परमा सागरास्त्रयः ॥२७१॥
तपनेऽप्यवरैषैव नवा भागास्त्रयोऽपि तु । चत्वारश्च समादिष्टा परमा सागराः स्थितिः ॥ २७२ ॥
इयमेवोपगीता सा तपनेऽप्यवरा स्थितिः । सा सप्त नवभागास्तु चत्वारः सागराः परा ॥ २७३ ॥
निदाघेऽप्यवरैषैव स्थितिः समुपवर्णिता । परा तु नवभागाभ्यां सागराः पंच संचिताः ॥ २७४ ॥
अजघन्या निदाघे या सैव प्रज्वालितेऽन्यथा । षड्नवांशकसन्मिश्रा परा पंच पयोधयः ॥ २७५ ॥
परा प्रज्वालिते येयं सैव चोज्ज्वलितेऽपरा । तथा सनवभागास्ते षट्समुद्राः परा स्थितिः ॥२७६॥
उत्कृष्टोज्ज्वालिते येयं सैव संज्वालितेऽवरा । सपंचनवभागास्ते परमा षट् पयोधयः ॥ २७७ ॥

सा संप्रज्वलिते हीना परा सागरसप्तकं । तृतीयनरके तेऽमी प्रसिद्धाः सप्त सागराः ॥ २७८ ॥
या संप्रज्वलिते दीर्घा ह्रस्वाऽऽरे सा प्रकीर्त्तिता। दीर्घा सप्त समुद्रास्ते सप्तभागास्तथा त्रयः॥२७९॥
आरे या परमा प्रोक्ता तारे सैवापरा स्थितिः । परा सप्त समुद्रास्ते षड्भिः सप्तभागकैः॥२८०॥
तारे या परमा प्रोक्ता सैव मारेऽवरा स्थितिः । सह सप्तमभागाभ्यां पराप्यष्टौ पयोधयः ॥२८१॥
मारे तु या परा सैव वर्चस्के वर्णिताऽवरा । पंचसप्तमभागैस्तु पराष्ट जलराशयः ॥ २८२ ॥
वर्चस्के परमा याऽसौ तमकेऽप्यवरा स्थितिः । परा सप्तमभागेन संयुक्ता नव सागराः ॥२८३॥
परा तु तमके याऽसौ जघन्या सा षडे मता । चतुर्भिः सप्तमैर्भागैः पराऽपि नव सागराः॥२८४॥
षडे तु परमा याऽसौ हीना षडषडेप्यसौ । चतुर्थ्यां सुप्रसिद्धास्ते परा तु दश सागराः ॥२८५॥
दशार्णवास्तमोनाम्नि जघन्या सा षडे मता। सह पंचमभागाभ्यामुत्कृष्टैकादशार्णवाः॥ २८६ ॥
इयमेव भ्रमे ह्रस्वा स्थितिः संप्रतिपादिता । चतुर्भिःपंचमैर्भागैः परा द्वादशसागराः ॥२८७॥
एषैव हि झषे हीना स्थितिरुत्कर्षिणी पुनः । साकं पंचमभागेन चतुर्दशपयोधयः ॥ २८८ ॥
इयमेवावरांऽध्रे सा सत्यसंधैरुदीरिता । सत्रिपंचमभागास्तु परा पंचदशाब्धयः ॥ २८९ ॥
एषैव च तमिस्रेऽपि जघन्या स्थितिरिष्यते । पंचम्यां सुप्रतीतास्ते परा सप्तदशार्णवाः ॥२९०॥

अवरा तु स्थितिः प्रोक्ता हिमे सप्तदशार्णवाः । पराऽपि द्वित्रिभागाभ्यामष्टादश पयोधयः॥२९१॥
वर्द्दले स्थितिरेषैव जघन्या समुदीरिता । परा त्रिभागसंमिश्राः विंशतिस्तु पयोधयः ॥ २९२ ॥
लल्लके तु जघन्येयमजघन्या स्थितिः पुनः । षष्ठ्यां प्रोक्ता मुनिश्रेष्ठैर्द्वाविंशतिपयोधयः ॥२९३ ॥
इयमेवाप्रतिष्ठाने जघन्या स्थितिरुच्यते । योत्कृष्टा सा हि सप्तम्यां त्रयस्त्रिंशत्पयोधयः ॥२९३॥
नारकाणां तनूत्सेधो हस्ताः सीमंतके त्रयः । तरके तु धनुर्हस्तः सार्धान्यष्टांगुलान्यसौ॥२९५॥
रौरुके धनुरुत्सेधस्त्रयो हस्ताः शरीरिणां । अंगुलान्यपि तत्रैव भवेत सप्तदशैव सः ॥ २९६ ॥
भ्रांते द्वे धनुषी हस्तावंगुलं सार्द्धमप्यसौ । उद्भ्रांते तु त्रयो दंडाः सोंऽगुलानि दशोदितः ॥२९७॥
धनूंषि त्रीणि संभ्रांते द्वौ हस्तावंगुलान्यपि । अष्टादशैव सार्द्धानि नारकोत्सेध ईरितः॥ २९८ ॥
कार्मुकाणि तु चत्वारि हस्तस्त्रीण्यंगुलानि च । असंभ्रांतेऽप्यसंभ्रांतैरुत्सेधः साधुवर्णितः ॥२९९॥
चत्वारः खलु कोदंडास्त्रयो हस्तास्तथोदिताः । विभ्रांतेऽपि ह्यविभ्रांतैः सार्द्धैरेकादशांगुलैः॥३००॥
चापपंचकमुत्सेधः तथा हस्तश्च विंशतिः । अंगुलानि समुद्दिष्टस्त्रस्तनामनि चेंद्रके ॥ ३०१ ॥
धनूंषि च षडुत्सेधस्त्रासिते त्रासितांगिनि । सार्द्धांगुलचतुष्कं च च[?]रैः प्रतिपादितः ॥ ३०२ ॥
वक्रांते धनुषां षट्कं सहस्तद्वितयं तथा । कथितं कथकैरुद्धैरंगुलानि त्रयोदश ॥ ३०३ ॥

धनुःसप्तकमुद्देशः सार्थमर्धांगुलेन च । अवक्रांते त्रुधैरुक्तः सोऽङ्गुलान्येकविंशतिः ॥ ३०४ ॥
निक्रांते सप्त चापानि त्रयो हस्ताः षडंगुली । स एष विहितः प्राज्ञैरुत्सेधः प्रथमावनौ ॥ ३०५ ॥
स्तरकेऽष्टौ धनूंषि द्वौ हस्तावंगुलयोर्द्वयोः । द्वावेकादशभागौ च नारकोत्सेध इष्यते ॥ ३०६ ॥
स्तनके नवदंडास्तु द्वाविंशत्यंगुलानि च । उत्सेधो वर्णितो युक्तश्चतुरेकादशांशकैः ॥ ३०७ ॥
मनके नवदंडाश्च त्रयो हस्ताः सहांगुलैः । अष्टादशभिरुत्सेधः षड्भिरेकादशांशकैः ॥ ३०८ ॥
वनके दश दंडा द्वौ हस्तावुत्सेध इष्यते । साष्टैकादशभागानि सांगुलानि चतुर्दश ॥ ३०९ ॥
घाटे त्वेकादशप्राज्ञैर्दंडा हस्ता दशांगुलैः । दशैकादशभागाश्च देहोत्सेधः प्रकीर्तितः ॥ ३१० ॥
संघाटे द्वादशोत्सेधो दंडाः सप्तांगुलान्यपि । तथैकादशभागाश्च नारकाणामुदाहृतः ॥ ३११ ॥
जिह्वाख्ये द्वादशैवोक्ता दंडा हस्तास्त्रयस्तथा । अंगुलानि च सत्रीणि त्रयश्चैकादशांशकाः ३१२॥
दंडा हस्तोंगुलान्येषु जिह्विकाख्ये त्रयोदश । एकः पंचोक्तभागैश्च त्रयोविंशतिरिष्यते ॥ ३१३ ॥
लोले चतुर्दशैवासौ दंडास्त्वेकोनविंशतिः । अंगुलानि विनिर्दिष्टा सप्तैकादशभागकैः ॥ ३१४ ॥
त्रयो हस्ता धनूंष्येष लोलुपे च चतुर्दश । नवैकादशभागश्च तथा पंचदशांगुली ॥ ३१५ ॥
दंडाः पंचदशैवासौ हस्तौ च स्तनलोलुपे । द्वादशांगुलमानं च द्वितीयायां च इष्यते ॥ ३१६ ॥

तप्ते सप्तदशोत्सेधो दंडा हस्तौ दशांगुली । द्वित्रिभागसमेतोऽसौ नरकाणां समीरितः ॥३१७॥
एकोनविंशतिर्दंडास्तपितेऽसौ नवांगुली । त्रिभागश्च समादिष्टः स्पष्टज्ञानेष्टदृष्टिभिः ॥ ३१८ ॥
तपने विंशतिर्दंडास्त्रयो हस्तास्तथैव सः । अंगुलानि समुद्दिष्टः शिष्टैरष्टौ प्रकृष्टतः ॥३१९॥
द्वाविंशतिधनूंषि द्वौ हस्तावुक्तः षडंगुलैः । उत्सेधस्तापने त्र्यंशौ नारकांगसमुद्भवः ॥३२०॥
चतुर्विंशतिचापानि हस्तः पंचांगुलानि च । त्रिभागश्च निदाघेऽसावुत्सेधो बोधितो बुधैः ॥३२१॥
षड्विंशतिधनूंष्येष प्रोक्तः प्रोज्ज्वलितेंद्रके। अंगुलानि च चत्वारि ज्ञानप्रज्वलितात्मभिः॥३२२॥
सप्तविंशतिचापानि त्रयो हस्ता स वर्णितः।आगमोज्ज्वलितप्राज्ञैस्त्र्यंशावुज्ज्वलितेऽगुली ॥३२३॥
एकान्नत्रिंशदुत्सेधः कोदंडा हस्तयोर्द्वयं । अगुलं च त्रिभागश्च बोध्यः संज्वलिते बुधैः ॥३२४॥
एकत्रिंशत्तु कोदंडा हस्तश्चोत्सेध इष्यते । संप्रज्वलितसंज्ञे च तृतीये यः स भाष्यते ॥३२५॥
पंचत्रिंशद्धनूंष्यारे द्वौ हस्तावंगुलान्यपि । विंशतिः सप्तभागाश्च चत्वारः संप्रकीर्तितः ॥३२६॥
चत्वारिंशत्तथा तारे दंडा सप्तदशांगुली । एकः सप्तमभागः स्यादुत्सेधो नारकाश्रयः ॥३२७॥
चत्वारिंशच्चतुर्भिश्च दंडा हस्तौ त्रयोदश। अंगुलानि मतो मारे सप्तभागैः स पंचभिः ॥३२८॥
धनूंष्येकोनपंचाशदुत्सेधः स दशांगुली । द्वौ च सप्तमभागौ तौ वर्चस्के वर्णितो बुधैः ॥३२९॥

धनूंषि सत्रिपंचाशद्धस्तौ चापि षडंगुली । षट् च सप्तमभागास्ते तमके परिकीर्तितः ॥३३०॥
अष्टापंचाशदुत्सेधो धनूंषि त्र्यंगुलानि च । त्रयः सप्तमभागाश्च षडेऽपि प्रकटस्थितः ॥३३१॥
द्विषष्टिस्तु धनूंषि द्वौ हस्तौ षडपडे मतः । उत्सेधः सुप्रसिद्धो यश्चतुर्थे नरके शती ॥३३२॥
तमोनामनि चोत्सेधः कोदंडाः पंचसप्ततिः । सप्ताशीतिरसौ दंडा द्वौ हस्तौ भवति भ्रमे ॥३३३॥
वपुषो नारकीयस्य झषे शतधनूंषि सः । अंधे द्वादशमिश्राणि तानि हस्तद्वयं मतं ॥३३४॥
तमिश्रेऽपि च तान्येव पंचविंशतिदंडकैः । उत्सेधो वर्णितो योऽसौ पंचमे नरके बुधैः ॥३३५॥
षड्भृष्टया शतकोदंडा द्वौ हस्तौ षोडशांगुली । उत्सेधो वर्णितः पूर्णो हिमनामनि चेंद्रके ॥३३६॥
द्विशत्यष्टौ च कोदंडा हस्तोऽष्टावंगुलान्यपि । उत्सेधः शास्त्रनेत्राद्यैर्वर्दलेऽपि विलोकितः॥३३७॥
शतद्वयं च पंचाशद्धनूंष्येव स भाषितः । लल्लके नरके षष्ठे निष्ठितार्थैर्य इष्यते ॥३३८॥
उत्सेधश्चाप्रतिष्ठाने पंचचापशतानि सः । निश्चितो निश्चितज्ञानैः सप्तमे नरके च यः ॥३३९॥
सप्तसु प्रतिबोद्धव्यः प्रथितः प्रथमादिषु । अवधेर्विषयस्तासु पृथिवीषु यथाक्रमं ॥३४०॥
योजनं तु त्रयः क्रोशाः सार्धा क्रोशत्रयं तथा । सार्धौ तौ तद्द्वयं सार्धः क्रोशःक्रोशश्च निश्चितः॥३४१॥
क्रोशार्द्धं मृत्तिकागंधः प्रथमे पटले व्रजेत् । तदधोऽधः क्रोशस्यार्द्धं वर्द्धते पटलं प्रति ॥३४२॥

पृथिव्योराद्ययोर्युक्ता जीवाः कापोतलेश्यया । तृतीयायां तयैवोर्ध्वमधस्तान्नीललेश्यया ॥३४३॥
अधश्चोर्ध्वं च संबद्धाश्चतुर्थ्यां नीललेश्यया । तयैवोपरि पंचम्यामधस्ते कृष्णलेश्यया ॥३४४॥
षष्ठ्यां च कृष्णयैवोर्ध्वमधः परमकृष्णया । सप्तम्यामुभयत्रामी क्लिष्टाः परमकृष्णया ॥३४५॥
स्पर्शेनोष्णेन बाध्यंते नारका भूचतुष्टये । पंचम्यामुष्णशीताभ्यां शीतेनैवांत्ययोर्भुवोः ॥३४६॥
आकारेणोष्ट्रिकाकुंभीकुस्थलीमुद्गरोपमाः । मृदंगनाडिकाकारा निगोदाः पृथिवीत्रये ॥३४७॥
गोगजाश्वादिभस्त्राभाद्रोण्यब्जपुटसंनिभाः । ते चतुर्थ्यां च पंचम्यां नारकोत्पत्तिभूमयः ॥३४८॥
केदाराकृतयः केचित्झल्लरीमल्लकोपमाः । केचिन्मूयरकाकारा निगोदास्तेंऽत्ययोर्भुवोः ॥३४९॥
एकद्वित्रिकगव्यूतियोजनव्याससंगताः । शतयोजनविस्तीर्णस्तेषूत्कृष्टास्तु वर्णिताः ॥३५०॥
उच्छ्रायो वस्तुतस्तेषां विस्तारः पंचताडितः। निगोदानां समस्तानामिति वस्तुविदो विदुः॥३५१॥
सर्वेंद्रकनिगोदास्ते त्रिद्वाराश्च त्रिकोणकाः । द्वित्र्येकपंचसप्तात्मद्वारकोणास्ततः परे ॥३५२॥
संख्येयव्याससयुक्तानां निगोदानां निजांतरं । गव्यूतयः षडल्पं स्यादनल्पं द्वादशैव ताः ॥३५३॥
असंख्येयप्रमाणानामसंख्यं महदंतरं । योजनानां सहस्राणि सप्तैवात्यल्पमंतरं ॥३५४॥
क्रोशत्रयं सतुर्यांशं योजनानां च सप्तकं । समुत्पतंति घर्मायां शेषास्तु द्विगुणोत्तरं ॥३५५॥

त्रिगव्यूतिश्चतुर्भागसप्तयोजनमात्रकं। घर्मानिगोदजा जीवा खमुत्पत्य पतंत्यधः ॥३५६॥
गव्यूतिद्वितियं सार्धं सपंचदशयोजनं। वंशानिगोदजन्मानः खमुत्पत्य पतंत्यधः ॥३५७॥
एकत्रिंशत्तु गव्यूत्या योजनानि नभस्तले। मेघानिगोदजा जीवाः खमुल्लंघ्य पतंत्यधः ॥३५८॥
द्विषष्टियोजनान्यूर्ध्वं गव्यूतिद्वयमुद्गताः। निपतंत्युग्रदुःखार्त्तास्तेऽजनाजानिगोदजाः ॥३५९॥
पंचविंशतिसन्मिश्रशतयोजनमातुराः। खमुत्पत्य पतंत्येव पंचमीस्था निगोदजाः ॥३६०॥
पंचाशता विमिश्रं तु योजनानां शतद्वयं। वियदुत्पत्य षष्ठीस्थनिगोदोत्थाः पतंत्यधः ॥३६१॥
सप्तमीस्थनिगोदोत्थाः सपंचशतयोजनं। अध्वानमूर्ध्वमुत्पत्य पतंति वसुधातले ॥ ३६२ ॥
असुरा आतृतीयांतं योधयंति परस्परं। प्रयुज्यंते स्वयं तेऽपि ज्ञात्वा वैरं पुरातनं ॥३६३॥
कुंतक्रकचशूलाद्यैर्नानाशस्त्रैस्तनूद्भवैः। खंडं खंडं विधीयंते पीडयंति परस्परं ॥ ३६४ ॥
सूतकस्येव संघातः शरीरस्य प्रजायते। यावदायुःस्थितिस्तेषां न तावन्मरणं भवेत् ॥ ३६५ ॥
शारीरं मानसं दुःखमन्योऽन्योदीरितं खलु। सहंते नारका नित्यं पूर्वपापविपाकतः ॥ ३६६ ॥
क्षारोष्णतीव्रसद्भावनदीवैतरणीजलात्। दुर्गंधा मृन्मयाहाराः दुःखं भुंजंति दुःसहं ॥ ३६७ ॥
अक्ष्णोर्निमीलनं यावन्नास्ति सौख्यं च जातुचिद्। नरके पच्यमानानां नारकाणामहर्निशं ॥३६८॥

स्युस्तेषामशुभतराः परिणामाः शरीरिणां। लिंगं नपुंसकाख्यं स्यात् संस्थानं हुंडसंज्ञकं॥३६९॥
आगामितीर्थकर्तॄणां तथैवोपशमैनसां। उपसर्गाहतिं भक्त्या कुर्वंत्यत्यायने सुराः॥ ३७०॥
चत्वारिंशत्सहाष्टाभिर्घटिकाः प्रथमक्षितौ। अंतरं नारकोत्पत्तेरंतरज्ञैः स्फुटीकृतं॥ ३७१॥
सप्ताहश्चैव पक्षः स्यान्मासो मासौ यथाक्रमं। चत्वारोऽपि च षण्मासा विरहः षट्सु भूमिषु॥३७२॥
तीव्रमिथ्यात्वसंबद्धा बह्वारंभपरिग्रहाः। पृथिवीस्ताः प्रपद्यंते तिर्यंचो मानुषास्तथा॥ ३७३॥
आद्यामसंज्ञिनो यांति द्वितीयां च प्रसर्पिणः। पक्षिणश्च तृतीयायां चतुर्थ्यां च भुजंगमाः॥३७४॥
पंचमीमपि सिंहास्तु षष्ठीमपि च योषितः। प्रयांति प्राणिनः पापाः सप्तमीं मत्स्यमानुषाः॥३७५॥
सप्तम्युद्वर्तितो यायात्तामेवानंतरं सकृत्। षष्ठीतो निर्गतो द्विस्तां पंचमीं त्रिष्वथ व्रजेत्॥ ३७६॥
चतुर्थीं च चतुर्वारान् प्रपद्येत ततश्च्युतः। तृतीयां पंचकृत्वोऽपि तस्या एव समागतः॥ ३७७॥
द्वितीयायां च षट्कृत्वः सप्तकृत्वस्तथाऽसुमान्। प्रथमाया विनिर्यातः प्रथमायां प्रजायते॥ ३७८॥
सप्तमीतो विनिर्यातः संज्ञितिर्यक्त्वभाक् पुनः। संख्येयायुर्वृतो याति नरकं तनुमद्गणः॥३७९॥
षष्ठीतस्तु विनिर्यातो लभते नैव संयमं। तं लभेतापि पंचम्या निर्वाणं न तु तद्भवे॥ ३८०॥
लभेतापि च निर्वाणं चतुर्थीनिःसृतः पुनः। निश्चयेनैव नैवांगी तीर्थकृत्त्वं प्रपद्यते॥ ३८१॥

तृतीयायाः द्वितीयायाः प्रथमायाश्च निःसृतः । तीर्थकृत्त्वं लभेतापि देही दर्शनशुद्धितः ॥३८२॥
बलकेशवचक्रित्वं परिहृत्यैव जंतवः । नरत्वं प्रतिपद्येरन् नरकेभ्यो विनिर्गताः ॥ ३८३ ॥
अधोलोकविभागस्ते संक्षेपेण मयोदितः । तिर्यग्लोगविभागस्य शृणु श्रेणिक! संग्रहं ॥३८४॥
सूर्याचंद्रमसामगोचरमधोलोकांधकारं बुधः । प्रध्वस्ताऽऽप्तवचःप्रदीपविभवैः सर्वत्रगैः सर्वदा ।
पश्यंतःप्रभवंतितत्त्वमिति किं चित्रं त्रिलोकाकृतावालोके जिनभानुनाविराचितेध्वांतस्यवा क स्थितिः

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतो " अधोलोकसंस्थानवर्णनो " नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ।

तनुवातांतपर्यंतस्तिर्यग्लोको व्यवस्थितः । लक्षितावधिरूर्ध्वाधो मेरुयोजनलक्षया ॥१॥
तत्रैवास्मिन्नसंख्येयसागरद्वीपवेष्टितः । जंबूद्वीपः स्थितो वृत्तो जंबूपादपलक्षितः ॥२॥
विस्तारेणार्णवस्पर्धिव त्रवेदिकयाऽऽवृतः । महामेरुमहानाभिर्लक्षयोजनलक्षया ॥३॥
तिस्रो लक्षाः परिक्षेपः स्यात्सहस्राणि षोडश । योजनानि त्रिगव्यूतिर्द्विशती सप्तविंशतिः॥४॥
अष्टाविंशतिसन्मिश्रं तथैवान्यं धनुःशतं । त्रयोदशांगुलानि स्युः साधिकार्धांगुलानि तु ॥५॥

कोटीशतानि सप्त स्युः कोटयो नवतिः स्फुटाः । षट्पंचाशत्तथा लक्षा नवतिश्चतुरुत्तरा ॥६॥
सहस्रगुणिता द्वीपे शतं पंचशतादिकं । योजनानि विभक्तेऽस्मिन् गणितस्य पदं विदुः ॥७॥
क्षेत्राणि संति सप्ताऽत्र मेरुरेकः कुरुद्वयं । जंबूश्च शाल्मली. वृक्षौ षडेव कुलपर्वताः ॥८॥
महासरांसि षट् तेषु महानद्यश्चतुर्दश । द्विषट्त्रिभंगनद्यश्च वक्षागाराश्च विंशतिः ॥९॥
राजधान्यश्चतुस्त्रिंशद्रौप्याद्रिवृषभाद्रयः । अष्टाषष्टिर्गुहा वृत्तविजयार्द्धचतुष्टयं ॥१०॥
तथा त्रीणि सहस्राणि पुनः सप्तशतान्यपि । चत्वारिंशत्पुराणि स्युर्विद्याधरमहीभृतां ॥११॥
एतैः सर्वैरयं द्वीपो दीप्यते द्विगुणैरिमैः । यथाऽसौ धातकीखंडः पुष्करार्धश्च सर्वतः ॥१२॥
भारतं दक्षिणं तत्र क्षेत्रं हैमवतं परं । हरिक्षेत्रं विदेहं च रम्यकं च तथा परं ॥१३॥
हैरण्यवतमित्यन्यत् स्यादैरावतमुत्तमं । विस्तारेणाविदेहांतं क्षेत्रं क्षेत्राच्चतुर्गुणं ॥१४॥
प्रथमो हिमवानन्यो महाहिमवदाह्वयः । पर्वतो निषधो नीलो रुक्मी च शिखरी गिरिः ॥१५॥
पूर्वस्मादुत्तरो भूभृद् विस्तारेण चतुर्गुणः । निषधो यावदाख्याता दक्षिणैरुत्तराः समाः ॥१६॥
क्षेत्रस्याद्यस्य विस्तारः सपंचशतयोजनः । षड्विंशतिस्तथा भागः षड् चाप्येकोनविंशतेः ॥१७॥
जंबूद्वीपस्य विष्कंभे [illegible] शतेन [illegible] । [illegible] भारतस्यायं विस्तारो भवति स्फुटः ॥१८॥

क्षेत्राद् द्विगुणविस्तारः पर्वतः क्षेत्रमध्यतः । आविदेहमतस्तस्य वृद्धिवच्च परिक्षयः ॥१९॥
मध्ये भारतमन्योऽद्रिरंतःप्राप्तांबुधिद्वयः । भाति विद्याधरावासो विजयार्द्ध इति श्रुतः ॥२०॥
पंचविंशतिरुत्सेधः षट् सपादान्यधः स्थितः । योजनान्यस्य पंचाशद्विस्तारो रजतात्मनः ॥२१॥
योजनानि क्षितेरूर्ध्वं दशोत्पत्य दशोपरि । विस्तीर्णे पर्वतायामे श्रेण्यौ विद्याधराश्रिते ॥२२॥
दक्षिणस्यां महाश्रेण्यां पंचाशन्नगराणि च । उत्तरस्यां पुनः षष्टिस्त्रिविष्टपपुरोपमाः ॥२३॥
योजनानि दशातीत्य पुनः संति पुराण्यतः । सुराणामाभियोग्यानां क्रीडायोग्यान्यनेकशः ॥२४॥
पुनरुत्पत्य पंचोर्ध्वं दशयोजनविस्तृता । श्रेणी तु पूर्णभद्राख्या विजयार्द्धसुराश्रिता ॥२५॥
सिद्धायतनकूटं प्राक् दक्षिणार्द्धकमेव च । खंडकादिप्रपातं च पूर्णभद्रं ततः परं ॥२६॥
विजयार्द्धकुमाराख्यं माणिभद्रं ततः परं । तामिश्रगुहकं चान्यदुत्तरार्द्धं च नामतः ॥२७॥
अंते वैश्रवणाख्यं तु भांति तानि दधंति तं । नगाग्रे नवकूटानि क्रोशषड्योजनोच्छ्रितिं ॥२८॥
मूले तन्मात्रमेवैषां मध्येऽप्यूनानि पंच तु । साधिकान्युपरि त्रीणि विस्तारस्तेषु भाषितः ॥२९॥
सिद्धायतनकूटे च सिद्धकूटमितीरितं । पूर्वाभिमुखमाभाति जिनायतनमुज्ज्वलं ॥३०॥
उच्छ्रायस्तस्य पादोनः क्रोशः क्रोशार्द्धविस्तृतिः। आयामः क्रोश एव स्यात्प्रासादस्याविनाशिनः॥

ज्याऽसौ नवसहस्राणि सप्तशत्यपि चाष्टभिः । चत्वारिंशद् कला द्विःषट् भारतार्द्धे तु दाक्षिणा ॥३२॥
धनुःपृष्ठं पुनस्तस्या षट्षष्टिः सप्तशत्यपि । सहस्राणि नव ज्यायाः साधिका च कलोदितं ॥३३॥
योजनानां शते द्वे तु साष्टत्रिंशत्कलात्रयं । धनुषोऽनंतरस्येयमिषुर्भवति पुष्कला ॥३४॥
सहस्राणि दशामीषां सप्तशत्यपि विंशतिः । एकादशकला ज्यासौ विजयार्द्धनगोत्तरा ॥३५॥
ज्याया दशसहस्राणि धनुःसप्तशतीरितं । त्रिचत्वारिंशदप्यस्याःकलाः पंचदशाधिकाः ॥ ३६ ॥
योजनानां प्रसिद्धेपुरष्टाशीतं शतद्वयं । उत्तरा विजयार्द्धस्य तिस्रश्चापि कलाः कलाः ॥ ३७ ॥
चूलिका विजयार्द्धस्य योजनानां चतुःशती । षडशीतिर्मिनागूना भागा द्वादश कीर्त्तिताः[1] ॥ ३८॥
पूर्वापरांतयोरद्रेरष्टाशीति चतुःशती । प्रमाणं भुजयोरस्य भागाः षोडश चाधिकाः ॥ ३९ ॥
षट्कला भरतज्योनाः सैका सप्ततिरीरिता । चतुःशतीविमिश्राणि सहस्राणि चतुर्दश ॥ ४० ॥
चतुर्दशसहस्राणि पंचशत्या तु विंशतिः । अष्टाभिर्भारतं भागा धनुरेकादशाधिकाः ॥४१॥
शतानि पंचविंशत्या सह षड्भिश्च षट् कलाः । प्रसिद्धेयमिषुर्भाष्या धनुषस्तस्य भारती ॥४२॥
अष्टादशशती प्रोक्ता चूलिका पंचसप्ततिः । अर्धसप्तमभागाश्च साधिका भरतक्षितेः ॥४३॥

१—जिनेशेन प्रकीर्तिताः इत्यपि पाठः ।

सहस्रमेकमष्टौ च शतानि नवतिर्द्वयं । साधिकार्धाष्टमांशाश्च पूर्वापरभुजप्रमा ॥४४॥
शतयोजनमानः स्यादुच्छ्रायो हिमवद्गिरेः । अवगाहस्तु तस्यैव पंचविंशतियोजनः ॥४५॥
योजनानां सहस्रं तु द्वापंचाशत्समन्वितं । द्वादशापि कलाः प्रोक्ता विस्तारो हिमवद्गिरेः ॥४६॥
चतुर्विंशतिरस्याद्रेः सहस्राणि शतान्यपि । नव द्वात्रिंशता ज्या स्यादीषदूनकलोत्तरा ॥४७॥
पंचविंशतिरस्यैव सहस्राणि शतद्वयं । योजनानि धनुस्त्रिंशच्चतस्रः साधिका कलाः ॥४८॥
सहस्रं पंचशत्येकमष्टासप्ततिरेव च । कला चाष्टादशैवाद्रेरिपुरेषाऽस्य भाषिता ॥४९॥
योजनानां सहस्राणि पंच तानि शतद्वयं । त्रिंशच्चूलिकाऽस्याद्रेर्भागाः सप्त च साधिकाः ॥५०॥
पंचैवास्य सहस्राणि पंचाशच्च शतत्रयं । साधिकार्द्धेन तौ बाहू भागाः पंचदशाधिकाः ॥५१॥
भांत्येकादश कूटानि हैमस्य हिमवद्गिरेः । शिखरेऽस्य निविष्टानि पंक्त्या पूर्वपरात्मना ॥५२॥
सिद्धायतनकूटं प्राक् हिमवत्कूटमप्यतः । कूटं भरतसंज्ञं स्यादिलाकूटं ततः परं ॥५३॥
गंगाकूटं श्रियःकूटं रोहितास्यादिकं च तत् । सिंधुकूटं सुरादेवीकूटं हैमवतं च यत् ॥ ५४ ॥
कूटं वैश्रवणाख्यं तु पाश्चात्यं परिकीर्तितं । पंचविंशतिरुच्छ्रायः सर्वेषां योजनानि तु ॥ ५५ ॥
पंचविंशतिरेव स्याद् विस्तारो मूलगोचरः । अर्द्धत्रयोदशाग्रे तु पादोनैकोनविंशतिः ॥ ५६ ॥

द्वे सहस्रे शतं पंच योजनानि तु पंचभिः । भागे हैमवतस्यापि विष्कंभः पुष्कलो मतः ॥५७॥
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि चतुःसप्तति षट्शती । ज्याऽपि हैमवतस्यांते न्यूनाः षोडश ताः कलाः॥ ५८॥
साष्टात्रिंशत्सहस्राणि सप्तशत्यपि नोदिता । चत्वारिंद्धनुर्ज्याया दशास्याः साधिकाः कलाः॥ ५९॥
षट्त्रिंशच्च शतानि स्यादशीतिश्चतुरुत्तरा । योजनानि कलाश्चस्य चतस्रो धनुषस्त्विषुः ॥ ६० ॥
चूलिका चैकसप्तत्या त्रिषष्टिशतयोजना । साधिकैः सप्तभिर्भागैः क्षेत्रस्यास्योपवर्णिता ॥ ६१ ॥
सप्तषष्टिशतान्यस्याः पंचपंचाशता भुवः । योजनानि भुजामानं साधिकाश्च त्रयोंऽशकाः ॥६२॥
सहस्राणि तु चत्वारि दशोत्तरशतद्वयं । दशभागाश्च विस्तारो महाहिमवतो गिरेः ॥६३॥
ऊर्ध्वं च पुनरुद्यातो योजनानां शतद्वयं । पंचाशतमधो यातो धरिण्यां धरिणीधरः ॥६४॥
त्रिपंचाशत्सहस्राणि योजनानि शतानि च । नवैकात्रिंशदेतस्य ज्या षट् भागाश्च साधिकाः॥ ६५ ॥
पंचाशच्च सहस्राणि सप्ताऽस्य द्विशती धनुः । त्रिनवत्या सह ज्याया साधिकाश्च दशांतका ॥६६॥
धनुषोऽस्य सहस्राणि सप्त साष्टशतानि तु । चतुर्नवतियुक्तानि भागाश्चेषुश्चतुर्दश ॥६७॥
एकाशीतिशतानि स्यादष्टाविंशतिरेव च । चत्वारोऽर्द्धाधिका भागाश्चूलिकाऽस्य महीभृतः॥६८॥

१—सकलाः कलाः इति ख पुस्तके ।

सहस्राणि नव द्वे तु शते षट्सप्ततिर्नव । भागा भुजद्वयं तस्य साधिकार्द्धकलाधिकाः ॥६९॥
अष्टार्जुनमयस्यास्य कूटानि शिखरे गिरेः । रत्नरंजितसानूनि नित्यानि संति भांति च ॥७०॥
सिद्धायतनकूटं स्यान्महाहिमवदादिकं । कूटं हैमवतं कूटं रोहिता कूटमप्यतः ॥७१॥
ह्रीकूटं हरिकांतादि हरिवर्षादिकं हि तत् । वैडूर्यकूटमप्येषां पंचाशद्योजनोच्छ्रितिः ॥७२॥
पंचाशद्योजनो मौलो विष्कंभो मध्यगोचरः । सप्तत्रिंशत्तथार्द्धं च मस्तके पंचविंशतिः ॥७३॥
स्यादष्टौ हि सहस्राणि चतुःशत्येकविंशतिः । हरिवर्षस्य विस्तारो भागश्चैकोनविंशतेः ॥७४॥
शतानि नव सैकानि सहस्राणि त्रिसप्ततिः । ज्यापि चास्य विशेषेण भागाः सप्तदशाधिकाः॥७५॥
अस्याश्चतुरशीतिश्च सहस्राणि पुनर्भवेत् । षोडशाऽपि धनुर्ज्यायाश्चतस्रः साधिकाः कलाः ॥७६॥
षोडशाऽस्य सहस्राणि योजनानां शतत्रयं । इषुः पंचदश ज्ञेया सह पंचदशांशकैः ॥७७॥
सहस्राणि नवान्यानि शतानि नव चूलिका । पंचाशीतिश्च पंचांशाः सहार्द्धकलया तु सा ॥७८॥
त्रयोदशसहस्राणि त्रिशती षष्टिरेककं । साधिकार्धाधिकार्धाः षट् भागास्तत्र भुजप्रमा ॥७९॥
द्वाचत्वारिंशदष्टौ च शतान्यन्यानि षोडश । सहस्राणि च भागौ द्वौ विष्कंभो निषधस्य च ॥८०॥
उच्छ्रायः पुनरस्य स्याद् योजनानां चतुःशती । अवगाहस्त्वधो भूमेः शतयोजनमात्रकाः ॥८१॥

चतुर्नवतिसंख्यानि सहस्राणि शतं तथा । षट्पंचाशद्द्विभागौ च साधिकौ ज्याऽस्य भूभृतः ॥८२॥
लक्षैकाऽत्र सहस्राणि चतुर्विंशतिरंशकाः । साधिका नव चापं षट्चत्वारिंशच्छतत्रयं ॥८३॥
धनुषोऽस्य त्रयस्त्रिंशन्सहस्राणि शतं तथा । सप्तपंचाशदेव स्यादिषुः सप्तदशांशकाः ॥८४॥
तथा दशसहस्राणि शतं स्यात्सप्तविंशतिः । साधिकौ च परौ भागौ चूलिका निषधस्य सा ॥८५॥
विंशतिश्च सहस्राणि पंचषष्टियुतं शतं । साधिकार्धाधिकौ भागौ प्रमाणं भुजयोरिह ॥८६॥
तपनीयमयस्यास्य निषधस्यापि मूर्धनि । भासंते नवकूटानि सर्वरत्नमरीचिभिः ॥८७॥
सिद्धायतनकूटं च कूटं तन्निषधादिकं । हरिवर्षादिकं पूर्वविदेहादिकमेव तत् ॥८८॥
ह्रीकूटं धृतिकूटं च शीतोदाकूटमेव च । विदेहकूटमित्येकं रुचकं नवमं मतं ॥८९॥
उच्छ्रायो योजनशतं विष्कंभश्चापि मूलजः । पंचाशन्मस्तकेऽमीषां मध्येऽसौ पंचसप्ततिः ॥९०॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि विदेहस्य च षट्शती । तथा चतुरशीतिश्च विस्तारश्चतुरंशकाः ॥९१॥
ज्या स्याच्छतसहस्राणि योजनानि प्रमाणतः । जंबूद्वीपप्रमाणेन कृतस्पर्द्धेन साम्यतः ॥९२॥
अष्टापंचाशदिष्टानि सहस्राणि शतं धनुः । त्रयोदशैकलक्षांशाः साधिकार्धेन षोडश ॥९३॥
पंचाशच्च सहस्राणि योजनानीषुरिष्यते । महतो धनुषस्तस्य माहिती युज्यते हि सा ॥९४॥

द्वे सहस्रे शतैर्युक्ते नवभिश्चैकविंशतिः । साधिकाष्टादशांशाश्च विदेहार्द्धस्य चूलिका ॥९५॥
त्र्यशीतिश्च शतान्यष्टौ सहस्राणीह षोडश । त्रयोदशांशकाः पादः साधिकश्च भुजाद्वयं ॥९६॥
प्रमाणं दक्षिणार्द्धे यद् द्वीपस्य प्रतिपादितं । बोध्यं तदुत्तरार्धेऽपि क्षेत्रपर्वतगोचरं ॥९७॥
ज्यायां ज्यायां विशुद्धायां शेषार्द्धं चूलिका स्मृता । चापे चापे विशुद्धेऽर्द्धं तथा पार्श्वभुजा हि सा॥९८॥
वैडूर्यमयनीलस्य सिद्धायतननामकं । नीलकूटं च तत्पूर्वविदेहाद्युपरि स्थितं ॥ ९९ ॥
सीताकूटं चतुर्थं स्यात्कीर्तिकूटं च पंचमं । नरकांतादिकं षष्ठं ततोऽपरविदेहकं ॥१००॥
रम्यकाद्यष्टमं कूटमपदर्शनकं त्विह । उच्छ्रायमूलमध्यांतविष्कंभो निषधेषु यः ॥१०१॥
रौक्मस्य रुक्मिणोऽप्यग्रे सिद्धायतनमादितः । रुक्मिकूटं द्वितीयं स्यात् तृतीयं रम्यकादिकं ॥१०२॥
नारीकूटं तुरीयं तु बुद्धिकूटं तु पंचमं । रूप्यकूटं परं कूटं हैरण्यवतपूर्वकं ॥१०३॥
मणिकांचनकूटं च सामान्योच्छ्रायतस्तु ते । मूलमध्याग्रविस्तारैर्महाहिमवति स्थितैः ॥१०४॥
कूटान्येकादशैवाग्रे हैमस्य शिखरिश्रुतेः । सिद्धायतनमाद्यं स्यात कूटं शिखरिपूर्वकं ॥१०५॥
हैरण्यवतकूटं च सुरदेवीपुरःसरं । रक्तालक्ष्मीसुवर्णादिकूटानि च यथाक्रमं ॥१०६॥
तथा रक्तवती कूटं गंधदेव्यास्ततः परं । तथैरावतकूटं च पाश्चात्यं मणिकांचनं ॥१०७॥

हिमवत्कूटतुल्यानि तानि कूटानि शोभया। आदिमध्यांतविस्तारैरुच्छ्रायेण च चारुणा ॥१०८॥
तथैरावतमध्यस्थविजयार्द्धस्य मूर्धनि । हठंति[1] नवकूटानि सुरत्नमणिसंकटैः ॥१०९॥
सिद्धायतनकूटं स्यादुत्तरार्धाभिधानकं । तामिस्रगुहकूटं च मणिभद्रमतः परं ॥११०॥
विजयार्धकुमाराख्यं पूर्णभद्राख्यमप्यतः । खंडकादिप्रपातं च दक्षिणार्धं च नामतः ॥१११॥
नवमं तु तथाख्यातं कूटं वैश्रवणश्रुतिः । तानि सर्वाणि तुल्यानि भारतीयैः प्रमाणतः ॥११२॥
पूर्वापरायतानां हि षण्णां तत्कुलभूभृतां । सप्तक्षेत्रविभक्तॄणामेकैकस्योभयांतयोः ॥११३।
सर्वर्तुकुसुमाकीर्णफलभारनतद्रुमैः । हारिणौ पक्षिसंघातमधुकृन्मधुपस्वनैः ॥११४॥
अर्द्धयोजनविस्तीर्णौ विचित्रमणिवेदिकौ । भवतो वनखंडौ द्वौ पर्वतायामसम्मितौ ॥ ११५ ॥
अर्धयोजनमानस्तु वेदिकोत्सेध इष्यते । वेदकैर्व्यासतत्त्वस्य व्यासः पंचधनुःशती ॥ ११६ ॥
सुरत्नपरिणामानि नानावर्णानि सर्वतः । वेदिकोचितदेशेषु तोरणानि भवंति च ॥ ११७ ॥
भूभृतामुपरि ज्ञेया सर्वतः पद्मवेदिका । मणिरत्नमयी दिव्या गव्यूतिद्वयमुच्छ्रिता ॥ ११८ ॥
गृहद्वीपसमुद्राणां भूनदीहृदभूभृतां । वेदिकोत्सेधविस्तारौ तिर्यग्लोके स्थितात्रिमौ ॥ ११९ ॥

१—हठंते इति क ग पुस्तकयोः । हठप्लुतिशद्वत्वयोः ।

तेषां तु मध्यदेशेषु पूर्वापरसमायताः । षण्महाकुलशैलानां षड् महांतो ह्रदाः स्थिताः ॥ १२० ॥
पद्मश्चापि महापद्मस्तिगिंछःकेसरी ह्रदः । सुमहापुंडरीकश्च पुंडरीकश्च नामतः ॥ १२१ ॥
चतुर्दश विनिर्गत्य सरितः पूर्वसागरं । तेभ्यो विशंति सप्तैव सप्तैवापरसागरं ॥ १२२ ॥
गंगा सिंधुश्च रोहिच्चै रोहितास्या हरिव सरित्। हरिकांता च सीता च सीतोदाऽपि च नामतः॥१२३॥
नारी च नरकांता च तथैव परिवर्णिता । सुवर्णकूलया साकं रूप्यकूला पराऽपगा ॥ १२४ ॥
रक्तया सह रक्तोदा ताश्च सर्वा यथायथं । नदीबहुसहस्रैस्तु भवंति सहिताः क्षितौ ॥ १२५ ॥
सहस्रयोजनायामः पद्मः पंचशतानि च । योजनानि स विस्तीर्णो दश स्यादवगाहतः॥ १२६ ॥
हिमवद्वेदिकातुल्या परिक्षिपति वेदिका । समंततस्तमापूर्णं शुभशीतलवारिणा ॥ १२७ ॥
योजनोच्छ्रितविष्कंभं पुष्करं पुष्करेंभसः । निष्क्रम्य योजनार्धं तु काशते क्रोशकर्णिकं ॥१२८॥
द्विगुणद्विगुणायामविष्कंभादौ ह्रदांतरे । दक्षिणोत्तरभागस्थे पुष्कराणि चकासते ॥ १२९ ॥
पुष्करेषु वसंत्युच्चैः प्रसादेषु यथाक्रमं । श्रीह्रियौ धृतिकीर्त्यौ च बुद्धिलक्ष्म्यौ च देवताः ॥१३०॥
ताश्च पल्योपमायुष्काः सौधर्मेंद्रस्य दक्षिणाः। ऐशानस्योत्तरा देव्यः ससामानिकसंसदः ॥१३१॥

१—रोह्या च इति क ग पुस्तकयोः ।

गंगा पूर्वेण पद्मस्य द्वारेणानुनगं गता। सिंधुरप्यपरेणास्य रोहितास्योत्तरेण तु ॥ १३२ ॥
महापद्महृदात् रोह्या हरिकांता च निःसृता। हरिता सह सीतोदा तिगिंच्छहृदतस्तथा ॥१३३॥
केशरीहृदतः सीता नरकांता च निर्गता। नारी च रूप्यकूला च सा महापुंडरीकतः ॥ १३४ ॥
सुवर्णकूलया रक्ता रक्तोदा पुंडरीकतः। द्वारेण तोरणोद्भासा विनिःक्रांता महानदी ॥१३५॥
षड् योजनानि गव्यूतं व्यासो वज्रमुखस्य सः। अवगाहाऽर्द्धगव्यूतं गंगाया निर्गमे स्मृतं॥१३६॥
योजनानि नवोद्विद्धमष्टांशत्रितयं तथा। तोरणं तत्र विज्ञेयं विचित्रमणिभास्वरं ॥ १३७ ॥
प्राप्य पंचशतीं प्राचीमावर्तेन निवर्त्य च। गंगाकूटादपाचीं सा भारतव्यासमागता ॥ १३८ ॥
शतयोजनमाकाशं चाधिकं चातिलंघ्य सा। न्यपपतत्पर्वताद्दूरे पंचविंशतियोजने ॥ १३९ ॥
षड्योजनीं सगव्यूतां विस्तीर्णा वृषभाकृतिः। जिह्विका योजनार्द्धं तु बाहुल्यायामतो गिरौ॥१४०॥
तयैत्य पतिता गंगा गोश्रृंगाकारधारिणी। श्रीगृहाग्रेऽभवद् भूमौ दशयोजनविस्तृता ॥ १४१ ॥
षष्टियोजनविस्तीर्णं वज्रकुंडमुखं भुवि। अवगाहो दशास्यापि मध्ये द्वीपो व्यवस्थितः ॥ १४२॥
अष्टयोजनविष्कंभः सोऽमसः क्रोशयोर्द्वयं। ऊर्जितस्तस्य चान्योऽस्ति मूर्ध्नि वज्रमयोऽचलः॥१४३॥
चत्वारि च गिरिर्द्वे च तथैकं च दशोन्नतिः। योजनानि स विस्तीर्णो मूले मध्ये च मूर्धनि॥१४४॥

शिखिरे च गिरेस्तस्य मूले मध्ये च मस्तके । त्रीणि द्वे च सहस्रं च विस्तारेण धनूंषि तु ॥१४५॥
अंतः पंचशतायामं तदर्द्धं चापि विस्तृतं । द्विसहस्रधनुस्तुंगं भाति वज्रमयं गृहं ॥ १४६ ॥
अशीतिधनुरुद्विद्धं चत्वारिंशच्च विस्तृतं । तत्र वज्रकपाटाख्यं द्वारं वज्रमयं गृहे ॥ १४७ ॥
यात्वा दक्षिणतः कुंडान् कचित् कुंडलगामिनी । गुहायां विजयार्द्धस्य विस्तृता साष्टयोजनी ॥१४८॥
चतुर्दशसहस्रैस्तु प्रवेशे सारितामसौ । सार्द्धद्विषष्टिविष्कंभा प्रविष्टा पूर्वसागरं ॥ १४९ ॥
योजनानि त्रिनवति त्रिगव्यूतानि चोच्छ्रितं । गाधतो योजनार्द्धं स्याद् सरिद्विस्तारतोरणं ॥१५०॥
सर्वप्रकारतः सिंधुः समाना गंगया ततः । आविदेहाच्च सरितां द्विगुणं जिह्विकादिकं ॥१५१॥
तोरणान्यवगाहेन समस्तानि समानि तु । वसंति तेषु सर्वेषु दिक्कुमार्यो यथायथं ॥ १५२ ॥
पद्सप्तति कलाषट्कं योजनानां शतद्वयं । गत्वाऽद्रौ रोहितास्यांतो निपत्य श्रीगृहेऽगमत् ॥१५३ ॥
शतानि षोडशाऽद्रौ तु रोह्या पंचयुतानि सा । कलाश्चागम्य पंचागाद् गिरेः पंचाशदंतरं ॥१५४॥
तावदेव गता शैले हरिकांतोत्तरां दिशं । समुद्रं पश्चिमं याता प्राप्य कुंडं शतांतरं ॥ १५५ ॥
चतुःसप्ततिसंख्यानि शतानि कलया हरित् । एकविंशतिमागम्य निषधे ह्यपतच्छते ॥ १५६ ॥
सीतोदाऽपि गिरिं गत्वा तावदेव चतुःशती । उल्लंघ्यापतदद्रेः सा योजनानां शतद्वये ॥ १५७॥

तावदेव समागत्य सीताऽसौ नीलपर्वते । तावत्येव समापत्य प्राग्विदेहान् बिभेद च ॥ १५८ ॥
दक्षिणाभिः समा नद्यः षड्भिस्ताश्च षडुत्तराः। यथायोग्यं प्रपाताद्यैः प्रतिपाद्याः प्रतिद्विकं॥१५९॥
गंगा चैव नदी रोह्या हरित् सीता च पूर्वगाः । नारी सुवर्णकूला च सरक्ताः परगाः पराः ॥१६०॥
श्रद्धावान् विजयावांश्च पद्मवांश्चापि गंधवान् । मध्ये हैमवतादीनां विजयार्द्धास्तु वर्तुलाः ॥१६१॥
योजनानां सहस्रं स्यान्मूले विस्तृतिरुच्छ्रितेः । तदर्धं मस्तके मध्ये पंचाशत् सप्तशत्यपि ॥१६२॥
योजनार्द्धेन न प्राप्ता नद्यो नाभिगिरीनिमान् । गता प्रदक्षिणा सीतासीतोदे मंदरं यथा ॥१६३॥
प्रासादेषु शिरस्येषां स्वातिरप्यरुणः परः । पद्मश्चापि प्रभासश्च व्यंतरा निवसंति ने ॥१६४॥
क्षेत्रपर्वतनद्याद्या येऽत्र द्वीपे प्रकीर्तिताः । द्विगुणा धातकीखंडे पुष्करार्द्धे च ते स्थिताः ॥१६५॥
द्वीपानतीतसंख्यातान् जंबूद्वीपः परः स्थितः[1] । संति तत्र पुरोऽमीषामत्र ये गदिताः सुराः ॥१६६॥
नीलमंदरमध्यस्था उत्तराः कुरवो मताः । स्थितास्तु देवकुरवः सुमेरुनिषधांतरे ॥१६७॥
द्वाचत्वारिंशदष्टौ च शतानि व्यासतो मताः । एकादशसहस्राणि कुरवस्ते कलाद्वयं ॥१६८॥
ज्या च तेषां त्रिपंचाशत्सहस्राणि धनुः पुनः । षष्टिश्चतुःशती चाष्टौ दशांशा द्वादशाधिकाः ॥१६९॥

---

१ द्वीपानतीत्य संख्यातान् जंबूद्वीपोपरः स्थितः इत्यपि पाठः ।

त्रिचत्वारिंशतं सैकसहस्राणि च सप्ततिः । चतुरंशा नवांशाश्च कुरुवृत्तं प्रकीर्त्तितं ॥१७०॥
सहस्राणि त्रयस्त्रिंशत् पट्शती चतुरंशकाः । अशीतिश्चतुरग्राऽसौ विदेहक्षेत्रविस्तृतिः ॥१७१॥
मेरोः पूर्वोत्तराशायां सीतायाः पूर्वतः स्थितं । समीपं नीलशैलस्य जंबूस्थलमुदीरितं ॥१७२॥
पंचचापशतव्यासा गव्यूतिद्वयमुद्धृता । स्थलस्योपरि पर्येति सर्वतो रत्नवेदिका ॥१७३॥
तस्य पंचशती व्यासो मध्ये बाहुल्यमष्ट तु । गव्यूतिद्वितयं चांते स्थलस्य परिकीर्तितं ॥१७४॥
जंबूनदमये तत्र पीठिकाष्टोच्छ्रया स्थिता । मूलमध्याग्रविस्तारैर्द्वादशाष्टचतुर्मिता ॥१७५॥
अधोऽधोऽन्याः पडेतस्याः परितो मणिवेदिकाः । प्रत्येकमुपरि द्वे द्वे तासां ताः पद्मवेदिकाः ॥१७६॥
मूले गव्यूतिविस्तीर्णः स्कंधोच्छ्रायद्वियोजनः । अवगाहद्विगव्यूतिः शाखाव्यासाष्टयोजनः ॥१७७॥
अश्मगर्भमहास्कंधो वज्रशाखोपशोभितः । राजद्राजतपत्राढ्यो मणिपुष्पफलांकुरः ॥१७८॥
रक्तपल्लवसंतानरंजितांतदिगंतरः । पीठिकायां पुरोक्तायां जंबूवृक्षः प्रकाशते ॥१७९॥
पृथिवीपरिणामस्य नानाशाखोपशोभिनः । महादिक्षु चतस्रोऽस्य महाशाखा महातरोः ॥१८०॥
तत्र चोत्तरशाखायां सिद्धायतनमद्भुतं । आदरानादरावासाः प्रासादास्तिसृषु स्थिताः ॥१८१॥

१—शीतायाः इत्यपि ।

जंबूवृक्षस्य तस्यार्धत्रिंशद्योजनविस्तृताः । पंचाशद्योजनोच्छ्रायाः प्रासादा देवयोस्तयोः ॥१८२॥
वेदिकांतरदेशेषु चक्रवालेषु सप्तसु । प्रधानैकद्रुमोपेताः परिवारो[1]ऽस्यं पादपाः ॥१८३॥
चत्वारोऽनंतरं तस्य ततश्चाष्टोत्तरं शतं । चत्वारि च सहस्राणि सहस्राणि च षोडश ॥१८४॥
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि चत्वारिंशत्तु तान्यतः । चत्वारिंशत् सहाष्टाभिः प्रधानैः सप्तभिर्युताः ॥१८५॥
मिश्राः शतसहस्रं तु चत्वारिंशत्सहस्रकैः । संजायते समस्तास्ते शतमेकोनविंशतिः ॥१८६॥
दक्षिणापरतो मेरोः शीतोदायास्तटे परे । निषधस्य समीपस्थं राजतं शाल्मलीस्थलं ॥१८७॥
जंबूस्थलसमस्तत्र शाल्मलीवृक्ष इष्यते । वक्तव्या तस्य निःशेषा जंबूवृक्षस्य वर्णना ॥१८८॥
तत्र दक्षिणशाखायां सिद्धायतनमक्षयं । प्रासादास्तु त्रिशाखासु तत्र देवाविमौ मतौ ॥१८९॥
वेणुश्च वेणुदारी तावादरानादरौ यथा । उत्तरेषु कुरुष्विष्टौ तथा देवकुरुष्विमौ ॥१९०॥
नीलाद्रेर्दक्षिणाशायां योजनैकसहस्रके । सीतापूर्वतटे चित्रं विचित्रं कूटमप्यतः ॥१९१॥
निषधस्योत्तराशायां सीतोदातटयोस्तथा । यमकूटं मतं पूर्वं मेघकूटमतः परं ॥१९२॥
नामिपर्वतनामानि तानि कूटानि तेषु तु । देवाः स्वकूटनामानः क्रीडंति निजयेच्छया ॥१९३॥

१—परिवारद्रुमाः मताः इत्यपि पाठः ।

अध्यर्द्धे हि सहस्रार्द्धे नीलतो नीलवान् हृदः। तथोत्तरकुरुर्नाम्ना चंद्रश्चैरावणोऽपरः ॥१९४॥
माल्यावांश्च नदीमध्ये सर्वे पंचाशतांतराः। ते दक्षिणोत्तरायामाः पद्महृदसमा मिताः ॥ १९५॥
निषधादुत्तरो नद्यां निषधो नामतो हृदः। नाम्ना देवकुरुः सूर्यः सुलसश्च तडित्प्रभः ॥१९६॥
रत्नचित्रतटाः सर्वे वज्रमूला महाहृदाः। तेषु नागकुमाराः स्युः पद्मप्रासादवासिनः ॥१९७॥
जलाद् द्विकोशमुद्विद्धं योजनोच्छ्रितविस्तृतं। पद्मं प्रतिहृदं क्रोशविस्तृतोच्छ्रितकर्णिकं ॥१९८॥
पद्माः शतसहस्रं हि चत्वारिंशत्सहस्रकैः। शतं सप्तदशाग्रं स्यात् प्रतिपद्म परिच्छदः ॥ १९९ ॥
एकैकस्य हृदस्यात्र पर्वता दश सन्मुखाः। भांति कांचनकूटाख्याः सीतासीतोदयोस्तटे॥२००॥
उच्छ्रायमूलविस्तारैः शतयोजनकाः समाः पंचसप्ततिका मध्ये पंचाशद्विस्तृताग्रकाः ॥ २०१ ॥
तेषामुपरि प्रत्येकमेकैकाकृत्रिमाः शुभाः। प्रतिमाश्च निरालंबाः मोक्षमार्गैकदीपिकाः ॥२०२॥
धनुःपंचशतीतुंगा माणिकांचनरत्नगाः। पंचमेरुषु विख्यातं सहस्रोत्तरकूटकं ॥ २०३ ॥
आक्रीडनग्रहेष्वेषां शिखरेषु महात्विषः। देवाः कांचनकाभिख्याः संक्रीडंते समंततः ॥२०४॥
शीतोत्तरतटे कूटं पद्मोत्तरमनुत्तरे। तटे तु नीलवत्कूटं पूर्वतो मेरुपर्वतात् ॥ २०५ ॥
सीतोदापूर्वतीरे तु कूटं स्वस्तिकमस्ति तत्। तदंजनगिरिप्रख्यं पश्चात्ते मेर्वनुत्तरे ॥ २०६ ॥

तटे तु दक्षिणे तस्याः कुमुदं कूटमुत्तरे । पलाशमपराशायां ते तु मंदरतो मते ॥ २०७ ॥
पश्चात्तटेऽस्ति शीताया वतंसं कूटमुत्कटं । रोचनाख्यं पुरस्तात्तु मेरोरुत्तरतश्च ते ॥ २०८ ॥
भद्रशालवने भांति समान्येतानि कांचनैः वसंति तेषु देवास्ते दिग्गजेंद्रा इति श्रुताः ॥२०९ ॥
अपरोत्तरादिग्भागे मंदराद् गंधमादनः । ख्यातः कांचनकायोऽसौ सर्वतः पर्वतः स्थितः ॥२१०॥
मेरोःपूर्वोत्तराशायां माल्यवानिति विश्रुतः । वैडूर्यमयमूर्तिः स प्रियं भाति स्वयंप्रभः ॥ २११ ॥
मेरोः प्राग्दक्षिणाशायां सौमनस्यस्तु राजतः । विद्युत्प्रभोऽपरे कोणे तपनीयमयः स्थितः ॥२१२॥
ते नीलनिषधप्राप्तौ चतुःशतानिजोच्छ्रयाः । मेरुपर्वतसंप्राप्तौ प्रोक्ताः पंचशतोच्छ्रयाः ॥ २१३ ॥
निजोच्छ्रितिचतुर्भागाः स्वोभयांतावगाहनाः । देवोत्तरकुरुप्राप्तौ स्युः पंचशतविस्तृताः ॥२१४॥
सहस्राणि पुनस्त्रिंशन्नवाधिकशतद्वयं । आयामः २६ कलाश्चैषां चतुर्णामपि वर्णितः ॥२१५॥
मेरोः प्रभृति कूटानि चतुर्ष्वपि यथाक्रमं । संति सप्त नवैतेषु पुनः सप्त नवादिषु ॥२१६॥
सिद्धायतनकूटं स्याद् गंधमादननामकं । तथोत्तरकुरुप्रख्यं गंधमालिनिकाह्वयं ॥२१७॥
कूटं च लोहिताक्षं च स्फुटिकानंदनामनी । गंधमादनशैलेषु सप्तैतानि भवंति तु ॥२१८॥

१—समीपे ।

सिद्धाख्यं माल्यवत्कूटं तथोत्तरकुरूक्तिकं । कच्छाकूटं विनिर्दिष्टं तथा सागरकं परं ॥२१९॥
रजतं पूर्णभद्राख्यं सीताकूटं ततः परं । कूटं हरिसहाभिख्यं नवमं माल्यवत्स्वपि ॥२२०॥
सिद्धं सौमनसाभिख्यं कूटं देवकुरुध्वनि । मंगलं विमलं चैव कांचनाख्यं विशिष्टकं ॥२२१॥
सिद्धं विद्युत्प्रभाभिख्यं पुनर्देवकुरुश्रुति । पद्मकं तपनं चैव स्वस्तिकं च शतज्वलं ॥२२२॥
शीतोदाकूटमन्यत्तु कूटं हरिसहश्रुति । विद्युत्प्रभेष्वशेषेषु नवैतानि भवंति तु ॥२२३॥
उच्छ्रायोऽपि सर्वेषां कूटानां च यथायथं । आत्माधारावगाहस्य समानस्तु प्रभाषितः ॥२२४॥
सिद्धायतनकूटेषु तेषु सर्वेषु ये गृहाः । सिद्धबिंबसनाथास्ते विभ्राजंते यथायथं ॥२२५॥
शेषोभयांतकूटेषु रमंते व्यंतरामराः । मध्ये दिक्कुमार्यस्तु क्रीडागारेषु चारुषु ॥२२६॥
भोगंकरा भोगवती सुभोगा भोगमालिनी । वत्सामित्रा सुवत्सा[1]ऽन्या वारिषेणा बलाचिता ॥२२७॥
विदेहे चित्रकूटाख्यः पद्मकूटश्च पर्वतः । नलिनश्चैकशैलश्च नीलशीतांतरायताः ॥२२८॥
पूर्वाद्यास्तु त्रिकूटश्च शैलो वैश्रवणोऽजनः । आत्मांजनश्च सर्वेऽपि ते शीतानिषधस्पृशः ॥२२९॥
श्रद्धावान् सुप्रसिद्धोऽद्रिर्विजयावांस्तथैव च । आशीर्विषस्तदन्यस्तु सुखावह इतीरितः ॥२३०॥

---

१ सुमित्रान्या इति पाठांतर ।

विदेहेष्वपरेष्वेते चत्वारो देशभेदकाः। स्वायामेन प्रसिद्धेन शीतोदानिषधस्पृशः ॥२३१॥
चंद्रसूर्यौ च मालांतौ नागमालस्तथाचलः। मेघमालश्च ते मध्ये नीलशीतोदयोः स्थिताः॥२३२॥
सरित्तटेषु चोच्छ्रायस्तेषां वक्षारभूभृतां। शतानि पंच शेषं तु पूर्ववक्षारवर्णितं ॥२३३॥
प्रत्येकं षोडशस्तेषु मूर्ध्नि कूटचतुष्टयं। कुलाचलांतकूटेषु दिक्कुमार्यो वसंति ताः ॥२३४॥
नदीसमीपकूटेषु जिनेंद्रायतनानि तु। तथा मध्यमकूटेषु व्यंतराः क्रीडनालयाः ॥२३५॥
भद्रशालवनं मेरोः पूर्वापरदिगायतं। नानाद्रुमलताकीर्णं वर्णनीयं यथाक्रमं ॥ २३६ ॥
आयामो भागयोस्तस्य द्वाविंशतिसहस्रकः। प्रत्येकं द्विशती सार्द्धा दक्षिणोत्तरविस्तृतिः ॥२३७॥
वनात् पूर्वापरांतस्था वेदिका योजनोच्छ्रितिः। क्रोशावगाहिनी ज्ञेया विस्तृता क्रोशयोर्द्वयं ॥२३८॥
नीलात् ग्राहवती सीता वाहिनी हृदवत्यपि। पंकवत्यपि यांतीमा वक्षाराभ्यंतरे स्थिताः ॥२३९॥
नदी तप्तजला पूर्वा शीतामेवैति नैषधी। ततो मत्तजला नाम्ना तथोन्मत्तजलाऽपरा ॥२४०॥
क्षीरोदाऽन्या च शीतोदा स्रोतोंऽतर्वाहिनी नदी। विशंति नैषधोत्पन्नाः शीतोदां सुमहानदीं॥२४१॥
तामुत्तरविदेहेषु पश्चिमा गंधमादिनी। सा फेनमालिनी नीलात् संप्राप्ता चोर्मिमालिनी ॥२४२॥
नाम्ना विभंगनद्यस्ता प्रमाणे रोह्यया समाः। तोरणेषु वसंत्यासां संगमे दिक्कुमारिकाः ॥२४३॥

वक्षाराणां च तासां च मध्ये नद्योस्तटद्वये । स्युः पूर्वापरयोर्मेरोर्विदेहाश्चतुरष्टकाः ॥२४४॥
कच्छा सुकच्छा महाकच्छा चतुर्थी कच्छकावती । आवर्ता लांगलावर्ता पुष्कला पुष्कलावती ॥२४५॥
अपराद्यास्त्वमी वेद्याः पट्खंडा विपयस्थिताः। शीतानीलांतराले स्युः प्रादक्षिण्येन वर्णिताः ॥२४६॥
वत्सा सुवत्सा महावत्सा चतुर्थी वत्सकावती । रम्या रम्यका रमणीयाष्टमी मंगलावती ॥२४७॥
पूर्वादयास्त्वमी वेद्या विपयाश्चक्रवर्तिनां। शीतानिपधयोर्मध्ये व्यायता दक्षिणोत्तराः ॥२४८॥
पद्मा सुपद्मा महापद्मा चतुर्थी पद्मकावती । शंखा च नलिनी चैव कुमुदा सरिता तथा ॥२४९॥
पूर्वतः प्रभृति प्रोक्ताः दक्षिणोत्तरमायताः । अष्टाविमे निविष्टास्तु शीतोदानिपधांतरे ॥२५०॥
वप्रा सुवप्रा महावप्रा चतुर्थी वप्रकावती। गंधा चापि सुगंधा च गंधिला गंधमालिनी ॥२५१॥
अपराद्यास्त्विमे प्रोक्ताः विपयाश्चक्रपाणिनां। नीलशीतोदयोर्मध्ये निविष्टास्तावदायताः ॥२५२॥
सहस्राद्वितयं तेपां द्विशती च त्रयोदश । योजनाष्टमभागोना सा पूर्वापरविस्तृतिः ॥२५३॥
नदीविस्तारहीनस्य विदेहस्यार्धविस्तृतिः । आयामो देशवक्षारविभंगसरितामसौ ॥२५४॥
तद्देशविस्तरायामास्तन्मध्ये रजताद्रयः । द्वात्रिंशद्धारतेनामी समाना नवकूटकाः ॥२५५॥
श्रेण्योः स्युर्नगराण्येपां पंच पंचाशदेकशः । विद्याधराः वसंत्येपु परे द्वीपद्वये यथा ॥२५६॥

क्षेमा क्षेमपुरी ख्याता रिष्टा रिष्टपुरी परा । खड्गा मंजूषया सार्द्धमौषधी पुंडरीकिणी ॥२५७॥
कच्छादिषु यथासंख्यमष्टास्वष्टाविमाः पुरः । राजधान्यः समादिष्टाः शलाकापुरुषोद्भवाः॥२५८॥
सुसीमा कुंडलाभिख्या पुरी चान्या पराजिता । प्रभंकरा चतुर्थी तु पंचम्यंकवतीरिता ॥२५९॥
पद्मावती शुभाभिख्या साष्टमी रत्नसंचया। राजधान्यस्त्विमा मान्या वत्सादिषु यथाक्रमं॥२६०॥
तथैवाश्वपुरी ज्ञेया परा सिंहपुरीति च । महापुरी तथैवान्या विजया च पुरी पुनः ॥२६१॥
अरजा विरजा चासावशोका वीतशोकया । राजधान्यः प्रसिद्धास्ताः पद्मादिषु यथाक्रमं ॥२६२॥
विजया वैजयंती च जयंती चाऽपराजिता । वक्रा खड्गा च वप्रादिष्वयोध्यावध्यया समं ॥२६३॥
दक्षिणोत्तरतो दैर्घ्यात् पुर्यो द्वादशयोजनाः । नवयोजनविस्तारा हेमप्राकारतोरणाः ॥२६४॥
अल्पैः पंचशतैर्द्वारैर्महद्भिस्ताः सहस्रकैः । रत्नचित्रकपाटाद्यैर्दभ्रैः सप्तशतैर्युताः ॥२६५॥
द्वादश स्युः सहस्राणि रथ्यानां तु यथायथं । सहस्रं तु चतुष्काणां नगरीष्वक्षयात्मसु ॥२६६॥
गंगासिंधू प्रतिक्षेत्रं कच्छादौ नीलतः श्रुते । सीतां प्रविशतोऽतीत्य विजयार्द्धगुहाद्वयं ॥२६७॥
गिरिव्याससमायामे योजनाष्टकमुच्छ्रिते । गुहे द्वादशविस्तारे द्वे द्वे स्यातां गिरौ गिरौ ॥२६८॥

१—अंकावती इत्यपि पाठः ।

नद्यः षोडश गंगाद्याः समा भरतगंगया। ता रक्तारक्तवत्योस्तु तावंत्यो निषधश्रुताः ॥२६९॥
निषधान्नीलतस्तावत् संख्यास्तन्नामिकाः श्रुताः। नद्योऽपरविदेहेषु शीतोदां तु व्रजंति ताः ॥२७०॥
नाम्ना साधारणेनोक्तास्ता एवारातिनिम्नगाः। चतुर्दशसहस्रैस्तु प्रत्येकं सरितां युताः ॥२७१॥
अशीतिश्चापि चत्वारि सहस्राणि कुरुद्वये। प्रत्येकं निम्नगा नद्योरर्धमर्धतटद्वये ॥२७२॥
पंचलक्षाः सहस्राणि द्वात्रिंशत्त्रिंशदष्टभिः। प्रत्येकमुभयोर्नद्यः शीताशीतोदयोर्युताः ॥२७३॥
दशलक्षाः चतुःषष्टिसहस्राण्यष्टसप्ततिः। सर्वा एवापगाः प्रोक्ताः पूर्वापरविदेहयोः ॥२७४॥
चतुर्दशसहस्राणि प्रत्येकं सरितो मताः। गंगासिंध्वोः पतंत्यस्ताः रक्तारक्तोदयोश्च ताः ॥२७५॥
रोह्यायां रोहितास्यायां सहस्राणि पतंति ताः। सुवर्णरूप्यकूलयोरष्टाविंशतिरेकशः ॥२७६॥
षट्पंचाशत्सहस्राणि ता हरिद्धारिकांतयोः। पतंति सिंधवो यद्वत् सनारीनरकांतयोः ॥२७७॥
संगताश्च समस्तास्ता गंगासिंध्वादिसिंधवः। तिस्रो लक्षा नवत्या द्वे सहस्रे द्वादशापि च ॥२७८॥
स्युश्चतुर्दशलक्षास्तु वैदेह्यस्ताश्च संख्यया। षट्पंचाशत्सहस्राणि नवतिश्च समुद्रगाः २७९॥
द्वीपेऽस्मिन् कांचनैस्तुल्या वैडूर्यमयमूर्त्तयः। चतुस्त्रिंशत्सुरैः सेव्या वृषैर्वृषभपर्वताः ॥२८०॥
पूर्वापरविदेहांताः समुद्रतटसंगताः। देवारण्यवनाभोगाश्चत्वारः सरितोस्तटे ॥२८१॥

द्वाविंशति सहस्रे द्वे शतानि नव विस्तृताः । योजनानि पुनस्तेषां वेदिका भद्रशालवत् ॥२८२॥
विदेहक्षेत्रमध्यस्थकुरुक्षेत्रद्वयावधिः । योजनानां सहस्राणि नवतिर्नव चोच्छ्रिता ॥२८३॥
मेखलात्रयसंयुक्तः ख्यातो मेरुमहीधरः । ऊर्ध्वं चूलिकयोद्भासी सचत्वारिंशदुच्चयः ॥२८४॥
सहस्रमवगाहोऽस्य सहस्राणि दशाऽत्र च । विष्कंभो नवतिश्च स्याद् दशैकादशभागकाः ॥२८५॥
सैकात्रिंशत्सहस्राणि शतानि नव वै दश । योजनानि तथा भागौ साधिकौ परिधिर्गिरेः ॥२८६॥
तलात् सहस्रमुद्गत्य सहस्राणि दशोपरि । योजनानि स विष्कंभो भूमौ भवति भूभृतः ॥२८७॥
सैकत्रिंशत्सहस्राणि षट्शती विंशतिद्वयं । योजनानि त्रयः क्रोशाः शते द्वादश दंडकाः ॥२८८॥
हस्तास्त्रयस्तथैव स्यादंगुलानि त्रयोदश । साधिकानि परिक्षेपो भद्रशालेऽद्रिगोचरः ॥२८९॥
गत्वा पंचशतीमूर्ध्वं मेखलायां तु नंदनः । स्यात्पंचशतविष्कंभं मंदरं परितो वनं ॥२९०॥
नव तत्र सहस्राणि शतानि नव षट्कलाः । चतुःपंचाशदप्यस्य विष्कंभः पुष्कलो गिरेः ॥२९१॥
एकात्रिंशत्सहस्राणि तथा तत्र चतुःशती । गिरेर्वाह्यपरिक्षेपः साधिका नवसप्ततिः ॥२९२॥
स एव च सहस्रोनो विष्कंभोऽभ्यंतरः स्फुटः । नंदने मंदरस्य स्यात् परिक्षेपोऽपि वक्ष्यते ॥२९३॥
अष्टविंशतिरेष स्यात् सहस्राणि शतत्रयं । षोडशाग्राः कलाश्चाष्टौ परिधिः साधिका गिरेः॥२९४॥

सहस्राणि द्विषष्टिं च गत्वा पंचशतीं ततः । नंदनेन समानं तद् वनं सौमनसं भवेत् ॥ २९५ ॥
चत्वारि च सहस्राणि शते द्वे च द्विसप्ततिः। अष्टौ भागाश्च विष्कंभो वाह्यस्तत्र भवेद्गिरेः ॥२९६॥
परिक्षेपः पुनस्तस्य सहस्राणि त्रयोदश । शतं पंचतयं ज्ञेयमेकादश च षट् कलाः ॥ २९७॥
वाह्यो यो गिरिविष्कंभः सहस्रेण स वर्जितः । स्यादभ्यंतरविष्कंभस्तस्येति मुनयो विदुः ॥२९८॥
ईषदूनपरिक्षेपः सहस्राणि दश स्मृतः । त्रिशत्येकानपंचाशत्त्रयश्चैकादशांशकाः ॥ २९९॥
स्याद् पट्त्रिंशत्सहस्राणि गत्वाद्रौ पांडुकं वनं । चतुर्नवतिसंयुक्ता तद्विस्तारश्चतुःशती ॥ ३०० ॥
द्विषष्टियोजनान्यत्र सहस्रात्रितयं शतं । गव्यूतं साधिकं मेरोः परिधिः परिकीर्तितः ॥ ३०१ ॥
चत्वारिंशत्समुद्विद्धा मूर्ध्नि वैडूर्यचूलिका । मूलमध्यांतविस्तारैर्द्वादशाष्टचतुर्विधा ॥ ३०२ ॥
सप्तत्रिंशद् भवेन्मूले मध्ये स्यात् पंचविंशतिः। चूलिकायाः परिक्षेपो द्वादशाग्रे च साधिकाः ॥३०३॥
पार्थिवाः षट्परिक्षेपाश्चूलिकायाः प्रभृत्यधः। एकादशप्रकारोऽन्यः सप्तमोपि वनैः कृतः॥३०४॥
लोहिताक्षमयः पूर्वः पद्मरागमयः परः । तथा वज्रमयः सर्वरत्नो वैडूर्यविग्रहः ॥३०५॥
हरितालमयः षष्ठस्तेषां प्रत्येकमिष्यते। पंचशत्यपि विस्तारः सहस्राण्यपि षोडश ॥३०६॥
भद्रशालवनं भूमौ मानुषोत्तरमेव च । सदेवनागभूतानां रमणानि वनानि च ॥३०७॥

परिक्षेपो वनं चान्यन्नंदनं चोपनंदनं । वनं सौमनसं चान्यदुपसौमनसं तथा ॥३०८॥
पांडुकं दशमं प्रोक्तमुपपांडुकमंत्यजं । मेरोरेकादश ज्ञेयाः परिक्षेपाः परीक्षकैः ॥३०९॥
देशेष्वेकादशानां तु पूरणेषु हि मंदरः । मौलविष्कंभभागानामेकैकेन प्रहीयते ॥३१०॥
सर्वत्रांगुलमानादौ यावद् योजनमानकं । हानिवृद्धी इति ग्राह्ये मेरुविस्तारगोचरे ॥३११॥
एकादश सहस्राणि योजनानि तु मंदरः । समरुंद्रो नंदनादूर्ध्वं वनात्सौमनसात्तथा ॥३१२॥
पंचमेषु प्रदेशेषु चूलिकैकेन हीयते । तथांऽगुलादिमानेषु योदनांतेष्वयं क्रमः ॥३१३॥
साधिकैकादशांशाभ्यां लक्षस्यास्युत्तरं शतं । दैर्घ्यं योजनलक्षस्य मेरोः पार्श्वभुजाद्वयं ॥३१४॥
पण्याख्यं दिशि पूर्वस्यां दक्षिणस्यां च वारणं । गंधर्वमपरस्यां स्यादुत्तरस्यां च चित्रकं॥ ३१५॥
भवनं नंदने तेषां त्रिंशत्स्यान्मुखविस्तृतिः । पंचाशद्योजनोच्छ्रायः परिधिर्नवतिः स्मृता ॥३१६॥
पण्याख्ये रमते सोमश्चारणाख्ये यमो यथा । गांधर्वे वरुणश्चित्रे कुबेरः सपरिच्छदः ॥३१७॥
चत्वारोऽपि ते दिक्षु लोकपालाः पृथक् पृथक् । सार्द्धाभिस्तु त्रिकोटीभिः स्त्रीणां क्रीडंति संततं॥३१८
वज्रं वज्रप्रभं नाम्ना सुवर्णभवनं भवेत् । सुवर्णप्रभमप्येकं दिक्षु सौमनसे वने ॥३१९॥

१—चारणं इत्यपि ।

भवनानां परिक्षेपमुखव्यासोच्छ्रया इह । त एवार्धीकृता बोध्या नंदनस्थितसद्मनां ॥३२०॥
लोकपालास्त एवात्र देवाः सोमयमादयः । क्रीडंति स्वेच्छया स्त्रीभिस्तावतीभिर्यथायथं ॥३२१॥
लोहितांजनहारिद्रपांडुराख्यानि पांडुके । वेश्मान्यूर्ध्वस्वनामानि तावत्कन्यानि तान्यपि ॥३२२॥
स्वयंप्रभविमानेशःसोमोऽसौ पूर्वदिक्प्रभुः । रक्तवाहननेपथ्यः सार्द्धपल्यद्वयस्थितिः ॥३२३॥
स षट्षष्टिसहस्राणां विमानानां प्रभावतां । षट्षष्टिषट्शतानां च षट्लक्षाणां च भोजकः ॥३२४॥
तथाऽरिष्टविमानेशो यमो दक्षिणदिक्प्रभुः । सार्द्धपल्यद्वयायुष्कः कृष्णनेपथ्यवाहनः ॥३२५॥
जलप्रभविमानेशो वरुणो वारुणीप्रभुः । तथैव पीतनेपथ्यः त्रिभागोनात्रिपल्यकः ॥३२६॥
वल्गुप्रभविमानेशः कौबेरीप्रभुरिष्यते । कुवेरः शुक्लनेपथ्यः सत्रिपल्योपमास्थितिः ॥३२७॥
मेरोरुत्तरपूर्वस्यां नंदने बलभद्रके । कूटे कांचनकैस्तुल्ये कूटनाम्नामरो भवेत् ॥३२८॥
नंदनं मंदरं कूटं निषधं हिमवच्च तत् । रजतं रजकं नाम्ना तथा सागराचित्रकं ॥३२९॥
वज्रकूटं विनिर्दिष्टमष्टमं तु मनीषिभिः । दिशं दिशं प्रति द्वे द्वे स्यातां कूटे यथाक्रमं ॥३३०॥
उच्छ्रायो मूलविस्तारस्तेषां पंचशतानि तु । तदर्धं मस्तके मध्ये त्रिशती पंचसप्ततिः ॥३३१॥
दिक्कुमार्यस्तु कूटेषु तेष्विमाः प्रतिपादिताः । मेघंकरा तु पूर्वा स्यात् तथा मेघवती परा ॥३३२॥

ततः परं प्रसिद्धान्या सुमेघा मेघमालिनी। तोयधारा विचित्रा स्यात् पुष्पमाला त्वनिंदिता ॥२३३॥
पूर्वदक्षिणदिग्भागे वाप्यो मेरुमहीभृतः। पूर्वा तूत्पलगुल्माख्या नलिना चोत्पला परा ॥२३४॥
उत्पलोज्ज्वलसंज्ञा स्यात् तासां पंचाशदायतिः। अवगाहो दश ज्ञेयो विस्तारः पंचविंशतिः ॥२३५॥
आसां मध्ये च शक्रस्य प्रासादः समवस्थितः। योजनान्यस्य गव्यूत्या सैकात्रिंशत्तु विस्तृतिः ॥२३६
उच्छ्रायः पुनरुद्दिष्टो द्वाषष्टिश्चार्द्धयोजनः। अवगाहः प्रमाणेन प्रासादस्यार्द्धयोजनः ॥२३७॥
सिंहासनं सुरेंद्रस्य तस्य मध्येऽवतिष्ठते। स्वदिक्षु लोकपालानामासनानि भवंति च ॥२३८॥
तस्यैवोत्तरपूर्वस्यामपरोत्तरतोऽपि च। तत्र सामानिकानां तु भांति भद्रासनानि तु ॥२३९॥
पुरोऽप्यष्टाग्रदेवीनां तत्र भद्रासनानि हि। सासनाः परिषन्मुख्याः पूर्वदक्षिणतस्तथा ॥२४०॥
मध्यमा दक्षिणस्यां स्याद् बाह्या चापरदक्षिणा। त्रायस्त्रिंशाश्च तत्र स्युः पश्चात्सैन्यमहत्तराः ॥२४१॥
चतसृष्वात्मरक्षाणां दिक्षु भद्रासनान्यपि। आसेव्यतेऽत्र तैरिंद्रः पूर्वाभिमुखमास्थितः ॥२४२॥
भृंगा भृंगनिभाप्यन्या कज्जला कज्जलप्रभा। पुष्करिण्यश्च वापीनां समास्त्वपरदक्षिणाः ॥२४३॥
श्रीकांता प्रथमा वापी श्रीचंद्रा चापरोत्तरा। तथा श्रीमहितैशाना भोग्या श्रीनिलया ततः ॥२४४॥
तथा चोत्तरपूर्वस्यां वापी तु नलिनाभिधा। ततो नलिनगुल्मापि कुमुदा कुमुदप्रभा ॥२४५॥

प्रासादादिकमत्राऽपि पूर्ववत्सर्वमिष्यते । यथैतन्नंदने वेद्यं तथा सौमनसे वने ॥३४६॥
दिशि चोत्तरपूर्वस्यां पांडुके पांडुका शिला । पांडुकंबलया सार्द्धं रक्तया रक्तकंबला ॥ ४७॥
विदिक्षु सक्रमा हैमी राजती तापनीयिका । लोहिताक्षमयी चार्द्धचंद्राकाराश्च ताः शिलाः ॥३४८॥
अष्टोच्छ्र्याः शतायामाः पंचाशद्विस्तृताश्च ताः । यत्रार्हतोऽभिषिच्यंते जंबूद्वीपसमुद्भवाः ॥३४९॥
रक्तापांडुकयोर्दैर्घ्ये दक्षिणोत्तरतः स्थितं । तत्पूर्वापरतः शेषशिलयोस्तु विशालयोः ॥३५०॥
चापं पंचशतोच्छ्रायं मूलव्यासोपि यस्य सः । प्रत्येकं तन्महारत्नं तत्र सिंहासनत्रयं ॥३५१॥
ऐंद्रं दक्षिणमेतेषामैशानं तूत्तरं मतं । मध्यस्थितं तु जैनेंद्रं प्राङ्मुखानि च तान्यपि ॥३५२॥
भारतापरवैदेहा ऐरावतविदेहजाः । जिना बाल्ये सुरस्नाप्यास्तासु तेषु यथाक्रमं ॥ ३५३ ॥
पांडुके संति चत्वारो महादिक्षु जिनालयाः । सर्वरत्नमहादिव्या नित्या ह्यकृतकत्वतः ॥ ३५४ ॥
पंचविंशतिरायामः सार्द्धा-द्वादश विस्तृतिः । अर्द्धक्रोशोऽवगाहः स्यादुच्छ्रायोऽष्टादश त्रिपाद् ॥३५५
द्वारस्य चोच्छ्र्यस्तेषां चतुर्योजनसंमितः । द्वे तु विस्तृतिरस्यार्द्धमणुद्वारद्वयस्य हि ॥ ३५६ ॥
वने सौमनसे तेषां तदेव द्विगुणं भवेत् । कुलवक्षारशैलेषु मानं सौमनसोदितं ॥ ३५७ ॥
नंदने भद्रशाले च जिनायतनगोचरं । प्रत्येकं द्विगुणं मानं तद् यत्सौमनसे वने ॥ ३५८ ॥

विजयार्द्धेषु सर्वेषु सिद्धायतनगोचरं । मानं तदेव बोद्धव्यं विजयार्द्धे भरते तु यत् ॥ ३५९ ॥
अष्टायामो द्विविस्तारः सर्वेषु तनुरुच्छ्रितः। देवच्छंदोऽवगाढश्च गव्यूतिस्तेषु वेश्मसु ॥ ३६० ॥
शुंभद्रत्नमहास्तंभः शातकुंभात्मभित्तिभिः । चंद्रादित्योत्पतत्पक्षिमृगयुग्माद्यलंकृतः ॥ ३६१ ॥
रत्नकांचननिर्माणाः पंचचापशतोच्छ्रिताः । अष्टोत्तरशतं तत्र जिनानां प्रतिमा मताः ॥ ३६२॥
नागयक्षयुगे तासां प्रत्येकं सप्रकीर्णके । सनत्कुमारसदृशे निर्वृत्तिश्रुतमूर्तिभिः॥ ३६३ ॥
भृंगारकलशादर्शपात्रीशंखाः समुद्गकाः । पालिकाधूपनीदीपकूर्चाः पाटलिकादयः ॥ ३६४ ॥
अष्टोत्तरशतं ते पि कंसतालनकादयः । परिवारोऽत्र विज्ञेयः प्रतिमानां यथायथं ॥ ३६५ ॥
गवाक्षगेहजालानि मुक्ताजालानि भांति वै । मणिविद्रुमरूपाब्जकिंकिणीजालकानि च ॥३६६॥
षट् च चत्वारि च द्वे च मूले मध्ये च मस्तके । विस्तृतश्चतुरुच्छ्रायः सौवर्णः क्रोशगाहकः ॥३६७॥
अष्टोच्छ्रायश्चतुर्व्यासश्चतुस्तोरणदिङ्मुखः । प्राकारः प्रतिवेश्म स्यात् पंचाशत्तुंगगोपुरः ॥ ३६८ ॥
सिंहहंसगजांभोजदुकूलवृषभध्वजैः । मयूरगरुडाकीर्णश्चक्रमालामहाध्वजैः ॥ ३६९ ॥
दशार्द्धवर्णभासद्भिर्दशभेदैर्दिशो दश । साशीतिकसहस्रांतैर्भाति पल्लविता इव ॥ ३७० ॥

१—सचामरे ।

उदग्रो मंडपोऽप्यग्रे ततः प्रेक्षागृहं बृहत्। स्तूपाश्चैत्यद्रुमाश्चान्ये पर्यंकप्रतिमोज्ज्वलाः ॥ ३७१ ॥
मत्स्यकूर्मविमुक्तश्च प्रसन्नसलिलः शुभः। दिशि नंदो ह्रदः प्राच्यां सिद्धायतनतो भवेत् ॥ ३७२॥
वज्रमूलः सवैडूर्यचूलिको मणिभिश्चितः। विचित्राश्चर्यसंकीर्णः स्वर्णमध्यः सुरालयः ॥३७३॥
मेरुश्चैव सुमेरुश्च महामेरुः सुदर्शनः। मंदरः शैलराजश्च वसंतः प्रियदर्शनः ॥३७४॥
रत्नोच्चयो दिशामादिर्लोकनाभिर्मनोरमः। लोकमध्यो दिशामंत्यो दिशामुत्तर एव च ॥३७५॥
सूर्याचरणविख्यातिः सूर्यावर्तः स्वयंप्रभः। इत्थं सुरगिरिश्चेति लब्धवर्णैः स वर्णितः ॥३७६॥
इति व्यावर्णितं द्वीपं परिक्षिपति सर्वतः। पर्यंतान्वयवत्त्वेन सास्यैव जगती स्थिता ॥३७७॥
मूले द्वादश मध्येऽष्टौ चत्वार्यग्रे च विस्तृता। अष्टोच्छ्रयाऽवगाढा तु योजनार्द्धमधो भुवः ॥३७८॥
सर्वरत्नात्ममध्या सा वैडूर्यमयमस्तका। मूले वज्रमयी भासा भासयंती दिशः स्थिता। ३७९॥
पंच चापशतन्यासा मूलाग्रे चापि वेदिका। गव्यूतिद्वितयोच्छ्राया जगत्या मध्यमासृता॥ ८०॥
वेदिकाभ्यंतरे कांतं देवारण्यं वनं बहिः। सत्सौवर्णशिलापट्टं वापी प्रासादशोभितं ॥३८१॥
धनुःशतं शतं सार्द्धं विस्तृताश्च शतद्वयं। न्यूनमध्योत्तमा वाप्यो गाधाः स्वं स्वं दशांशकं ॥३८२॥

१—१५० धनूंषि। २—गाध्यः इत्यपि पाठः।

पंचाशच्चापविस्ताराः शतचापसमायताः । पंचसप्ततिमुच्चैस्तु प्रासादास्तत्र चाल्पकाः ।।२८३।।
षट् चापविस्तृतान्येषां द्वादशोच्छ्रायवंति च । चत्वारि चापगाढानि द्वाराणि लघुवेश्मनां ।।२८४।।
द्विगुणास्त्रिगुणाश्च स्युर्व्यासायामोच्छ्रयैरतः । मध्यमाश्चोत्तमास्तेषां द्विर्द्विर्द्वारावगाहनं ।।२८५।।
मालावल्लीकदल्याद्याः प्रेक्षासनसभागृहाः । वीणागर्भलताचित्रप्रसाधनमहागृहाः ।।२८६।।
मोहनास्थानसंज्ञाश्च रम्या रत्नमया गृहाः । सर्वतस्तत्र शोभंते व्यंतरामरसेविताः ।।२८७।।
हंसक्रौंचासनैर्मुंडैर्मृगेंद्रमकरासनैः । स्फाटिकैरुन्नतैर्नम्रैः प्रबालगरुडासनैः ।।२८८।।
दीर्घस्वस्तिकवृत्तैस्तैर्विपुलेंद्रासनैरपि । गंधासनैश्च रत्नाढ्यैर्युक्ताः सुरमनोरमैः ।।२८९।।
विजयं विजयंतं च जयंतमपराजितं । द्वाराण्यस्यां जगत्यां स्युः प्राच्यादौ दिक्चतुष्टये ।।२९०।।
अष्टोच्छ्रायं चतुर्व्यासं नानारत्नांशुरंजितं । द्वारमेकैकमत्र स्याद् भास्वद्वज्रकवाटकं ।।२९१।।
दश सप्तशती चान्या सहस्राणि च सप्ततिः । त्रयः क्रोशाश्चतुर्विंशाश्चतुर्दशशती युगैः ।।२९२।।
हस्तास्त्रयोऽगुलानि स्यादेकाविंशतिरेकशः । तेषां दिशांतरव्यासो द्वाराणां तु प्रमाणतः ।।२९३।।
अस्या ज्यायाः सहस्राणि सप्ततिर्नव चोदितं । सह षड्भिश्च पंचाशद् गव्यूतित्रितयं तथा ।।२९४।।

१—आसनानां नामानि ।

धनुःसहस्रमेकं च पुनः पंच शतानि तु । द्वात्रिंशच्च धनुः पृष्ठमंगुलानां च सप्तकं ॥३९५॥
चतुर्योजनहीनं तु तदेव परिनिश्चितं । द्वाराणामंतरं तेषामंतरज्ञैः परस्परं ॥३९६॥
संख्येयद्वीपपर्यंतो जंबूद्वीपसमोऽपरः । विजयस्य पुरं तत्र पूर्वस्यां दिशि शोभते ॥३९७॥
तद् द्वादशसहस्राणि विस्तृतं वेदिकायुतं । चतुस्तोरणसंयुक्तं रुचिरं सर्वतोद्भुतं ॥३९८॥
साष्टभागं त्रिकं चाग्रे मूले तत्तु चतुर्गुणं । तत्प्राकारस्य विस्तारस्तस्य गाहोऽर्द्धयोजनं ॥३९९॥
प्राकारस्योच्छ्रयस्तस्य सप्तत्रिंशत्तथार्द्धकं । गोपुराणि चतुर्दिक्षु प्रत्येकं पंचविंशतिः ॥४००॥
एकत्रिंशत्सगव्यूतिविस्तारो गोपुरस्य च । उच्छ्रायो द्विगुणस्तस्माद् गाहः स्यादर्धयोजनं ॥४०१॥
भूमिभिः सप्तदशभिः प्रासादा गोपुरेषु तु । सर्वरत्नसमाकीर्णा जांबूनदमयाश्च ते ॥४०२॥
गोपुराणां तु मध्ये स्यादौपपादिकलेणकं[1] । गव्यूतिबहलं व्यासः शतानि द्वादशास्य च ॥४०३॥
पंचचापशतव्यासा गव्यूतिद्वयमुच्छ्रिता । चतुस्तोरणसंयुक्ता वेदिका तस्य सर्वतः ॥४०४॥
गोपुरेण समो मानैः प्रासादः पुरमध्यगः । अष्टोच्छ्रायश्चतुर्व्यासो द्वारो विजयसेवितः[2] ॥४०५॥
स वज्रद्वारवंशश्च हेमरत्नकपाटकः । चतुर्दिक्षु पुनस्तस्य प्रासादास्तत्समानकाः ॥४०६॥

१ देवीनामुत्पादस्थानं । २ तत्स्वामी देवः ।

तेषामन्ये महादिक्षु चत्वारस्तत्समानकाः । द्वितीयमंडले ज्ञेयाः प्रासादा रत्नभास्वराः ॥ ४०७ ॥
पूर्वमानार्द्धमानाश्च तृतीये मंडले स्थिताः । तत्समानाश्चतुर्थे तु प्रत्येकं दिक्चतुष्टये ॥ ४०८ ॥
चतुर्थेभ्योऽर्द्धहीनाश्च पंचमे मंडले स्थिताः । षष्ठे तु तत्समानैस्ते प्रत्येकं दिक्चतुष्टये ॥ ४०९ ॥
लेणवेदिकया तुल्या वेदिका मंडपद्वये । अर्धार्धमाना सा वेद्या मंडलस्य द्वये द्वये ॥ ४१० ॥
प्रासादे विजयस्यात्र सिंहासनमनुत्तरं । सचामरसितच्छत्रं तत्र पूर्वमुखोऽमरः ॥ ४११ ॥
उत्तरस्यां सहस्राणि षट् सामानिकसंज्ञिनः । विदिशोऽस्य पुरः षट् स्युरग्रदेव्यश्च सासनाः ॥४१२॥
आसन्नष्टौ सहस्राणि परिषत्पूर्वदक्षिणाः । मध्यमा दश बोधव्या दाक्षिणस्यां दिशि स्थिताः ॥४१३॥
द्वादशैव सहस्राणि बाह्या साऽपरदक्षिणाः । आसनेष्वपरस्यां च सप्तसैन्यमहत्तराः ॥४१४॥
अष्टादश सहस्राणि चतुर्दिक्ष्वात्मरक्षकाः । भद्रासनानि तेषां च दिक्षु तावंति तासु च ॥४१५॥
अष्टादश सहस्राणि देव्यश्च परिवारिकाः । विजयः सेव्यमानैस्तैः पल्यं जीवंति साधिकं ॥४१६॥
विजयादुत्तराशायां सुधर्माख्या तु तत्सभा । दीर्घा षट् विस्तृता त्रीणि नवोच्चैः क्रोशगाहिनी ॥४१७॥
ततोऽप्युत्तरदिग्भागे तावन्मानो जिनालयः । अपरोत्तरतश्चास्मादुपपार्श्वा समा भवेत् ॥४१८॥

१ तृतीयमंडलप्रमाणा । २ विदिशि षट् महादेवीना आसनानि । ३—दशसहस्राणि ।

अभिषेकसभा तत्रागलंकारसभाप्यतः । व्यवसायसभा तस्मात् संसमानाः सुधर्मया ॥४१९॥
पंचैव च सहस्राणि चत्वारोऽपि शतानि च । सप्तषष्टिश्च ते सर्वे प्रासादा विजयास्पदे ॥४२०॥
बहिर्विजयपुर्यास्तु पंचविंशतियोजनीं । गत्वा वनानि चत्वारि स्युः प्राच्या दिक्चतुष्टये ॥४२१॥
अशोकवनमादौ च सप्तपर्णवनं ततः । स्याच्चंपकवनं नाम्ना तथा चूतवनं ततः ॥४२२॥
योजनानां सहस्राणि द्वादशायाम इष्यते । शतानि पंचविस्तारास्तेषां मध्ये तु पादपाः ॥४२३॥
अशोकः सप्तपर्णश्च चंपकश्चूतपादपः । जंबूपीठार्द्धमानश्च पीठा जंबूर्द्धमानकाः ॥४२४॥
चतस्रः प्रतिमास्तेषु चतुर्दिक्षु यथायथं । अशोकादिसुरैरर्च्या जिनानां रत्नमूर्तयः ॥४२५॥
वनस्योत्तरपूर्वस्यामशोकपुरमत्र च । मानेन विजयस्येव प्रासादोऽशोकनायकः ॥४२६॥
सप्तपर्णपुरं पूर्वदाक्षिणस्यां वनस्य तु । सप्तपर्णपुरस्यात्र प्रासादः पूर्वमानकः ॥४२७॥
दाक्षिणापरादिग्भागे चंपकस्य पुरं वनात् । अपरोत्तरादिग्भागे पुरं भूतामरस्य च ॥ ४२८ ॥
वैजयंतादयो देवा विजयस्य समास्त्रयः । दाक्षिणादिपुराधीशाः स्वालयायुःपरिच्छदैः ॥ ४२९ ॥
योजनानां तु लक्षे द्वे विस्तीर्णो लवणार्णवः । परिक्षिप्य स्थितो द्वीपं परिखेव सवेदिकः ॥४३०॥

१—जम्बूर्ध ।

लक्षाः पंचदशाशीत्या सहस्रं च शतं तथा । त्रिंशन्नव च देशोना परिधिर्लवणांबुधेः ॥ ४३१ ॥
अष्टादश सहस्राणि कोटयो नवशतान्यपि । त्रिसप्ततिश्च निश्चेया लक्षाः षट्षष्टिरेव च ॥४३२॥
सहस्राणि च पंचाशन्नव तानि च षट्शती । गणितस्य पदं वेद्यं प्रकीर्णं लवणार्णवे ॥ ४३३ ॥
दशैवोपरि मूले च सहस्राणि दश स्मृतः । सहस्रमवगाढोऽतो ध्रुवाण्येकादशोच्छ्रितः ॥४३४॥
तटांतात्पंचनवतिं देशान् गत्वाऽवगाहते । देशमेकमधश्चैवमंगुलादि सयोजनं ॥ ४३५ ॥
स गत्वा पंचनवतिं देशां देशांश्च षोडश । उच्छ्रितोंऽगुलहस्तादीन् योजनानि च सागरः ॥४३६॥
शुक्ले पंचसहस्राणि यावत्तावत् प्रवर्धते । पक्षे प्रहीयते कृष्णे यावदेकादशैव सः ॥ ४३७ ॥
त्रिशती च त्रयस्त्रिंशद् योजनानि दिने दिने । त्रिभागं वर्धते वार्धिः शुक्ले कृष्णे च हीयते ॥४३८॥
मक्षिकापक्ष्मसूक्ष्मांतो वेदिकांते पयोनिधिः । स चोर्ध्वं मानतो यस्तु योजनार्द्धं प्रवर्द्धते ॥ ४३९ ॥
षट्षष्टि द्वे शते दंडा द्वौ हस्तौ षोडशांगुली । शुक्ले कृष्णे च ते स्यातां वृद्धिहानी दिने दिने ॥ ४४० ॥
अधः संक्षेपणी द्रोणी विस्तीर्णोर्ध्वं क्षितौ दिवि । अन्यथा नौ पुटांभोधिः समो वा यवराशिना ॥४४१॥
जगत्याः पंचनवतिं सहस्राणि प्रविश्य तु । मध्ये स्युर्दिक्षु चत्वारि पातालविवराण्यधः ॥४४२॥

१—१८९७३६६५९६००

प्राच्यां पातालमाशायां प्रतीच्यां वडवामुखं । कदंबुकमपाच्यां स्यादुदीच्यां यूपकेसरं ॥४४३॥
तन्मूलमुखविस्तारः सहस्राणि दश स्मृतः । गाहस्त्वमध्यविस्तारावेका लक्षेति लक्षितौ ॥४४४॥
अलंजलसमानानि पातालानि समंततः । वाहुल्यं वज्रकुडयानां तेषां पंच शतानि तु ॥४४५॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतत्रयं । एकैकोऽत्र विभागः स्याद् योजनानां तु भागवान् ॥४४६॥
ऊर्ध्वभागे जलं तेषां तृतीये केवलं सदा । मूले च बलवान् वायुर्मध्यभागे क्रमेण तौ ॥४४७॥
वायोरुच्छ्वासनिश्वासौ पातालेषु स्वभावजौ । तद्वशादुदकस्योर्ध्वमधश्च परिवर्त्तनं ॥४४८॥
भागः पंचदशः शुक्ले वायुभिः पूर्यते शनैः । पातालानां जलैः कृष्णे स्थितिं स्यात्पंचसधिषु ॥४४९॥
लक्षद्वयं सहस्राणि सप्तविंशतिरंतरं । शतं सप्ततिरेषां स्यात् पादोनं योजनं पृथक् ॥४५०॥
विदिक्षु क्षुद्रपातालचतुष्कं मुखमूलयोः । सहस्रं विस्तृतं दैर्घ्यमध्यविस्तारतो दश ॥४५१॥
चतुर्णामपि तेषां स्यात्पंचाशत्कुडयविस्तृतिः। एकैकस्य त्रिभागेषु प्रागिवांभःप्रभंजनौ ॥४५२॥
त्रियोजनसहस्राणि त्रयस्त्रिंशं शतत्रयं । सत्रिभागं त्रिभागानां प्रत्येकं योजनस्थितिः ॥४५३॥
एकलक्षा सहस्राणि त्रयोदश निजांतरं। पंचाशीति त्रयोऽष्टांशः कुंडानां दिग्विदिक्स्थितं॥४५४॥

१—रेव इत्यपि ।

मुक्तावलीवदेतेषामंतरालेषु चाष्टसु । समुद्रे क्षुद्रपातालसहस्रमवतिष्ठते ॥४५५॥
सहस्रमवगाहश्च मध्यविष्कंभ एव च । योजनानां शतं तेषां विस्तारो मुखमूलयोः ॥४५६॥
पंचविंशशतं तानि प्रत्येकं चांतरेऽतरे । द्विहीनाष्टशती क्रोशः सविशेषस्तदनंतरं ॥४५७॥
यथायोगपरावृत्तसलिलाप्लवविप्लवाः । पातालौघाः समस्तास्ते क्षुद्राश्च परिकीर्त्तिताः ॥ ४५८ ॥
तटाद्गत्वा सहस्राणि द्वाचत्वारिंशतं समौ । चतुर्दिक्षु सहस्रोच्चैः द्वौ द्वौ स्यातां तु पर्वतौ ॥४५९॥
कौस्तुभः कौस्तुभासश्च पातालस्योभयांतयोः । राजतावर्द्धकुंभाभौ तत्सुरौ विजयाश्रियौ ॥४६०॥
उदकश्चोदवासश्च कदंबुकसमीपगौ । शिवश्च शिवदेवश्च तयोर्देवौ यथाक्रमं ॥ ४६१ ॥
नगौ शंखमहाशंखौ वडवामुखपार्श्वगौ । शंखाभावुदकश्च स्यादुदवासश्च तत्सुरौ ॥ ४६२ ॥
उदकोऽप्युदवासोऽपि यूपकेसरपार्श्वगौ । रोहितो लोहितांकश्च तत्सुरौ परिकीर्तितौ ॥ ४६३ ॥
योजनानां तु लक्षैका सहस्राणि च षोडश । अंतरं पर्वतानां स्यान्निजपातालमूर्त्तिभिः ॥४६४॥
नागवेलंधराधीशा गिरिमस्तकवर्त्तिषु । वसंति नगरेष्वेते नागैर्वेलंधरैः सह ॥ ४६५ ॥
नागानां च सहस्राणि द्विचत्वारिंशदंबुधौ । लवणाभ्यंतरां वेलां धारयंति नियोगतः ॥ ४६६ ॥
द्वासप्ततिसहस्राणि बाह्ये वेलां जलाकुलां । धारयंति सदा नागा जलक्रीडादृढादराः ॥ ४६७ ॥

अष्टाविंशतिसंख्यानि सहस्राणि यथायथं । अग्रोदकमुदग्रं तु नागानां धारयंति च ॥ ४६८ ॥
द्वादशैव सहस्राणि वारिधावपरोत्तरं । तावत्येव सहस्राणि विस्तृतः सर्वतः समः ॥ ४६९ ॥
गोतमो नामतो द्वीपो गोतमस्तस्य चामरः । सोऽपि कौस्तुभदेवेन परिवारादिभिः समः ॥४७०॥
मर्त्यास्त्वेकोरुकाः पूर्वे दक्षिणे तु विषाणिनः । लांगूलिनोऽपरे च स्युरुत्तरेऽभाषकास्तथा ॥४७१॥
विदिक्षु शशकर्णास्तु चतसृष्वपि भाषिताः । एकोरुकोत्तरा प्राच्योरश्वसिंहमुखाः क्रमात् ॥४७२॥
शष्कुलीकर्णनामानः पार्श्वयोस्तु विषाणिनां । श्वमुखा वानरास्या ये ते लांगूलिकपार्श्वयोः ॥४७३॥
अभाषकांतयोश्चापि शष्कुलीकर्णमानुषाः । गोमुखा मेषवक्त्राः स्युर्विजयार्धोभयांतयोः ॥४७४॥
हिमवत्प्राक्प्रतीच्योः स्युरुल्काकालमुखा नराः । मेघविद्युन्मुखाः प्राच्यप्रतीच्योः शिखरिश्रुतेः॥४७५
आदर्शगजवक्त्राख्या विजयार्धांतयोर्मताः । चतुर्विंशतिरेव स्युर्द्वीपाश्चापि तदाश्रयाः ॥४७६॥
गत्वा पंचशतीं दिक्षु विदिक्ष्वंतरादिक्षु च । पंचाशतं च ते द्वीपाः षट्शती मुखपर्वताः ॥४७७॥
दिग्गताः शतरुंद्राः स्युः पंचविंशतिमद्रिजाः । रुंद्रा पंचशतं द्वीपा विदिक्ष्वंतरादिक्षु च ॥४७८॥
ते पंचनवतं भागं स्वप्रदेशस्य चाप्लुताः । जलाद्योजनमुद्विद्धवेदिकापरिवारिताः ॥४७९॥
तेनैव षोडशाभ्यस्तमुपरिष्टाज्जलावृताः । संकलय्याधरं चोर्द्ध्वं क्षेत्रं वाच्यं जलावृतं ॥४८०॥

जंबूद्वीपस्य यावन्तो द्वीपाः निकटवर्तिनः । तावंतो धातकीखंड—द्वीपस्य लवणोदजाः ॥४८१॥
अष्टादश कुलास्तेषु पल्यायुष्काः कुमानुषाः । एकोरुगाः गुहावासाः मृष्टमृद्भोजनास्तु ते ॥४८२॥
शेषपुष्पफलाहाराः वृक्षमूलनिवासिनः । एकांतराशनाः मृत्वा जायंते भौमभावनाः ॥४८३॥
जंबूद्वीपजगत्या च समुद्रजगतीसमा । अभ्यंतरे शिलापट्टं बहिस्तु-वनमालिका ॥४८४॥
चतुर्गणस्तु विस्तारो द्वीपस्य जलधेस्तथा । सूचीभवेत्त्रिभिर्न्यूनः तदन्ते मण्डलेऽखिले ॥४८५॥
विस्ताररहिता सूची चतुर्व्यासगुणा तु या । तावन्तस्तु भवंत्यस्य जंबूद्वीपसमांशकाः ॥४८६॥
स्युश्चतुर्विंशतिर्भागा लवणद्वीपसंमिताः । षड्गुणास्ते परद्वीपे कालें सप्तचतुर्गुणाः ॥ ४८७ ॥
द्वे सहस्रे शतान्यष्टावशीतिरपि चोत्तराः । जंबूद्वीपसमा भागाः पुष्करद्वीपभाविनः ॥ ४८८ ॥
द्वीपोऽपि धातकीखंडः पर्येति लवणोदधिं । योजनानां चतुर्लक्षा विस्तीर्णो वलयाकृतिः ॥४८९॥
सूचिरभ्यंतरा पंच—लक्षा नव तु मध्यमा । वाह्या त्रयोदश द्वीपो धातकीखंडमंडिते ॥ ४९० ॥
परिधिः पूर्वसूच्यास्तु लक्षाः पंचदशोदिताः एकाशीतिसहस्राणि शतं त्रिंशन्नवाधिकं ॥ ४९१ ॥
स चाष्टाविंशतिर्लक्षा मध्यायाः षट्सहस्रकैः। चत्वारिंशत्सहस्राणि पंचाशद् योजनानि च ॥४९२॥
वाह्यसूच्यास्त्वसौ लक्षाश्चत्वारिंशत्सहैकया । शतानि नव षष्ठ्यैकं सहस्राणि दशापि च ॥४९३॥

पूर्वापरौ महामेरोर्द्वौ मेरू भवतोऽस्य च । इष्वाकारौ विभक्ताग्रौ पर्वतौ दक्षिणोत्तरौ ॥४९४॥
सहस्रयोजनव्यासौ द्वीपव्याससमायतौ । उच्छ्रायेणावगाहेन निषधेन समौ च तौ ॥ ४९५ ॥
क्षेत्राणि भरतादीनि सप्त षट् कुलपर्वताः । हिमवत्पूर्वका द्वीपे तत्रापि परमंदरं ॥ ४९६ ॥
पूर्वैः सहैकनामानः सर्वे नगनदीह्रदाः । समोच्छ्रायावगाहाः स्युस्तेभ्यो द्विगुणविस्तृताः ॥४९७॥
अररंध्राकृतीन्यंकमुखान्यभ्यंतरे बहिः । क्षुरप्राकृतवंति स्युः शैलक्षेत्राणि तानि च ॥ ४९८ ॥
लक्षया पर्वतैरूर्ध्वं सहस्राण्यष्टसप्ततिः । द्विचत्वारिंशदष्टौ च शतानि क्षेत्रमत्र च ॥ ४९९ ॥
षट् योजनसहस्राणि षट् शतानि चतुर्दश । भरतांतरविष्कंभः शतं विंशं नवांशकाः ॥ ५०० ॥
क्षेत्राणां च भवेच्छेदो द्विशती द्वादशोत्तरा । एकोनविंशतिस्तत्र छेदः पर्वतगोचरः ॥ ५०१ ॥
द्वादशैव सहस्राणि तथा पंच शतानि च । एकाशीतिश्च षट् त्रिंशत्कला मध्यमविस्तृतिः॥५०२॥
अष्टादश सहस्राणि पंचशत्यपि सप्त तु । चत्वारिंशद्वाहिर्भागाः पंच पंचाशता शतं ॥ ५०३ ॥
विष्कंभत्रितयं ज्ञेयमाविदेहं चतुर्गुणं । क्रमेण परतो हानिर्यावदैरावतक्षितिः ॥५०४॥
पूर्वस्मात् द्विगुणो व्यासो हिमवत्पूर्वकाद्रिषु । द्वादशष्वपि च द्वीपे तेभ्यः पुष्करनामनि ॥५०५॥
भूभृतोऽर्द्धतृतीयेषु वृक्षावक्षारवेदिकाः । मेरुं वर्ज्य विगाहंते चतुर्भागं निजोच्छ्रितेः ॥५०६॥

षड्गुणः स्वावगाहस्तु कुंडानां विस्तृतिर्भवेत् । नदीहृदावगाहोऽपि पंचाशद्गुणितश्च सः ॥५०७॥
उच्छ्रायश्चैत्यगेहस्य सार्द्धो ज्ञेयः शताहतः । जंबूप्रभृतयस्तुल्या महावृक्षा दशापि ते ॥५०८॥
नद्यः सरांस्यरण्यानि कुंडपद्मा नगा हृदाः । अवगाहैः समाःपूर्वैर्विस्तारैर्द्विगुणाः परैः ॥५०९॥
चैत्यचैत्यालया ये ते वृषभा नाभिपर्वताः । चित्रकूटादयश्चापि तथा कांचनकाद्रयः ॥५१०॥
दिशा गजेंद्रकूटानि यथास्थं वेदिकादयः । व्यासावगाहनोच्छ्रायैः सर्वे द्वीपत्रये समाः ॥५११॥
अर्धयोजनमुद्विद्धं व्यस्तं पंचधनुःशती । प्रत्येकं सर्वकूटानां विदितं रत्नतोरणं ॥५१२॥
अशीतिश्च सहस्राणि चत्वारि च समुच्छ्रयः । चतुर्णामपि मेरूणां परयोर्द्वीपयोर्भवेत ॥५१३॥
सहस्रमवगाढाश्च मेदिनीं ते तु मेरवः । सहस्राणि नवव्यस्ता मूले पंच शतानि च ॥५१४॥
त्रिंशदेव सहस्राणि द्वाचत्वारिंशता सह । तेषामेव विनिर्दिष्टः परिधिर्मूलगोचरः ॥५१५॥
नव चैव सहस्राणि चतुःशतयुतानि तु । चतुर्णामपि मेरूणां भूमौ विष्कंभ इष्यते ॥५१६॥
एकोनत्रिंशदेव स्युः सहस्राणि शतानि च । पंचविंशति सप्तैव परिधिर्वसुधातले ॥५१७॥
सहस्रार्धं च गत्वोर्ध्वं नंदनं भूतिविस्तृतं । पंच पंचाशतं पंचशतीं सौमनसं वनं ॥५१८॥

१—सहस्रनवविस्तारा ।

पांडुकं च सहस्राणि गत्वाष्टाविंशतिः पृथुः । चतुर्णवतिसंयुक्ता योजनानां चतुःशती ॥५१९॥
शतान्यर्द्धचतुर्थानि सहस्राणि नवापि च । नंदने मंदरस्यायं विष्कंभः परिभाषितः ॥५२०॥
सप्तषष्टिसहस्रार्द्धमेकोनत्रिंशदेव च । सहस्राणि परिक्षेपो नंदने मंदराद् वहिः ॥५२१॥
शतान्यर्द्धचतुर्थानि सहस्राण्यष्ट नंदनात् । विना मंदरविष्कंभः स चाभ्यंतर ईरितः ॥५२२॥
षड्विंशतिसहस्राणि पंचाग्रा च चतुःशती । परिधिर्मंदरस्यैष नंदनांतरगोचरः ॥५२३॥
बाह्यस्त्रीणि सहस्राणि विष्कंभोऽष्टौ शतानि च । मेरोः सौमनसे सांतः सहस्रेण विवर्जितः ॥५२४॥
बाह्यस्तस्य सहस्राणि द्वादशैव हि षोडश । मंदरस्य परिक्षेपो वने सौमनसे स्थितः ॥५२५॥
अष्टौ चैव सहस्राणि तथैवाष्टौ शतानि च । चतुःपंचाशदभ्यंतः परिधिस्तस्य तद्वने ॥५२६॥
द्वाषष्ठ्यैकं शतं त्रीणि सहस्राणि च पांडुके । गव्यूतं साधिकं बोध्यः परिधिर्मेरुभूभृतः ॥५२७॥
नंदनात् स मरुद्रोऽद्रिः सहस्राणि दशोपरि । हानिस्तत्र क्रमादेवं वनात्सौमनसादपि ॥५२८॥
दशमो दशमो भागो मूलात्प्रभृति हीयते । प्रदेशांगुलहस्तादिश्चातुर्णां मेरुभूभृतां ॥५२९॥
पुष्करिण्यः शिलाः कूटः प्रासादाश्चैत्यचूलिकाः । समानाः पंचमेरूणां व्यासावगाहनोच्छ्रयैः ॥५३०
शतानि द्वादशैव स्यात्पंचविंशति विस्तृतिः । भद्रशालवनस्यैषा धातकीखंडवर्तिनः ॥५३१॥

लक्षा सप्त सहस्राणि शतान्यष्टौ च दीर्घता । नवसप्ततिरप्यस्य भद्रशालवनस्य तु ॥५३२॥
षट् पंचाशत्सहस्राणि तिस्रो लक्षा शतद्वयं । सप्तविंशतिरायामो गंधमादनविद्युतोः ॥५३३॥
नवषष्टिसहस्राणि लक्षाः पंच शतद्वयं । एकोनषष्टिरायामो माल्यवत्सौमनस्यगः ॥५३४॥
द्वे लक्षे च सहस्राणि त्रयोविंशतिरेव च । कुलाद्यंते कुरुव्यासः शतं पंचाशदष्ट च ॥५३५॥
तिस्रो लक्षाः सहस्राणि नवतिः सप्त चाष्ट तु । शतानि सप्त नवतिर्भागा द्वानवतिस्त्वयं॥५३६॥
वक्रायामः कुरूणां स्यादामेरोराकुलाचलात् । पूर्वार्धेऽपि च पश्चार्द्धे धातकीखंडमंडले ॥५३७॥
तिस्रो लक्षाः सहस्राणि षट्षष्टिः षट् शतान्ययं । ऋज्वायामः कुरूणां स्यादशीतिश्चोभयांतयोः॥५३८
प्रतिमेरु विदेहाश्च द्वात्रिंशत्पूर्ववन्मताः । पूर्वे पूर्वविदेहाख्या अपरे त्वपरे स्थिताः ॥५३९॥
पूर्वस्मान्मंदरात्पूर्वः कच्छाजनपदोऽवधिः । अपरादपरः सूच्या विजंयो गंधमालिनी ॥५४०॥
एकादशैव लक्षा हि सा सूचिः पंचविंशतिः । सहस्राणि शते तस्मादष्टापंचाशता सह ॥५४१॥
लक्षाश्चास्याः परिक्षेपः पंचत्रिंशत्प्रकाशितः । द्वाषष्टिश्चाष्टपंचाशत्सहस्राणि प्रमाणतः ॥५४२॥
पश्चादिर्गृह्यते सूचीमंगलावत्याधिष्ठिता । सा पूर्वापरयोर्मेर्वोरंतराले तु या स्थिता ॥५४३॥

१—विज्ञेय इत्यपि पाठः ।

लक्षाः षट् च सहस्राणि चतुःसप्ततिरष्ट च । शतानि योजनानां सा द्वाचत्वारिंशता सह ॥५४४॥
एकविंशतिलक्षाश्च चतुस्त्रिंशत्सहस्रकैः । त्रिंशदष्टौ पुनस्तस्याः सूक्ष्मा परिधिरिष्यते ॥५४५॥
व्यापी विजयविस्तारः सहस्राणि नवात्र हि । षट्शती त्रितयं च स्यादष्टभागास्त्रयस्तथा ॥५४६॥
स्वायामःक्षेत्रवक्षारविभंगसरितां त्रिधा । सदेवरमणानां स्यादादिमध्यांतभेदतः ॥ ५४७ ॥
कच्छाख्यविजयायामः पंचलक्षाः सहस्रकैः । नवभिः पंचशत्याधः सप्तत्या द्विशतांशकैः ॥५४८॥
विजयायामवृद्ध्याद्यो युक्तो मध्योऽस्य जायते । मध्येऽपि च तयायामो युक्तोंऽत्यो द्व्यादिकेष्वपि॥
पूर्वस्य विजयस्याद्रेरायामः सरितोऽपि वा । अंत्यो यः स पुरस्याद्यो विजयाद्यो व्यवस्थितः॥५५०॥
विजयायामवृद्धिश्च सहस्रं तु चतुर्गुणं । शतानि पंच चाशीतिश्चत्वारि च समीरिता ॥५५१॥
वक्षारायामवृद्धिस्तु सप्तसप्ततिसंयुता । चतुःशतीतिसंख्याता षष्टिश्च सकलाः कलाः ॥ ५५२ ॥
सा विभंगनदीवृद्धिः शतमेकोनविंशतिः । कलाश्चैव द्विपंचाशदिति वृद्धिविदो विदुः ॥ ५५३ ॥
सप्तशत्या सहस्रे द्वे तथाशीतिर्नवाधिका । देवारण्यायते वृद्धिर्वर्ण्या द्वानवतिः कलाः ॥ ५५४ ॥
स्थानक्रमात्त्रिकं द्वे च षट् चत्वारि नवाद्विकं । पद्माजनपदायामः शतं षण्णवतिः कलाः ॥ ५५५ ॥
आद्यो यो वृद्धिहीनोऽसौ मध्यो मध्योंऽत एव हि । वक्षारक्षेत्रनद्यादौ वेद्यमेवं यथाक्रमं ॥ ५५६ ॥

अन्योन्याभिमुखादेशा वक्षारनगासिंधवः । तटयोः सदृशायामः शीताशीतोदयोः स्थिताः ॥ ५५७ ॥
पूर्वान्मंदरतः पूर्वैर्विदेहैरपरैरिमैः । पाश्चात्यादपरे पूर्वे ते समाः स्युर्यथाक्रमं ॥ ५५८ ॥
चत्वारिंशच्च चत्वारस्तद्‌द्वीपे शतमेव च । जंबूद्वीपसमाः खंडा गणितस्य समं पुनः ॥ ५५९ ॥
कोटीनामेकलक्षा स्यात्सहस्राणि त्रयोदश । शतान्यष्टौ तथैका सा चत्वारिंशच्च कोटयः ॥ ५६० ॥
नवाभिर्नवतिर्लक्षा पंचाशत्सप्तभिः सह । सहस्राणि शतैः षड्भिरेकषष्टण्टयुत्तरैस्तथा ॥ ५६१ ॥
द्वीपं च धातकीखंडं परिक्षिपति सर्वतः । द्वीपाद्द्विगुणविस्तारः कालः कालोदसागरः ॥ ५६२ ॥
तस्यैकनवतिर्लक्षाः सहस्राणि च सप्ततिः । षट् शती साधिका पंच पर्यंतपरिधिर्मतः ॥ ५६३ ॥
षट् शतानि च कालोदे द्वासप्ततिरितस्ततः । जंबूद्वीपसमाः खंडा पंडितैरिह पिंडिताः ॥५६४॥
पंच लक्षास्तु कोटीनामेकात्रिंशत्सहस्रकैः । शतद्वयं द्विषाष्टिश्च कोटयः प्रकटाः स्थिताः ॥ ५६५ ॥
लक्षाश्चैव चतुःषष्टिर्नवषष्टिसहस्रकैः । कालोदधावशीतिश्च गणितस्य पदं मतं ॥ ५६६ ॥
कालोदे दिशि निश्चेयाः प्राच्यामुदकमानुषाः । अपाच्यामश्वकर्णास्तु प्रतीच्यां पक्षिमानुषाः ॥५६७॥
उदीच्यां गजकर्णाश्च शूकरास्या विदिक्षु तु । उष्ट्रकर्णाश्च गोकर्णाः प्राच्येभ्यो दाक्षिणोत्तराः ॥५६८॥
गजकर्णाश्वकर्णानां मार्जारास्यास्तु पार्श्वयोः । पक्षिणां गजवक्त्राश्च कर्णप्रावरणाः स्थिताः ॥५६९॥

शिशुमारमुखाश्चैव मकराभमुखास्तथा । विजयार्द्धद्वयोपांत्ये कालोदजलधौ स्थिताः ॥ ५७० ॥
मत्स्या हिमवतोरग्रे वृकव्याघ्रमुखाः स्थिताः । शृगालाक्षमुखाश्चाग्रे शिखरिश्रुतिभूभृतोः ॥५७१॥
स्थिता द्वीपिमुखाश्चाग्रे भृंगराराजतागयोः । वाह्याभ्यंतरयोरंतर्जगत्योर्द्वैप्यमानवाः ॥ ५७२ ॥
आयुर्वर्णगृहाहारैः समा गत्यापि लावणैः । सहस्रमवगाढास्ते द्वीपाश्छिन्नतटांबुधौ ॥ ५७३ ॥
कालोदस्थाः प्रवेशेन द्वीपाः पंचशताधिकाः । मता द्विगुणविस्तारा लवणेभ्यः कुमानुषैः ॥ ५७४ ॥
चतुर्विंशतिरंतस्थास्तावंतश्च वहिः स्थिताः । लवणोदास्थितैः सर्वैः द्वीपाः षण्णवतिस्तु ते ॥ ५७५ ॥
कालोदं पुष्करद्वीपः परिष्कृत्य द्विमंदरः । स्थितो द्विगुणविष्कंभः पृथुपुष्करलांछनः ॥ ५७६ ॥
मानुषक्षेत्रमर्यादा मानुषोत्तरभूभृता । परिक्षिप्तस्तु तस्यार्द्धः पुष्करार्द्धस्ततो मतः ॥ ५७७ ॥
इष्वाकाराद्रिणाप्येष दाक्षिणेनोत्तरेण च । विभक्तो भिद्यते द्वेधा स पूर्वश्चापि पश्चिमः ॥५७८॥
प्रत्येकं मेरुमध्यौ तौ धातकीखंडखंडवत् । क्षेत्रपर्वतनद्याद्यैः पूर्वनामाभिरन्वितौ ॥ ५७९ ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि सहस्रं पंचशत्यपि । सप्ततिर्नव चांशास्तु त्रिसप्तत्युत्तरं शतं ॥ ५८० ॥
भरतांतरविष्कंभो मध्यो द्वादशयोजनैः । त्रिपंचाशत्सहस्राणि शतैः पंचभिरेव च ॥ ५८१ ॥

१ तथा च मकरामुखाः । इत्यपि पाठः

भागाश्चास्य शतं प्रोक्ताः नैवातिश्च नवापि च। वाह्योऽपि भाष्यते तस्य विष्कंभो भरतस्य तु॥५८२॥
पंचषष्टिसहस्राणि योजनानि चतुःशतैः। षट् चत्वारिंशदेतानि भागाश्चासौ त्रयोदश ॥ ५८३ ॥
आविदेहं च विष्कंभाद् वर्षाद् वर्षं चतुर्गुणं। गणितज्ञैर्विनिर्दिष्टं पर्वतादपि पर्वतः ॥ ५८४ ॥
एका कोटिः पुनर्लक्षा द्वाचत्वारिंशदेव ताः। त्रिंशच्चापि सहस्राणि योजनानां शतद्वयं ॥५८५॥
साधिकैकान्नपंचाशद् योजनानि वहिर्भवः। पुष्करार्धस्य सर्वस्य परिधिः परिभाषितः ॥५८६॥
तिस्रो लक्षाः सहस्राणि पंच पंचाशदद्रिभिः। रुद्धं क्षेत्रं शतैः षड्भिरशीत्या चतुरंतया ॥५८७॥
वैताड्या वृत्तवेदाड्यास्तथा वर्षधरादयः। निजोत्सेधावगाहाभ्यां तैर्जंबूद्वीपजैः समाः ॥५८८॥
धातकीखंडकेभ्यस्तु विष्कंभा द्विगुणा मताः। पुष्करार्द्धे समौ प्राग्भ्यामिष्वाकारौ च मंदरौ ॥५८९॥
मानुषक्षेत्रविष्कंभश्चात्वारिंशच्च पंच च। लक्षास्त्वर्धतृतीयौ तौ द्वीपौ वार्धिद्वयान्वितौ ॥५९०॥
योजनानां सहस्रं तु सप्तशत्येकविंशतिः। उच्छ्रायः सच्छ्रियस्तस्य मानुषोत्तरभूभृतः ॥ ५९१ ॥
सक्रोशोऽपि च सत्रिंशदवगाहश्चतुःशती। द्वाविंशत्या सहस्रं तु मूलविस्तार इष्यते ॥ ५९२ ॥
त्रयोविंशतियुक्तानि मध्ये सप्त शतानि तु। विस्तारोऽस्योपरि प्रोक्तश्चतुर्विंशा चतुःशती ॥५९३॥

१ नवत्याऽपि इत्यपिपाठः।

कोटी तु परिधिर्लक्षा द्विचत्वारिंशदस्य च । षड्त्रिंशच्च सहस्राणि सप्तशत्या त्रयोदश ॥ ५९४॥
अंतश्छिन्नतटो भाति वहिर्वृद्धिक्रमोन्नतिः । सोऽभ्यंतरसुखासीनमृगाधिपतिविक्रमः ५९५ ॥
चतुर्दशगुहाद्वार दंतनिर्गमनो गिरिः । पुष्करो नंदयत्येष पूर्वापरनदीवधूः ॥ ५९६ ॥
पंचाशद्योजनायामास्तदर्द्धव्याससंगताः । अर्धयोजनसंवृद्धसप्तत्रिंशत्समुच्छ्रिताः ॥ ५९७ ॥
अष्टोच्छ्रायचतुर्व्यासगुहद्वारोपशोभिताः । चत्वारो मूर्ध्नि तस्याद्रेश्चतुर्दिक्षु जिनालयाः ॥ ५९८ ॥
तत्प्रदक्षिणवृत्तानि प्राच्यादिषु दिशासु च । इष्टदेशनिविष्टानि कूटान्यष्टादशाचले ॥ ५९९ ॥
तानि पंचशतोत्सेधमूलविस्तारवंति तु । शते चार्द्धतृतीये द्वे विस्तृतान्यपि चोपरि ॥ ६०० ॥
त्रीणि त्रीणि हि कूटानि चतुर्दिक्षु विदिक्षु तु । चत्वारि वज्रमैशान्यामाग्नेय्यां तपनीयकं ॥६०१॥
प्राच्यां दिशि तु वैडूर्ये यशस्वान वसति प्रभुः । अश्मगर्भे यशस्कांतः सुपर्णानां यशोधरः ॥६०२॥
सौगंधिके ततोऽपान्यां रुचके नंदनस्तथा । लोहिताक्षे पुनः कूटे नंदोत्तर इतीरितः ॥ ६०३ ॥
तस्यामशनिघोषोऽपि वसत्यंजनके दिशि । सिद्धश्चांजनमूले तु प्रतीच्यां कनके पुनः ॥ ६०४ ॥
क्रमेण मानुषाख्यस्तु कूटे रजतनामनि । उदीच्यां स्फुटिके कूटे सुदर्शन इति श्रुतः ॥ ६०५ ॥
अंके मोघः प्रवालेऽस्यां सुप्रवृद्धो वसत्यसौ । तपनीये सुरस्वातिर्वज्रे तु हनुमानपि ॥ ६०६ ॥

निषधस्पृष्टभागस्थे रत्नाख्ये पूर्वदक्षिणे । वेणुदेव इति ख्यातः पन्नगेंद्रो वसत्यसौ ॥ ६०७ ॥
नीलाद्रिस्पृष्टभागस्थे पूर्वोत्तरदिगावृते । सर्वरत्ने सुपर्णेंद्रो वेणुदारी वसत्यसौ ॥६०८॥
निषधस्पृष्टभागस्थं दाक्षिणापरदिग्गतं । बेलबं चातिबेलंबो वरुणेंद्रो वसत्यसौ ॥६०९॥
नीलाद्रिस्पृष्टभागस्थमपरोत्तरदिग्गतं । प्रभंजनं तु तन्नामा वातेंद्रोऽधिवसत्यसौ ॥६१०॥
इत्यनेकाद्भुताकीर्णः सौवर्णो मानुषाक्षितेः । प्राकार इव भात्येष मानुषोत्तरपर्वतः ॥६११॥
विद्याधरा न गच्छंति नर्षयः प्राप्तलब्धयः । समुद्घातोपपाताभ्यां विनास्मादुत्तरं गिरेः ॥६१२॥
जंबूद्वीपं यथा क्षारः कालोदोऽब्धिः परं यथा । द्वीपं तथैव पर्येति पुष्करोदोऽपि पुष्करं ॥६१३॥
वारुणीवरनामानं वारुणीवरसागरः । ततः क्षीरवरद्वीपं ख्यातः क्षीरोदसागरः ॥६१४॥
ततो घृतवरद्वीपं षष्ठं घृतवरोदधिः । ततश्चेक्षुवरद्वीपं पर्येतीक्षुरसोदधिः ॥६१५॥
नंदीश्वरवरद्वीपं नंदीश्वरवरोदधिः । अष्टमं चाष्टमः ख्यातः परिक्षिपति सर्वतः ॥६१६॥
अरुणं नवमं द्वीपं सागरोऽरुणसंज्ञकः । अरुणोद्भासनामानमरुणोद्भाससागरः ॥६१७॥
द्वीपं तु कुंडलवरं स कुंडलवरोदधिः । ततः शंखवरद्वीपं स शंखवरसागरः ॥६१८॥
रुचकादिवरद्वीपं रुचकादिवरोदधिः । भुजगादिवरद्वीपं भुजगादिवरोदधिः ॥६१९॥

द्वीपं कुशवरं नाम्ना ख्यातः कुशवरोदधिः । द्वीपं क्रौंचवरं चापि स क्रौंचवरसागरः ॥६२०॥
द्विगुणद्विगुणव्यासा यथैते द्वीपसागराः । नामभिः षोडश ख्याताः असंख्येयास्ततः परे ॥६२१॥
आषोडशादतीत्यान्यानसंख्यान् द्वीपसागरान् । द्वीपो मतः शिलोभिख्यो हरितालस्ततः परः॥६२२
सिंदूरः श्यामको द्वीपस्तथैवांजनसंज्ञकः । द्वीपो हिंगुलकाभिख्यस्ततो रूपवरः परः ॥६२३॥
सुवर्णवरनामाऽतो द्वीपो वज्रवरस्ततः । वैडूर्यवरसंज्ञश्च परो नागवरस्तथा ॥ ६२४ ॥
द्वीपो भूतवरश्चान्यस्ततो यक्षवरस्ततः । ख्यातो देववरो द्वीपः परश्चेंदुवरस्ततः ॥ ६२५ ॥
स्वयंभूरमणाभिख्यौ सर्वान्त्यौ द्वीपसागरौ । षोडशैतेऽब्धिभिः सार्द्धं स्वनामसमनामभिः॥६२६॥
राशिद्वयांतराले स्युरसंख्या द्वीपसागराः । अनादिशुभनामानः सांतरस्थितमूर्त्तयः ॥ ६२७ ॥
लवणो लवणस्वादस्तन्नामा वारुणीरसः । घृतक्षीररसौ द्वौ च कालोदांत्यौ शुभोदकौ ॥ ६२८ ॥
मधूदकोभयास्वादः पुष्करोदः स्वभावतः । शेषास्त्विक्षुरसास्वादाः सर्वेऽपि जलराशयः ॥६२९॥
लवणोदे महामत्स्याः सम्मूर्छनजमूर्त्तयः । नवयोजनदीर्घाः स्युस्तीरे मध्ये द्विरायताः ॥ ६३०॥
नदीमुखेषु कालोदे ते त्वष्टादशयोजनाः । षट्त्रिंशद्योजना मध्ये गर्भजास्तु तदर्धकाः ॥ ६३१ ॥

स्वयंभूरमणेऽप्यादौ ते पंचशतयोजनाः । सहस्रयोजना मध्ये मत्स्यौघा नान्यासिंधुषु ॥६३२॥
मानुषोत्तरपर्यंता जंतवो विकलेंद्रियाः । अंत्यद्वीपार्द्धतः संति परस्ताच्च यथा परे ॥६३३॥
द्वीपो वापि समुद्रो वा विस्तारेणैकलक्षया । सर्वेभ्यः समतीतेभ्यः परस्तेभ्योऽतिरिच्यते ॥६३४॥
अर्धमंदरविष्कंभात् स्वयंभूरमणांबुधेः । अंतं प्राप्य स्थितायास्तु रज्वा मध्यमिदं विदुः॥६३५॥
गुणितं पंचसप्तत्या सहस्रमवगाह्य तु । स्वयंभूरमणांभोधिं रज्जुमध्यमवस्थितं ॥६३६॥
अनावृत्तप्रभुर्यक्षो जंबूद्वीपस्य रक्षकः । सुस्थितो लवणांभोधेरधिपः प्रतिपादितः ॥६३७॥
धातकीखंडनाथौ तु प्रभासप्रियदर्शनौ । कालश्चापि महाकालः कालोदजलधीश्वरौ ॥६३८॥
पद्मश्च पुंडरीकश्च पुष्करद्वीपनामकौ । चक्षुष्मांश्च सुचक्षुश्च मानुषोत्तरशैलयोः ॥६३९॥
श्रीप्रभश्रीवरौ नाथौ पुष्करोदस्य वारिधेः । वारुणीवरभूमीशौ वरुणो वरुणप्रभः ॥ ६४०॥
वारुणीवरवार्धीशौ मध्यमध्यमसंज्ञकौ । पांडुरः पुष्पदंतश्च तौ क्षीरवरभूमिपौ ॥ ६४१ ॥
वार्धेः क्षीरवरस्येशौ विमलो विमलप्रभः । प्रभू घृतवरद्वीपे सुप्रभश्च महाप्रभः ॥ ६४२ ॥
कनकः कनकाभश्च नाथौ घृतवरोदधेः । तथैवेक्षुरसद्वीपे पूर्णपूर्णप्रभौ सुरौ ॥ ६४३ ॥

१—'मत्स्यौघाः' इत्यपि पाठः ।

देवौ गंधमहागंधौ नाथाविक्षुरसोदधेः । नंदीश्वरवरद्वीपे नंदिनंदिप्रभौ तथा ॥ ६४४ ॥
प्रभू भद्रसुभद्रौ तु नंदीश्वरवरोदधेः । अरुणद्वीपपौ देवावरुणश्चारुणप्रभः ॥ ६४५ ॥
सुगंधसर्वगंधाख्यावरुणाब्धेरधीश्वरौ । द्वौ द्वौ द्वीपाधिपावेवं परतो दक्षिणोत्तरौ ॥ ६४६ ॥
कोटीशतं त्रिपष्टयग्रमशीतिश्चतुरुत्तराः । लक्षा नंदीश्वरद्वीपो विस्तीर्णो वर्णितो जिनैः ॥६४७॥
पट्त्रिंशच्च सहस्रं च कोटयो नियुतानि च । द्वादशैव सहस्रे द्वे तथा सप्त शतानि च ॥ ६४८ ॥
योजनानि त्रिपंचाशदांतरः परिधिः स च । नदीश्वरवरद्वीपसंभवी परिभापितः ॥ ६४९ ॥
द्वासप्तत्युत्तरं कोटी सहस्रं द्वितयं तथा । नियुतानि त्रयास्त्रिंशन्नवत्या सहितं शतं ॥ ६५० ॥
पंचाशच्च सहस्राणि चतुर्भिरधिकानि च । वहिः परिधिरे[1] स्यादष्टमद्वीपसंभवी ॥ ६५१ ॥
मध्ये तस्य चतुर्दिक्षु चत्वारोऽञ्जनपर्वताः । तुंगाश्चतुरशीतिं ते व्यस्ताश्चाधःसहस्रगाः ॥ ६५२ ॥
पटहाकृतयश्चित्रा वज्रमूलाः प्रभोज्वलाः । भ्राजंते पर्वताः सर्वे सर्वतस्ते मनोहराः ॥ ६५३ ॥
सुकृष्णशिखराः शैलास्ते जांबूनदमूर्त्तयः । विकिरंति परां कांतिं दिङ्मुखेपु यथायथं ॥ ६५४ ॥
गत्वा योजनलक्षां स्युर्महादिक्षु महीभृतां । चतस्रस्तु चतुष्कोणा वाप्यः प्रत्येकमक्षयाः ॥६५५॥

---
१ लक्षाणि ।

सहस्रपत्रसंछन्नाः स्फटिकस्वच्छवारयः । विचित्रमणिसोपाना विनक्राद्याः सवेदिकाः ॥६५६॥
अवगाहः पुनस्तासां योजनानां सहस्रकं । आयामोऽपि च विष्कंभो जंबूद्वीपप्रमाणकः ॥६५७॥
नंदा नंदवती चान्या वापी नंदोत्तरा परा । नंदीघोषा च पूर्वाद्रेर्दिक्षु प्राच्यादिषु स्थिताः ॥६५८॥
सौधर्मेंद्रस्य भोग्याद्या द्वितीयैशानभोगिनः । तृतीया चमरेंद्रस्य चतुर्थी तु बलेरसौ ॥६५९॥
विजया वैजयंती च जयंती चापराजिता । दाक्षिणांजनशैलस्य दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ॥६६०॥
शक्रस्य लोकपालानां पूर्वा तु वरुणस्य सा । क्रमाद् यमस्य सोमस्य भोग्या वैश्रवणस्य च ॥६६१॥
पाश्चात्त्यांजनशैलस्य पूर्वादिदिगवस्थिताः । अशोका सुप्रबुद्धा च कुमुदा पुंडरीकिणी ॥६६२॥
भोग्याद्या वेणुदेवस्य वेणुतालेरतः परा । धरणस्य तृतीया तु भूतानंदस्य चोत्तरा ॥६६३॥
उदीच्यांजनशैलस्य प्राचाऽऽद्या सुप्रभंकरा । सुमनाश्च दिशासु स्यादानंदा च सुदर्शना ॥६६४॥
ऐशानलोकपालस्य वरुणस्य यमस्य च । सोमस्य च कुबेरस्य च भोग्यास्तास्तु यथाक्रमं ॥६६५॥
पंचषष्टिसहस्राणि चत्वारिंशच्च पंच च । अंतरं षोडशानां स्यादांतरं योजनानि तु ॥६६६॥
मध्यांतराणि लक्षैका चत्वारि च सहस्रकैः । द्वियोजनाधिकानि स्युस्तासां वै षट् शतानि च ॥६६७॥

१–'ऽमिधा' इत्यपि ।

वाह्यांतराणि लक्षे द्वे त्रयोविंशतिरेव च । सहस्राणि तथैव स्युरेकषष्ट्या च षट्शती ॥६६८॥
तासां मध्येषु वापीनां जांबूनदमयाः स्थिताः । षोडशार्जुनमूर्धानो नाम्ना दधिमुखाद्रयः ॥६६९॥
सहस्रमवगाढास्तु तदेव दशसंगुणं । पटहाकृतयो व्यस्ता व्यायताश्च समुच्छ्रिताः ॥६७०॥
परितस्ताश्चतस्रोऽपि वापीर्वनचतुष्टयं । प्रत्येकं तत्समायामं तदर्द्धव्याससंगतं ॥६७१॥
प्रागशोकवनं तत्र सप्तपर्णवनं त्वपाक् । स्याच्चंपकवनं प्रत्यक् चूतवृक्षवनं ह्युदक् ॥६७२॥
वापी कोणसमीपस्था नगा रतिकराभिधाः । स्युः प्रत्येकं तु चत्वारः सौवर्णाः पटहोपमाः ॥६७३॥
गाढाश्चार्द्धतृतीयं ते योजनानां शतद्वयं । सहस्रोत्सेधविस्तारव्यायामव्ययवार्जिताः ॥६७४॥
तत्राभ्यंतरकोणस्था द्वात्रिंशत्सेविताः सुरैः । द्वात्रिंद्वाह्यकोणस्थाः प्रत्येकं त्वेकचैत्यकाः ॥६७५॥
तथैवांजनका ज्ञेया नगा गृहमुखास्तथा । एकैकाजिनगेहेन पवित्रीकृतमस्तकाः ॥६७६॥
प्राङ्मुखास्ते शतायामाः पंचाशद् व्यासयोगिनः । उत्सेधेन गृहा जैनाः पंचसप्ततियोजनाः ॥६७७ ।
अष्टोत्सेधचतुर्व्यासगाहात्रिद्वारभास्वराः । ते द्विपंचाशदाभांति नंदीश्वरजिनालयाः ॥६७८॥
पंचचापशतोत्सेधा रत्नकांचनमूर्त्तयः । प्रतिमास्तेषु राजंते जिनानां जितजन्मनां ॥६७९॥
फाल्गुनाष्टाह्निकाद्येषु प्रतिवर्षं तु पूर्वसु । शक्राद्याः कुर्वते पूजां गीर्वाणास्तेषु वेश्मसु ॥६८०॥

पूर्वाख्यातचतुःषष्टिवनखंडांतरस्थिताः । प्रासादास्तु चतुःषष्टिर्वननामसुराश्रिताः ॥६८१॥
द्विषष्टियोजनोत्सेधा एकत्रिंशतमायताः । विस्तृताश्च पुरोद्दिष्टप्रमाणद्वारकाः पुनः ॥६८२॥
परौ नंदीश्वरांभोधेररुणद्वीपसागरौ । अंधकारः पुनः सिंधोर्ब्रह्मलोकांतमाश्रितः ॥६८३॥
मृदंगसदृशाकाराः कृष्णराज्यो विजृंभिताः। अष्टौ ताश्च घनाकारा वहिस्तस्या व्यवस्थिताः॥६८४॥
अस्मिन्नल्पर्द्धयो देवा दिग्मूढाश्चिरमासते । महार्द्धिकसुरैः सार्धं कुर्युस्तद्वार्धिलंघनं ॥ ६८५ ॥
यत्कुंडलवरो द्वीपस्तन्मध्ये कुंडलो गिरिः । वलयाकृतिराभाति संपूर्णयवराशिवत् ॥ ६८६ ॥
सहस्रमवगाढोऽस्य द्विचत्वारिंशदुच्छ्रितिः । योजनानां सहस्राणि मणिप्रकरभासिनः ॥ ६८७ ॥
सहस्रं विस्तृतिस्त्रेधा दशसप्तचतुर्गुणं । द्वाविंशं च त्रयोविंशं चतुर्विंशं प्रभृत्यधः ॥ ६८८ ॥
प्रत्येकं तस्य चत्वारि पूर्वाद्याशासु मूर्धनि। भांति षोडश कूटानि सेवितानि सुरैः सदा ॥६८९॥
पूर्वस्यां त्रिशिरा वज्रे दिशि पंचाशिराः सुरः। कूटे वज्रप्रभे ज्ञेयः कनके च महाशिराः ॥६९०॥
महाभुजोऽपि तस्यां स्यात् कूटे तु कनकप्रभे । पद्मपद्मोत्तरोऽपाच्यां रजते रजतप्रभे ॥ ६९१ ॥
सुप्रभे तु महापद्मो वासुकिश्च महाप्रभे। अपाच्यामेव वाच्यौ तौ प्रतीच्यां तु सुरा इमे ॥ ६९२ ॥
हृदयांतास्थिरोऽप्यंके महानंकप्रभेऽप्यसौ । श्रीवृक्षो मणिकूटे तु स्वस्तिकश्च मणिप्रभे ॥ ६९३ ॥

सुंदरश्च विशालाक्षः स्फुटिके स्फुटिकप्रभे । महेंद्रे पांडुकस्तुर्यः पांडरो हिमवत्युदक् ॥ ६९४ ॥
येऽमी षोडश नागेंद्राः सर्वे पल्योपमायुषः । यथायथं स्वकूटेषु प्रासादेषु वसंति ते ॥ ६९५ ॥
दिशि प्राच्यां प्रतीच्यां च कुंडलाचलमस्तके । तद्द्वीपाधिपतेर्वासौ द्वे कूटे प्रकटे तयोः॥ ६९६ ॥
उच्छ्रायो मूलविस्तारो योजनानां सहस्रकं । अग्रे पंचशती मध्ये पंचाशत् सप्तशत्यपि ॥ ६९७ ॥
तस्यैवोपरि शैलस्य महादिक्षु जिनालयाः । चत्वारः सदृशा मानैरंजनाद्रिजिनालयैः ॥ ६९८ ॥
त्रयोदशस्तु यो द्वीपो रुचकादिवरोत्तरः । तन्नामा तस्य मध्यस्थः सर्वतो वलयाकृतिः ॥ ६९९ ॥
सहस्रमवगाहः स्यादशीतिश्चतुरुत्तरा । सहस्राण्युच्छ्रितिर्व्यासो द्विचत्वारिंशदस्य तु ॥७००॥
सहस्रयोजनव्यासं दिक्षु पंचशतोच्छ्रितं । शिखरे तस्य शैलस्य भाति कूटचतुष्टयं ॥७०१॥
नद्यावर्त्तामरः प्राच्यां पद्मोत्तर इतीरितः। स्वहस्ती हस्तिकेऽपाच्यां श्रीवृक्षे नीलकोऽपरे ॥७०२॥
उत्तरे च सुरः प्रोक्तो वर्धमानेंऽजनागिरिः। चत्वारो दिग्गजेंद्राख्यास्तेऽपि पल्योपमायुषः॥७०३॥
तस्यैवोपरि पूर्वस्यां कूटानामष्टकं दिशि । पूर्वोक्तकूटतुल्यं तु दिक्कुमारीभिराश्रितं ॥७०४॥
नैर्ऋत्ये विजया देवी वैजयंती च कांचने । जयंती कनके कूटे प्राच्यरिष्टेऽपराजिता ॥७०५॥
नंदा नंदोत्तरा चोभे ते दिक्स्वास्तिकनंदने । आनंदाप्यंजने नांदी वर्धनांजनमूलके ॥७०६॥

एतास्तीर्थकरोत्पत्तौ दिक्कुमार्यः सपर्यया। मातुरंतेऽवतिष्ठंते भास्वद्भृंगारपाणयः ॥७०७॥
अमोघे सुस्थिताऽपाच्यां सुप्रबुद्धे सुपूर्विका। प्रणिधिः सुप्रबुद्धाऽपि मंदरे परिकीर्तिता ॥७०८॥
दिक्कुमारी तथा ज्ञेया विमलेऽपि यशोधरा। लक्ष्मीमतीति रुचके कीर्त्तिमत्यपि कीर्तिता ॥७०९॥
दिक्कुमारी प्रसिद्धाऽसौ रुचकोत्तरवासिनी। चंद्रे वसुंधरा चित्रा सुप्रतिष्ठे प्रतिष्ठिता ॥७१०॥
अष्टौ तीर्थकरोत्पत्तावेतास्तुष्टाः समागताः। मणिदर्पणधारिण्यस्तन्मातरमुपासते ॥७११॥
अपरस्यामिलादेवी लोहिताख्ये सुरा पुनः। जगत्कुसुमकूटे स्यात् पृथिवी नालिनी तथा ॥७१२॥
पद्मे पद्मावती ज्ञेया कुमुदे कांचनापि च। कूटे सौमनसाभिख्ये देवी नवमिका श्रुतिः ॥७१३॥
शीतापि च यशःकूटे भद्रकूटे च भद्रिका। इमा शुभ्रातपत्राणि धारयंत्यथ्रकासते ॥७१४॥
स्फटिके लंबुसा त्वंके मिश्रकेशी व्यवस्थिता। तथैवांजनके ज्ञेया कुमारी पुंडरीकिणी ॥७१५॥
वारुणी कांचनाख्ये स्यादाशाख्यो रजते तथा। कुंडले ह्रीरिति ज्ञाता रुचके श्रीरितीरिता॥७१६॥
धृतिः सुदर्शने देवी दिक्कुमार्य इमाः पुनः। गृहीतचमरा जैनीं मातरं पर्युपासते ॥ ७१७ ॥
दिक्षु चत्वारि कूटानि पुनरन्यानि दीप्तिभिः। दीपिताशांतराणि स्युः पूर्वादिषु यथाक्रमं॥७१८॥
पूर्वस्यां विमले चित्रा दक्षिणस्यां तथा दिशि। देवी कनकचित्राख्या नित्यालोकेऽवतिष्ठते॥७१९॥

त्रिशिरा इति देवी स्यादपरस्यां स्वयंप्रभे। सूत्रामणिरुदीच्यां च नित्योद्योते वसत्यसौ ॥७२०॥
विद्युत्कुमार्य एतास्तु जिनमातृसमीपगाः। तिष्ठंत्युद्योतकारिण्यो भानुदीधितयो यथा ॥७२१॥
पूर्वोत्तरस्यां वैडूर्ये रुचका विदिशीरिता। तथा दक्षिणपूर्वस्यां रुचके रुचकोज्वला ॥ ७२२ ॥
दक्षिणापरदिश्यंते रुचकाभा मणिप्रभे। रुचकोत्तमकेऽन्यस्यां दिशि स्याद् रुचकप्रभा ॥७२३॥
एतास्तु दिक्कुमारीणां स्युमर्हत्तारिका वराः। विदिक्षु पुनरन्यानि चतुःकूटान्यमूनि[1] च ॥७२४॥
पूर्वोत्तरे तु विजया रत्न रत्नप्रभे पुनः। दिशि दक्षिणपूर्वस्यां वैजयंती प्रभाषिता ॥ ७२५ ॥
जयंती सर्वरत्ने तु दक्षिणापरदिग्गते। रत्नोच्चयेऽपि शेषायां दिशि स्यादपराजिता ॥ ७२६ ॥
एता विद्युत्कुमारीणां स्युर्महत्तारिका इमाः। तीर्थकृज्जातकर्माणि कुर्वंत्यष्टाविहागताः ॥ ७२७ ॥
चतुर्दिक्षु नगस्योर्द्ध्वे चत्वार्यायतनानि च। अंजनालयतुल्यानि प्राङ्मुखानि जिनेशिनां ॥७२८॥
सविदिक्दिक्कुमारीणां वासकूटैर्जिनालयैः। नित्यालंकृतमूर्धासौ राजते रुचकालयः ॥ ७२९ ॥
स्वयंभूरमणद्वीपमध्यदेशस्थितो गिरिः। स्वयंप्रभ इति ख्यातो भ्राजते वलयाकृतः ॥ ७३० ॥
मानुपोत्तरशैलस्य मध्ये तस्य च भूभृतः। भोगभूमिप्रतीभागास्तिरश्चां द्वीपवासिनां ॥७३१॥

१—'अमून्यपि' इत्यपि पाठः।

परस्तात्तु गिरेस्तस्य तिर्यंचः कर्मभूमिवत्। असंख्येया यतस्तत्र संयतासंयताश्च ते ॥ ७३२ ॥
उक्तद्वीपसमुद्रेषु पर्वतेष्वपि हारिषु। वसंति व्यंतरा देवाः किन्नराद्या यथायथं ॥ ७३३ ॥
प्रज्ञप्तिः श्रेणिक ज्ञाता द्वीपसागरगोचरा। प्रज्ञप्तिं शृणु संक्षेपाज्ज्योतिर्लोकोर्ध्वलोकयोः ॥७३४॥
जंबूद्वीपतदंबुधिप्रभृतिसद्वीपावलीसागर—प्रज्ञप्तिस्फुटसंग्रहं मुनिमतं भव्यस्य संशृण्वतः।
संशीतिः प्रलयं प्रयाति सकला भूलोकसंबंधिनी, किं ध्वांतस्य कृतोदये मुनिरवौ संतिष्ठते संहतिः॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ द्वीपसागरवर्णनो नाम पंचमः सर्गः समाप्तः।

षष्ठः सर्गः।

शतानि सप्त गत्वोर्ध्वं योजनानि भुवस्तलात्। नवतिं च स्थितास्तारा: सर्वाधस्तान्नभस्तले॥ १ ॥
शतानि नव गत्वोर्ध्वं योजनानि धरातलात्। स्थितं व्योमतले ज्योतिः सर्वेषामुपरि स्थितं ॥२॥
ज्योतिःपटलमेतद्धि बहलं दशभिः सह। योजनानि शतं प्राप्तं सर्वतश्च घनोदधिं ॥ ३ ॥
तारकापटलाद्गत्वा योजनानि दशोपरि। सूर्याणां पटलं तस्मादशीतिं शीतरोचिषां ॥४॥
चत्वारि च ततो गत्वा नक्षत्रपटलं स्थितं। चत्वार्येव ततो गत्वा पटलं बुधगोचरं ॥ ५ ॥

त्रीणि त्रीणि तु शुक्राणां गुर्वंगारकसंज्ञिनां। ग्रहाणां तद्यथासंख्या स्यात् शनैश्चरसंज्ञिनां ॥६॥
सूर्याश्चंद्राश्च तत्रस्था नक्षत्रग्रहतारकाः। ज्योतिष्काः पंचधा देवाः स्वस्थानसमनामकाः ॥ ७ ॥
पल्यं जीवंति चंद्राख्यास्तेऽधिकं वर्षलक्षया। सूर्या वर्षसहस्रेण शुक्रदेवाः शतेन तत् ॥ ८ ॥
पल्यमूनं तु जीवंति गुरवोऽर्द्धं ग्रहाः परे। पल्यं पादं तु ताराख्याः पादार्धं ते जघन्यतः ॥ ९ ॥
एकषष्टिकृता भागा [१]द्वया ये योजनस्य ते। षट्पंचाशत्तु विष्कंभश्चंद्रमंडलगोचरः॥ १० ॥
ते चत्वारिंशदष्टाभिः सूर्यमंडलविस्तृतिः[२]। क्रोशाःशुक्रस्य विस्तारो देशोनः स बृहस्पतेः ॥११॥
अर्द्धगव्यूतिविस्तारः सर्वतः परिभाषितः। ग्रहाणां परिशेषाणां सर्वेषामपि मंडलः ॥ १२ ॥
तारमंडलमत्यल्पं पादं क्रोशस्य विस्तृतं। मध्यमं साधिकं पादं क्रोशार्द्धं तु बृहत्तरं ॥१३ ॥
क्रोशस्य सप्तमो भागस्ताराणामल्पमंतरं। पंचाशन्मध्यमं दूरं सहस्रं योजनानि तत् ॥१४॥
भांति सूर्यविमानानि लोहिताक्षमयानि तु। अर्द्धगोलकवृत्तानि प्रतप्ततपनीयवत् ॥ १५ ॥
तथांकमणिमूर्त्तीनि मृणालधवलानि तु। भांति चंद्रविमानानि कांतिसंतानवंति वै ॥ १६ ॥
अरिष्टमणिमूर्त्तीनि समान्यंजनपुंजकैः। भांति राहुविमानानि चंद्रार्काधःस्थितानि तु ॥ १७ ॥

१—५६÷६१ योजनप्रमाणं चन्द्रविमानम्। २—४८÷६१ योजनप्रमाण सूर्यविमानं।

एकयोजनविष्कंभव्यायामानि तु तान्यपि । शते त्वर्द्धतृतीये द्वे धनुषी बहलानि च ॥ १८ ॥
त्विषा राजतमूर्तानि जयंति नवमालिकां । तथा शुक्रविमानानि प्रकाशंते समंततः ॥ १९ ॥
जात्यमुक्ताफलाभानि विभांत्यंकमणित्विषा । बृहस्पतिविमानानि बुधानां कनकानि तु ॥ २० ॥
शनैश्चरविमानानि तपनीयमयानि तु । अंगारकविमानानि लोहिताक्षमयानि हि ॥ २१ ॥
ज्योतिर्लोकविमानानामियं वर्णविकल्पना । अरुणद्वीपवार्धेस्तु केवलं कृष्णवर्णता ॥ २२ ॥
मानुषोत्तरतः पूर्वमुदयास्तव्यवस्थितिः । परतस्तु समस्तानां स्थितिरेव नभस्थले ॥२३॥
सूर्याचंद्रमसास्तेषां ज्योतिषां तु यथायथं । संख्येयानामसंख्यानामिंद्रास्तावत्प्रमाणकाः ॥२४॥
तत्रैकादशभिर्मेरुमेकविंशैः शतैश्चलाः । ज्योतिष्कास्त्वनवाप्यैव प्रभ्रमंति प्रदाक्षिणं ॥ २५ ॥
द्वीपे तु द्वौ मतौ सूर्यौ द्वौ च चंद्रमसाविह । चत्वारो लवणोदेऽमी द्वीपे द्वादश तत्परे ॥ २६ ॥
द्वाचत्वारिंशदादित्याः कालोदे शशिनस्तथा । पुष्करार्द्धे तु विज्ञेया द्वासप्ततिरमी पुनः ॥२७॥
षट् च षष्टिसहस्राणि तथा नवशतानि च । कोटीकोटयस्तु ताः सर्वाः पंचसप्ततिरेव च ॥ २८ ॥
एकैकस्यैव चंद्रस्य परिवारस्तु तारकाः । अष्टाविंशतिनक्षत्रास्तेऽष्टाशीतिर्महाग्रहाः ॥ २९ ॥
परस्तात्पुष्करार्द्धे तु द्वासप्ततिरिति स्थिताः । निश्चलाः सर्वदादित्यास्तावंतः शशिनस्तथा ॥३०॥

सहस्राणि तु पंचाशत् सर्वतो मानुषोत्तरात्। अगत्यादित्यचंद्राद्याश्चक्रवालैर्व्यवस्थिताः ॥३१॥
निर्युतं नियुतं गत्वा परितः परितः स्थिताः। चतुरभ्यधिकं शश्वदन्योन्योन्मिश्ररश्मयः ॥३२॥
धातक्यादिषु चंद्रार्काः क्रमेण त्रिगुणाः पुनः। व्यतिक्रांतैर्युतास्ते स्युर्द्वीपे च जलधौ परे ॥३३॥
ज्योतिर्लोकविभागस्य संक्षेपोऽयमुदीरितः। ऊर्ध्वलोकविभागस्य संक्षेपः प्रतिपाद्यते ॥३४॥
मेरुचूलिकया सार्द्धमूर्ध्वलोकः समीरितः। उपर्युपरि तस्याः स्युः कल्पा ग्रैवेयकादयः ॥३५॥
सौधर्मः प्रथमः कल्पः परश्चैशाननामकः। सनत्कुमारमाहेंद्रौ ब्रह्मब्रह्मोत्तरौ ततः ॥३६॥
कल्पौ लांतवकापिष्ठौ तथैव कथितौ ततः। पुनः शुक्रमहाशुक्रौ दक्षिणोत्तरदिग्गतौ ॥३७॥
शतारश्च सहस्रार आनतः प्राणतस्ततः। आरणश्चाच्युतश्चेति कल्पाः षोडश भाषिताः ॥३८॥
ग्रैवेयकास्त्रिधैव स्युरधोमध्योपरि स्थिताः। प्रत्येक त्रिविधास्ते स्युरधोमध्योर्ध्वभेदतः ॥३९॥
नवानुदिशनामानि ततोऽनुत्तरपंचकं। ईषत्प्राग्भारभूम्यंत उर्ध्वलोकः प्रतिष्ठितः ॥४०॥
लक्षाः स्वर्गविमानानामशीतिश्चतुरुत्तरा। नवत्या च सहस्राणि सप्त त्रिंविंशदेव च ॥४१॥
त्रिषष्टिपटलानि स्युः त्रिषष्टींद्रकसंहतिः। पटलानां तु मध्येऽसावूर्ध्वावल्या व्यवस्थिता ॥४२॥

१—लक्षं लक्षं। २—८४९७०२३ विमानानि।

ऋतुमादींद्रकं प्राहुस्त्रिषष्टिस्तस्य दिक्षु च । विमाना न्यूनता तेषामेकैकस्योत्तरेषु च ॥४३॥
तेषामृतुविमानं स्याद् विमलं चंद्रनामकं । वल्गुवीराभिधानं च तथैवारुणसंज्ञकं ॥४४॥
नंदनं नलिनं चैव कांचनं रोहितं ततः । चंचन्मारुतमृद्धीशं वैडूर्यं रुचकं तथा ॥४५॥
रुचिरं च तथार्कं च स्फटिकं तपनीयकं । मेघं भद्रं च हारिद्रं पद्मसंज्ञं ततः परं ॥४६॥
लोहिताक्षं च वज्रं च नंद्यावर्तं प्रभंकरं । प्रष्टकं च जगन्मित्रं प्रभाख्यं चाद्यकल्पयोः ॥४७॥
अंजनं वनमालं च नागं गरुडसंज्ञकं । लांगलं बलभद्रं च चक्रं च परकल्पयोः ॥४८॥
अरिष्टंदेवसंमीतं ब्रह्मब्रह्मोत्तरद्वयं । ब्रह्मलोकेऽपि चत्वारि लक्षयेदिंद्रकाणि तु ॥४९॥
लांतवे ब्रह्महृदयं लातवं च द्वयं विदुः । शुक्रमेकं महाशुक्रे सहस्रारे शतारकं ॥५०॥
आनतं प्राणताख्यं च पुष्पकं चानते त्रयं । अच्युते सानुकारं स्यादारुणं चाच्युतं त्रयं ॥५१॥
सुदर्शनममोघं च सुप्रबुद्धमधस्त्रयं । यशोधरं सुभद्रं च सुविशालं च मध्यमे ॥५२॥
सुमनः सौमनस्यं च प्रीतिंकरमितीरितं । ऊर्ध्वग्रैवेयकेऽप्येवमिंद्रकात्रितयं तथा ॥५३॥
मध्ये चानुदिशाख्यानामादित्यामिति चेंद्रकं । सर्वार्थसिद्धिसंज्ञं तु पंचानुत्तरमध्यमं ॥५४॥
सौधर्मे च विमानानां लक्षा द्वात्रिंशदीरिताः । अष्टाविंशतिरैशाने तृतीये द्वादशैव ताः ॥५५॥

माहेंद्रेऽष्टौ तु लक्षे द्वे षण्णवत्या च पंचमे । ब्रह्मोत्तरे च लक्षैका सहस्रं च चतुर्गुणं ॥५६॥
पंचविंशतिसंख्यानि सहस्राणि भवंति तु । द्विचत्वारिंशता साकं विमानानि हि लांतवे ॥५७॥
चतुर्विंशतिसंख्यानि सहस्राणि शतान्यपि । नवपंचाशदष्टौ च कल्पे कापिष्ठनामनि ॥ ५८ ॥
शुक्रे विंशतियुक्तानि सहस्राणि तु विंशतिः । परेऽशीतिर्नवशती तानि चैकान्नविंशतिः ॥ ५९ ॥
त्रिसहस्री शतारे स्यात्तथैवैकान्नविंशतिः । त्रिसहस्री सहस्रारे वर्जितैकान्नविंशतिः ॥ ६० ॥
आनतप्राणतस्था च चत्वारिंशच्चतुःशती । द्विशती च विमानानां षष्टिः स्यादारणाच्युते ॥६१॥
एकादश त्रिके पूर्वे शतं सप्तोत्तरं परे । शुद्धैकनवतिश्चोर्ध्वे नवैवानुदिशेष्वपि ॥ ६२ ॥
आर्चिराद्यं परं ख्यातमर्चिमालिन्याभिख्यया । वज्रं वैरोचनं चैव सौम्यं स्यात्सौम्यरूप्यकं ॥ ६३ ॥
अंकं च स्फुटिकं चेति दिशास्वनुदिशानि तु । आदित्याख्यस्य वर्तंते प्राच्याः प्रभृति सक्रमं ॥ ६४ ॥
विजयं वैजयंतं च जयंतमपराजितं । दिक्षु सर्वार्थसिद्धेस्तु विमानानि स्थितानि वै ॥ ६५ ॥
शतेनाष्टसहस्राणि सप्तविंशतिरेव च । श्रेणीगतानि सर्वाणि विमानानि भवंति वै ॥ ६६ ॥
चत्वारि स्युः सहस्राणि तावंत्येव शतानि च । श्रेणीगतानि सौधर्मे नवतिः पंचभिस्तथा ॥ ६७ ॥
अष्टाशीत्या सहैशाने सहस्रं तु चतुःशती । सनत्कुमारकल्पे तु षट्शती षोडशाधिका ॥ ६८ ॥

आवालिस्थविमानानां माहेंद्रे त्र्युत्तरे शते। ब्रह्मलोकस्थितानां तु षडशीत्या शतद्वयं ॥ ६९ ॥
चतुर्णवतिरेव स्युस्तानि ब्रह्मोत्तरेऽपि च। शतं लांतवकल्पे च पंचविंशतिमिश्रितं ॥ ७० ॥
चत्वारिंशत्तथैकं च कापिष्टे शुक्रनामनि। अष्टापंचाशदेकोना महाशुक्रे तु विंशतिः ॥ ७१ ॥
शतारे पंच पंचाशत् सहस्रारे दशाष्टभिः। आनते शतमुद्दिष्टं चत्वारिंशच्च सप्तभिः ॥ ७२ ॥
प्राणते पुनरष्टाभिश्चत्वारिंशत्तथारणे। शतं विंशं तताश्त्रिंशन्नवभिः पुनरच्युते ॥ ७३ ॥
चत्वारिंशत्तु पंचाग्रा सैवैकाग्रा प्रकीर्णके। सप्तत्रिंशद् यथासंख्यमधोग्रैवेयकात्रिके ॥ ७४ ॥
विमानानि त्रयस्त्रिंशदेकान्नात्रिंशदेव च। पंचविंशतिरावल्यां मध्यग्रैवेयकात्रिके ॥ ७५ ॥
एकविंशतिरूर्ध्वे तु त्रिके सप्तदशत्रिभिः। दशश्रेणीगतान्येव नवपंचकतत्परं ॥ ७६ ॥
एतेषु तु विशुद्धेषु यथास्वं मूलराशिषु। प्रकीर्णकविमानानि शेषाणीति बुधा विदुः ॥ ७७ ॥
तेषु संख्येयाविस्तारा विमानव्यक्तयः पुनः। चत्वारिंशत्सहस्राणि सौधर्मे नियुतानि षट् ॥७८॥
पंचैव नियुतानि स्युः कल्पे चैशाननामनि। सह षष्टिसहस्रैस्तु संयुतानि तु तानि वै ॥ ७९ ॥
सनत्कुमारकल्पे तु नियतं नियुतद्वयं। चत्वारिंशत्सहस्रैस्तु सहितं तादिति स्मृतिः ॥ ८० ॥

१—६४०००० । २—५६०००० । ३—२४०००० ।

माहेंद्रे नियुतं प्रोक्तं सह षष्टिसहस्रकैः। ब्रह्मब्रह्मोत्तरेऽशीतिसहस्राणि सहैव तु ॥८१॥
लांतवेऽपि च कापिष्ठे सहस्राणि दशैव तु। चत्वारि तु सहस्राणि चतुर्भिः शुक्रनामनि ॥८२॥
पण्णवत्या नवशती त्रिसहस्री महत्यपि। शतारे च सहस्रारे द्वादशैव शतानि तु ॥८३॥
अष्टाशीतिः सहैव स्यादानतप्राणताख्ययोः। द्विपंचाशत्सहैव स्यादारुणाच्युतकल्पयोः ॥८४॥
सर्वत्रवात्र संख्येयविस्तारास्तु चतुर्गुणाः। असंख्येयात्मविस्तारा विमानव्यक्तयः स्मृताः ॥८५॥
यथास्वमिंद्रकैर्हीना नवग्रैवेयकादिषु। स्युरसंख्येयविस्तारा श्रेणीष्वन्याकृता द्विधा ॥८६॥
लक्षाः षोडशसंख्येयविस्तृता नवतिर्नव। सहस्राणि सहाशीत्या त्रिशती पिंडितास्तु ताः ॥८७॥
षट्शतैकान्नपंचाशत सप्तभिर्नवतिः पुनः। सहस्राणीतरा लक्षाः सप्तषष्टिरुदीरिताः ॥८८॥
प्राग्भारभूनरक्षेत्रमृतुः सीमंतकः समं। विस्तारेण नु संप्राप्तो वालमात्रेण चूलिकां ॥८९॥
जंबूद्वीपाप्रतिष्ठानक्षेत्रसर्वार्थसिद्धयः। त्रयोऽपि समविस्ताराः प्रोक्ता विस्तारवेदिभिः ॥९०॥
सर्वश्रेणीविमानानामर्द्धमूर्ध्वमितोऽपरं। अन्येषां स्वविमानार्धं स्वयंभूरमणोवधेः ॥९१॥

१–१६००००। २–८००००। ३–१००००। ४–४००४। ५–३९९६। ६–'श्रेणीष्वन्यास्तु ता द्विधा' इत्यपि पाठः। ७–६४९। ८–९७०००। ९–'स्वार्विमान' इत्यपि। १०–स्वयंभूरमणोदधिः स्वयंभूरमणोदधे' इत्यपि पाठौ।

वेश्ममूलशिलापीठबाहल्यं पूर्वकल्पयोः । योजनान्येकविंशत्या त्वेकादश शतानि च ॥९२॥
ऊर्ध्वं नवनवत्यास्तु युग्मे युग्मे[1] परिक्षयः । एकैकत्र त्रिके तुल्यश्चतुर्दशसु चोपरि ॥९३॥
आद्ये विंशं[2] शतं व्यासः कल्पयुग्मे तु वेश्मनां । परे[3] शतं दशोनोतश्चतुर्दशसु पंच[4] तु ॥९४॥
उच्छ्रायः षट् शतान्याद्ये पंच[5] कल्पयुगे परे । शतार्द्धेनोन[6]मूनोऽस्मात्पंचविंशतिमात्रकाः ॥९५॥
षष्टिराद्येऽवगाहोऽपि पंचाशद्युगले परे । पंचोनोऽस्मात्परेषु द्वे चतुर्दशसु सार्धके ॥९६॥
कृष्णा नीलाश्च रक्ताश्च पीताः श्वेताश्च वर्णिताः । प्रासादाः पंचवर्णास्ते सौधर्मैशानकल्पयोः ॥९७॥
नीलाद्याः परयोश्चोर्ध्वं रक्ताद्यास्तु चतुर्ष्वपि । सहस्रारावसानेषु पीताः श्वेताश्च नेतरे ॥९८॥
आनतप्राणतादौ च श्वेतवर्णाः प्रवर्णिताः । वैमानिकविमानेषु प्रासादाः प्रस्फुरत्प्रभाः ॥९९॥
द्वयोर्द्वयोर्विमानानि कल्पाष्टकपरेषु च । जले वाते द्वयोर्व्योम्नि संस्थितानि यथाक्रमं ॥१००॥
षट् युगलेषु शेषेसु कल्पेषु चमरेंद्रकाः । श्रेणीबद्धे निजावासे वसंत्यष्टादशे तथा ॥१०१॥
द्विहानिक्रमतोऽतोऽग्रे दक्षिणोत्तरसंभवाः । सुराधीशाः सुखांभोधिमध्यगा गतविद्विषः ॥१०२॥

१–सौधर्मयुगमे ११२१, सानत्कुमारयुगमे १०२२, ब्रह्मयुगमे ९२३ इत्यादि नवनवतिहीनक्रमं। २–१२०। ३–१०० ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २०, १०। ४–अनुदिशानुत्तरेषु ५। ५–५००। ६–पंचाशदूनक्रमं।

आज्योतिर्लोकमुत्पादस्तापसानां तपस्विनां । ब्रह्मलोकावधिर्ज्ञेयः परिव्राजकयोगिनां ॥१०३॥
सद्दगाजीवकानां च सहस्रारावधिर्भवः । न जिनेतरदृष्टेन लिंगेन तु ततः परं ॥१०४॥
कल्पानच्युतपर्यंतान् सौधर्मप्रभृतीन् पुनः। व्रजंति श्रावकास्तेभ्यः श्रवणा परतोऽपि च ॥१०५॥
उपपादोऽस्त्यभव्यानामग्रग्रैवेयकेष्वपि । स च निर्ग्रंथलिंगेन संगतोग्रतपःश्रिया ॥ १०६ ॥
रत्नत्रयममूढस्य भव्यस्यैव ततः परं । यावत्सर्वार्थसिद्धि स्यादुपपादस्तपस्विनः ॥ १०७ ॥
कृष्णा नीला च कापोता लेश्याश्च द्रव्यभावतः । तेजो लेश्या जघन्या च ज्योतिषांतेषु भाषिताः ॥
सौधर्मैशानदेवानां तेजोलेश्या तु मध्यमा । सैवोत्कृष्टोत्तरद्वंद्वे पद्मलेश्या जघन्यतः ॥ १०९ ॥
मध्यमा पद्मलेश्या तु परस्मिन् युगलत्रये । उत्कृष्टा पद्मलेश्या च युग्मे शुक्लावरापरे ॥ ११० ॥
अच्युतांतचतुष्के च नवग्रैवेयकेषु च । सर्वेषामेव देवानां शुक्ललेश्या तु मध्यमा ॥ १११ ॥
अहमिंद्रविमानेषु चतुर्दशसु संस्थिताः । लेश्या परमशुक्लोर्ध्वे संक्लेशरहितात्मनां ॥ ११२ ॥
आघर्मायास्तु देवानामाद्ययोर्विषयोऽवधिः । कल्पयोःपरयोश्चासावावंशाया व्यवस्थितः ॥११३॥
आऽसौ मेघावनेरुक्तश्चतुःकल्पे तु तत्परं । आचतुर्थपृथिव्यास्तु परे कल्पचतुष्टये ॥ ११४ ॥
आनतादिचतुष्केऽसावापंचम्याः समीरितः । नवग्रैवेयकस्थानामाषष्ठ्या विषयोऽवधिः ॥ ११५ ॥

नवानुदिशदेवानामासप्तम्याः समाश्रितः । लोकनाडीसमस्तासु पंचानुत्तरवासिनां ॥ ११६ ॥
स्वविमानावधिस्तूर्ध्वं विषयोऽवधिचक्षुषः । विश्वेषामेव देवानामिति विश्वविदो विदुः ॥ ११७ ॥
स्थित्युत्सेधप्रवीचारा जिनेंद्रप्रतिभाषिताः । चतुर्देवनिकायानां वेदितव्यं यथायथं ॥ ११८ ॥
दक्षिणाशाऽऽरणांतानां देव्यः सौधर्म एव तु । निजागारेषु जायंते नीयंते च निजास्पदं ॥ ११९ ॥
उत्तराशाच्युतांतानां देवानां दिव्यमूर्त्तयः । ऐशानकल्पसंभूता देव्यो यांति निजाश्रयं ॥ १२० ॥
शुद्धदेवीयुतान्याहुर्विमानानि मुनीश्वराः । षट् लक्षास्तु चतुर्लक्षाः सौधर्मैशानकल्पयोः ॥ १२१ ॥
दिव्यवस्त्रविभूषाभिः शुभविक्रियमूर्तिभिः । चित्रनेत्रहरोदाररूपचित्तस्ववृत्तिभिः ॥१२२ ॥
हावभावविदग्धाभिर्निसर्गप्रेमभूमिभिः । नैकपल्योपमायुर्भिर्देवीभिर्बहुभिःसुखं ॥ १२३ ॥
इंद्राः सामानिका देवास्त्रायस्त्रिंशादयोऽखिलाः । कल्पोपपन्नपर्यंताः श्रूयंते दीर्घजीविनः ॥१२४॥
अहमिंद्रास्ततोऽनंतं भजंते भवनं सुखं । तत्सातावेदनीयोत्थमस्त्रीकं प्रशमात्मजं ॥ १२५ ॥
सिद्धानां तु परं स्थानं परं द्वादशयोजनं । सर्वार्थसिद्धितो गत्वा स्थितं त्रैलोक्यमूर्धनि ॥१२६॥
ईषत्प्राग्भारसंज्ञाऽसावष्टमी पृथिवी स्तुता । अष्टयोजनबाहुल्या मध्ये हीना क्रमात्ततः ॥ १२७

१—रूपविभ्रमवार्त्तीभिः । २—श्रुता ।

पर्यंतेऽगुलसंख्येयभागमात्रतनुस्थितिः । सोत्तानितमहावृत्तश्वेतछत्रोपमाकृतिः ॥१२८॥
चत्वारिंशत्तु विस्तारो लक्षाः पंचभिरचिताः । योजनानि क्षितेस्तस्या विद्वद्भिरभिधीयते ॥ १२९ ॥
कोटी तु परिधिर्लक्षा द्विचत्वारिंशादिष्यते । द्विशत्येकान्नपंचाशत् त्रिसहस्री दशाहता ॥ १३० ॥
ऊर्ध्वं तस्याः पुरा प्रोक्तं यद्वातवलयत्रयं । तत्र त्रिकोशबाहुल्यमतीत्य वलयद्वयं ॥ १३१ ॥
धनुषां पंचशत्यामा पंचसप्ततियुक्तया । धनुःसहस्रमेकं हि बहलं वलयं तु यत् ॥ १३२ ॥
तनुवातस्य तस्यांते पंचविंशतिसंयुतां । विगाह्योत्कर्षतः सिद्धाः स्थिताः पंचधनुःशतीं ॥१३३॥
सार्द्धहस्तत्रयं पूर्वं कृत्वांतेऽनंतरोच्छ्रितिं । सिद्धावगाहनाकाशदेशो देशोन इष्यते ॥ १३४॥
एकोऽवतिष्ठते यत्र सिद्धः सिद्धप्रयोजनः । तत्रानंताश्च तिष्ठंति सिद्धास्ते स्वावगाहतः ॥१३५॥
अशरीराः सुखात्मानः सिद्धा जीवघनायुताः । साकारेणोपयोगेन निराकारेण चात्मनः ॥१३६॥
सर्वलोकमलोकं च संततानंतपर्ययं । जानंतः सह पश्यंतस्तिष्ठंति सुखिनः सदा ॥ १३७ ॥
सिद्धाः शुद्धाः प्रबुद्धार्था विजन्मानोऽजरामराः । शाश्वताः शाश्वतं स्थानमधितिष्ठंत्यबंधनाः ॥१३८॥
ज्योतिर्लोकः प्रकटपटलस्वर्गमोक्षोर्ध्वलोकः प्रज्ञप्त्युक्तं नरवर मया संग्रहात्क्षेत्रमेवं ।
संप्रोक्तं ते श्रवणसुभगं श्रेणिक श्रेयसेऽतः शृण्वायुष्मन्नवहितमतिर्वच्मि कालोपदेशं ॥ १३९ ॥

धर्मध्यानं धवलमुदितं मोक्षहेतुर्जिनेंद्रै—राज्ञापायप्रभृतिविचयैश्चित्तवृत्तोर्निरोधः ।
यत्तत्कार्यां समितकरणैर्लोकसंस्थानचिंता मंदाक्रांता न हृदयमदेभेंद्रियाऽस्वा(श्वा)विधेयाः॥१४०

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ ज्योतिर्लोकोर्ध्वलोकवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ।

वर्णगंधरसस्पर्शमुक्तोऽगौरवलाघवः । वर्त्तनालक्षणः कालो मुख्यो गौणश्च स द्विधा ॥१॥
गतिस्थित्यवगाहानां धर्माधर्माम्बराणि च । निमित्तं सर्वभावानां वर्त्तनस्यात्र निश्चयः ॥२॥
धर्माधर्मनभोद्रव्यं यथैवागमदृष्टितः । तथा निश्चयकालोऽपि निश्चेतव्यो विपश्चिता ॥३॥
जीवानां पुद्गलानां च परिवृत्तिरनेकधा । गौणकालप्रवृत्तिश्च मुख्यकालनिबंधना ॥४॥
सर्वेषामेव भावानां परिणामादिवृत्तयः । स्वांतर्वहिर्निमित्तेभ्यः प्रवर्तंते समंततः ॥५॥
निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता । वहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितस्तत्त्वदर्शिभिः ॥६॥
अन्योन्यानुप्रवेशेन विना कालाणवः पृथक् । लोकाकाशमशेषं तु व्याप्य तिष्ठंति संचिताः ॥७॥
द्रव्यार्थान्निर्विकारत्वादुदयव्ययवर्जिताः । नित्या एव कथंचित्ते स्वरूपसमवस्थिताः ॥८॥

अगुरुत्वलघुत्वात्मपरिणामसमन्विताः । परोपाधिविकारित्वादनित्यास्तु कथंचन ॥९॥
त्रिधा समयवृत्तीनां हेतुत्वात्ते त्रिधा स्मृताः । अनंतसमयोत्पादादनंतव्यपदेशिनः ॥१०॥
तेभ्यः कारणभूतेभ्यः समयस्य समुद्भवः । कारणेन विना कार्यं न कदाचित् प्रजायते ॥११॥
स्वत एवाऽसतो जन्म कार्यस्य यदि जायते । स्वत एव हि किं न स्याद् खरशृंगस्य संभवः ॥१२॥
न कालादन्यतो हेतोः कालकार्यसमुद्भवः । न हि संजायते जातु शालिबीजाद् यवांकुरः ॥१३॥
जायते भिन्नजातीयो हेतुर्यत्राऽपि कार्यकृत् । तत्राऽसौ सहकारी स्यात् मुख्योपादानकारणः ॥१४॥
युक्तागमबलादेवमनतींद्रियदर्शिनः । सद्भावं मुख्यकालस्य प्रतिपद्य व्यवस्थितः ॥ १५ ॥
समयावलिकोच्छ्वासः प्राणस्तोकलवादिकः । व्यवहारस्तु विज्ञेयः कालः कालज्ञवर्णितः ॥ १६ ॥
परिणामं प्रपन्नस्य गत्या सर्वजघन्यया । परमाणोर्निजागाढस्वप्रदेशव्यतिक्रमः ॥ १७ ॥
कालेन यावतैव स्यादविभागः स भाषितः । समयः समयाभिज्ञैर्निरुद्धः परमास्थितः ॥ १८ ॥
तैरेवावलिकासंख्यैः संख्याताभिस्तु भाषिता । ताभिरुच्छ्वासनिश्वासौ तावुभौ प्राण इष्यते ॥१९॥
प्राणाः सप्त पुनः स्तोकः सप्तस्तोका भवेल्लवः । ते सप्त सप्ततिः संतो मुहूर्तस्त्रिंशदेव ते ॥ २० ॥
अहोरात्रं भवेत्पक्षस्तानि पंचदशैव तौ । मासो मासावृतुस्तेषां त्रितयं त्वयनं तथा ॥ २१ ॥

अयनद्वयमब्दं स्यात् पंचाब्दानि युगं पुनः । युगद्वयं दशाब्दानि शतं तानि दशाहतौ ॥ २२ ॥
भवेद्वर्षसहस्रं तु शतं चापि दशाहतं । दशवर्षसहस्राणि तदेव दशताडितं ॥ २३ ॥
ज्ञेयं वर्षसहस्रं तु तच्चापि दशसंगुणं । पूर्वांगं तु तदभ्यस्तमशीत्या चतुरग्रया ॥ २४ ॥
तत्तद्गुणं च पूर्वांगं पूर्वं भवति निश्चितं । पूर्वांगं तद्गुणं तच्च पूर्वसंज्ञं तु तद्गुणं ॥ २५ ॥
नियुतांगं परं तस्मान्नियुतं च ततः परं । कुमुदांगं ततश्च स्याद् कुमुदं तु ततः परं ॥ २६ ॥
पद्मांगं पद्ममप्यस्मात् नलिनांगं तथैव च । नलिनं कमलांगं च कमलं चाप्यतः परं ॥ २७ ॥
तुट्यांगं तुट्यमप्यस्मादटटांगं ततोऽपि च । अटटं चाममांगं स्यादममं चाप्यतः परं ॥ २८ ॥
ऊहांगमूहमप्यस्माल्लतांगं च लताह्वयं । महालतांगसंज्ञं स्यात् कालवस्तुमहालता ॥ २९ ॥
शिरःप्रकंपितं प्रोक्तं ततो हस्तप्रहेलिका । चर्चिकेत्यादिकः कालः संख्येयः परिभाषितः ॥ ३० ॥
वर्षसंख्याव्यतिक्रांतः कालोऽसंख्येय इष्यते । पल्यसागरसंख्यानं कल्पानंतादिभेदवान् ॥३१॥
आदिमध्यांतनिर्मुक्तं निर्विभागमतींद्रियं । मूर्त्तमप्यप्रदेशं च परमाणुं प्रचक्षते ॥३२॥
एकदैकं रसं वर्णं गंधस्पर्शावबाधकौ । दधन् स वर्ततेऽभेद्यः शब्दहेतुरशब्दकः ॥३३॥
आशंकया नार्थतत्त्वज्ञैर्नभोंशानां समंततः । षट्केन युगपद्योगात्परमाणोः षडंशता ॥३४॥

स्वल्पाकाशषडंशाश्च परमाणुश्च संहताः । सप्तांशाः स्युः कुतस्तु स्यात्परिमाणोः षडंशता ॥३५॥
वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् । कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात् पुद्गलाः परमाणवः ॥३६॥
अनंतानंतसंख्यानपरमाणुसमुच्चयः । अवसंज्ञादिकासंज्ञा स्कंधजातिस्तु जायते ॥३७॥
ताभिरष्टाभिरप्युक्ता संज्ञासंज्ञादिका तथा । ताभिरप्यष्ट संज्ञाभिस्तुटिरेणुः स्फुटीकृतः ॥३८॥
एतैरप्यष्टवालाग्रैरेकमेकाग्रमानसैः । कर्मभूमिमनुष्याणां वालाग्रमिति भाषितं ॥३९॥
तैरष्टाभिर्भवेल्लिक्षा ताभिर्यूका तथाष्टाभिः । यूकाभिस्तु यवोऽष्टाभिर्यवैरष्टाभिरंगुलं ॥४०॥
उत्सेधांगुलमेतत्स्यादुत्सेधोऽनेन देहिनां । अल्पावास्थितवस्तूनां प्रमाणं च प्रगृह्यते ॥४१॥
प्रमाणांगुलमेकं स्यात् तत्पंचशतसंगुणं । प्रथमस्यावसर्पिण्यामंगुलं चक्रवर्तिनः ॥४२॥
बोध्यं यथास्वमुत्सेधव्यासादि महता पुनः । द्वीपसागरशैलादेः प्रमाणांगुलसंमितं ॥ ४३ ॥
स्वे स्वे काले मनुष्याणामंगुलं स्वांगुलं मतं । मीयते तेन तच्छत्रभृंगारनगरादिकं ॥ ४४ ॥
त्रिविधांगुलषट्कःस्यात् पादः पादद्वयं पुनः । वितस्तिस्तद्द्वयं हस्तस्तद्द्वयं किष्कुरिष्यते ॥ ४५ ॥
दंडः किष्कुद्वयं दंडः धनुर्नाड्या समा मताः । अष्टौ दंडसहस्राणि योजनं परिभाषितं ॥ ४६ ॥
प्रमाणयोजनव्यासस्वावगाहविशेषवत् । त्रिगुणं परिक्षेपेण क्षेत्रं पर्यंतभित्तिकं ॥४७॥

सप्ताहांताविरोमाग्रैरापूर्य कठिनीकृतं। तदुद्धार्यमिदं पल्यं व्यवहाराख्यमिष्यते ॥ ४८ ॥
एकैकस्मिंस्ततो रोम्णि प्रत्यब्दशतमुद्धृते। यावताऽस्य क्षयःकालःपल्यं व्युत्पत्तिमात्रकृत् ॥४९॥
असंख्येयाब्दकोटीनां समयै रोमखंडितैः। प्रत्येकं पूर्वकं तत्स्यात्पल्यमुद्धारसंज्ञकं ॥ ५० ॥
कोटीकोट्यो दशामीषां[1] पल्यानां सागरोपमा। ताभ्यामर्द्धतृतीयाभ्यां द्वीपसागरैः[2]संमितिः ॥५१ ॥
सोध्वा द्विगुणितो रज्जुस्तनुवातोभयांतभाग्। निष्पद्यंते त्रयो लोकाः प्रमीयंते बुधैस्तथा॥५२॥
असंख्यवर्षकोटीनां समयै रोमखंडितैः। उद्धारपल्यमद्धाख्यं स्यात्कालोऽद्धाभिधीयते ॥ ५३ ॥
कालः पल्योपमाख्योऽसौ समयं समयं प्रति। क्षीयमाणः प्रमाणार्थमायुषो विनियुज्यते ॥ ५४॥
कोटीकोट्यो दशामीषां[1] जायते सागरोपमा। मेया संसारिणां चाभिरायुःकर्मभवस्थितिः॥५५॥
कोटीकोट्यो दशैतासां प्रत्येकमवसर्पिणी। उत्सर्पिणी च कालाः षट् प्रत्येकमनयोःसमाः॥५६॥
अवसर्पति वस्तूनां शक्तिर्यत्र क्रमेण सा। प्रोक्ताऽवसर्पिणी सार्था सान्यथोत्सर्पिणी तथा ॥५७॥
सुषमासुषमाऽऽद्या स्यात् द्वितीया सुषमा समा। दुःषमा सुषमाऽऽद्या स्यात् सुषमा दुःषमादिका॥५८॥
दुःषमा चावसर्पिण्यामति दुःषमया सह। ता एव प्रातिलोमाः स्युरुत्सर्पिण्यां च षट् समा ॥ ५९ ॥

१—'दशैतेषां' इत्यपि। २—द्वीपसागरप्रमाणं।

कोटीकोटयश्चतस्रश्च तिस्रो द्वे च यथाक्रमं। आदितास्तिसृणां तासां प्रमाणं सागरोपमाः ॥ ६० ॥
द्वाचत्वारिंशदब्दानां सहस्रैः परिवर्जिताः । कोटीकोटीसमुद्राणां तुरीयस्य यथाक्रमं ॥ ६१ ॥
तानि वर्षसहस्राणि विभक्तानि समं भवेत् । पंचमस्य च षष्ठस्य प्रमाणं कालवस्तुनः ॥ ६२ ॥
कल्पस्ते द्वे तथार्थानां वृद्धिहानिमती स्थितिः । भरतैरावतक्षेत्रेष्वन्येष्वपि ततोऽन्यथा ॥ ६३ ॥
आद्येषु त्रिषु कालेषु कल्पवृक्षविभूषिताः । भोगभूमिरियं भूमिर्भोगभूमिस्तु भारती ॥ ६४ ॥
युग्मधर्मभुजो भूत्वा तेषामादौ जगत्प्रजाः । षट्चतुर्द्विसहस्राणि धनूंषि वपुषोच्छ्रिताः ॥६५॥
आयुस्त्रिद्व्येकपल्यैस्तु तुल्यं तासां यथाक्रमं । देवोत्तरकुरुक्षेत्रहारिहैमवतेष्विव ॥ ६६ ॥
प्रोद्यदादित्यवर्णाभाः पूर्णचंद्रसमप्रभाः । प्रियंगुश्यामवर्णाश्च तेषु स्त्रीपुरुषास्त्रिषु ॥ ६७ ॥
पृष्ठकांडकसंख्यानं षट्पंचाशं शतद्वयं । अष्टाविंशं शतं तेषां चतुःषष्टिर्यथाक्रमं ॥ ६८ ॥
दिव्यं बदरतन्मात्रमक्षमात्रं च भोजनं । तथाऽमलकमात्रं च चतुस्त्रिद्विदिनैस्त्रिषु ॥ ६९ ॥
तत्त्रिकालनियोगेन धरित्रीयं नियंत्रिता । त्रिभेदानां तदादत्ते नित्यभोगभुवां स्थितिं ॥ ७० ॥
रत्नप्रभा यथा भाति पृथिवीयमवास्थितैः । एषा तथा स्फुरद्रत्नपटलैरुपरिस्थितैः ॥ ७१ ॥

१—द्वाचत्वारिंशद्वर्षसहस्राणि विभक्तानि द्विधाकृतानि अर्थात् एकविंशतिर्वर्षसहस्राणि । २—उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ ।

इंद्रनीलादिभिर्नीलैः कृष्णैर्जात्यंजनादिभिः । पद्मरागादिकैः रक्तैः पीतैर्हैमादिभिः परैः ॥ ७२ ॥
श्वेतैर्मुक्तादिभिर्भूमिर्मयूषाक्रांतदिङ्मुखैः । पंचवर्णैश्चिता रत्नैः स्वर्गभूरिव शोभते ॥ ७३ ॥
चंद्रकांतशिलाऽस्योर्वी विद्रुमाधरपल्लवा । ललनेव तदाऽऽभाति रत्नकांचनकंचुका ॥ ७४ ॥
चंद्रकांतांशवः शीताः सूर्यकांतांशवोऽन्यथा । विश्लिष्यंत्यत्र नाश्लिष्टाः शीतोष्णव्यथिता इव ॥७५॥
परस्परकराश्लेषरागमूर्च्छितमूर्त्तिभिः । मणिजातिविशेषैर्भूर्भाति प्रेमवशैरिव ॥ ७६ ॥
पंचवर्णसुखस्पर्शसुगंधरसशब्दकैः । संच्छन्ना राजते क्षोणी तृणैश्च चतुरंगुलैः ॥७७॥
पूर्णैर्दधिमधुक्षीरघृतेक्षुरससज्जलैः । रत्नरोधोभिरुर्व्याऽभात् दिव्यवापीसरोवरैः ॥७८॥
नानावर्णमणिच्छन्नैः सौवर्णैः प्राणिसौख्यदैः । रम्यैः क्षोणीधरैः क्षोणी भ्राजते नितरां सदा ॥७९॥
ज्योतिर्ग्रहप्रदीपांगैस्तूर्यभोजनभाजनैः । वस्त्रमाल्यांगभूषांगैर्मद्यांगैश्च द्रुमैरभात् ॥८०॥
ज्योतिरंगद्रुमा ज्योतिश्छन्नचंद्रार्कमंडलाः । अहोरात्रकृतं भेदं भिदंतो भांति संततं ॥८१॥
सोद्यानभूमयश्चित्राः प्रासादा बहुभूमयः । गृहांगद्रुमखंडोत्था मंडयंति नभोंऽगणं ॥८२॥
विशालायतशाखाभिः पद्मकुड्मलपल्लवान् । धारयंति प्रदीपाभान् प्रदीपांगमहीरुहाः ॥८३॥

१–' भिरुच्या ' इत्यपि । २–रत्नभासुराः इति क पुस्तके ।

चतुर्विधं शुभं वाद्यं ततं च विततं घनं । सुपिरं च सृजंत्यत्र तूर्यांगद्रुमजातयः ॥८४॥
षड्रसान्यतिमृष्टानि चतुर्भेदानि भोगिनां । भोजनांगद्रुमा नानाभोजनानि सृजंति ते ॥८५॥
पात्राणि स्थालकं चोलसौवर्णादीन्यनेकशः । भाजनानि विचित्राणि भाजनांगाः सृजंत्यलं ॥८६॥
पट्टचीनदुकूलानि वस्त्राणि विविधानि वै । बिभ्राणाः स्कंधशाखासु भांति वस्त्रांगपादपाः ॥८७॥
मालतीमल्लिकाद्युद्यत्कुसुमग्राथितानि तु । भांति माल्यानि बिभ्राणा माल्यांगधरणीरुहाः ॥८८॥
हारकुंडलकेयूरकटिसूत्रादिभिश्चिताः । भूषणैर्भूपितांगाश्च भांति स्त्रीपुरुषोचितैः ॥८९॥
मद्यभेदाः प्रसन्नाद्या मदशक्तेर्विधायकाः । संपाद्यंते नरस्त्रीणां हृद्या मद्यांगपादपैः ॥९०॥
दशधाकल्पवृक्षोत्थं भोगं युग्मानि भुंजते । दशांगभोगचक्रेशभोगताभ्याधिकं तदा ॥९१॥
तदा स्त्रीपुंसयुग्मानां गर्भान्निर्लुठितात्मनां । दिनानि सप्त गच्छंति निजांगुष्ठावलेहनैः ॥९२॥
रंगतामपि सप्तैव सप्तास्थिरपराक्रमैः । स्थिरैश्च सप्त तैः सप्त कलासु च गुणेषु च ॥९३॥
कालेन तावता तेषां प्राप्तयौवनसंपदां । सम्यक्त्वग्रहणेऽपि स्याद् योग्यता सप्तभिर्दिनैः ॥९४॥
स्त्रीपुंसलक्षणैः पूर्णा विशुद्धेंद्रियबुद्धयः । कलागुणविदग्धास्ता रमंते नीरुजा प्रजाः ॥९५॥
नरा देवकुमाराभा नार्यो देवांगनोपमाः । वर्णगंधरसस्पर्शशब्दचेपमनोरमाः ॥९६॥

श्रोत्रं गीतरवे रूपे चक्षुर्घ्राणं सुसौरभे । जिह्वामुखरसास्वादे सुस्पर्शे स्पर्शनं तनोः ॥९७॥
अन्योन्यस्य तदासक्तं दंपतीनां निरंतरं । स्तोकमपि न संतृप्तं मनोऽधिष्ठितमिंद्रियं ॥९८॥
मिथुनानि यथा नृणां रमंते प्रेमनिर्भरं । तथा कल्पद्रुमाहारैस्तिरश्चां तृप्तचेतसां ॥९९॥
क्वचित्सैंहं क्वचिच्चैभं क्वचिदौष्ट्रं च शौकरं । क्वचित् क्रीडंति वैयाघ्रं मिथुनं मदमंथरं ॥१००॥
गवाश्वमाहिषादीनां मिथुनानि मिथस्तदा । गत्यायुःप्रमितायूंपि रंरम्यंते निजेच्छया ॥१०१॥
आर्यमाह नरो नारीमार्यं नारी नरं निजं । भोगभूमिनरस्त्रीणां नाम साधारणं हि तत् ॥१०२॥
उत्तमा जातिरेकैव चातुर्वर्ण्यं न षट्क्रियाः । न स्वस्वामिकृतः पुंसां संबंधो न च लिंगिनः ॥१०३॥
मध्यस्था एव सर्वत्र न मित्राणि न शत्रवः । प्रकृत्याल्पकषायित्वाद्यांति चायुःक्षये दिवं ॥१०४॥
सुखमृत्युः क्षुतेः पुंसो जृंभारंभेण च स्त्रियाः । जन्मबद्धस्य प्रेमस्य(?)युगलस्य सहैव सः ॥१०५॥
अथ ज्ञात्वा गणाधीशः श्रेणिकस्य मनोगतं । भोगभूमिसमुत्पत्तिनिमित्तमभणीदिति ॥१०६॥
कर्मभूमिगता मर्त्याः प्रकृत्याल्पकषायिणः । अत्र ते पात्रदानात् स्युर्भोगभूमिषु मानुषाः ॥१०७॥
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपःशुद्धिपवित्रिताः । मध्यस्थाः शत्रुमित्रेषु संतो हि पात्रमुत्तमं ॥ १०८ ॥

१—जिह्वारसमुखास्वादे इति क पुस्तके ।

मध्यमं तु भवेत्पात्रं संयतासंयता जनाः। जघन्यमुदितं पात्रं सम्यग्दृष्टिरसंयतः॥ १०९॥
त्रिविधेऽपि बुधः पात्रे दानं दत्त्वा यथोचितं। भोगभूमिसुखं दिव्यं भुंक्ते भूत्वा तु मानुषः॥११०॥
सुक्षेत्रे विधिवत्क्षिप्तं बीजमल्पमपि व्रजेत्। वृद्धिं यथा तथा पात्रे दानमाहारपूर्वकं॥ १११॥
शालीक्षुक्षेत्रनिक्षिप्तं यथा मिष्टं पयो भवेत्। धेनुभिश्च यथा पीतं क्षीरत्वं प्रतिपद्यते॥११२॥
तथैवाल्परसास्वादमन्नपानौषधादिकं। पात्रदत्तं परत्र स्यादमृतास्वादमक्षयं॥ ११३॥
निवृत्ताः स्थूलहिंसादेर्मिथ्यादृग्ज्ञानवृत्तयः। कुपात्रमिति विज्ञेयमपात्रमनिवृत्तयः॥ ११४॥
कुपात्रदानतो भूत्वा तिर्यंचो भोगभूमिषु। संभुंजतेऽतरं द्वीपं कुमानुषकुलेषु वा॥ ११५॥
असत्क्षेत्रे यथा क्षिप्तं बीजमल्पफलं फलेत्। कुपात्रेऽपि तथा दत्तं दानं दात्रे कुभोगभाक्॥११६॥
ऊषरक्षेत्रनिक्षिप्तशालिर्नश्यति मूलतः। यथाऽत्र विफलं दानं कुपात्रपातितं तथा॥ ११७॥
अंबु निंबद्रुमे रौद्रं कोद्रवे मदकृद् यथा। विषं व्यालमुखे क्षीरमपात्रे पतितं तथा॥ ११८॥
सुपात्रे सुफलं दानं कुपात्रे कुफलं भवेत्। अपात्रे दुःखदं तस्मात्पात्रेभ्यः प्रतिपादयेत्॥११९॥
यात्युपाधिवशाद् भेदं निर्मलः स्फटिकोपलः। यथा तथा च दानार्घं प्रतिग्राहकभेदतः॥ १२०॥
सम्यग्दृष्टिः पुनः पात्रे स्वपरानुग्रहेच्छया। दानं दत्त्वा विशुद्धात्मा स्वर्गमेव गृही व्रजेत्॥१२१॥

अथ कालद्वयेऽतीते क्रमेण सुरकारिणि । पल्याष्टभागशेषे च तृतीये समवस्थिते ॥ १२२ ॥
क्रमेण क्षीयमाणेषु कल्पवृक्षेषु भूरिषु । क्षेत्रे कुलकरोत्पत्तिं शृणु श्रेणिक! सांप्रतं ॥ १२३ ॥
गंगासिंधुमहानद्योर्मध्ये दक्षिणभारते । चतुर्दश यथोत्पन्नाः क्रमेण कुलकारिणः ॥ १२४ ॥
प्रतिश्रुतिरभूदाद्यस्तेषां कुलकरप्रभुः । महाप्रभावसंपन्नः स्वभवस्मरणान्वितः ॥ १२५ ॥
तस्य काले प्रजा दृष्ट्वा पौर्णमास्यां सहैव खे । आकाशगजघंटाभे द्वे चंद्रादित्यमंडले ॥ १२६ ॥
आकस्मिकभयोद्विग्नाः स्वमहोत्पातशंकिताः । प्रजाः संभूय पप्रच्छुस्तं प्रभुं शरणागताः ॥१२७॥
नरप्रधान! कावेतावपूर्वौ गगतांतयोः । दृश्यते मंडलाकारावकांडे नो भयंकरौ ॥ १२८ ॥
अहो दुःसहमस्माकमकस्मात् भयमुद्गतं । किं महाप्रलयः प्राप्तः प्रजानामेव दुस्तरः ॥ १२९ ॥
इति पृष्टः प्रभुः प्राह शुचं मुंचत हे प्रजाः । न किंचिद् भयमस्माकं स्वस्था भवत कथ्यते ॥१३०॥
प्रभामंडलसंवीतमेतदादित्यमंडलं । प्रतीच्यां वीक्षते भद्रा! प्राच्यां भोश्चंद्रमंडलं ॥ १३१ ॥
ज्योतिश्चक्राधिपावेतौ सूर्याचंद्रमसौ स्थितं । मेरुप्रदक्षिणां नित्यं भ्रमंतौ भ्रमणात्मकौ ॥१३२॥
चतुर्विधेषु देवेषु ज्योतिर्देवकदंबकं । खे करोत्यनयोर्नित्यमनुभ्रमणमीशयोः ॥ १३३ ॥
ज्योतिरंगमहावृक्षप्रभाच्छादितविग्रहौ । प्रागन्यत्राविदेहेभ्यो न गतौ दृष्टिगोचरं ॥ १३४ ॥

तेजोहीनेऽधुना लोके ज्योतिरंगप्रभाक्षये । जिगीषयेव चंद्रार्कौ स्थितौ प्रकटविग्रहौ ॥ १३५ ॥
अहोरात्रादिको भेदो भवत्यर्कवशादिह । अथुनेंदुवशाद् व्यक्तिः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ १३६ ॥
शीतदीधितिरस्ताभो घर्मदीप्तिना दिवा । न स्पष्टः स्पष्टतामेति ज्योतिश्चक्रसखो निशि ॥१३७॥
पूर्वजन्मनि युष्माभिर्दृष्टपूर्वाविमौ स्फुटं । विदेहेषु यतस्तस्मान्नाद्य वोऽपूर्वदर्शनौ ॥१३८॥
दृष्टश्रुतानुभूतस्य वस्तुनः सति दर्शने । माभूदुत्पातशंका वो निर्भया भवत प्रजाः ॥१३९॥
कालस्वभावभेदेन स्वभावो विद्यते ततः । द्रव्यक्षेत्रप्रजावृत्तवैपरीत्यं प्रजायते ॥१४०॥
अव्यवस्थानिवृत्त्यर्थमतः परमतः प्रजाः । हा मा धिक्कारतो भूताः तिस्रो वै दंडनीतयः॥१४१॥
मर्यादोल्लंघनेच्छस्य कथंचित्कालदोषतः । दोषानुरूपमायोज्याः स्वजनस्य परस्य वा ॥१४२॥
नियंत्रितो जनः सर्वस्तिसृभिर्दंडनीतिभिः । दृष्टदोषभयत्रस्तो दोषेभ्यो विनिवर्त्तते ॥१४३॥
रक्षणार्थमनर्थेभ्यः प्रजानामर्थसिद्धये[1] । प्रमाणमिह कर्त्तव्याः प्रणीता दंडनीतयः ॥१४४॥
प्रासादेषु यथास्थानं मिथुनान्यकुतोभयं । अनुस्मृत्यावतिष्ठंत्वऽस्मदीयमनुशासनं ॥१४५॥
इत्युक्त्वा प्रतिपद्याऽऽशु वचस्तस्य प्रजापतेः । श्रुत्वा तस्थुर्यथास्थानं प्रजातप्रमदाः प्रजाः ॥१४६॥

१—हितसिद्धये ।

प्रतिश्रुतं वचस्ताभिर्यतस्तस्य गुरोर्यथा । प्रथमं प्रथितस्तस्मात्स पृथिव्यां प्रतिश्रुतिः ॥१४७॥
पल्यस्य दशमं भागं जीवित्वाऽसौ प्रतिश्रुतिः । पुत्रं सन्मतिमुत्पाद्य जीवितांते दिवं स्मृतः । ४८।
स रक्षन् पितृमर्यादां प्रजानां सम्मतो यतः । ततः सन्मतिनामायं कुलकारी कलालयः ॥१४९॥
पल्यस्य शतमं भागं स प्रतिजीव्य निजास्थितिं । पुत्रं क्षेमंकराभिख्यमुत्पाद्य त्रिदिवं गतः ॥१५०॥
प्रजानां च तदा जाताः सिंहव्याघ्रादिभीषकाः । सोऽपि क्षेमं ततः कृत्वा प्राप्तः क्षेमंकरश्रुतिं ॥१५१॥
सहस्रभागमाजीव्य पल्यस्यासौ प्रजां प्रभुः । पुत्रं क्षेमंधराभिख्यं जनयित्वा गतो दिवं ॥१५२॥
क्षेमंधरः स मत्वार्यस्थितिं कुलकरो गुरोः । सहस्रभागमाजीव्य पल्यस्य दशसंगुणं ॥ १५३ ॥
सूनुं सीमंकरं नाम्ना सुमुत्पाद्य ययौ दिवं । वृक्षलुब्धप्रजानां च स सीमामकरोत् प्रभुः ॥१५४॥
लक्षभागं स पल्यस्य जीवित्वा स्वर्गगोऽभवत् । सीमंधरो यथार्थाख्यस्तत्सुतो दशताडितं ॥१५५॥
तत्पुत्रो वाहिनीकृत्य चिक्रीड विपुलद्विपान् । यत्तत्ख्यातः स भूम्नाऽभूत् नाम्ना विपुलवाहनः॥१५६॥
कोटीभागं स पल्यस्य जीवित्वा स्वर्गमाश्रितः । चक्षुष्मानिति तत्सुनुरजनिष्ट जनप्रभुः ॥१५७॥
पुत्रचक्षुर्मुखालोकाच्चक्षुर्मत्वा भियाऽनया । आयुष्मत्प्रजया गीतश्चक्षुष्मानित्यसौ प्रभुः ॥ १५८ ॥

१—गतः ।

कोटीभागं स पल्यस्य दशताडितमीडितः। भुक्त्वा भोगमुदात्तोऽपि स्वरितोऽभूत्स्थितिक्षये१५९॥
तदपत्यं यशस्वीति स्वकालेऽपत्यमाख्यया। प्रजया योजयत्प्रायो योजितो यशसाऽहणा ॥१६०॥
कोटीभागं स पल्यस्य शतसंगुणितं प्रभुः। जीवित्वोत्पाद्य सत्पुत्रमभिचंद्रं दिवं गतः ॥ १६१॥
तत्कालेऽपत्यमुत्क्षिप्य प्रजा रमयति स्म यत्। अभिचंद्रमतः प्रापत्सोऽभिचंद्र इति श्रुतिं ॥१६२॥
कोटीभागं स पल्यस्य सहस्रगुणितं गुणी। संजीव्योत्पाद्य चंद्राभं तनयं प्रययौ दिवं ॥ १६३ ॥
कोटीभागं सहस्रं तु तस्यायुर्दशसंगुणं। पल्यस्य मरुदेवं स मासं पुत्रमलालयत् ॥ १६४ ॥
मरुदेवस्य काले च मातः पितरिति ध्वनिं। शुश्राव शिशुयुग्मस्य प्रथमं मिथुनं कलं ॥ १६५ ॥
एकमेवासृजत्पुत्रं प्रसेनजितमत्र सः। युग्मसृष्टेरिहैवोर्ध्वमितो व्यपनिनीषया ॥ १६६ ॥
प्रसेनजितमायोज्य प्रस्वेदमलभूषितं। विवाहविधिना वीरः प्रधानकुलकन्यया ॥१६७॥
कोटीभागसहस्रं स पल्यस्य शतसंगुणं। संजीव्य मरुदेवोऽपि महतां लोकमुद्ययौ ॥१६८॥
पूर्वकोट्यायुषं नाभिं प्रसेनाजिदजीजनत्। नाभिच्छेदव्यवस्थायाः कर्त्तारं स्वर्गगामिनं ॥१६९॥
दशानां कोटिलक्षाणां पल्यांशानामथांशकं। जीवित्वा कालधर्मेण प्रसेनाजिदितो दिवं ॥१७०॥

१—पक्षमत्तया इति क पुस्तके। २—'लव' इत्यपि।

शतान्यष्टादशोत्सेधो धनूंष्यासन्प्रतिश्रुतेः । त्रयोदश तु पुत्रस्य पौत्रस्याष्टशतान्यतः ॥१७१॥
परतः क्रमहानिस्तु धनुषां पंचविंशतेः । स पंचविंशतिशेषाः नाभेः पंचधनुःशती ॥१७२॥
आद्यसंस्थानसंघातगंभीरोदारमूर्त्तयः । स्वपूर्वभवविज्ञाना मनवस्ते चतुर्दश ॥१७३॥
चक्षुष्मांश्च यशस्वी च तथैवासौ प्रसेनजित् । त्रयः कुलकराः प्रोक्ताः प्रियंगुश्यामरोचिषः ॥१७४॥
चंद्राभश्चंद्रगौराभस्तथैव प्रथितः प्रभुः । कथिता दश शेषास्ते संतप्तकनकप्रभाः ॥१७५॥
मर्यादारक्षणोपायहामाधिक्कारनीतयः । प्रजानां जनकाभास्ते प्रभवः प्रतिभाधिकाः ॥१७६॥
इत्थं कुलकरोत्पत्तिः सकला कथिता नृप । नाभेयस्याधुनोत्पत्तिं शृणु पापविनाशिनीं ॥१७७॥
जगद् षड्भिर्द्रव्यैरनुपचरितैर्व्याप्तमखिलं, तदप्यर्हज्ज्ञानादधिकमभियुक्तैरधिगतं ।
यतः कालाद्यर्थे घनमपि धुनात्यंधतमसं, जिनादित्यालोकः स्थिरपरिणतः श्रीमदुदयः ॥१७८॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ कालकुलकरोत्पत्तिवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ।

अष्टमः सर्गः ।

श्रीमतामनुरूपं यः परिणाममनुसृतः । मननात् मनुजार्थस्य मनुसंज्ञामनुसृतः ॥ १ ॥

प्रक्षीणः कल्पवृक्षात्मा मध्ये दक्षिणभारतं । नाभेरपि स एवाभूत् प्रासादः पृथिवीमयः ॥ २ ॥
शातकुंभमयस्तंभो विचित्रमणिभित्तिकः । पुष्पविद्रुममुक्तादिमालाभिरुपशोभितः ॥ ३ ॥
सर्वतोभद्रसंज्ञोऽसौ प्रासादःसर्वतो मतः । सैकाशीतिपदः शालवाप्युद्यानाद्यलंकृतः ॥ ४ ॥
स्वस्थानमेककोऽनल्पकल्पवृक्षैर्वृतः क्षितौ । अध्यतिष्ठदधिष्ठातः स नाभेरनुभावतः ॥ ५ ॥
अथ नाभेरभूद्देवी महादेवीति वल्लभा । देवी शचीव शक्रस्य शुद्धसंतानसंभवाः ॥ ६ ॥
अभ्युन्नतौ पदांगुष्ठौ प्रोल्लसन्नखमंडलौ । यस्या रेजतु रुग्गेव ललाटस्य दिदृक्षया ॥ ७ ॥
उन्नताग्रसमास्निग्धतनुताम्रनखांशुभिः । कुट्टिमे कुरुतां यस्याः क्रमौ कुरवकाश्रियं ॥ ८ ॥
श्लिष्टांगुलिदलौ गूढगुल्फौ कांतिजलप्लवौ । समौ कूर्मोन्नतौ यस्याः पादपद्मौ प्रचक्रतुः ॥ ९ ॥
यस्याश्च चरणौ चारुमत्स्यशंखादिलक्षणौ । क्रीडास्वेव प्रियस्पर्शात्स्वेदसंबंधसंगिनौ ॥ १० ॥
आनुपूर्व्यसुवृत्ते च जंघे रोमशिरोज्झिते । लावण्यरसवर्णाढ्ये शरधी पुष्पधन्वनः ॥ ११ ॥
जानुनी मृदुनी यस्या गूढसंधानवर्त्तिनी । ददतुः प्रियगात्राणां मृदुस्पर्शकृतं सुखं ॥ १२ ॥
असाराः कदलीस्तंभाः कर्कशाः करिणां कराः । परिणाह गुणत्वेऽपि यदूर्वोः सदृशा न ते ॥१३॥
ऊरू संधिर्नितंबश्च कुकुंदरमनोहरः । गुरुर्जघनभारश्च यस्याः सादृश्यमत्यगात् ॥ १४ ॥

प्रदाक्षिणकृतावर्त्तं गंभीरं नाभिमंडलं । रोमराजिकृतासंगं यस्या नाभेरमून्मुदे ॥ १५ ॥
अरोमशं कृशं मध्यं यस्यास्त्रिवलिभंगुरं । बभौ वृत्तसमोत्तुंगघनस्तनभरादिव ॥ १६ ॥
कठिनस्तनचक्राभ्यां यस्या मृदुभियोरसा । प्रक्रीडच्चक्रवाकाभ्यां सरितेव विराजितं ॥ १७ ॥
रक्तहस्ततलौ श्रेष्ठप्रकोष्ठमणिबंधनौ । स्वंसौ मृदुभुजौ यस्याः कामपाशौ बभूवतुः ॥ १८ ॥
शंखावर्त्तसमग्रीवा प्रबालाधरपल्लवा । दंतमुक्ताफलोद्योता सिंधोर्वेलेव या बभौ ॥ १९ ॥
संरक्तताल्लुजिह्वाग्रमंतरास्यमराजत । यस्यां वाचि प्रवृत्तायां कोकिलस्वननिस्वनं ॥ २० ॥
प्रियामुखमिवात्मीयं दिदृक्षोः प्रेयसो मुखं । संमुखौ भवतो यस्याः कपोलाविव दर्पणौ ॥ २१ ॥
सन्नासिकाऽभिमध्यस्था समा समपुटाभ्यभात् । स्पर्द्धिन्योर्वारयंतीव दृशोरन्योन्यदर्शनं ॥२२॥
त्रिवर्णाब्जनिभे यस्या दर्शने दीर्घदर्शने । मंत्रस्य मंत्रणायेव कर्णमूलमुपाश्रिते ॥ २३ ॥
तनुरेखभ्रुवौ यस्या न दूरे न च संहते । समारोपितचापाभे शुशुभाते शुभावहे ॥ २४ ॥
न नतस्य न तुंगस्य सादृश्यासिसृक्षया । यस्या ललाटपट्टस्य नार्धेंदुरभवत् स्थितिः ॥ २५ ॥
कुंडलोज्वलगंडस्य यत्कर्णयुगलस्य तु । नोपमा मांसलस्यासीत् कोमलस्य समस्य तु ॥ २६ ॥
नीलकुंचितसुस्निग्धसूक्ष्मकेशकलापिनः । समस्य शिरसो यस्याः शोभा वाक्पथमत्यगात् ॥२७॥

अखंडमंडलश्चंद्रो मुखमंडलशोभया । यस्याः पराजितः प्रापदाधिनेवातिपांडुतां ॥ २८ ॥
षोडशाल्पकलावत्या द्वासप्ततिकलोज्वला । इंदुमूर्त्योपमीयेत सा कथं सकलंकया ॥ २९ ॥
चतुःषष्टिगुणोत्कृष्टा मार्दवातिशया कथं । सा चतुर्गुणया तुल्या पृथिव्या कठिनात्मना ॥३०॥
स्निग्धाभिरपि सुस्निग्धा सौष्ठवात्मा जलात्मभिः । कथं साऽन्यपणेयाभिरद्भिरप्युपमीयते ॥३१॥
तद्वद्भासुररूपापि कथं वा दहनात्मिका । मेने[1] तेजोमयी मूर्त्तिस्तन्मूर्त्तेरुपमानतां ॥३२॥
दर्शनस्पर्शनाभ्यां या नाभेरतिसुखावहा । स्पर्शमात्रसुखाहर्त्र्या वायुमूर्त्या कथं समा ॥३३॥
अशून्यहृदयस्पर्शा भर्त्तुर्या स्पर्शशून्यया । साऽकाशात्मिकया शक्त्या शुद्धयाऽपि कथं समा ॥३४॥
चतुर्दशविधं यस्याः कल्पपादपकल्पितं । अंगप्रत्यंगसंगेन भूषणं भूष्यतां गतं ॥३५॥
भुंजानस्य तया नाभेर्भोगं स्वर्लोकसंनिभं । वक्तुं शक्तौ यदि व्यक्तं वक्ता शुक्रबृहस्पती ॥३६॥
अथ तीर्थकृतामाद्ये स्वर्गात् सर्वार्थसिद्धितः । तयोः प्रागेव षण्मासान् वृषभोऽवतरिष्यति ॥३७॥
दिवः पतितुमारब्धा वसुधारा गृहांगणे । प्रत्यहं धनदोन्मुक्ताः पुरुहूतनिदेशतः ॥३८॥
श्रीलक्ष्मीधृतिकीर्त्याद्या नवातिर्नव चाययुः[2]। प्राग्विद्युद्दिक्कुमार्योऽपि दिग्विदिग्भ्यः ससंभ्रमाः॥३९

१—भेजे तनुमयी इति क पुस्तके । २—चागताः ।

प्रयुज्य प्रणतिं तुष्टा जिनपित्रोर्भविष्यतोः। स्वर्निवेद्यागमं स्वं च पाकशासनशासनात् ॥४०॥
प्रत्येकं शासनं देव्यो मरुदेव्या महादरात्। प्रतीषुर्देवि! देह्याज्ञां नंद जीवेति सद्गिरः ॥४१॥
रूपयौवनलावण्यसौभाग्यादिगुणार्णवं। वर्णयंति तदा काश्चिदाश्चर्यं परमं श्रिताः ॥४२॥
अक्षरालेख्यगंधर्वगणितागमपूर्वकं। कलाकौशलमन्यास्तु प्रशंसंति समंततः ॥४३॥
दर्शयंति स्वयं काश्चित् तंत्रीवीणादिकौशलं। गायंति मधुरं गेयं काश्चित्कर्णरसायनं ॥४४॥
शोभनाभिनयं काश्चिद् शृंगारादिरसोत्कटं। हावभावविलासिन्यो नृत्यंति नयनामृतं ॥ ४५ ॥
हस्तसंवाहने काश्चित् पादसंवाहने पराः। अंगसंवाहने काश्चित् व्यावृत्ता मृदुपाणयः ॥ ४६ ॥
अंगाभ्यंगविधौ काश्चिद् काश्चिदुद्वर्त्तने पराः। काश्चिन्मज्जनके काश्चित्स्नानवस्त्रनिपीलने ॥४७॥
संद्गधानयने काश्चित् तत्समालभने पराः। काश्चिच्चित्रांबराधाने परिधानविधौ पराः ॥ ४८ ॥
काश्चिद्भूषास्रगाधाने काश्चिद्देहप्रसाधने। दिव्यान्नानयने काश्चित् काश्चिद्भोजनकर्मणि ॥ ४९ ॥
शय्यासनविधौ काश्चित् काश्चित्तांबूलढौकने। काश्चित्पतद्ग्रहे व्यग्राः काश्चिच्च गृहकर्मणि ॥५०॥
दर्पणग्रहणे काश्चिच्चामरग्रहणे पराः। क्षत्रस्य ग्रहणे काश्चित् व्यजनग्रहणे पराः ॥ ५१ ॥

१—इन्द्र। २—निपीडने।

अंगरक्षापरा देव्यः खड्गव्यग्राग्रपाणयः । ग्रहरक्षपिशाचेभ्यो रक्षंत्यः प्रतिजाग्रति ॥ ५२ ॥
अभ्यंतरगृहद्वारे काश्चित्काश्चिद्वहिर्बभुः । आसिचक्रगदाशक्तिहेमवेत्रकराः स्थिताः ॥ ५२ ॥
इति नक्तं दिवं दृष्ट्वा देवताभिरनुष्ठितं । आत्मनः शासनं लोके परेषामतिदुर्लभं ॥ ५४ ॥
निश्चितश्चापि षण्मासान् पतंत्या वसुधारया । नाभिना मरुदेव्या च प्रार्थ्यस्तीर्थकरोद्भवः ॥५५॥
अथासौ सौम्यताराभिरभितः कृतसेवना । मरुदेवी सुरस्त्रीभिश्चंद्रलेखेव हारिणी ॥ ५६ ॥
शरदभ्रावलीशुभ्रे प्रासादेऽगरुधूपिते । नानोपधानकाधाने शयाना शयने विधौ ॥ ५७ ॥
निधीनिव निशाशेषे ददर्श शुभसूचकान् । क्रमेण षोडशस्वप्नानिमान् दुर्लभदर्शनान् ॥ ५८ ॥
प्रभूतदानधारार्द्रकरपुष्करधारिणं । गीयमानं शुचिं भृंगैर्दानार्थिभिरिवेश्वरं ॥ ५९ ॥
सुप्रातिध्वानिविक्षिप्तप्रतिपक्षं शुभोदयं । शुभ्रं भद्राकृतिं धीरं वृपं वृपमिवोन्नतं ॥६०॥
मत्तेभं तमिवान्वेष्टुं मदगंधेन सूचितं । सिंहमुत्थितमद्राक्षीन्नखदंष्ट्रासटोत्कटं ॥६१॥
चित्ररत्नघटाटोपघनघोपघनाघनैः । श्रियोऽभिषेकमम्भोजे नवांभोभिरिवावनेः ॥६२॥
नानापुष्पवने दीर्घे श्रीमाले सौरभोत्कटे । संभूयेव च सर्वर्तुश्रीभिः सेवार्थमुद्धृते ॥६३॥
अधोमुखमयूखोद्यदंडमातपवारणं । ताराभरणयोत्क्षिप्तं श्यामयेवेंदुमंडलं ॥६४॥

संध्यारागांगरागाढ्यं पूर्वाशांगनयारुणं । सिंदूरारुणितं कुंभं मंगलार्थमिवोद्धृतं ॥६५॥
मीनौ कृतजलक्रीडौ हृतात्मोदरशोभयोः । नेत्रयोश्चलयोर्दातुमुपालंभमिवागतौ ॥६६॥
हारिणौ वारिणा पूर्णौ विशालौ कलशौ घनौ । सावर्णौ स्वोपमौ द्रष्टुं स्तनभराविवोद्धृतौ ॥६७॥
सौदंडपुंडरीकौघराजहंसमनोहरं । रथपादातिनादाढ्यं सरः सैन्यमिवोर्जितं ॥६८॥
प्रमीनामिथुनोन्मेषमकराद्युरुराशिभिः । प्रपूर्णितामिवाकाशं वर्द्धमानं महार्णवं ॥६९॥
सावष्टंभभुजस्तंभैः प्रौढदृष्टिभिरुन्मुखैः । सिंहैर्हैमासनं व्यूढं मनुराजैर्जगद् यथा ॥७०॥
स्वर्गसौंदर्यसंदर्भमिव दर्शयितुं नृणां । विमानं कलगीताभिर्देवकन्याभिराहृतं ॥७१॥
नागलोकं विजित्येव नागेंद्रभवनं श्रिया । नागकन्याभिरुद्भूतं शेषलोकजिगीषया ॥७२॥
अभ्रंलिहं निरभ्रेऽपि विद्युदिंद्रधनुःश्रियं । खे सृजंतं महारत्नराशिं प्रांशुभिरंशुभिः ॥७३॥
सुप्रसन्नं भ्रमज्ज्वालं निधूमेंधनपावक । प्रचलत्पुष्पिताद्भ्रात किंशुकोत्करविभ्रम ॥७४॥
खंडस्वप्नानिमान् दृष्ट्वा दध्रेऽनंतरमात्मनि । जिनं सा वृषरूपेण प्रविष्टं मुखवर्त्मना ॥७५॥
सुस्वप्नदर्शनानंदं स्वामिनी यन्नवं मया । प्रापितेति कृतार्थेव काऽपि निद्रासखी निरैत् ॥७६॥

१ चक्रवाक ।

विबुद्धस्व विबुद्धार्थे विवर्धस्व विवर्धनं । विजयस्व जयश्रीशे देवि पूर्णमनोरथे ॥७७॥
इत्यादयो विबोधाय दिक्कुमारीभिरीरिताः । याताः स्वयं विबुद्धायाः केवलं मंगलं गिरः ॥७८॥
दोषाकरः कलंक्येष निःकलंकगुणाकरं । दृष्ट्वेव मुखचंद्रं ते ह्रिया भवति निष्प्रभः ॥७९॥
तवैव गृहमुद्योत्यं दशनप्रभयाऽधुना । इतीव स्फुरितव्याजात् प्रदीपाः त्वं हसंत्यमी ॥८०॥
अत्यंतमुखरागाढ्या क्षणरंजितविप्रिया । प्रस्खलत्खलमैत्रीव वंध्या सध्या विरज्यते ॥८१॥
स्वभावमत्सरारंभा व्यापिकोदयमेष्यतः । प्रभा रवेरवध्यार्था साधोर्मैत्रीव वर्द्धते ॥८२॥
भास्वरांबरभूषा भाति भास्वद्विशेषका । पुरंध्रीरिव पूर्वाऽशा मंगलाय तवोद्गता ॥८३॥
दीर्घां नीत्वा निशामेषा दीर्घिकास्विनदर्शने । तुष्टा स्वान् घटत्येव चक्रवाकी कलारवान ॥८४॥
त्वत्पादन्यासलीलायामीक्षणार्थमिवाकुलं । त्वामुत्थापयते कूजत्कलहंसकुलं कलं ॥ ८५ ॥
घूर्णिता मृदुवातेन धृताभिनयमूर्त्तयः । भवत्या दर्शयंतीव नृत्तारंभममी द्रुमाः ॥ ८६ ॥
दिङ्मुखानि प्रसन्नानि चेष्टितानीव तेऽधुना । सुप्रभातमिदं देवि मुंच शय्यामानिंदिते ॥८७॥
इति वंदिजनैर्वंद्या साऽमुंचत् शुचिविग्रहा । शय्यां पुष्पतरंगाढ्यां हंसीव सिकतास्थलीं ॥८८॥

धौतेवासं[1] गृहीत्वाऽसौ धौतच्छायाविनिर्गता । शुशुभे शारदांभोदात् तन्वीव शशिनः कला ॥८९॥
श्रीविद्युद्दिक्कुमारीभिः प्रत्यग्रकृतभूषणा । सांऽतर्गर्भोऽतिकं याता घनश्रीनाभिभूभृतः ॥९०॥
भद्रासनस्थितायाऽस्मै क्रमेण स्वासनस्थिता । श्रीरिवावेदयत् स्वप्नान् सत्करांभोजकुड्मला ॥९१॥
स्वप्नार्थं सोऽवधार्यैतां जगाद दयिते ध्रुवं । संक्रांतोऽद्य त्रिलोकानां नाथस्तीर्थंकरस्त्वयि ॥९२॥
न दूराल्पफलप्राप्तावीदृशं स्वप्नदर्शनं । अतोऽद्यैव प्रतीतो मे भवत्यां गर्भसंभवः ॥ ९३ ॥
षण्मासवसुवृष्टया च देवतापरिचर्यया । सूचिता जिनसंभूतिर्या साद्य फलिताऽऽवयोः ॥ ९४ ॥
सर्वथा सर्वकल्याणभाजनात्मजजन्मना । प्रिये ! त्वमचिरेणैव जगदानंदयिष्यसि ॥ ९५ ॥
इति सुस्वप्नफलं श्रुत्वा सद्यः संभूतमात्मनि । मुमुदेऽतितरां देवी दीप्तिं कांतिं च बिभ्रती ॥ ९६ ॥
तृतीयकालशेषेऽसावशीतिश्चतुरुत्तरा । पूर्वलक्षास्त्रिवर्षाष्टमासपक्षयुतास्तदा ॥ ९७ ॥
स्वर्गावतरणं जैनमाषाढबहुलस्य तु । द्वितीयामुत्तराषाढनक्षत्रेऽत्र जगन्नतं ॥ ९८ ॥
वर्धमाने क्रमाद् गर्भे वर्धते वपुषो वपुः । तस्यास्त्रिवलिशोभाया भंगभीत्येव नोदरं ॥ ९९ ॥
गौरवातिशयाधानी दधाना त्रिजगद्गुरुं । लाघवातिशयं देहे दध्रे चित्रमिदं परं ॥ १०० ॥
संतापहेतुरंतस्थो मातुर्माभूत् सुनिश्चलः । ज्ञानवान् स जिनो भानुर्यथाऽप्सु प्रतिबिंबतः ॥१०१॥

१ धौतवासगृहीता इति घ पुस्तके ।

ज्ञाननेत्रैः त्रिभिः पश्यन् विश्वं मासानसौ सुखं । नव गर्भगृहेऽतिष्ठद्दिक्कुमारीविशोधिते ॥ १०२ ॥
पूर्णेषु तेषु मासेषु निपतद्वसुवृष्टिषु । जिनं सा सुषुवे देवी सोत्तराषाढसंनिधौ ॥ १०३ ॥
प्राच्या इव विशुद्धाया विशुद्धस्फाटिकोपमात् । घनोदराद्विनिक्रांतो जिनःसूर्य इवावभौ ॥१०४॥
जातकर्मणि कर्त्तव्ये व्यापृता लघुदेवताः । अतरंगा हि कर्त्तव्ये व्याप्रियंते जगत्परं ॥ १०५ ॥
विजया वैजयंती च जयंती चापराजिता । नंदा नंदोत्तरा नदी नंदीवर्द्धनया सह ॥ १०६ ॥
आलोलकुंडलालोकविलसद्गंडमंडलाः । एतास्ता दिक्कुमार्योऽष्टौ तस्थुर्भृंगारपाणयः ॥ १०७ ॥
सुस्थिता प्रणिधान्या सु—प्रबुद्धा च यशोधरा । लक्ष्मीमती तथैवान्या कीर्तिमत्युपवर्णिताः॥१०८॥
वसुंधरा तथा चित्रा चित्राभरणभास्वराः । दिक्कुमार्य इमाश्चाष्टौ तस्थुर्दर्पणपाणयः ॥ १०९ ॥
इला सुरा पृथिव्याख्या पद्मावत्यपि कांचना । सीता नवमिकाऽन्या च दिक्कन्या भद्रकाभिधा ॥
अष्टौ तुष्टाः प्रकृष्टांगप्रभाभापितादिङ्मुखाः । धवलान्यातपत्राणि धारयंति स्म विस्मिताः ॥१११॥
ह्रीः श्रीः धृतिः परा सा च वारुणी पुंडरीकिणी । अलंबुसानुजास्यश्रीमिश्रकेशीति विश्रुताः ॥११२॥
[1]कणत्कनकदंडानि [2]कणत्कनककुंडलाः । चामराणि गृहीत्वाष्टौ दिक्कुमार्यःस्थिता इमाः ॥११३॥

१ कनत् । २—कनत् ।

चित्रा कनकचित्रा च सूत्रामणिरिमा बभुः। त्रिशिराश्च कृतोद्योता विद्युत्कन्या तडित्प्रभाः ॥११४॥
विजया वैजयंती च जयंती चापराजिता। इमा विद्युत्कुमारीणां चतस्रः प्रमुखाः स्थिताः ॥११५॥
रुचका दिक्कुमारीणां प्रधाना रुचकोज्वला। रुचकाभाश्चतस्रस्ता रुचकप्रभया सह ॥ ११६ ॥
जातकर्म जिनस्यैताश्चक्रुरष्टौ यथाविधि। जातकर्माणि निष्णाताः सर्वत्र जिनजन्मनि ॥ ११७ ॥
आचेलुश्चलमौलीनां काले तस्मिन् सुरेशिनां। त्रैलोक्येऽप्यासनान्याशु जिनोद्भूतिप्रभावतः ॥
प्रणेमुरहमिंद्रास्तं प्रयुक्तावधयो जिनं। तत्रस्थाः सिंहपीठेभ्यो गत्वा सप्तपदान् परं ॥ ११९ ॥
लोके भावनदेवानां शंखध्वनिरभूत्स्वयं। व्यंतराणां रवो भेर्या ज्योतिषां सिंहनिस्वनाः ॥१२०॥
घंटारत्नमहाघोषा कल्पलोकमतीतनत्। किं कर्तव्यत्वसंमुख्यं त्रैलोक्यमभवत्क्षणं ॥ १२१ ॥
आसनस्य प्रकंपेन दध्यौ विस्मितधीस्तदा। सौधर्मेंद्रश्चलन्मौलिर्भूत्वा मूर्धानमुन्नतं ॥ १२२ ॥
अतिबालेन मुग्धेन स्वतंत्रेणाशुकारिणा। निर्भयेन विशंकेन केनेदमप्यनुष्ठितं ॥ १२३ ॥
देवदानवचक्रस्य स्वपराक्रमशालिनः। कथंचित्प्रातिकूलस्य यः समर्थः कदर्थने ॥ १२४ ॥
इंद्रः पुरंदरः शक्रः कथं न गणितोऽधुना। सोऽहं कंपयताऽनेन सिंहासनमकंपनं ॥ १२५ ॥
संभावयामि नेदृक्षप्रभावं भुवनत्रये। प्रभुं तीर्थंकरादन्यमिति मत्वा स्मृतोऽवधिं ॥ १२६ ॥

अतो विस्फुरितेनायमवधिज्ञानचक्षुषा । तं तीर्थकरमुत्पन्नमाद्यमैक्षिष्ट भारते ॥ १२७ ॥
आसनादवतीर्याशु क्रांत्वा सप्तपदानि स । जयतां जिन इत्युक्त्वा प्रणनाम कृतांजलिः ॥१२८॥
पुनश्चासनमारुह्य समाज्ञापयतिस्म सः । ध्यानानंतरमानम्य स्थितं सेनापतिं पुरः ॥ १२९ ॥
अस्यामाद्योऽवसर्पिण्यां जातस्तीर्थकरोऽधुना । गंतव्यं भारतं देवैर्बोध्यतां ते त्वयान्विति ॥१३०॥
स्वाम्यादेशे कृते तेन चेलुः सौधर्मवासिनः । देवैश्चाच्युतपर्यंताः स्वयंबुद्धाः सुरेश्वराः ॥ १३१ ॥
यथास्वं स्वं निमित्तेभ्यः प्रतिबुद्धाः प्रहर्षिणः । निश्चेलुर्निजलोकेभ्यो ज्योतिर्व्यंतरभावनाः ॥१३२॥
गजाश्वरथसंघट्टपदातिवृषभैस्तदा । गंधर्वनर्तकीमिश्रैः सप्तानीकैश्रितं नभः ॥ १३३ ॥
महिषाद्यैश्च नावाद्यैः खड्गाद्यैर्गरुडादिभिः । शिबिकाश्वोष्ट्रमकरद्विपहंसादिभिस्तथा ॥ १३४ ॥
दशानामसुरादीनां कुमाराणां यथाक्रमं । सप्तानीकैर्नभो व्याप्तं बभासे नितरां तदा ॥ १३५ ॥
विमानानि समारूढा गोवृषान् गवयान् रथान् । अश्वान् शरभशार्दूलान् मकरान् करभान् सुराः ॥
वराहमहिषान् सिंहान् पृषतान् द्वीपिनो द्विपान् । चमरान् हरिणांश्चारुरुरून् केचिद् गरुत्मतः ॥१३७॥
शुकान् परभृतान् क्रौंचान् कुररान् शिखिकुक्कुटान् । परे पारावतान् हंसान् सकारंडवसारसान् ॥
चक्रवाकबलाकौघान् बकादीन् समाधिष्ठिताः । चतुर्देवनिकायास्ते सह जग्मुरितस्ततः ॥ १३९ ॥

श्वेतच्छत्रैर्ध्वजैश्चित्रैश्चामरैः फेनपांडुरैः। कुर्वाणाः सर्वमाकाशं समाकीर्णं निरंतरं ॥ १४० ॥
भेरीदुंदुभिशंखादिरवापूरितविष्टपं। नृत्यगीतैर्युतं रेजे देवागमनमद्भुतं ॥ १४१ ॥
सौधर्मेंद्रस्तदारूढो गजानीकाधिपं गजं। ऐरावतं विकुर्वाणमाकाशाकारवद्वपुः ॥ १४२ ॥
प्रोद्दंष्ट्रांतरविस्फारिकरास्फारितपुष्करं। प्रोद्दशांकुरमध्योद्यद्भोगींद्रमिव भूधरं ॥ १४३ ॥
कर्णचामरशंखांकं कक्षानक्षत्रमालिनं। बलाकाहंसविद्युद्भिरिव तांतं महत्पथं ॥ १४४ ॥
आरूढवारणेंद्राणामिंद्राणां निवहैर्युतः। जन्मक्षेत्रं जिनस्यासौ पवित्रं प्रापवान् सुरैः ॥ १४५ ॥
नभसोऽवतरंती वै सा सुराऽसुरसंततिः। कुबेरकृतमद्राक्षीत् पुरं स्वर्गमिव क्षितौ ॥ १४६ ॥
वप्रप्राकारपरिखा परिवेषमनोहरं। सोद्यानकाननारामसरोवापीविराजितं ॥ १४७ ॥
इंद्रनीलमहानीलवज्रवैडूर्यभित्तयः। प्रासादाः पद्मरागादिप्रभाढ्या यत्र रेजिरे ॥ १४८ ॥
सुराणामसुराणां च तत्पुरश्रीविलोकिनां। मनोऽभूद्दूरितोत्कंठं स्वर्गपातालजाश्रियः ॥ १४९ ॥
यतः साकमितं यत्प्राक् सुरासुरजगत्त्रयं। पुरं तत्कीर्तिमत्तस्मात्साकेतमिति कीर्त्तितं ॥ १५० ॥
ततः समं पुरं देवैस्त्रिःपरीत्य पुरंदरः। प्रविश्य जिनमानेतुमादिदेश शचीं शुचिं ॥ १५१ ॥
लब्धादेशा जनन्याः सा प्रविश्य प्रसवालयं। सुखनिद्रां विधायान्यं शिशुं च सुरमायया॥१५२॥

प्रणम्य जिनमादाय चकार करयोर्हरेः । तद्रूपातिशयं पश्यन् सहस्राक्षो न तृप्तिमैत् ॥ १५३ ॥
आरोप्य जिनमात्मांकमैरावतगजे स्थितः । सोऽत्यभादुदितादित्यः शिखरात्मेव नैषधः ॥१५४॥
छत्रच्छायापटच्छन्नं चामरोत्करवीजितं । जिनं निनाय देवौघैः सुमेरुशिखरं हरिः ॥ १५५ ॥
सप्रदक्षिणमागत्य पांडुकाख्यशिलातले । सिंहासने जिनं शक्रश्चक्रे चक्रेण नाकिनां ॥ १५६ ॥
क्षुभितांभोधिगंभीरा भेरीपटहमर्दलाः । ताडिताः समृदंगाद्याः सुरैः शंखाश्च पूरिताः ॥१५७॥
जगुः किन्नरगंधर्वा स्त्रीभिस्तुंबुरुनारदाः । सविश्वावसवो विश्वे चित्रं श्रोत्रमनोहरं ॥ १५८ ॥
ततं च विततं चैव घनं सुषिरमप्यलं । मनोहारि तदा देवैर्वाद्यते स्म चतुर्विधं ॥ १५९ ॥
हावभावाभिगमं च नृत्यमप्सरसामभूत् । अंगहारकृतासंगं शृंगारादिरसाद्भुतं ॥ ६० ॥
इत्थं तत्र महानंदे देवसंघैः प्रवर्तिते । पूरिते प्रतिशब्दैश्च मंदरे रुंद्रकंदरे ॥ १६१ ॥
भृताऽऽकल्पेऽभिषेकार्थं सौधर्मेंद्रे ससंभ्रमे । साष्टमंगलहस्तासु प्रशस्तामरभीरुषु ॥ १६२ ॥
संघटैः सुरसंघातैर्महावेगैर्महाघनैः । सर्वादिक्षु गतैः क्षिप्रं क्षोभितः क्षीरसागरः ॥ १६३ ॥
क्षीरापूर्णाः सुरैः क्षिप्ता राजताः करतःकरं । सौवर्णाश्च बभुः कुंभाश्चंद्रार्का इव मेरुगाः ॥१६४॥
कुंभैर्निरंतरारावैर्बहुदेवसहस्रकैः । क्षीरांभोभिर्जिनेंद्रस्य चक्रे जन्माभिषेचनं ॥ १६५ ॥

ऐंद्राःकुंभमहांभोदा दुग्धांभोंतरवार्षिणः। शिशोर्जिनागिरेरासन्न तदाऽऽयासहेतवः ॥ १६६ ॥
जिनोच्छ्वासमुहुःक्षिप्तक्षीरवारिप्लवेरिताः। प्लवंते स्म क्षणं देवाः क्षीरौघे मक्षिकौघवत् ॥१६७॥
दृष्टः सुरगणैर्यः प्राग् मंदरो रत्नपिंजरः। स एव क्षीरपूरौघैर्धवलीकृतविग्रहः ॥ १६८ ॥
तदाऽत्यंतपरोक्षोऽपि प्रत्यक्षः क्षीरवारिधिः। कृतः खेचरसंघातैर्जिनजन्माभिषेचने ॥ १६९ ॥
स्नानासनमभून्मेरुः स्नानवारिपयोंबुधेः। स्नानसंपादका देवाः स्नानमीदृग् जिनस्य तत् ॥१७०॥
इंद्रसामानिकानेकलोकपालादयोऽमराः। क्रमेण चक्रुरंभोभिरभिषेकं पयोंबुधेः ॥ १७१ ॥
अत्यंतसुकुमारस्य जिनस्य सुरयोषितः। शच्याद्याः पल्लवस्पर्शसुकुमारकरास्ततः ॥ १७२ ॥
दिव्यामोदसमाकृष्टषट्पदौघानुलेपनैः। उद्वर्तयंत्यस्ताः प्रापुः शिशुस्पर्शसुखं नवं ॥ १७३ ॥
ततो गंधोदकैः कुंभैरभ्यषिंचन् जगत्प्रभुं। पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतं ॥ १७४ ॥
समं च चतुरस्रं च संस्थानं दधतः परं। सुवज्रर्षभनाराचसंघातसुघनात्मनः ॥ १७५ ॥
कर्णावक्षतकायस्य कथंचिद् वज्रपाणिना। विद्धौ वज्रघनौ तस्य वज्रसूचीमुखेन तौ ॥ १७६ ॥
कृताभ्यां कर्णयोरीशः कुंडलाभ्याममात्ततः। जंबूद्वीपः सुभानुभ्यां सेवकाभ्यामिवान्वितः ॥१७७॥
चूलायां स्निग्धनीलायां पद्मरागमणिःकृतः। परभागमसौ लेभे हरिनीलतनौ यथा ॥ १७८ ॥

ललाटपट्टविन्यस्ता सितचंदनचर्चिका । रराजार्द्धेंदुरेखेव संध्या पीताभ्रवर्तिनी ॥१७९॥
सुरत्नहेमकेयूरभूषितौ च भुजा मृदू । रेजतुः सफणारत्नाविव बालभुजंगमौ ॥ १८० ॥
प्रकोष्ठौ ज्येष्ठमाणिक्यकटकप्रकटप्रभौ । अभातां रत्नशैलस्य तटाविव सुराश्रितौ ॥ १८१ ॥
स्थूलमुक्ताफलेनास्य रेजे हारेण हारिणा । वक्षःस्थलं महीध्रस्य निर्झरेणेव सत्तटं ॥ १८२ ॥
बभौ प्रालंबसूत्रेण भास्वद्रत्नमयेन सः । कल्पद्रुम इवाश्लिष्टः कांतकल्पलतात्मना ॥ १८३ ॥
विचित्रस्योपरिस्थेन कटिसूत्रेण वाससः । बभौ कटीतटीवाद्रेरभ्रस्य तडिदर्चिषः ॥ १८४ ॥
चरणौ मणिसंकीर्णरणच्चरणभूषणौ । परस्परसमालापं कुर्वाणाविव रेजतुः ॥ १८५ ॥
मुद्रिकाभरणेनाभाद् रत्नहेमात्मना गलन् । स्वांगुलीबहुलावण्यरक्षामुद्रीकृतेन वा ॥ १८६ ॥
दिग्धश्चंदनपंकेन कुंकुमस्थासकाचितः । संध्यापीताभ्रलेशाक्तस्फटिकाद्रिरिवाबभौ १८७ ॥
उत्तरीयांबरं स्वच्छं हंसमालोज्ज्वलं सृतः । शुशुभेऽसौ शुभाकारः शरद्धन इवानघः ॥१८८॥
संतानपारिजातादिदेवलोकतरूद्भवैः । जलस्थलोद्भवैर्नानासुरभिप्रसवैः शुभैः ॥ १८९ ॥
भद्रशालवनोद्भूतैरंद्रनंदनसंभवैः । पुष्पैः सौमनसोद्भूतैः सपांडुकवनोद्भवैः ॥ १९० ॥

१ ' सन्ध्याभ्रदभ्रलेशाक्त ' इत्यपि पाठः ।

ग्रंथितेन सुरस्त्रीभिर्माल्यकौशलचंचुभिः । मंडितो मुंडमालाग्रमंडनेनाद्रिमंडनः ॥ १९१ ॥
भद्रशालो जगत्युच्चैर्जगतामभिनंदनः । सोऽभात्सौमनसोऽखंडयशसा पांडुकः स्वयं ॥ १९२ ॥
त्रिशेषको भुवामीशो विशेषकाविभूषितः । विशेषतो बभौ देवविशेषकविभूषितः ॥ १९३ ॥
शिशोर्निरंजनस्यास्ये स्वंजनांजितलोचने । परं जितार्कचंद्राभदीप्तिकांती बभूवतुः ॥ १९४ ॥
श्रीशचीकीर्त्तिलक्ष्मीभिः स्वहस्तैः कृतमंडनः । स तथाऽऽखंडलादीनां देवानामहरन्मनः ॥१९५॥
ततस्तमृषभं नाम्ना प्रधानपुरुषं सुराः । युगाद्यमभिधायेत्थं शक्राद्याः स्तोतुमुद्यताः ॥ १९६ ॥
मतिश्रुतावधिश्रेष्ठचक्षुषा वृषभ! त्वया । जातेन भारते क्षेत्रे द्योतितं भुवनत्रयं ॥ १९७ ॥
नृभवाभिमुखेनैव भवताऽद्भुतकर्मणा । आवर्जितं जगद् येन किं जातस्यतदद्भुतं ॥ १९८ ॥
पादाधःस्थापितोत्तुंगमानशृंगमहागुरुः । महागुरुस्त्वमीशानां शैशवेऽप्यशिशुस्थितिः ॥ १९९ ॥
अस्पृशंतो भुवं सर्वां पादाग्रैः सुरपर्वताः । पादौ मुकुटकूटोच्चैः शिरोभिस्ते वहंत्यमी ॥ २०० ॥
मंत्रशक्तिरियं किंतु प्रभुशक्तिस्तथाऽथवा । प्रोत्साहशक्तिराहोश्वित् किमप्यन्यन्महाद्भुतं ॥ २०१ ॥
पौरुषाधिकमानीतं त्वया नाथ जगत्त्रयं । कथमेकपदे विश्वं विधिनेव विधीयतां ॥ २०२ ॥
क्व चेदं सौकुमार्यं ते क्व च कार्कश्यमीदृशं नाथान्योन्यविरुद्धार्थसंभवस्त्वयि दृश्यते ॥ २०३ ॥

अष्टोत्तरसहस्रोच्चैर्लक्षणं व्यंजनांचितं । रूपं तवैतदाभाति भूसुरासुरदुर्लभं ॥ २०४ ॥
रूपातिशयतो लोके प्रथमश्चरमस्य ते । विधत्ते प्रणतं विश्वं विग्रहो विग्रहाद् विना ॥ २०५ ॥
हिरण्यवृष्टिरिष्टाभूद् गर्भस्थेऽपि यतस्त्वयि । हिरण्यगर्भ इत्युच्चैर्गीर्वाणैर्गीयसे ततः ॥ २०६ ॥
सह ज्ञानत्रयेणात्र तृतीयभवभाविना । स्वयंभूतो यतोऽतस्त्वं स्वयंभूरिति भाष्यसे ॥ २०७ ॥
व्यवस्थानां विधाता त्वं भविता विधिनात्मनां । भारते यत्ततोऽन्वर्थं विधातेत्याभिधीयसे ॥२०८॥
अपूर्वः सर्वतो रक्षां कुर्वन् जातः पतिः प्रभो । प्रजानां त्वं यतस्तस्मात् प्रजापतिरितीर्यसे ॥२०९॥
आकंतीक्षुरसं प्रीत्या बाहुल्येन त्वयि प्रभो । प्रजाः प्रभो यतस्तस्मादिक्ष्वाकुरिति कीर्त्यसे ॥२१०॥
पूर्वः सर्वपुराणानां त्वं महामहिमा महान् । इह दीव्यसि यत्तेन पुरुदेव इतीष्यसे ॥ २११ ॥
भरतामनमध्यास्य त्रैलोक्यैश्वर्यमर्पयन् । युज्यते तत्त्ववात्यल्पमनंतैश्वर्ययोगिनः ॥ २१२ ॥
त्वं विधाता स्वयंबुद्धस्तपसां दुष्करात्मनां । संचेता चेतसामुच्चैर्यशसां वाऽतिशायितां ॥२१३॥
श्रेयसो दानधर्मस्य श्रेयोऽर्थः प्राणिनां मुनिः । भुवि दर्शयिता वीरः विशुद्धां पात्रतां स्वयं॥२१४॥
त्वमनंगभुजंगस्य मंत्रो द्वेपाद्विपांकुशः । मोहाभ्रपटलभ्रांतिभ्रंशहेतुः प्रभंजनः ॥ २१५ ॥
प्रशस्तास्तिामितध्यानसुप्तमीनमहाह्रदः । बंधानंतरसंधानघातीधनहुताशनः ॥ २१६ ॥

स्नेहानपेक्षकैवल्यप्रदीपोद्योतिताखिलः । देशको मोक्षमार्गस्य निसर्गाद् भविता भुवि ॥ २१७ ॥
कालमष्टादशांभोधिकोटीकोटीप्रमाणकं । धर्मनामानि निर्मूलं नष्टे सृष्टेह भारते ॥ २१८ ॥
स्वर्गापवर्गमार्गस्य मार्गणे भव्यदेहिनां । दिग्मोहांधधियां धीमान् जातस्त्वमुपदेशकः ॥ २१९ ॥
जायंतेऽभ्युदयश्रीगाः श्रेया निःश्रेयसः श्रियः । सांप्रतं भुवि भव्यौघा नाथ त्वदुपदेशतः ॥२२०॥
प्रमाणनयमार्गाभ्यामविरुद्धेन जंतवः । त्वदुपज्ञेन मार्गेण प्राप्नुवंतु पदं प्रियं ॥ २२१ ॥
प्रणतव्यः प्रयत्नेन स्तोतव्यस्त्वं हितार्थिनां । स्मर्तव्यः सततं नाथ जगतामुपकारकः ॥ २२२ ॥
प्रणतेस्ते कृती कायो गुणिनी वाग्गुणस्तुतेः । प्राणिनां प्रणिधानेन गुणानां गुणवन्मनः ॥ २२३ ॥
नमस्ते मृत्युमल्लाय नमस्ते भवभेदिने । नमस्ते जरसोंताय नमस्ते ध्वस्तकर्मणे ॥ २२४ ॥
नमस्तेऽनंबोधाय नमस्तेऽनंतदर्शिने । नमस्तेऽनंतवीर्याय नमस्तेऽनंतशर्मणे ॥ २२५ ॥
नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकबंधवे । नमस्ते लोकवीराय नमस्ते लोकवेधसे ॥ २२६ ॥
नमस्ते जिनचंद्राय नमस्ते जिनभानवे । नमस्ते जिनसर्वाय नमस्ते जिनतायिने ॥ २२७ ॥
इति स्तुतिशतैः स्तुत्वा नत्वा शतमखादयः। भक्तिस्त्वय्यस्तु शस्तेति शतशस्तं ययाचिरे॥२२८॥

१—आश्रयाः ।

तत: सम्भसोद्यानसुरसंघातसेनया । वृतः शताध्वरो मेरोरुच्चचाल जिनान्वितः ॥ २२९ ॥
सुवर्णकर्णिकारोहराशिपिंजरविग्रहं । तमैरावतमारोप्य रौप्याद्रिमिव जंगमं ॥ २३० ॥
तामयोध्यां परायोध्यां ध्वजमालाविभूषितां । वादित्रध्वनिधीरां स्वामध्यास्य ध्वजिनीमिव ॥२३१॥
पौलोम्या मातुरुत्संगे स्थापयित्वा जिनं ततः । जनकौ प्रणिपत्याशु कृतनेपथ्यविग्रह ॥२३२॥
नृत्यत्सुरांगनोद्भासि भास्वद्भुजवनावृतः । ननर्त्त तांडवारंभचलद्विश्वंभरो हरिः ॥ २३३ ॥
चिरं प्रेक्षकयोरग्रे नटित्वाऽऽनंदनाटकं । पित्रोः कृत्वोचितं देवैः सहेंद्रः स्वास्पदं ययौ ॥२३४॥
कोट्यस्तिस्रोऽर्द्धकोटी च वसुवृष्टिर्दिने दिने । मासान् पंचदशोत्पत्तेः प्राग् जिनस्यापतद्गृहे ॥२३५॥
प्राप्तोऽभिषेकममरेंद्रगणैर्गिरींद्रे प्राप्तः सुतास्त्रिभुवनेश्वर इत्युदारौ ॥
प्राप्तौ महाप्रमदभारवशौ तदानीं नाभिश्च नाभिवनिता च सुखं स्ववेद्यं ॥ २३६ ॥
स्वर्गावतारजननाभिषवाद्रिभेदकल्याणवर्णनमिदं वृषभेश्वरस्य ।
भक्त्या सदा पठति योऽत्र शृणोति यश्च । कल्याणमेति स जनो जिनभास्करस्य ॥ २३७ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यस्य कृतौ ऋषभनाथजन्माभिषेकवर्णनो नाम अष्टमः सर्गः ।

नवमः सर्गः ।

अथेंद्रेण करांगुष्ठे निषिक्तममृतं पिबन् । पित्रोर्नेत्रामृताहारं वितरन् वर्द्धते जिनः ॥ १ ॥
वृद्धः शीतमयूखस्य बालचंद्रस्य दर्शनात् । प्रत्यहं वर्द्धमानस्य जगत्प्रमदसागरः ॥ २ ॥
बालक्रीडामृतरसः पीयमानोऽप्यनारतं । सुलभोऽपि विभोर्नाभूल्लोकलोचनतृप्तये ॥ ३ ॥
कुमारक्रीडितं चक्रे स शक्रप्रहितैर्हितः । प्रतिबिंबैरिवात्मीयैर्हृद्यं देवकुमारकैः ॥ ४ ॥
मृदुशय्यासनं वस्त्रं भूषणं चानुलेपनं । भोजनं वाहनं यानं तस्यासीत् देवनिर्मितं ॥ ५ ॥
भक्त्या शक्राज्ञया चाभूद् धनदो धनदोऽर्थतः । वयःकालानुरूपेण वस्तुनाऽनुचरन् जिनं ॥ ६ ॥
सहायैः सहजैः स्वच्छैः दिव्यैरिव कलागुणैः । संपूर्णो यौवनेनापि जिनश्चंद्र इवाबभौ ॥ ७ ॥
तुंगांसौ सांगदौ वृत्तौ सुप्रकोष्ठौ महाभुजौ । परिष्वंगाय पर्याप्तौ त्रैलोक्यविपुलश्रियः ॥ ८ ॥
श्रीवत्सलक्षणेनोरुवक्षःस्थलमभाद् विभोः । मारोपगूढराज्यश्रीकुचाग्रोत्पीडितेन वा ॥ ९ ॥
सुश्लिष्टपदजंघौघगूढजानूरुदंडयोः । वक्षःप्रासादसंस्तंभस्तंभयोः श्रीरभूत् परा ॥ १० ॥
केशकुंतलभारोऽभान्नीलो हेमाचलस्य सः । छत्राकारे शिरस्युच्चैरिंद्रनीलचयो यथा ॥ ११ ॥

१—गाढोपगूढ इत्यपि पाठः ।

श्रीर्ललाटस्य नासायाः सुकर्णोत्पलनालयोः । सज्जचापभ्रुवोर्वापि वाचागोचरमत्यगात् ॥१२॥
चंद्रश्चंद्रिकया रात्रौ दिवादीप्त्या दिवाकरः । मुदे त्रिभुवने न स्यात् तस्य ताभ्यां तयोर्मुखं ॥१३॥
पुंडरीकस्य पात्रेण नेत्रे श्रोते सृते समे । पिंडालक्तकरक्तं वा हस्तपादतलाधरं ॥ १४ ॥
शुद्धमौक्तिकसंघातघटितेव घनद्युतिः । कुंदद्युतिमधाज्जैनी दंतपंक्तिरदंतुरा ॥ १५ ॥
मनवव्यंजनशते सहाष्टशतलक्षणे । पंचचापशतोच्छ्राये तथा हेमाद्रिसंनिभे ॥ १६ ॥
रूपशोभासमस्तेयं जिनस्य गदितुं सह । लेशेनापि न सा शक्या शक्रकोटिगतैरपि ॥ १७ ॥
स जगत्त्रयरूपिण्या नंदया च सुनंदया । प्रौढयौवनया प्रौढाश्विक्रीड विधिनोढया ॥ १८ ॥
स गौरीश्यामयोर्मध्ये स्तवकस्तनयोस्तयोः । जगत्कल्पद्रुमोऽभासील्लतयोरंगलग्नयोः ॥ १९ ॥
न सा कांतिर्न सा दीप्तिर्न सा संपद् न सा कला । अस्यानयोश्च या नाऽभूत् तत्र सौख्यं किमुच्यतां २०
भरतानंदनं[1] नंदा नंदनं चक्रवर्तिनं । भरताख्यं सुतां ब्राह्मीमपि युग्ममसूत सा ॥ २१ ॥
सुनंदा बाहुबलिनं महाबाहुबलं सुतं । तथैव सुष्ठुवेलाके सुंदरामपि सुंदरीं ॥ २२ ॥
अष्टानवतिरस्येति नंदायां सुंदराः सुताः । जाता वृषभसेनाद्या चेत्राश्चरमविग्रहाः ॥ २३ ॥

१—भरतक्षेत्रजनानन्दनम् ।

सः ॥ २४ ॥
अक्षरालेख्यगंधर्वगणितादिकलार्णवं । सुमेधावी कुमाराभ्यामवगाहयतिस्म सः ॥ २४ ॥
अथान्यदा प्रजाःप्राप्ता नाभेयं नाभिनोदिताः । स्तुतिपूर्वं प्रणम्योचुरेकीभूय महार्त्तयः ॥२५॥
प्रभो कल्पद्रुमाः पूर्वं प्रजानां वृत्तिहेतवः । तेषां परिक्षयेऽभूवन् स्वयंच्युतरसेक्षवः ॥ २६ ॥
दिव्योक्षरसतृप्तानां रक्षितानां तवौजसा । प्रजानां नाथ ! दूरेण विस्मृता कल्पमादपाः ॥२७॥
इदानीं छिन्नभिन्नाश्च न क्षरंतीक्षवो रसं । यांति कालानुभावेन मृदवोऽपि कठोरतां ॥२८॥
फलभारवशा नम्रा दृश्यंते तृणजातयः । न विद्मो वयमेताभिः कथमन्नविधिर्भवेत् ॥ २९ ॥
सुरभीणां घटोध्नीनां महिषीणां च संततं । स्तनेभ्योऽक्षरत् भक्ष्यमभक्ष्यं वा तदुच्यतां ॥३०॥
कंठाश्लेषोदिताः पूर्वं सिंहव्याघ्रवृकादयः । अस्मानुद्वेजयंतीशः कुपुत्र इव सांप्रतं ॥ ३१ ॥
अतः क्षुधामहाग्रस्ता जीवनोपायदर्शनात् । स्वामिन्ननुगृहाणैता रक्षणाच्च भयात् प्रजाः ॥३२॥
ततो वीक्ष्य क्षुधाक्षीणाः प्रजाः सर्वा प्रजापतिः । कृत्वार्तिहरणं तासां दिव्याहारैः कृपान्वितः॥३३॥
सर्वानुपदिदेशासौ प्रजानां वृत्तिसिद्धये । उपायान् धर्मकामार्थान् साधनानपि पार्थिवः ॥३४॥
आसिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि । षट्कर्म शर्मसिद्ध्यर्थं सोपायमुपदिष्टवान् ॥३५॥
पशुपाल्यं ततः प्रोक्तं गोमहिष्यादिसंग्रहः । वर्जनं क्रूरसत्त्वानां सिंहादीनां यथायथं ॥ ३६ ॥

ततः पुत्रशतेनापि प्रजया च कलागमः । गृहीतः सुगृहीतं च कृतं शिल्पिशतं जनैः ॥ ३७ ॥
पुरग्रामनिवेशाश्च ततः शिल्पिजनैः कृताः । सखेटकर्वटाख्याश्च सर्वत्र भरतक्षितौ ॥ ३८ ॥
क्षत्रियाः क्षतत्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः। शूद्राः शिल्पादिसंबंधाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः॥३९॥
षड्भिः कर्मभिरासाद्य सुखितामर्थवत्तया । प्रजाभिस्तत्सुतुष्टाभिः प्रोक्तं कृतयुगं युगं ॥ ४० ॥
सेंद्राः सुरास्तदागत्य कृत्वा राज्याभिषेचनं । नाभेयस्य प्रजानां ते सौस्थित्यं विदधुः परं ॥४१॥
अयोध्येति विनीतेति विनीतजनसंकुला । साकेतेति च विख्याता पुरी रेजे तदाधिकं ॥ ४२ ॥
इक्ष्वाकुक्षत्रियज्येष्ठा ज्ञातिज्ञा लोकबंधुना । भूमौ वृषभनाथेन स्थापितास्तेऽत्र रक्षणे ॥ ४३ ॥
कुरवः कुरुदेशेऽसावुग्रस्ते चोग्रशासनाः । न्यायेन पालनाद्भोजाः प्रजानामपरे मताः ॥४४॥
राजानश्च तथैवान्ये जाताः प्रकृतिरंजनाः। श्रेयः सोमप्रभाद्यैस्तैः कुरुपुत्रैस्तु भूरभूत् ॥ ४५ ॥
दिव्यान् भोगान् सुरानीतान् भुंजानस्य जगद्गुरोः। पूर्वलक्षास्त्र्यशीतिश्च जग्मुराजन्मनस्ततः ॥४६॥
सोऽथ नीलजसां दृष्ट्वा नृत्यंतीमिंद्रनर्तकीं । बोधस्यापि निबोधस्य निर्विवेदोपयोगतः ॥४७॥
ये रागहेतवो बाह्या भावाः प्रागभवन् भुवि । ते स्युरंतर्निमित्तस्य शमे प्रशमहेतवः ॥ ४८ ॥
य एव विषया रम्या मतिविभ्रमकारिणः । प्रशमानुगुणे काले त एव स्युः शमावहाः ॥४९॥

स दध्यौ च स्वयं बुद्धौ व्यावृत्तविषयस्पृहः। चिरं भोगसमासक्त्या लज्जितात्मात्मनात्मनः ॥५०॥
अहो परमवैचित्र्यं संसारस्य शरीरिणां । यत्र कर्मविधेयानां अन्ये यांति विधेयतां ॥ ५१ ॥
सद्भावं दर्शयंतीयमतिनृत्यति नर्तकी । हावभावरसप्रायं विचित्राभिनयांगिका ॥ ५२ ॥
तोषिते मयि नृत्तेन शक्रः स्यात् किल तोषितः। ततस्तु सुखितामेषा संमोहादतिमन्यते ॥५३॥
धिग् जंतोः परतंत्रस्य सुरभ्रानुवनस्पृहं । पराराधनसक्तस्य यन्मनः सतताकुलं ॥ ५४ ॥
यत्स्वतंत्राभिमानस्य सुखं तदपि किं सुखं। स्वकर्मपरतंत्रस्य भोगतृष्णाकुलात्मनः ॥ ५५ ॥
आत्माधीनं यदत्यंतमात्माधीनस्य यत्सुखं । तदिंद्रियार्थपराधीनं पराधीनस्य कर्मभिः ॥५६॥
नानंतेनापि कालेन नृसुरासुरभोगकैः । तृप्तिर्जीवस्य संसारे नद्योघैरिव वारिधेः ॥ ५७ ॥
महाबलस्य विद्येशो ललितांगस्य नाकिनः । वज्रजंघनरेंद्रस्य तथोत्तरकुरुस्थितेः ॥ ५८ ॥
श्रीधरस्य सुरेशस्य सुविधेरच्युतस्थितेः । वज्रनाभेश्च सर्वार्थसिद्धिदेवस्य पश्यतः ॥ ५९ ॥
न तृप्तिस्तैरभूद् भोगैर्दिव्यैश्चिरनिषेविते । यस्य तस्याद्य किं सा स्यात् सुलभैर्विपुलैरपि ॥६०॥
तस्मात् सांसारिकं सौख्यं त्यक्त्वांते दुःखदूषितं। मोक्षसौख्यपरिप्राप्त्यै प्रविशामि तपोवनं ॥६१॥
विज्ञानोपिचिते राज्ये स्थितोऽहमितरो यथा । कालोपेक्षणमेतद्धि कालोहि दुरतिक्रमः ॥६२॥

ज्ञातपूर्वभवे तस्मिन्निति ध्यानपरे जिने । ब्रह्मलोकालया ज्ञात्वा लौकांतिकसुरास्तदा ॥६३॥
कुर्वाणाश्चंद्रसंकाशाश्चंद्राकीर्णमिवांबरं । नत्वा सारस्वतादित्यप्रमुखाः प्रोचुरीश्वरं ॥ ६४ ॥
साधु नाथ! यथाख्यातं स्वपरार्थहितं तथा । क्रियतां वर्तते कालो धर्मतीर्थप्रवर्तने ॥ ६५ ॥
चतुर्गतिमहादुर्गे दिग्मूढस्य प्रभो दृढं । मार्गं दर्शय लोकस्य मोक्षस्थानप्रवेशकं ॥ ६६ ॥
विच्छिन्नसंप्रदायस्य मंत्रस्येव चिरं प्रभो । सिद्धिमार्गस्य विश्वेश ! कुरु द्योतनमुद्यतः ॥६७॥
दुःखत्रयमहावर्त्ते दोषत्रयमहोरगे । भ्रमतां भव भर्तस्त्वं कर्णधारो भवोदधौ ॥ ६८ ॥
त्वं संसारमहाचक्राद्भ्रमतो वेगशालिनः । उपदेशकरेणाशु विश्वमुत्तरय प्रभो ॥ ६९ ॥
विश्रामन्त्वधुना गत्वा संतस्त्वद्दर्शिताध्वना । ध्वस्तजन्मश्रमा नित्यं सौख्ये त्रैलोक्यमूर्धनि ॥७०॥
कीर्त्या लौकांतिकैर्वाचः स्वयंबुद्धस्य तस्य ताः । पूर्वार्थमेव संजाताः पत्युरापो यथा ह्यपां ॥७१॥
सुत्रामाद्यैश्च संप्राप्तैश्चतुर्विधसुरैर्नतैः । प्रोक्तं लौकांतिकैः प्रोक्तं यत्तदेव मुहुर्मुहुः ॥ ७२ ॥
ऋषभोऽभात् स्वयंबुद्धो बोधितो विबुधैः सुरैः । भानोः प्रबुद्धपद्मौघो यथा पद्ममहाहृदः ॥७३॥
धीरपुत्रशतस्यासौ प्रविभक्तवसुंधरः । कृती दशशतस्येव कराणां रविराबभौ ॥ ७४ ॥
अभिषिक्तस्ततो देवैः क्षीरार्णवजलैर्जिनः । दिग्धो गंधैर्वरैर्वस्त्रैर्भूषामाल्यैर्विभूषितः ॥ ७५ ॥

दत्तास्थानो नृपैर्देवैर्वृतोऽभून्मणिभूषणैः । पूर्वापरायतैर्मेरुर्यथाऽसौ कुलभूधरैः ॥ ७६ ॥
अथ वैश्रवणो दिव्यां निर्ममे शिविकां नवां । नाम्ना सुदर्शनां भूरिशोभयाऽपि सुदर्शनां ॥७७॥
ताराभरत्नजातीनां प्रभाभिरतिभास्वरा । मंडलाकृतिशुभ्राभ्रधवलातपवारणा ॥ ७८ ॥
चलच्चामरसंघातहंसमालांशुकोज्ज्वला । आदर्शमंडलाखंडदीप्तदिङ्मुखमंडला ॥ ७९ ॥
बुद्बुदापांडुगंडांतामूर्धचंद्रालिकाकृतिः । संध्याभ्रखंडसंरक्तविस्फुरद्विद्रुमाधरा ॥ ८० ॥
पतज्जललवस्वच्छमुक्तादशनशोभिता । शुभकेतुपताकाली लीलाभुजलतोज्ज्वला ॥ ८१ ॥
दिङ्नागवासिता जंघारंभास्तंभोरुशोभिनी । चित्रस्त्रीतारकालोका जगतीजघनस्थला ॥८२॥
वारिधारास्फुरद्धाराशुंभत्कुंभपयोधरा । तारापुष्पवतीरम्या सुनक्षत्रवृहत्फला ॥ ८३ ॥
सुनीलघनकेशाऽसौ कुबेरेण सुदर्शना । द्यौरिवोत्तमयोषेव कौशिकाय प्रदर्शिता ॥ ८४ ॥
अथ विज्ञापितो नाथः सुरनाथेन हर्षिणा । आपृच्छ्य पितृपुत्रादीन् परिवर्गं च संश्रितं ॥८५॥
गृहीतचामरच्छत्रैः सेव्यमानः सुरेश्वरैः । स द्वात्रिंशद्पदानुर्व्यां पद्भ्यामेव प्रचक्रमे ॥८६॥
लोकांजलिपुटालोकशब्दाशीर्वादवंदितः । शिविकामाहरोहेशः सवितेवोदयश्रियं ॥ ८७ ॥
क्षितेः क्षितीश्वरोत्क्षिप्तां खमुत्पत्य सुरेश्वराः । सन्नाहिनः समायुस्तां शिरसाज्ञामिवेशितुः ॥८८॥

ततः शंखाः सभेरीका मुखरीकृतदिङ्मुखाः । दध्वनुर्वंशवीणाश्च पटहा बहुनिस्वनाः ॥ ८९ ॥
नानानीकैः सुरैरूर्ध्वं चतुरंगबलैरधः । राजक्षत्रोग्रभोजाद्यैर्व्रजद्भिर्व्याप्तमीश्वरैः ॥ ९० ॥
ऊर्ध्वे नवरसा जाता नृत्यदप्सरसां स्फुटाः । नाभेयेन किमुक्तानामधः शोकरसोऽभवत् ॥९१॥
सेव्यमानः सुरैरीशः सिद्धार्थं वनमाप सः । अशोकचंपकायुग्मच्छिदचूतवरैश्रितं ॥ ९२ ॥
अवतीर्णः स सिद्धार्थी शिविकायाः स्वयं यथा । देवलोकाशिरस्थाया दिवः सर्वार्थसिद्धितः ॥९३॥
ततः प्राह प्रजास्तत्र शोकं त्यजत भोःप्रजाः । संयोगी हि वियोगाय स्वदेहैरपि देहिनां ॥९४॥
राजा वो रक्षणे दक्षः स्थापितो भरतो मया । स्वधर्मवृत्तिभिर्नित्यं सेव्यतां सततं श्रियः ॥९५॥
एवमुक्त्वा प्रजा यत्र प्रजापतिमपूजयन् । प्रदेशः स प्रजागारो यतः पूजार्थयोगतः ॥ ९६ ॥
आपृच्छ्य ज्ञातिवर्गं च राजकं च नतं विभुः । त्यक्त्वांऽतर्बहिःसंगं संयमं प्रतिपन्नवान् ॥९७॥
पंचमुष्टिभिरुत्खातान् बिडौजा मूर्धजान विभोः । प्रतिगृह्य कृतान् मूर्ध्नि चिक्षेप क्षीरवारिधौ॥९८॥
जाते निःक्रमणे जैने कृत्वा पूजां सुरासुराः । यथायथं ययुर्नत्वा चिंताक्रांताश्च मानवाः ॥ ९९ ॥
राजक्षत्रोग्रभोजाद्या स्वामिभक्तमहानृपाः। चतुःसहस्रसंख्याता मुख्या नाग्न्यस्थितिं श्रिताः॥१००॥
कायोत्सर्गेण षण्मासान् परीषहसहो जिनः। महातपाश्चतुर्ज्ञानी तस्थौ मौनी गिरिस्थिरः ॥१०१॥

नृपास्तेऽपि तथा तस्थुः कार्योत्सर्गेण निश्चलाः । परमार्थमजानंतः स्वामिच्छंदानुवर्तिनः ॥१०२॥
भृत्यपुत्रकलात्राणि क्षुत्पिपासाकुलात्मनां । अद्य श्वो नोऽन्नमादाय समेष्यंतीत्यमी विदुः ॥१०३॥
ततःकच्छमहाकच्छमरीच्यग्रेसरास्तके । पड्मासाभ्यंतरे भग्नाः क्षुधाद्युग्रपरीषहैः ॥१०४॥
तेषां क्षुत्क्षामगात्राणां भ्रमती दृष्टिरस्थिरा । भ्रांतदृष्टेर्भविष्यंत्याः पूर्वरंगामिवाकरोत् ॥१०५॥
दृष्टं तैमिरिकं कैश्चिदंधकारेऽपि तादृशे । स्पर्धयेव द्विचंद्राक्षैः शतचंद्रं नभस्तलं ॥ १०६ ॥
श्रुतं शब्दात्मकं विश्वं भावयद्भिरिवापरैः । स्वशब्दलिंगमाकाशमिति वैशेषिकागमः ॥ १०७ ॥
पतद्भिरपि तत्रान्यैर्न मनागपि चेतिकं । अचित्स्वभावमात्मानमनुकर्तुमिवोद्यतैः ॥ १०८ ॥
चेतयंतोऽपि तत्रान्ये स्वैरमासितुमप्यलं । निरीहात्मतया जहुः स्वां सांख्यपुरुषस्थितिं ॥१०९॥
केचित् निरन्वयध्वस्तबुद्धयो नैव सस्मरुः । पूर्वापरस्य मूर्च्छार्ताःक्षणभंगानुवर्तिनः ॥ ११० ॥
इति ते क्षुत्पिपासाद्यैरतिव्याकुलबुद्धयः । कायोत्सर्जनमुत्सृज्य दुद्रुवुश्च शनैः शनैः ॥ १११ ॥
स्वामिनम् कौलपुत्रांश्च मर्यादां चानुवर्तते । तावदेव जनो यावद् स्वशरीरस्य निर्वृतिः ॥११२॥
भक्षणं फलमूलादेरपां पानावगाहनं । कुर्वतां नग्नरूपेण स्वयंग्राहेण भूभृतां ॥ ११३ ॥

१ नः अस्माकम् ।

भो भो माऽनेन रूपेण स्वयंग्राहविरोधिना । प्रवर्त्तध्वमिति व्यक्ताः खेऽभवन्महतां गिरः ॥ ११४ ॥
ततस्ते त्रपितास्त्रस्ता दिशो वीक्ष्य महीक्षितः । चक्रुर्वेषपरावर्तं कुशचीवरवल्कलैः ॥ ११५ ॥
पुनः कृत्वा सुविश्रब्धास्ते दग्धोदरपूरणं । स्वस्थाः कार्यं विचार्योचुः स्वस्थे चित्ते हि बुद्धयः ॥ ११६ ॥
कोऽभिप्रायः प्रभोरस्य त्यक्तभोगस्य लक्ष्यतां । नवैहिकफलायेदं चेष्टितं सुष्ठुदुष्करं ॥ १ ७ ॥
तथा ह्यनेन भो दृष्टा संपदो विपदो यथा । रत्यरत्योर्विघातेन विषयाश्च विषोपमाः ॥ ११८ ॥
सालंकारं परित्यक्तं वसनं व्यसनं यथा । मूलोत्खाता स्वहस्तेन मूर्धजा वैरिणो यथा ॥ ११९ ॥
शरीरमपि संन्यस्तं सन्यस्ताहारवस्तुना । तदस्याभिमतं किंचिदामुत्रिकफलं भवेत् ॥ १२० ॥
नैष्ठिकव्रतमास्थाय स्वामिन्येवं व्यवस्थिते । किं नः कर्तव्यमित्येकं न विद्मः सांप्रतं वयं ॥ १२१ ॥
निष्क्रांतानामनेनामा स्वदेशान्प्रतिनिवर्तनं । नैव पुष्णाति नच्छायामपायबहुलं च तत् ॥ १२२ ॥
न शक्ताश्चरितुं चर्यां यदि नाम वयं विभोः । वनवासित्वसाम्येन किं न कुर्मोऽनुवर्तनं ॥ १२३ ॥
इति निश्चित्य तेऽन्योन्यं पांडुपत्रफलाशिनः। जटावल्कलिनो जातास्तापसा वनवासिनः ॥ १२४ ॥
यो मरीचिकुमारस्तु नप्ता तप्ततनुर्विभोः । दृष्टवान् जलभावेन तृषामरुमरीचिकां ॥ १२५ ॥
जलावगाहनान्यस्य गजस्येव विदाहिनः । मृदवश्च मृदश्चक्रुः शरीरपरिनिर्वृतिं ॥ १२६ ॥

यत्तन्मानकषायी स कापायं वेपमग्रहीत्। एकदंडी शुचिर्मुंडी परिव्राड् व्रतपोषणं ॥ ׳२७ ॥
नमिश्च विनमिश्चोभौ भोगयाचनयातुरौ। तावुद्विग्नौ विभोर्लग्नौ पादयोर्दुःस्थितौ स्थितौ ॥१२८॥
धूतासनोऽवधिज्ञानात् तद्बुद्ध्वा धरणः फणी। आजगाम मुनेर्भक्त्या मौनं सर्वार्थसाधनं ॥१२९॥
विश्वास्य दिव्यरूपोऽसौ भ्रातरौ चातुरौ यथा। महाविद्यां ददौ ताभ्यां विद्यालाभो गुरोर्वशात् १३०
योऽगो विद्याधराधारो विजयार्द्ध इतीरितः। सोऽपि ताभ्यां ततो लब्धः किं न स्याद् गुरुसेवया १३१
स नमिर्दक्षिणश्रेण्यां पंचाशन्नगरेश्वरः। विनमिश्चोत्तरश्रेण्यामभूत् षष्टिपुरेश्वरः ॥ १३२ ॥
अध्यतिष्ठन्नमिः श्रेष्ठं नगरं रथनूपुरं। नभस्तिलकमत्यर्थं विनमिः सह बांधवैः ॥ १३३ ॥
विद्याधरजनो धीरः प्राप्य तौ परमेश्वरौ। उपरिस्थितमात्मानं भुवनस्याप्यमन्यत ॥ १३४ ॥
अथाऽसौ प्रतिमास्थोऽपि प्रविश्य भगवान् स्थिरः। परीषहाग्निविध्यापी सद्ध्यानजलधौ स्थिरः ३५
मत्र्येतरमनुष्याणां भवतां च भविष्यतां। मोक्षाय विजिगीषूणां भुक्त्यभावेऽल्पशक्तिताम् ॥१३६॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु धर्मः क्षांत्यादिलक्षणः। पुरुषार्थस्थितो मोक्षो मुख्यः कामार्थसाधनः॥१३७॥
प्राणाधिष्ठानतन्निष्ठं शरीरं धर्मसाधनं। प्राणैरधिष्ठितः प्राणी प्राणस्त्वन्नैरधिष्ठिताः ॥ १३८ ॥
पारंपर्येण धर्मस्य ततोऽन्नमपि साधनं। प्राणिनामल्पवीर्याणां प्रधानस्थितिकारणं ॥ १३९ ॥

अतस्तस्यानवद्यस्य ग्रहणे विधिमर्थिनां । शासनस्थितयेऽन्नस्य दर्शयामीह भारते ॥ १४० ॥
इति ध्यात्वा स्वयंशक्तः स क्षुधादिविनिर्ग्रहे । परार्थमतिमाधत्त गोचरान्नपरिग्रहे ॥ १४१ ॥
षण्मासानशनस्यांते संहृतप्रतिमास्थितिः । प्रतस्थे पदविन्यासैः क्षितिं पल्लवयन्निव ॥ १४२ ॥
आकेवलोदयान्मौनी प्रलंबितभुजः पथि । सावधानां गतिं बिभ्रन्नातिद्रुताविलंबितां ॥ १४३ ॥
मध्याह्नेषु पुरग्रामगृहपंक्तिषु दर्शनं । प्रशस्तासु प्रजाभ्योऽदाच्चांद्रीचर्यां चरन् क्षितौ ॥ १४४ ॥
भ्राम्यंतं तं तथा नाथं सौम्यविग्रहमुन्मुखाः । पश्यंतो न प्रजास्तृप्ता यथा चंद्रं नवोदितं ॥१४५॥
श्वेतभानुरयं किंनु स्वर्भानुग्रासशंकया । भूमिगोचरमायातस्त्यक्ततारार्कगोचरः ॥ १४६ ॥
पूषा किंवा भवेदेष भूभृत्प्रासादभूरुहं । छायातमस्तिरस्कर्तुं द्वितीयक्षितिमागतः ॥ १४७ ॥
अहो कांतेः परं स्थानं अहो दीप्तेः परं पदं । अहो सुशीलशैलोऽयं गुणराशिरहो महान्॥१४८॥
सौरूप्यस्य परा कोटिः सौलावण्यस्य भूः परा। माधुर्यस्य पराऽवस्था धैर्यस्यायं परा स्थितिः१४९॥
एतैतेक्षणसाफल्यं एनं पश्यत पश्यत । जना दिग्वासनस्यापि परमां रमणीयतां ॥ १५० ॥
इत्यन्योन्यकृतालापघनसंघट्टसंघटा । जिनं नराश्च नार्यश्च ददृशुर्विस्मयाकुलाः ॥ १५१ ॥
केचित् वस्त्राणि चित्राणि भूषणान्यपरे परे । दिव्यानि गंधमाल्यानि प्रकुर्वंति पुरः प्रभोः॥१५२॥

तुरंगतुंगमातंगरथयानान्यथाऽपरे। सद्यःसज्जानि तस्याग्रे स्थापयंति विमोहिनः ॥ १५३ ॥
अदृष्टश्रुतपूर्वत्वात् तत्प्रयोग्यमजानता। भिक्षादानविधिस्तस्मै न लोकेन विकल्पिता ॥१५४॥
लोकस्य प्रतिबोधार्थमुदितस्य दिने दिने। जिनार्कस्य न खेदाय जगद्भ्रमणमप्यभूत् ॥१५५॥
तथा यथागमं नाथः षण्मासानविषण्णधीः। प्रजाभिःपूज्यमानःसन् विजहार महीं क्रमात् ॥१५६॥
संप्राप्तोऽथ सदादानैरिभैरिभपुरं विभुः। दानप्रवृत्तिरत्रेति सूचयद्भिरिवोचितं ॥ १५७ ॥
तस्मिन् सोमप्रभः श्रीमानपि भूमौ सहोदरौ। तस्यामेव विभावर्यां स्वप्नानेतानपश्यतां ॥१५८॥
चंद्रमिंद्रध्वजं मेरुं सताडित्कल्पपादपं। रत्नद्वीपं विमानं च नाभेयं पुरुषोत्तमं ॥ १५९ ॥
प्रभाते तौ कुरुपृष्टावास्थानस्थौ च विस्मितौ। चक्राते बुधचक्रेण सुस्वप्नफलसंकथां ॥१६०॥
बंधुः कौमुदखंडानामिव कौमुदमावही। अद्यैवेष्यति बंधुर्नः कोऽपि नूनमनूनभाः ॥ १६१ ॥
उच्चैर्यशोध्वजो लोके सर्वकल्याणपर्वतः। जगत्कल्पद्रुमो विद्युत्क्षणदर्शितविग्रहः ॥ १६२ ॥
धर्मरत्नमहाद्वीपो वैमानिकजगच्च्युतः। स्वप्नवत्किंतु नाभेयः स्वयमेवाद्य दृश्यते ॥१६३॥
पुरस्य राजगेहस्य लक्ष्मीरद्यैव लक्ष्यते। भद्रं निवेदयत्याशु ककुभां च प्रसन्नतां ॥ १६४ ॥
स्वप्नार्थमिति बुद्ध्वा तौ नियुज्यांतर्बहिर्नरान्। कथया जिननाथस्य शक्तौ यावदवास्थितौ ॥१६५॥

तावदाध्मातमाध्याक्षशंखनादः समुच्छ्रितः। वर्धयन्निव दिष्टया तौ जिनागमनिवेदनात् ॥१६६॥
रचितः परिवर्गेण स्नातयोश्च तयोस्ततः। सुभोजनविधिस्तत्र दिव्याहारमनोहरः ॥१६७॥
मणिकुट्टिमभूमौ तावुपविष्टौ भुजं प्रति। सिद्धार्थस्तूर्णमागत्य दिष्टया वर्धयतीत्यसौ ॥ १६८ ॥
तितिक्षोः पृथिवीं यस्य मकरालयमेखलां। शिबिकोद्वाहनोभूवन् देवा वज्रधरादयः ॥१६९॥
भग्ने कच्छमहाकच्छपूर्वपुंगवमंडले। बिभर्ति दुर्वहामेको वृषभो यस्तपोधुरां ॥ १७० ॥
यत्कथामृततृप्तानां गोष्ठीषु विदुषां सदा। वर्तते युष्मदादीनां नाहारग्रहणे मतिः ॥ १७१ ॥
प्राघूर्णिकोऽद्य सोऽस्माकमकस्माज्जगतांपतिः। क्षांतिमैत्रीतपोलक्ष्मीसहायः समुपागतः ॥ १७२॥
दिशा वैश्रवणस्येव प्रविश्य नगरीं विभुः। युगांतदृष्टिरास्थाय चांद्रीचर्यां यथोचितां ॥ १७३ ॥
संभ्रात्याान्विति लोकस्य पदयोरर्घ्यदायिनः। स्तुतिभिर्वंदनाभिश्च समंतादुपसेवितः ॥ १७४ ॥
धाम धाम निजं धाम प्रकिरन्निव शीतगुः। अस्मदीयतया नाथो निशांताजिरमाप्तवान् ॥१७५॥
इति सिद्धार्थवागर्थं ज्ञात्वोच्छ्रायससंभ्रमौ। अभिजग्मतुरीशस्य ललाटे न्यस्तहस्तकौ ॥१७६॥
आगच्छ भर्तरादेशं प्रयच्छेति कृतध्वनी। चंद्रार्काविव शैलेशमध्वनीमं परीयतुः ॥ १७७ ॥
पतित्वा पादयोस्तस्य सुखपृच्छापुरःसरौ। आगतो मौनिनौ हेतुं ध्यायंतावग्रतः स्थितौ ॥ १७८॥

सोमप्रभस्य देवीभिर्लक्ष्मीमत्यकरोत् प्रिया । शशिरेखेव ताराभिर्गिरीशं तं प्रदक्षिणं ।। १७९ ।।
स श्रेयानीक्षमाणस्तं निमेषरहितेक्षणः । रूपमीदृक्षमद्राक्षं क्वचित् प्रागित्यधान्मनः ।। १८० ।।
दीर्घेणाप्युपशांतेन स तद्रूपेण बोधितः । दशात्मेशभवान् बुद्ध्वा पादावाश्रित्य मूर्च्छितः ।।१८१।।
मूर्च्छितेनापि तत्पादौ प्रमृज्य मृदुमूर्धजैः । अध्वश्रमच्छिदा धौतौ सोष्णानंदाश्रुधारया ।।१८२।।
श्रीमतीवज्रजंघाभ्यां दत्तं दानं पुरा यथा । चारणाभ्यां स्वपुत्राभ्यां संस्मृत्य जिनदर्शनात् ।।१८३।।
भगवन् ! तिष्ठ तिष्ठेति चोक्तानीतो गृहांतरे । उच्चैः सदासने स्थाप्य धौततत्पादपंकजः ।। १८४ ।।
तच्चरणपूजनं कृत्वा प्रणतिं च त्रिधा तथा । दानधर्मविधेर्बोद्धा विधाता स्वयमेव सः ।।१८५।।
श्रद्धादिगुणसंपूर्णपात्रे संपूर्णलक्षणे । दित्सुरिक्षुरसापूर्णं कुंभमुद्धृत्य सोऽब्रवीत् ।। १८६ ।।
षोडशोद्गमदोषैश्च षोडशोत्पादनिश्चितैः । दशभिश्चैषणादोषैर्विशुद्धमपरैस्तथा ।। १८७ ।।
धूमांगारप्रमाणाख्यैः संयोजनयुतैः प्रभो । मुक्तं दायकदोषैश्च गृहाण प्रासुकं रसं ।। १८८ ।।
वृत्तवृद्ध्यै विशुद्धात्मा पाणिपात्रेण पारणं । समपादास्थितश्चक्रे दर्शयन् क्रियया विधिं ।। १८९ ।।
श्रेयांसि श्रेयसा पात्रे प्रतिलब्धे जिनेश्वरे । पंचाश्चर्यविशुद्धिभ्यः पंचाश्चर्याणि जज्ञिरे ।। १९० ।।
अहो दानमहो दानमहो पात्रमहो क्रमः । साधु साध्विति खे नादः प्रादुरासीद्दिवौकसां ।।१९१।।

नेदुरंबुदनिर्घोषाः सुरदुंदुभयोंऽबरे । दानतीर्थकरोत्पत्तिं घोषयंतो जगत्त्रये ॥ १९२ ॥
श्रेयोदानयशोराशिपूर्णादिग्वनिताननैः । प्रोद्गीर्ण इव निःश्वाससुरभिः पवनो ववौ ॥ १९३ ॥
पपात सुमनोवृष्टिरमांतीवांगनिर्गता । श्रेयसः सुमनोवृत्तिरमांतीव दिवःपुनः ॥ १९४ ॥
श्रेयसा पात्रनिक्षिप्तपुंड्रेक्षुरसधारया । स्पर्धयेव सुरैः स्पृष्टा वसुधाराऽपताद्दिवः ॥१९५॥
अभ्यर्चिते तपोवृद्ध्यै धर्मतीर्थकरे गते । दानतीर्थकरं देवाः साभिषेकमपूजयन् ॥१९६॥
श्रुत्वा देवनिकायेभ्यः सद्दानफलघोषणं । समेत्य पूजयंति स्म श्रेयांसं भरतादयः ॥१९७॥
इतिहासमनुस्मृत्य दानधर्मविधिं ततः । शुश्रुवुः श्रद्धया युक्ताः प्रत्यक्षफलदर्शिनः ॥१९८॥
प्रतिग्रहोऽतिथेरुच्चैः स्थानस्थापनमन्यतः । पादप्रक्षालनं दात्रा पूजनं प्रणतिस्ततः ॥१९९॥
मनोवचनकायानामेषणायाश्च शुद्धयः । प्रकारा नव विज्ञेया दानपुण्यस्य संग्रहे ॥२००॥
पुण्यमित्थमुपात्तं यत् तदभ्युदयलक्षणं । दत्वा तु यत्फलं भुक्तं प्राग् निश्रेयसलक्षणं ॥२०१॥
इतिश्रुतयथातत्वा श्रेयांसमभिनंद्य ते । दानधर्मोद्यतस्वांता नृपा यांता यथाक्रमं ॥२०२॥
सहस्रवर्षं वृषभो चतुर्ज्ञानचतुर्मुखः । चक्रे मोक्षार्थबोधार्थं तपो नानाविधं स्वयं ॥२०३॥
सप्रलंबजटाभारभ्राजिष्णुर्जिष्णुराबभौ । रूढप्ररोहशाखाग्रो यथा न्यग्रोधपादपः ॥२०४॥

अन्यदा विहरन् प्राप्तः पूर्वतालपुरं पुरं । राजा वृषभसेनाख्यो यत्रास्ते भरतानुजः ॥२०५॥
तत्रोद्यानं महोद्योगः शकटास्याभिधानकं । ध्यानयोगमथासाद्य स न्यग्रोधतरोरधः ॥२०६॥
उपविष्टः शिलापट्टे पर्यंकासनबंधनः । वशस्थकरणग्रामः शुक्लध्यानासिधारया ॥ २०७ ॥
आरूढः क्षपकश्रेणिं रणक्षोणीं क्षणेन सः । महोत्साहगजारूढो मोहराजमपातयत् ॥२०८॥
ज्ञानावरणशत्रुं च दर्शनावरणद्विषं । अंतरायरिपुं चैव जघान युगपत् प्रभुः ॥२०९॥
चतुर्घातिक्षयाच्चास्य केवलज्ञानमुद्गतं । समस्तद्रव्यपर्यायलोकालोकावलोकनं ॥२१०॥
चतुर्देवनिकायाश्च पूर्ववत् समुपागताः । सेंद्राः नेमुर्जिनेंद्रं तं गायंतः कर्मणां जयं ॥२११॥
प्रातिहार्यैस्ततोऽष्टाभिर्जिनेंद्रस्तत्क्षणोद्भवैः । स चतुस्त्रिंशद्विशेषैरशेषैः सहितो बभौ ॥२१२॥
पुत्रचक्रसमुत्पत्त्या जिनकेवलजन्मना । दिष्ट्याभिवर्धितो यातो भरतो वंदितुं विभुं ॥२१३॥
संप्राप्तकुरुभोजाद्यैश्चतुरंगबलावृतः । आर्हंत्यविभवोपेतमभ्यर्च्य प्रणनाम तं ॥ २१४ ॥
नृपैर्वृषभसेनस्तं बहुभिर्वृषभं श्रितः । संयमं प्रतिपद्याभूत् गणभृत् प्रथमः प्रभोः ॥२१५॥
लक्ष्मीमत्यात्मजं राज्ये जयमायोज्य सानुजं । प्रव्रज्यां प्रतिपन्नौ तौ श्रेयःसोमप्रभौ नृपौ॥२१६॥
ब्राह्मी च सुंदरी चोभे कुमार्यौ धैर्यसंगते । प्रव्रज्य बहुनारीभिरार्याणां प्रभुतां गते ॥२१७॥

सोऽपि सूक्ष्मनिगोदस्यालब्धपर्याप्तदेहिनः । संभवी सर्वथा तावान् श्रुतावरणवर्जितः ॥ १६ ॥
सर्वस्यैव हि जीवस्य तावन्मात्रस्य नावृतिः । आवृतौ तु न जीवः स्यादुपयोगवियोगतः ॥ १७ ॥
जीवोपयोगशक्तेश्च न विनाशः सयुक्तिकः । स्यादत्यभ्ररोधेऽपि सूर्याचंद्रमसोः प्रभा ॥ १८ ॥
पर्यायानंतभागेन पर्यायो युज्यते यदा । स पर्यायसमासः स्यात् श्रुतभेदो हि सावृतिः ॥ १९ ॥
अनंतासंख्यसंख्येयभागवृद्धिक्षयान्वितः । संख्येयासंख्यकानंतगुणवृद्धिक्रमेण च ॥ २० ॥
स्यात्पर्यायसमासोऽसौ यावदक्षरपूर्णता । एकैकाक्षरवृद्ध्या स्यात् तत्समासः पदावधिः ॥ २१ ॥
पदमर्थपदं ज्ञेयं प्रमाणपदमित्यपि । मध्यमं पदमित्येवं त्रिविधं तु पदं स्थितं ॥ २२ ॥
एकं द्वित्रिचतुःपंचषट्सप्ताक्षरमर्थवत् । पदमाद्यं द्वितीयं तु पदमष्टाक्षरात्मकं ॥ २३ ॥
कोट्यश्चैव चतुस्त्रिंशत् तच्छतान्यपि षोडश । त्र्यशीतिश्च पुनर्लक्षाः शतान्यष्टौ च सप्ततिः ॥२४॥
अष्टाशीतिश्च वर्णाः स्युर्मध्यमे तु पदे स्थिताः । पूर्वांगपदसंख्या स्यान्मध्यमेन पदेन सा ॥२५॥
एकैकाक्षरवृद्ध्या तु तत्समासाभिदस्ततः । इत्थं पूर्वसमासांतं द्वादशांगं श्रुतं स्थितं ॥ २६ ॥
अष्टादशसहस्राणां पदानां संख्यया युतं । तत्राचारांगमाचारं साधूनां वर्णयत्यलं ॥ २७ ॥
षट्त्रिंशत्सहस्रैस्तु पदैः सूत्रकृतं युतं । परस्वसमयार्थानां वर्णकं तद् विशेषतः ॥ २८ ॥

चत्वारिंशत्सहस्रैश्च द्विसहस्रैः पदैर्युतं । स्थानं स्थानांतरं जंतोर्वक्त्येकादिदशोत्तरं ॥ २९ ॥
चतुःषष्टिसहस्रैर्यत्पदैश्च पदलक्षया । लक्षितं समवायांगं वक्ति द्रव्यादितुल्यतां ॥ ३० ॥
धर्माधर्मैकजीवानां लोकाकाशस्य वा यथा । प्रदेशा द्रव्यतस्तुल्याः समवायेन वर्णिताः ॥३१॥
सिद्धिसीमंतकर्ज्वाख्यं विमानं नरलोकजं । प्रमाणं सममित्युक्तं तत्रैव क्षेत्रतस्तथा ॥ ३२ ॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः कालतः समतोदिता । भावतोऽनंतयोस्तत्र ज्ञानदर्शनयोरपि ॥ ३३ ॥
पदानां तु सहस्राणि यत्राष्टाविंशतिस्तथा । लक्षयोर्द्वयमाख्यातं व्याख्याप्रज्ञप्तिसंज्ञके ॥ ३४ ॥
तत्रोत्पथव्युदासेन विनयेन सविस्तरः । प्रश्नव्याख्यानभेदानां क्रमः समुपवर्ण्यते ॥ ३५ ॥
षट्पंचाशत् सहस्राणि पंच लक्षाः पदानि तु । ज्ञातृधर्मकथा चष्टे जिनधर्मकथामृतं ॥ ३६ ॥
यत्रैकादशलक्षाश्च सहस्राण्यपि सप्ततिः । पदान्युपासकास्तत्रोपासकाध्ययने स्मृताः ॥ ३७ ॥
त्रयोविंशतिलक्षाश्च सहस्राणि च विंशतिः । अष्टौ चैव सहस्राणि स्युः पदान्यंतकृद्दशे ॥ ३८ ॥
दशोपसर्गं जेतारः प्रतितीर्थं दशोदिताः । संसारांतकृतस्तत्र मुनयो ह्यंतकृद्दशे ॥ ३९ ॥
लक्षा द्वानवतिर्यत्र चत्वारिंशत्सहस्रकैः । चत्वारिंशत्सहस्राणि पदान्यभिहितानि तु ॥ ४० ॥
तत्रोपपादिके देशे वर्ण्यंतेऽनुत्तरादिके । दशोपसर्गजयिनो दशानुत्तरगामिनः ॥ ४१ ॥

स्त्रीपुंनपुंसकैस्तिर्यग्नृसुरैरष्ट ते कृताः । शारीराचेतनत्वाभ्यामुपसर्गा दशोदिताः ॥ ४२ ॥
आक्षेपण्यादयो यत्र प्रश्नव्याकरणे कथाः । पदलक्षास्त्रिनवतिः सहस्राण्यत्र षोडश ॥ ४३ ॥
अंगं विपाकसूत्रं यद्विपाकं कर्मणोऽवदत् । कोटी चतुरशीतिश्च पदलक्षा इहोदिताः ॥ ४४ ॥
शतं कोटीभिरष्टाभिः सहाष्टाः षष्टिलक्षकाः । षट्पंचाशत्सहस्राणि पदानां पंच यत्र हि ॥ ४५ ॥
दृष्टिवादप्रमाणं स्यादेतत्तत्र सविस्तारं । शतानि त्रीणि वर्ण्यंते त्रिषष्ट्याधिकदृष्टयः ॥ ४६ ॥
क्रियातश्चाक्रियातोऽन्या अज्ञानाद्विनयात्पराः । वदंत्यो दृष्टयः सिद्धिं ताश्चतुर्धा व्यवस्थिताः ॥४७॥
सक्रियाः शतधाऽशीत्या चतस्रोऽशीतिरक्रियाः । अज्ञानात्सप्तषष्टिस्ता द्वात्रिंशद्विनयाश्रिताः ॥४८ ॥
नियतिश्च स्वभावश्च कालो दैवं च पौरुषं । पदार्था नव जीवाद्या स्वपरौ नित्यतापरौ ॥ ४९ ॥
पंचभिर्नियतिपृष्टैश्चतुर्भिः स्वपरादिभिः । एकैकस्यात्र जीवादेर्योगेऽशीत्युत्तरं शतं ॥ ५० ॥
नियत्याऽस्ति स्वतो जीवः परतो नित्यतोऽन्यतः । स्वभावात्कालतो दैवात् पौरुषाच्च तथोत्तरे ॥५१॥
सप्तजीवादितत्त्वानि स्वतश्च परतोऽपि च । प्रत्येकं पौरुषांतेभ्यो न संतीति हि सप्ततिः[1] ॥५२॥
नियतेः कालतःस्वांतो न तानीति चतुर्दश[2] । सप्ततया तत्समायोगेऽशीतिश्चतुरधिष्ठिताः ॥५३॥

१ 'वसंतीति हि सप्ततिः' इति ख पुस्तके । २ 'नियतः कालतः सप्त तत्त्वानीति चतुर्दश' इति ख पुस्तके ।

पदार्थान्नव को वेत्ति सदाद्यैः सप्तभंगकैः । इत्याद्यनेकसंदृष्ट्या[1] त्रिषष्टिरुपचीयते ॥ ५४ ॥
सज्जीवभाववित्को वा को वाऽसज्जीवभाववित् । सदसज्जीवभावज्ञः कश्चावक्तव्यजीववित् ॥५५॥
सदवक्तव्यजीवज्ञोऽसदवक्तव्यविच्च कः । सदसत्तमवक्तव्यं को वा वेत्तीति यो जनः ॥ ५६ ॥
सद्भावोत्पत्तिविद् वा कोऽसद्भावोत्पत्तिविच्च कः। उभयोत्पत्तिवित्कश्चाऽवक्तव्योत्पत्तिविच्च कः॥५७॥
भावमात्राभ्युपगमैर्विकल्पैरेभिराहतैः । त्रिषष्टिः सप्तषष्टिः स्यादज्ञानिकमतात्मिका ॥ ५८ ॥
विनयः खलु कर्तव्यो मनोवाक्कायदानतः । पितृदेवनृपज्ञानिबालवृद्धतपस्विषु ॥ ५९ ॥
मनोवाक्कायदानानां मात्राद्यष्टकयोगतः । द्वात्रिंशत्परिसंख्याता वैनयिक्यो हि दृष्टयः ॥ ६० ॥
इत्येवं वदतो दृष्टिं दृष्टिवादस्य पंच ते । परिकर्मादयो भेदाश्चूलिकांता व्यवस्थिताः ॥ ६१ ॥
पंच प्रज्ञप्तयः प्रोक्ताः परिकर्मणि ताः पुनः । व्याख्याप्रज्ञप्तिपर्यंताश्चंद्रसूर्यादिनामिकाः ॥ ६२ ॥
षट्त्रिंशत्पदलक्षाभिः सहस्रैः पंचाभिः पदैः । चंद्रप्रज्ञप्तिराचष्टे चंद्रभोगादिसंपदां ॥ ६३ ॥
पदानां पंचलक्षाभिः सहस्रैस्त्रिभिरेव च । सूर्यप्रज्ञप्तिराख्याति सूर्यस्त्रीविभवोदयं ॥ ६४ ॥
सहस्रैः पंचविंशत्या लक्षाभिस्तिसृभिः पदैः । जंबूद्वीपस्य सर्वस्वं तत्प्रज्ञप्तिः प्रभाषते ॥ ६५ ॥

---

१ । इत्याज्ञानिक ।

पदलक्षा द्विपंचाशत् षट्त्रिंशत्सहस्रकाः । प्रज्ञप्तौ संति यस्यां सा द्वीपसागरवर्णिनी ॥ ६६ ॥
लक्षाश्चतुरशीतिर्या सषट्त्रिंशत्सहस्रकाः । पदानां प्रवदत्येषा व्याख्याप्रज्ञप्तिरुच्यते ॥ ६७ ॥
रूपिद्रव्यमरूपं च भव्याभव्यात्मसंचयं । व्याख्याप्रज्ञप्तिराख्याति समस्तं सा सविस्तरं ॥६८॥
पदाष्टाशीति लक्षा हि सूत्रे चादावबंधकाः । श्रुतिस्मृतिपुराणार्था द्वितीये सूत्रिताः पुनः ॥६९॥
तृतीये नियतिः पक्षश्चतुर्थे समयाः परे । सूत्रिता ह्यधिकारे ते नानाभेदव्यवस्थिताः॥ ७० ॥
पदैः पंचसहस्रैस्तु प्रयुक्ते प्रथमे पुनः । अनुयोगे पुराणार्थस्त्रिषष्टिरुपवर्ण्यते ॥ ७१ ॥
चतुर्दशविधं पूर्वं गतं श्रुतमुदीर्यते । प्रतिपूर्वं च वस्तूनि ज्ञातव्यानि यथाक्रमं ॥ ७२ ॥
दश चतुर्दशाष्टौ चाष्टादश द्वादश द्वयोः । दशषड्विंशतिस्त्रिंशत्तत्तत्पंचदशैव तु ॥ ७३ ॥
दशैवोत्तरपूर्वाणां चतुर्णां वर्णितानि वै । प्रत्येकं विंशतिस्तेषां वस्तूनां प्राभृतानि तु ॥ ७४ ॥
पूर्वमुत्पादपूर्वाख्यं पदकोटीप्रमाणकं । द्रव्यध्रौव्यव्ययोत्पादत्रयव्यावर्णनात्मकं ॥ ७५ ॥
लक्षाः षण्णनतिर्यत्र पदानां तेन दृष्टयः । वर्ण्यंतेऽग्रायणीयेन स्वामताग्रपदानि तु ॥ ७६ ॥
अग्रायणीयपूर्वस्य यान्युक्तानि चतुर्दश । विज्ञातव्यानि वस्तूनि तानीमानि यथाक्रमं ॥ ७७ ॥
पूर्वांतमपरांतं च ध्रुवमध्रुवमेव च । तथा च्यवनलब्धिश्च पंचमं वस्तु वर्णितं ॥ ७८ ॥

अध्रुवं संप्रणध्यंतं कल्पाश्चार्थश्च नामतः । भौमावयाद्यमित्यन्यत् तथा सर्वार्थकल्पकं ॥ ७९ ॥
निर्वाणं च तथा ज्ञेयाऽतीतानागतकल्पता । सिद्ध्याख्यं चाप्युपाध्याख्यं ख्यापितं वस्तु चांतिमं ८०
वस्तुनः पंचमस्यात्र चतुर्थे प्राभृते पुनः । कर्मप्रकृतिसंज्ञे तु योगद्वाराण्यमूनि तु ॥ ८१ ॥
कृतिश्च वेदनास्पर्शः कर्माख्यं च पुनः परं । प्रकृतिश्च तथैवान्यद् बंधनं च निबंधनं ॥ ८२ ॥
प्रक्रमोपक्रमौ प्रोक्तावुदयो मोक्ष एव च । संक्रमश्च तथा लेश्या लेश्याकर्म च वर्णितं ॥ ८३ ॥
लेश्यायाः परिणामश्च सातासातं तथैव च । दीर्घह्रस्वमपि तथा भवधारणमेव च ॥ ८४ ॥
पुद्गलात्माभिधानं च तन्निधत्तानिधत्तकं । सनिकाचितमित्यन्यदनिकाचितसंयुतं ॥ ८५ ॥
कर्मस्थितिकामित्युक्तं पश्चिमं स्कंध एव च । समस्तविषयाधीना बोध्याल्पबहुता तथा ॥८६॥
अन्येषामपि पूर्वाणां वस्तुषु प्राभृतेषु च । अनुयोगेषु चान्येषु भेदो ग्राह्यो यथागमं ॥ ८७ ॥
पदानां सप्ततिर्लक्षा यत्र वर्णयति स्फुटं । तद्वीर्यानुप्रवादाख्यं वीर्यं वीर्यवतां सतां ॥ ८८ ॥
अस्तिनास्तिप्रवादं च यत्षष्टिपदलक्षकं । जीवाद्यास्तित्वनास्तित्वं स्वपरादिभिराह तत् ॥८९॥
एकोनपदकोटीकं यत्तद्वर्णयति श्रुतं । पूर्वं ज्ञानप्रवादाख्यं ज्ञानं पंचविधं गुणैः ॥९०॥

पूर्वं सत्यप्रवादाख्यं पदकोटीकपट्पदं[1] । भाषा द्वादशधा प्राह दशधा सत्यभाषणं ॥९१॥
हिंसाद्यकर्त्तुः कर्तुर्वा कर्त्तव्यमिति भाषणं । अभ्याख्यानं प्रसिद्धो हि वागादिकलहः पुनः ॥९२॥
दोषाविष्करणं दुष्टैः पश्चात्पैशून्यभाषणं । भाषाबद्धप्रलापाख्या चतुर्वर्गविवर्जिताः ॥९३॥
रत्यरत्यभिधे वोभे रत्यरत्युपपादिके । आसज्यते जयार्थेषु श्रोता सोपाधिवाक् पुनः ॥९४॥
वंचनाप्रवणं जीवं कर्त्ता निःकृतिवाक्यतः । न नमत्यधिकेष्वात्मा सा च प्रणतिवागभूत् ॥९५॥
या प्रवर्त्तयति स्तेये मोघवाक् सा समीरिता । सम्यग्मार्गे नियोक्त्री या सम्यग्दर्शनवागसौ॥९६॥
मिथ्यादर्शनवाक् सा या मिथ्यामार्गोपदेशिनी । वाचो द्वादशभेदाया वक्तारो द्वींद्रियादयः॥९७॥
दशधा सत्यसद्भावे नामसत्यमुदाहृतं । इंद्रादिव्यवहारार्थं यत् संज्ञाकरणं हि तत् ॥९८॥
यदर्थासंन्निधानेऽपि रूपमात्रेण भाष्यते । तद्रूपसत्यं चित्रादिपुरुषादावचेतने ॥९९॥
आकारेणाक्षपुस्तादौ सता वा यदि वाऽसता । स्थापितं व्यवहारार्थं स्थापनासत्यमुच्यते ॥१००॥
प्रतीत्या वर्तते भावान् यदौपशमकादिकान् । प्रतीत्यसत्यमित्युक्तं वचनं तद्यथाऽगमं ॥१०१॥
सामग्रीकृतकायस्य वाचकत्वैकदेशतः । वचः संवृतिसत्यं स्यात् भेरीशब्दादिकं यथा ॥१०२॥

---

१ षडधिकैककोटिपदं ।

चेतनाचेतनद्रव्यसंनिवेशाविभागकृत्। वचः संयोजनासत्यं क्रौंचव्यूहादिगोचरं ॥१०३॥
यदार्योऽनार्यनानात्वनानाजनपदेष्विह। चतुर्वर्गकरं वाक्यं सत्यं जनपदाश्रितं ॥१०४॥
यद्ग्रामनगराचारराजधर्मोपदेशकृत्। गणाश्रमपदोद्भासि देशसत्यं तु तन्मतं ॥१०५॥
छद्मस्थे द्रव्ययाथात्म्यज्ञानं वैकल्यवत्यपि। प्रासुकाप्रासुकत्वेऽपि भावसत्यं वचः स्थितं॥१०६॥
द्रव्यपर्यायभेदानां याथाम्यप्रतिपादकं। यत्तत्समयसत्यं स्यादागमार्थपरं वचः ॥१०७॥
कोट्यः षड्विंशतिर्यत्र पदानां परिवर्णिताः। आत्मप्रवादपूर्वेऽपि भूयो युक्तिपरिग्रहे ॥१०८॥
तत्र कर्तृत्वभोक्तृत्वनित्यताऽनित्यतादयः। आत्मधर्मा निरूप्यंते तद्भेदाश्च सयुक्तिकाः ॥१०९॥
साशीतिपदलक्षैकपदकोटीप्रमाणकं। पूर्वं कर्मप्रवादाख्यं कर्मबंधस्य वर्णकं ॥११०॥
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु पदानां यत्र वर्णिताः। पूर्वं नवममाख्यातं प्रत्याख्यानं तदाख्यया ॥१११॥
प्रमिताप्रमितं तत्र द्रव्यभावसमाश्रयं। प्रत्याख्यानं समाख्यातं यच्च प्रावण्यवर्धनं ॥११२॥
कोटी च दशलक्षाश्च यत्पदानां प्रवर्त्तिता। तद्विद्यानुप्रवादाख्यं पूर्वं दशममत्र च ॥११३॥
लघ्वोंऽगुष्ठप्रसेनाद्या विद्याः सप्तशतानि तु। रोहिण्याद्या महाविद्याः प्रोक्ताः पंचशतानि च॥११४॥
कोट्यः षड्विंशतिर्यस्मिन् पदानां सुप्रतिष्ठिताः। कल्याणनामधेयं तत् पूर्वमन्वर्थनामकं ॥११५॥

ज्योतिर्गणस्य संचारं त्रिषष्टिपुरुषाश्रितं । सुरासुरेंद्रकल्याणं वर्णयत्यतिविस्तरं ॥ ११६ ॥
स्वप्नांतरिक्षभौमांगस्वरव्यंजनलक्षणं । छिन्नमित्यष्टधा भिन्नं निमित्तं शाकुनं तथा ॥११७॥
यत्त्रयोदशकोटीभिः पदानां समधिष्ठितं । प्राणावायाख्यपूर्वं तत्प्रणीतं द्वादशं परं ॥ ११८ ॥
यत्र कायचिकित्सादिरायुर्वेदोऽष्टधोदितः । प्राणापानविभागादिभूतकर्मविधिस्तथा ॥११९॥
क्रियाविशालपूर्वं तु नवकोटीपदात्मक । छंदःशब्दादिशास्त्राणि तत्र शिल्पकला गुणाः ॥१२०॥
पंचाशत्पदलक्षाभिः कोट्यो द्वादश यत्र तु । पूर्वे चतुर्दशे लोकविंदुसारे हि तत्र च ॥१२१॥
अंकराशिविधिश्चाष्टव्यवहारविधिस्तथा । परिकर्मविधिःप्रोक्तः समस्तश्रुतसंपदा ॥१२२॥
जलस्थलगताकाशरूपमायागता पुनः । चूलिका पंचधान्वर्थं संज्ञा भेदवती स्थिता ॥१२३॥
द्विकोट्यो नवलक्षाश्च नवाशीतिसहस्रकैः । द्वे शते पदसंख्यानां पंचानां च पृथक् पृथक् ॥१२४॥
चतुर्दशप्रकारं स्यादंगबाह्यं प्रकीर्णकं । ग्राह्यं प्रमाणमेतस्य प्रमाणपदसंख्यया ॥ १२५ ॥
अष्टावक्षरकोटयस्तु लक्षैकाष्टसहस्रकैः । शतं च पंचसप्तत्या तत्रैकोऽक्षरसंग्रहं ॥ १२६ ॥
त्रयोदशसहस्राणि पंचशत्येकविंशतिः । कोटी च पदसंख्येयं वर्णाः सप्तैव वर्णिताः ॥ १२७ ॥
पंचविंशतिलक्षाश्च त्रयस्त्रिंशत् शतानि च । अशीतिः श्लोकसंख्येयं वर्णाः पंचदशात्र च ॥१२८॥

तत्र सामायिकं नाम शत्रुमित्रसुखादिषु । रागद्वेषपरित्यागात्समभावस्य वर्णकं ॥ १२९ ॥
जिनस्तवविधानाख्यः स चतुर्विंशतिस्तवः । वर्णको वंदनावंद्यवंदना द्विविधादिना ॥ १३० ॥
द्रव्ये क्षेत्रे च कालादौ कृतावद्यस्य शोधनं । प्रतिक्रमणमाख्याति प्रतिक्रमणनामकं ॥ १३१ ॥
दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यौपचारिकं । पंचधा विनयं वक्ति तद् वैनयिकनामकं ॥ १३२ ॥
चतुः शिरस्त्रिद्विनतं द्वादशावर्तमेव च । कृतिकर्माख्यमाचष्टे कृतिकर्मविधिं परं ॥ १३३ ॥
दशवैकालिकं वक्ति गोचरग्रहणादिकं । उत्तराध्ययनं वीरनिर्वाणगमनं तथा ॥ १३४ ॥
तत्कल्पव्यवहाराख्यं प्राह कल्पं तपस्विनां । अकल्प्यसेवनायां च प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ १३५ ॥
यत्कल्पाकल्पसंज्ञं स्यात् तत्कल्पाकल्पद्वयं पुनः । महाकल्पं पुनर्द्रव्यक्षेत्रकालोचितं यतः ॥१३६॥
देवोपपादमाचष्टे पुंडरीकाक्षमप्यतः । देवीनामुपपादं तु पुंडरीकं महादिकं ॥ १३७ ॥
निषद्यकाख्यमाख्याति प्रायश्चित्तविधिं परं । अंगवाह्यश्रुतस्यायं व्यापारः प्रतिपादितः ॥१३८॥
एकमष्टौ च चत्वारि चतुः षट् सप्तभिश्चतुः । चतुः शून्यं च सप्तत्रिसप्तशून्यं नवापि च ॥१३९॥
पंच पंचैककं षट् च तथैकं पंचतत्त्वतः । समस्तश्रुतवर्णानां प्रमाणं परिकीर्त्तितं ॥१४०॥

१-१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ।

लक्षाशीतिसहस्राणि चतुर्भिश्च चतुःशती । सप्तषष्टिश्च निर्दिष्टाः कोटीकोट्य इमाः स्फुटाः ॥१४१॥
चत्वारिंशच्चतुर्लक्षास्त्रिसप्ततिशतानि च । सप्ततिश्च तथा ज्ञेया इमाः कोट्यः स्फुटीकृताः॥१४२॥
सपंचनवतिर्लक्षाः सपंचाशत्सहस्रकं । सहस्रं षट्शती वर्णा वर्णाः पंचदशापि ते ॥ ४३॥
क्षयोपशमभावे च श्रुतावरणकर्मणः । मतिपूर्वं परोक्षं स्यादनंतविषयं श्रुतं ॥१४४॥
इंद्रियानिंद्रियोत्थं स्यान्मतिज्ञानमनेकधा । परोक्षमर्थसान्निध्ये प्रत्यक्षं व्यवहारिकं ॥१४५॥
क्षयोपशमसापेक्षं निजावरणकर्मणः । अवग्रहेहावायाख्या धारणा च चतुर्विधः ॥१४६॥
इंद्रियानिंद्रियैः षड्भिश्चत्वारोऽवग्रहादयः । भवंति गुणिता भेदाश्चतुर्विंशतिरेव ते ॥१४७॥
शब्दगंधरसस्पर्शव्यंजनावग्रहैर्युताः । चाष्टाविंशतिरुक्तास्ते द्वात्रिंशन्मूलभंगकैः ॥१४८॥
बह्वाद्यैः षड्भिरभ्यस्तास्ते त्रयोराशयश्चतुः । चत्वारिंश शंत चाष्टाषष्टिः द्वानवतं शतं ॥१४९॥
अभ्यस्ताःसेतरैस्तैस्तैरष्टाशीतं शतद्वयं । षट्त्रिंशत् त्रिशती च स्यादशीत्याऽसौ चतुर्युता॥१५०॥
मतिज्ञानविकल्पोऽयं तावत्स्वावृत्तिकर्मणः । क्षयोपशमभेदेन भिद्यमानः सुदृष्टिषु ॥१५१॥
देशप्रत्यक्षमुद्भूतो जीवसिद्धौ त्रिधा विधिः । देशः सर्वश्च परमः पुद्गलावधिरिष्यते ॥१५२॥

१ चतुश्चत्वारिंशं शतं १४४ । २ उभयदीपकमिदं । ३ शतं चाष्टाषष्टिः १६८ । ४–१९२ ।

देशप्रत्यक्षमेव स्यान्मनःपर्यय इत्यपि । विपुलर्जुमतिप्रख्याः सोऽवधेः सूक्ष्मगोचरः ॥ १५३ ॥
सर्वप्रत्यक्षमंत्यं स्यात्केवलावरणक्षयात् । अक्षयं केवलज्ञानं केवलं विश्वगोचरं ॥१५४॥
परोक्षस्य प्रमाणस्य हानोपादानधीः फलं । प्रत्यक्षस्य तथोपेक्षा प्रागमोहफलं द्वयं ॥१५५॥
पारंपर्येण मोक्षस्य हेतुर्ज्ञानचतुष्टयं । साक्षादेव भवत्येकं केवलज्ञानमव्ययं ॥१५६॥
प्रमाणप्रमितार्थानां श्रद्धानं दर्शनं शुभं । शुभक्रिया सुवृष्टिश्च चारित्रमिति वर्ण्यते ॥१५७॥
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रत्रितयं मोक्षसाधनं । श्रद्धेयं चाप्यनुष्ठेयं परसंपदमिच्छता ॥१५८॥
इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति नासीन्नापि भविष्यति । मुक्त्यंगमित्यवेतव्यमिति सारसमुच्चयः ॥१५९॥
इत्याद्यस्य जिनेंद्रस्य प्रपीय वचनौषधं । संदेहांतकनिर्मुक्ता मुक्तेवाभाज्जगत्त्रयी ॥१६०॥
गृहीतरत्नत्रयभूषणा पुरा जना बभूवुः स्थिरभावनास्तदा ।
परे यतिश्रावकधर्मदीक्षिताः कृते युगे युक्तगुणाश्चकासिरे ॥ १६१ ॥
युतं च संघेन चतुर्विधेन तं जगद्विहाराभिमुखं जिनेश्वरं ।
विशुद्धसम्यक्त्वधियश्चतुर्विधाः प्रणम्य जग्मुर्विबुधा निजास्पदं ॥ १६२ ॥
गृहाश्रमी श्रावकमुख्यतां सृतो जिनेश्वरं तं भरतेश्वरो नृपः ।

समर्च्य साकेतमितः प्रमोदवानुदारवंशस्थनृपैः परिष्कृतः ॥ १६३ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ प्रथमतीर्थंकरधर्मतीर्थप्रवर्तनो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ।

अथ कृत्वात्मजोत्पत्तौ भरतः सुमहोत्सवं । कृतचक्रमहोऽयासीत् षट्खंडविजिगीषया ॥१॥
चतुरंगमहासेनो नृपचक्रेण संगतः । अग्रप्रस्थितचक्रेण युक्तो दिक्चक्रिणां नृणां ॥ २ ॥
गंगानुकूलमागत्य गंगासागरसंगताः । गंगाद्वारेऽष्टमं[1] सद्वागंगाद्यकृतभक्तकं ॥ ३ ॥
द्वारेणोद्घाटितेनासौ प्रविश्याश्वयुगाश्रितं । अजितंजितनामानं रथमारुह्य वेगिनं ॥ ४ ॥
अवगाह्य महाबाहुर्जानुदघ्नं महोदधिं । वज्रकांडधनुःपाणिर्वैशाखस्थानमास्थितः ॥ ५ ॥
सद्दृष्टिमुष्टिसंधानविधानेषु विशारदः । स्वनामांकममोघाख्यं मुमोचाशुगमाशुगं ॥ ६ ॥
शरः पपात वज्राभो गत्वा द्वादशयोजनीं । प्रासादे मागधस्याशु प्रविशन्मुखरांबरः ॥ ७ ॥
हृदयेन समं तस्मिन् प्रासादे चलिते सुरः । संभ्रांतः स तमालोक्य चक्रिनामांकितं शरं ॥ ८ ॥

---

१ उपवासत्रयं 'तेला' कृत्वा ।

चक्रवर्तिनमुत्पन्नं ज्ञात्वा स्वं पुण्यमल्पशः। निंदित्वा भग्नमानोऽसौ रत्नपाणिरुपागतः॥ ९ ॥
हारं स पृथिवीसारं मुकुटं रत्नकुंडले। उपनीय सुरत्नानि वस्त्रतीर्थोदकानि तु ॥ १० ॥
साधि किं करवाणीश देह्यादेशं बुधोऽवदत्। मुक्तस्तेन गतः स्थानं निर्ययौ भरतोऽप्यतः॥११॥
भूतव्यंतरसंघातान् दाक्षिणात्यान् महाबलान्। साधयन् सागरद्वारं विजयं तमवाप सः ॥१२॥
सुरं वरतनुस्तत्र यथा मागधमाह्वयन्। चूडामणिमसौ दिव्यं ग्रैवेयकमुरश्छदं ॥ १३ ॥
वीरांगदे च कटके कटीवर्तं च सूत्रकं। उपनीय प्रणम्येशं विमुक्तं किंकरो ययौ ॥ १४ ॥
पाश्चात्यं साधयन् विश्वं दधद्भूपालमंडलं। अनुवेदिकमागच्छत् सिंधुद्वारं स बंधुरं ॥ १५ ॥
प्रभासममरं तत्र गंगाद्वारविधानतः। नमयित्वा वशं चक्रे चक्रेशः शक्रविक्रमः ॥ १६ ॥
लेभे संतानकं तस्मान्माल्यदामकमुत्तमं। मुक्ताजालं च मौलिं च रत्नचित्रं च हेमकं ॥ १७ ॥
चक्ररत्नानुमार्गं स विजयार्द्धस्य वेदिकां। प्राप्तश्चक्रधरो दध्यौ सोपवासो गिरेः सुरं ॥ १८ ॥
बुध्वा स्वावधिकात्प्राप्तः सोऽभिषिच्य महर्द्धिभिः। विजयार्द्धकुमाराख्यो देवः प्रणतिपूर्वकं ॥१९॥
भृंगारं कृततोयं च सिंहासनमनुत्तमं। छत्रचामरयुग्मानि दत्वा तेऽहमिति न्यगात्॥ २० ॥
तत्र चक्रमहं कृत्वा स तमिश्रगुहामुखं। प्रापत्तु कृतमालस्तं सुरः प्राप ससंभ्रमः ॥ २१ ॥

तिलकाद्यानि दिव्यानि भूषणानि चतुर्दश। प्रदाय प्रणिपत्यासौ तवाहमिति यातवान् ॥ २२॥
सेनापतिरयोध्यस्य राजराजस्य शासनात्। अश्वरत्नं शुकच्छायं कुमुदामेलकाभिधं ॥ २३ ॥
आरुह्य दंडरत्नेन प्रचंडेन पराङ्मुखः। गुहाद्वारकवाटानि प्रताड्यानुपलायितः ॥ २४ ॥
उद्घाटिते गुहाद्वारे षण्मासैः स निरूष्मणि। सेनयाऽविशदारुह्य गजं विजयपर्वतं ॥ २५ ॥
तत्रोन्मग्नजला नाम्ना सन्निमग्नजलापगा। महानद्योस्तयोस्तीरे गुहामध्येऽमुचच्चमूः ॥ २६ ॥
नित्यांधकारमुद्रास्या काकणीमणिरोचिषा। स्कंधावारं स्थितं तत्र नक्तंदिवमतंद्रितं ॥ २७॥
कामदृष्टिर्गृहपती रत्नभद्रमुखो द्रुतं। स्थपतिश्च स्थिरस्ताभ्यां संक्रमः सरितोः कृतः ॥ २८ ॥
उत्तीर्य संक्रमाक्रांत्या सद्यो नद्योर्ययौ चमूः। द्वारमुत्तरमुद्धाट्य प्रागिवोत्तरभारतं ॥ २९ ॥
म्लेच्छराजसहस्राणि वीक्ष्यापूर्वविरूथिनीं। क्षुभितान्यभिगम्याशु योधयामासुरश्रमात् ॥ ३०॥
ततःक्रुद्धो युधि म्लेच्छैरयोध्यो दंडनायकः। युद्ध्वा निर्धूय तानाशु दध्रे नामार्थसंगतं ॥ ३१॥
भयान्म्लेच्छास्ततो जाताःशरणं कुलदेवताः। घोरान्मेघमुखान्नागान् दर्भशय्याधिशायिनः ॥३२॥
ततो मेघमुखा देवाः खमापूर्य युधि स्थिताः। युद्ध्वा जयकुमारस्तैर्लेभे मेघस्वराभिधां ॥ ३३ ॥
पुनर्मेघमुखा घोरैर्मेघैरापूर्य पुष्करं। ववृषुर्मेघमात्राभिर्धाराभिः सैन्यमस्तके ॥ ३४ ॥

... चर्मरत्नमधश्चक्रे छत्ररत्नं तथोपरि ॥ ३५ ॥
दृष्ट्वा वृष्टिं ततश्चक्री सतडिद्गर्जिताशनिं । अंडायते स्म सप्ताहं कांदिशीकत्वमागता ॥३६॥
द्विषट्योजनविस्तीर्णा तरंती साऽप्सु वाहिनी । देवानाज्ञापयत् तैस्तैर्ध्वस्ता मेघमुखाः सुराः ॥३७॥
ततो निधिपतिः क्रुद्धो गणबद्धाभिधानकान् । चक्रिणं शरणं जग्मुरादाय वरकन्यकाः ॥ ३८ ॥
ततो मेघमुखैर्म्लेच्छाः प्रोक्ताः संहृतवृष्टिभिः । आयादायासनिर्मुक्तः सिंधुनद्यनुवेदिकं ॥ ३९ ॥
भीतानामभयं दत्त्वा स तेषां शासनैषिणां । ददौ भद्रासने भद्रे पादपीठोपशोभिते ॥ ४० ॥
सिंधुदेव्यभिषिच्यैनं सिंधुकूटाग्रवासिनी । कृताष्टमोपवासोऽसौ दर्भशय्यामधिष्ठितः ॥ ४१ ॥
चक्रवर्ती चमूं मूले संस्थाप्य हिमवद्गिरेः । आरूढाश्वरथो धन्वी चक्रायुधपुरःसरः ॥ ४२ ॥
कृततीर्थोदकस्नानः कृतकौतुकमंडलः । वैशाखं स्थानमास्थाय बभाण रणदक्षिणः ॥४३॥
क्षुल्लकं हिमवत्कूटं यत्र तत्र गतः शरी । देशस्था इत्यतश्चापमाकृष्य शरमाक्षिपत् ॥४४॥
भो भो नागसुपर्णाद्याः शासनं शृणुताशु मे । हिमवत्कूटवासी तं सुरो दृष्ट्वा समागमद् ॥४५॥
पपाताशनिनिर्घोषो योजने द्वादशे शरः । दत्त्वा संपूज्य तं यातः शासनैषी विसर्जितः ॥४६॥
दिव्यामोषधिमालां स दिव्यं च हरिचंदनं । तत्रालिखन्निजं नाम काकण्या स परिस्फुटं ॥ ४७ ॥
आगत्य चक्रवर्ती च ततो वृषभपर्वतं ।

वृषभस्य सुतो भोऽहं चक्री भरत इत्यसौ। प्रवाच्य विजयार्द्धस्य वेदिकामगमत् प्रभुः ॥ ४८ ॥
बुद्ध्वोपवासिनं तत्र श्रेणिद्वयनिवासिनौ। नमिश्च विनमिश्चोभौ गंधाराद्यैः समागतौ ॥ ४९ ॥
स्त्रीरत्नं प्रतिगृह्याभ्यां सुभद्राख्यं खगैर्नतः। गंगानुवेदिकं गत्वा भक्तमष्टममास्थितः ॥ ५० ॥
गंगादेवी विदित्वा तं गंगाकूटनिवासिनी। हेमकुंभसहस्रेण कृत्वा तदभिषेचनं ॥ ५१ ॥
रत्नसिंहासने तस्मै पादपीठयुते ददौ। विजयार्द्धकुमारोऽपि तस्थौ चक्रेशशासने ॥ ५२ ॥
अष्टादशसहस्राणि म्लेच्छक्षितिभृतां ततः। वशीकृत्यात्तसद्रत्नः खंडकापातमाप सः ॥ ५३ ॥
उपोषिताष्टमायास्मै नाट्यमालोऽत्र दत्तवान्। नानारूपं स नेपथ्यं विद्युदाभे च कुंडले ॥५४॥
अयोध्योद्घाटितेनासौ गुहाद्वारेण पूर्ववत्। प्रविश्य निर्गतः सिंधोरिव गांगेन सेनया ॥ ५५ ॥
विजित्य भारतं वर्षं स षट्खंडमखंडितं। षष्टिवर्षसहस्रैस्तु विनीतां प्रस्थितः कृती ॥ ५६ ॥
चक्रे सुदर्शनेऽयोध्यामविशत्यथ चक्रभृत्। बुद्धिसागरमप्राक्षीत् संदिहानः पुरोधसं ॥ ५७ ॥
साधिते भारते वास्ये चक्ररत्नमिदं किमु। दिव्यं विशति नायोध्यां योध्याः संति न के च नः॥५८॥
पुरोधाः सोऽभ्यधाद्भर्तर्भ्रातरो भवतो न तु। ये महाबलसंपन्नास्ते न शृण्वंति शासनं ॥ ५९ ॥
तदाकर्ण्य वचस्तूर्णं तेषां प्रेषयति स्म सः। स सामोपप्रदानादि नीतिपूर्वं वचोहरान् ॥ ६० ॥

ततस्ते तन्निमित्तेन मानिनो लब्धबोधयः । स्वराज्यान्यत्यजँस्त्यागं मन्यमाना महोत्सवं ॥६१॥
प्रपद्य शरणं सर्वे नाभेयं भवभीरवः । मानशल्यविनिर्मुक्ताः प्रव्रज्यां मोक्षिणो दधुः ॥ ६२ ॥
सुकुमारैः कुमारैस्तैर्भव्यसिंहैः सहैव हि । ज्ञेयानि त्यक्तदेशानां नामानीमानि पंडितैः ॥ ६३ ॥
कुरुजांगलपंचालसूरसेनपटच्चराः । तुलिंग, काशि, कौशल्य, मद्रकारवृकार्थकाः ॥ ६४ ॥
सोल्वावृष्टत्रिगर्त्ताश्च कुशाग्रो मत्स्यनामकः । कुणीयात्कोशलो मोको देशास्ते मध्यदेशकाः ॥६५॥
वाह्लीकात्रेयकांबोजा यवना भीरमद्रकाः । काथतोयश्च शूरश्च वाटवानश्च कैकयः ॥ ६६ ॥
गांधारः सिंधुसौवीरभारद्वाजदशेरुकाः प्रास्थालास्तीर्णकर्णाश्च देशा उत्तरतः स्थिताः ॥६७॥
खड्गांगारकपौंड्रश्च मल्लप्रवकमस्तकाः । प्राद्योतिषश्च वंगश्च मगधो मानवर्तिकः ॥ ६८ ॥
मलदो भार्गवश्चामी प्राच्यां जनपदाः स्थिताः । वाणमुक्तश्च वैदर्भाः माणवः सककापिराः ॥६९॥
मूलकाश्मकदांडीककलिंगासिककुंतलाः । नवराष्ट्रो माहिषकः पुरुषो भोगवर्धनः ॥ ७० ॥
दाक्षिणात्या जनपदा निरुच्यंते स्वनामाभिः । माल्यकल्लीवनोपांतदुर्गसूर्पारकर्बुकाः ॥ ७१ ॥
काक्षिनासारिकागर्ताः ससारस्वततापसाः । माहेभो भरुकच्छश्च सुराष्ट्रो नर्मदस्तथा ॥ ७२ ॥
एते जनपदाः सर्वे प्रतीच्यां नामाभिः स्मृताः। दशार्णकेति किष्कंधस्त्रिपुरावर्त्तनैषधा ॥ ७३ ॥

नेपालोत्तमवर्णश्च वैदिशांतपकौशलाः । पत्तनो विनिहात्रश्च विंध्यापृष्ठनिवासिनः ॥ ७४ ॥
भद्रवत्सविदेहाश्च कुशभंगाश्च सैनवाः । वज्रखंडिक इत्येते मध्यदेशाश्रिता मताः ॥ ७५ ॥
देशानेताननुज्ञातान् गुरुणा भरतानुजाः । दारानिव विधेयांश्च मुमुचुस्ते मुमुक्षवः ॥ ७६ ॥
अथ बाहुबली चक्रे चक्रेशं प्रत्यवस्थितिं । संदधानो मनश्चक्रे चक्रेऽलातमये यथा ॥ ७७ ॥
भवतो न भुजिष्योऽहमिति प्रेष्य वचोहरान् । पोदनान्निर्ययौ योद्धुमक्षौहिण्या युतो द्रुतं ॥७८॥
चक्रवर्त्यपि संप्राप्तः सैन्यसागररुद्धदिक् । विततापरदिग्भागे चम्वोः स्पर्शस्तयोरभूत् ॥७९॥
उभये मंत्रिणो मंत्रं मंत्रयित्वाहुरीशयोः । माभूज्जनपदक्षयो धर्मयुद्धमिहास्त्विति ॥ ८० ॥
प्रतिपद्य वचस्तौ तत् दृष्टियुद्धं प्रचक्रतुः । चिरं निमेषमुक्ताक्षौ दृष्टौ खे खेचरामरैः ॥ ८१ ॥
कनिष्ठोऽत्राजयज्ज्येष्ठं पंचचापशतोच्छ्रितिं । ऊर्ध्वदृष्टिमधोदृष्टिस्तदुच्चैः पंचविंशतिः ॥ ८२ ॥
ततोऽन्योन्यभुजक्षिप्ततरंगाघातदुःसहं । जलयुद्धमभूद् रौद्रं सरस्यत्र जितोऽग्रजः ॥ ८३ ॥
वलितास्फोटिताटोपं नानाकरणकौशलं । मल्लयुद्धमभूत्पश्चाद् रंगभूमौ चिरं तयोः ॥ ८४ ॥
पादावष्टंभसंभिन्नहृदया युध्यमानयोः । तयोर्भियेव वैरणे ररास वसुधा वधूः ॥ ८५ ॥

---

१ ‘तथा’ इति ख पुस्तके। २ ‘वरयो’ इति ख पुस्तके।

भरतं भुजयंत्रेण दयावान् भुजविक्रमी । निरुद्धचोक्षिप्य संतस्थे रत्नशैलमिवामरः ॥ ८६ ॥
प्रेक्षकैः सुरसंघातैः खेचरैरपि भूचरैः । अहोवीर्यमहो धैर्यं साधु साध्विति वर्णितं ॥ ८७ ॥
साधु संसाध्य मुक्तेन भरतेन रुषा ततः । अपमृत्युस्मृतं चक्रं सहस्रारं स्थितं करे ॥ ८८ ॥
रक्ष्यं यक्षसहस्रेण सहस्रकिरणप्रभं । प्रभ्रम्य चक्रमुन्मुक्तं वधार्थं भ्रातुरुन्मुखं ॥ ८९ ॥
चरमोत्तमदेहस्य तस्याशक्तं विनाशने । देवताधिष्ठितं चक्रं त्रिःपरीत्यागतं पुनः ॥ ९० ॥
ज्येष्ठभ्रातरमालोक्य निर्घृणं भुजविक्रमी । कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां निनिंद श्रियमित्यसौ ॥९१॥
स्वच्छानामनुकूलानां संहतानां नृचेतसां । विपर्यासकरीं लक्ष्मीं धिक् पंकर्द्धिमिवांभसं ॥ ९२ ॥
मधुरस्निग्धशीलानां चिरस्थस्नेहहारिणीं । चलाचलात्मिकां धिक् धिक् यंत्रमूर्तिमिव श्रियं ॥९३॥
सर्वतोऽपि सुदुःप्रेक्षां नरेंद्राणामपि स्वयं । दृष्टिं दृष्टिविषस्येव धिक् धिक् लक्ष्मीं भयावहां ॥९४॥
मूलमध्यांतदुःस्पर्शां सर्वदाग्निशिखामिव । भास्वरामपि धिग्लक्ष्मीं सर्वसंतापकारिणीं ॥ ९५ ॥
मर्त्यलोके सुखं तद्द यच्चित्तसंतोषलक्षणं । सति बंधुविरोधे हि न सुखं न धनं नृणां ॥ ९६ ॥
जनयंति नृणां भोगाः प्रतिकूलेषु बंधुषु । शीतज्वराभिभूतानां शीतस्पर्शा इवासुखं ॥ ९७ ॥

' शीतद्वाराभिभूतानां ' इति ख पुस्तके ।

इति संचिंत्य संत्यज्य स राज्यं तपसि स्थितः । कैलासे प्रतिमायोगं तस्थौ वर्षं सुनिश्चलः॥९८॥
वल्मीकरंध्रनिर्यातैः फणिभिर्मणिभूषितैः । चरणौ रेजतुस्तस्य पुरेव नरपैर्भृतैः ॥ ९९ ॥
वल्लभेव पुरा वल्ली माधवी कोमलांगिका । निःशेषांगपरिष्वंगं चक्रे तस्य मुनेरपि ॥ १०० ॥
लतां व्यपनयंतीभ्यां खेचरीभ्यां बभौ मुनिः । श्याममूर्तिः स्थिरो योगी यथा मरकताचलः॥१०१॥
कषायांतमसौ कृत्वा भरतेन कृतानतिः । केवलज्ञानमुत्पाद्य पारिषद्यः प्रभोरभूत् ॥ १०२ ॥
चतुर्दशमहारत्नैर्निधिभिर्नवभिर्युतः । निःसपत्नं ततश्चक्री बुभोज वसुधां कृती ॥ १०३ ॥
अदाद्द्वादशवर्षाणि दानं चासौ यथेप्सितं । लोकाय कृपया युक्तः परीक्षापरिवर्जितं ॥१०४॥
जिनशासनवात्सल्यभक्तिभारवशीकृतः । परीक्ष्य श्रावकान् पश्चाद् यवव्रीह्यंकुरादिभिः ॥१०५॥
काकिण्या लक्षणं कृत्वा सुरत्नत्रयसूत्रकं । संपूज्य स ददौ तेभ्यो भक्तिदानं कृते युगे ॥१०६॥
ततस्ते ब्राह्मणाः प्रोक्ताः व्रतिनो भरतादृताः । वर्णत्रयेण पूर्वेण जाता वर्णचतुष्टयी ॥१०७॥
चक्रच्छत्रासिदंडास्ते काकिणीमणिचर्मणी । सेनागृहप्रतीभाश्वाः पुरोधःस्थपतिस्त्रियः ॥१०८॥
चतुर्दशमहारत्ननिचयाश्चक्रवर्तिनः । प्रत्येकं रक्षिता देवैः सहस्रगुणनैर्बभुः ॥१०९॥
कालश्चापि महाकालः पांडुको माणवस्तथा । नैःसर्पः सर्वरत्नाश्च शंखपद्मश्च पिंगलः ॥११०॥

अमी पुण्यवतस्तस्य निधयो निधना नव । पालिता निधिपालाख्यैः सुरैर्लोकोपयोगिनः॥१११॥
शकटाकृतयः सर्वे चतुरक्षाष्टचक्रकाः । नवयोजनविस्तीर्णा द्वादशायामसंमिताः ॥११२॥
ते चाष्टयोजनागाधा बहुवक्षारकुक्षयः । नित्यं यक्षसहस्रेण प्रत्येकं रक्षितेक्षिताः ॥११३॥
ज्योतिर्निमित्तशास्त्राणि हेतुवादकलागुणाः । शब्दशास्त्रपुराणाढ्याः सर्वे कालनिधौ मताः॥११४॥
पंचलोहादयो लोहा नानाभेदाः प्रवर्तिताः । लब्धवर्णैर्विनिर्णेया महाकालनिधौ पुनः ॥११५॥
धान्यानां सकला भेदाः शालिव्रीहियवादयः। कटुतिक्तादिभिर्द्रव्यैः प्रणीताः पांडुके निधौ॥११६॥
कवचैः खेटकैः खड्गैः शरैः शक्तिशरासनैः । चक्राद्यैरायुधैर्दिव्यैः पूर्णो माणवको निधिः॥११७॥
शयनाशनवस्तूनां विविधानां महानिधिः । सर्पो गृहोपयोग्यानां भोजनानां च भाजनं ॥११८॥
इंद्रनीलमहानीलवज्रवैडूर्यपूर्वकैः । सर्वरत्ननिधिः पूर्णः सरत्नैः सुमहाशिखैः ॥११९॥
भेरीशंखानकैर्वीणाझल्लरीमुरजादिभिः । आतोद्यैश्चोद्यसंपूर्णैः पूर्णः शंखनिधिर्महान् ॥१२०॥
पट्टचीणमहानेत्रदुकूलवरकंबलैः । वस्त्रैर्विचित्रवर्णाढ्यैः पूर्णः पद्मनिधिः सदा ॥१२१॥
कटकैः कटिसूत्राद्यैः स्त्रीपुंसाभरणैः शुभैः । स पिंगलनिधिः पूर्णो गजवाजिविभूषणैः ॥१२२॥
कामदृष्टिवशास्तेऽमी नवापि निधयः सदा । निष्पादयंति निःशेषं चक्रवर्तिमनीषितं ॥१२३॥

शतानि त्रीणि षष्ट्या तु सूपकाराः परे परे । कल्याणसिक्तमाहारं प्रत्यहं ये वितन्वते ॥१२४॥
सहस्रसिक्तकवलो द्वात्रिंशत् तेपि चक्रिणः । एकश्चासौ सुभद्रायाः एकोऽन्येषां तु तृप्तये॥१२५॥
चित्रकारसहस्राणि नवतिर्नवभिः सह । द्वात्रिंशत् ते सहस्राणि नृपा मुकुटबद्धकाः ॥ १२६ ॥
देशाश्चापि हि तावंतो जयंत्यपि सुरस्त्रियः । अंतःपुरसहस्राणि तस्य षण्णवतिः प्रभोः ॥१२७॥
हलकोटी तथा गावस्त्रिकोट्यः कामधेनवः । कोट्यश्चाष्टादशाश्वानां निश्चेया वातरंहसां ॥१२८॥
लक्षाश्चतुरशीतिस्तु मदमंथरगामिनां । हस्तिनां सुरथानां च प्रत्येकं चक्रवर्त्तिनः ॥१२९॥
आदित्ययशसा सार्द्धं विवर्द्धनपुरोगमाः । पंच पुत्रशतान्यस्य वशाश्चरमदेहकाः ॥१३०॥
भाजनं भोजनं शय्या चमूर्वाहनमासनं । निधिरत्नं पुरं नाट्यं भोगास्तस्य दशांगकाः ॥१३१॥
स षोडशसहस्रैश्च गणबद्धसुरैः सदा । सेवायां सेव्यते दक्षैः प्रमादरहितैर्हितैः ॥१३२॥
विभवेन नरेंद्रोऽसौ तादृशेन युतोपि सन् । शास्त्रार्थक्षुण्णधीश्चक्रे दुर्गतिग्रहनिग्रहं ॥१३३॥
स द्वात्रिंशत्सहस्राणां समयबाहुल्यमस्मयः । अपाकरोद्विकीर्यैतान् दोःकृताहितमंथनः ॥१३४॥
श्रीवक्षलक्षितोरस्के सचतुःषष्टिलक्षणे । षोडशे मनुराजेऽस्मिन् विडौजश्रीविडंबिनि ॥१३५॥
स्वायंभुवे महाभागे भरते भरतक्षितिं । नीत्या शासति खंडानां नित्याखंडितपौरुषे ॥१३६॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु यथेष्टमनुरागिणः । जनाः संततमारेमुर्निःप्रत्यूहसमीहिताः ॥१३७॥
अवाग्विसर्गमन्येषां पूर्वधर्मफलं प्रभुः । श्रिया स दर्शयन् केषां नाभूद्धर्मस्य देशकः ॥१३८॥
धर्मस्याचरितस्य पूर्वजनने मार्गे जिनानां महान्माहात्म्येन सपौरुषः सुखनिधिर्लोकैककल्पद्रुमः।
सम्यग्दर्शनरत्नरंजितमनोवृत्तिर्मनश्चक्रभृत् चक्रे शक्रनिभःश्रियाऽत्र भरतः शार्दूलविक्रीडितं॥१३९॥

इति "अरिष्टनेमि" पुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ भरतदिग्विजयवर्णनो नाम एकादशःसर्गः ।

द्वादशः सर्गः ।

चकार वंदनां गत्वा चक्री भर्त्तुरनारतं । स त्रिषष्टिपुराणानि शुश्राव च सविस्तरं ॥ १ ॥
चतुर्विंशतितीर्थेशं वंदनार्थं शिरस्पृशं । अचीकरदसौ वेश्मद्वारे वंदनमालिकां ॥ २ ॥
अदृष्टपूर्वतीर्थेशाः प्रविष्टाः समवस्थितिं । कदाचिच्चाक्रिणा सार्द्धं विवर्द्धनपुरोगमाः ॥ ३ ॥
क्लिष्टा स्थावरकायेष्वनादिमिथ्यात्वदृष्टयः । दृष्ट्वा भगवतो लक्ष्मीं राजपुत्राः सुविस्मिताः ॥४॥
अंतर्मुहूर्तकालेन प्रतिपन्नसुसंयमाः । त्रयोविंशान्यहो चित्रं शतानि नैवभिर्बभुः ॥ ५ ॥

तान् प्रशस्य ततश्चक्री शासनं च जिनेशिनां । नत्वेशं साधुसंघं च विवेश मुदितः पुरीं ॥ ६ ॥
शनैर्याति ततः काले साम्राज्ये लोकपालिनः । चतुर्वर्गोचितज्ञानजलक्षालितचेतसः ॥ ७ ॥
ततः स्वयंवरारंभे प्राप्ते भूचरखेचरे । वृते मेघेश्वरे धीरे सुसुलोचनया तया ॥ ८ ॥
युद्धे वद्धे च कीर्त्तौ च मुक्ते च कृतपूजने । अकंपनसुताभर्त्ता पूजितश्चक्रवर्त्तिना ॥ ९ ॥
स हास्तिनपुराधीशः प्रासादस्थोऽन्यदा वृतः । स्त्रीभिः खे खेचरं यांतं खेचर्या वीक्ष्य मूर्छितः॥१०॥
विह्वलांतःपुरस्त्रीभिः कृतमूर्छाप्रतिक्रियः[1] । हा प्रभावति ! यातासि केत्यवादीत्प्रबुद्धवान् ॥११॥
जये जातिस्मरे जाते तत्प्रियाऽपि सुलोचना । प्रासादवल्लभौ क्रीडत्पारावतयुगेक्षणात् ॥१२॥
भूत्वा जातिस्मरा मूर्च्छां गत्वा प्राप्य प्रतिक्रियः । हिरण्यवर्मणो नाम गृह्णतीव समुत्थिता॥१३॥
हिरण्यवर्मपूर्वोऽहमित्युवाच जयः प्रियां । साऽहं प्रभावतीत्याह प्रहृष्टा तं सुलोचना ॥१४॥
विद्याधरभवं पूर्वमभिज्ञानैरुभावपि । परस्परस्य संवाद्यं स्पष्टं विदधतुः प्रियौ ॥१५॥
ततोऽतःपुरलोकस्य कौतुकव्याप्तचेतसः । किमेतदिति जिज्ञासा ज्ञापनार्थं जयोक्तया ॥१६॥
सुखदुःखरसोन्मिश्रमवियोगसुखान्वितं । द्वयोश्चरितमाख्यातं चतुर्भवमयं तया ॥१७॥

१ कृतमूर्च्छानिवारणः ।

उट्टिंटिकारसंबंधं सुकांतरतिवेगयोः । दम्पत्योर्दग्धयोस्तेन मरणं करुणावहं ॥१८॥
मार्जारेण सता तेन स्वपारावतजन्मनि । भक्षणे दुःखमरणं स्वं जगाद सुलोचना ॥॥१९॥
साधुदानानुमोदेन प्रभावत्या प्रभावितः । हिरण्यवर्मणो भोगं महाविद्याधरश्रियः ॥२०॥
स्वपूर्ववैरिणा दाहं तयोः सह तपस्थयोः । आद्यकल्पसमुत्पत्तिं संक्लेशपरिणामतः ॥२१॥
क्रीडार्थमागतस्यास्य क्ष्मां देवमिथुनस्य च । वैरिणो नरकोत्थस्य भीमसाधोश्च मर्षणं ॥२२॥
स्वर्गच्यवनपर्यंतं दंपत्योश्चरितं यथा । दृष्टं श्रुतानुभूतार्थं सविस्तरमुदीरितं ॥२३॥
निजाज्ञया च कथितं श्रीपालचरितं तथा । सांतःपुरो जयः श्रुत्वा महांतं विस्मयं श्रितः ॥२४॥
भवपंचकसंबंधस्नेहसागरवर्तिनोः । स्मरणादेव संप्राप्ताः विद्याः प्राग्जन्मजास्तयोः ॥२५॥
ततो विद्याप्रभावेन विद्याधरयुवश्रियौ । विजहतुर्जयंतौ तौ लोकं खेचरगोचरं ॥२६॥
जिनेंद्रवंदनापूर्वं त्रिवर्गपरिपोषिणा । मंदरस्य रतं तेन कंदरासु समं तया ॥२७॥
कुलशैलनितंबेषु सुविशालनितंबया । रेमे किन्नरगीतेषु रामया सोऽभिरामया ॥२८॥
कर्मभूमिभवेनापि क्रीडितं भोगभूमिषु । कलागुणविदग्धेन मिथुनेन यथेप्सितं ॥२९॥

१ आद्यक्लेश ।

शक्रप्रशंसनादेत्य रतिप्रभसुरेण सः । परीक्ष्य स्वस्त्रिया मेरावन्यदा पूजितो जयः ॥३०॥
सर्वासामेव शुद्धीनां शीलशुद्धिः प्रशस्यते । शीलशुद्धिविशुद्धानां किंकरास्त्रिदशा नृणां ॥३१॥
वर्षाणि बहुपत्नीकः सुबहूनि बहुप्रजाः । बुभुजे परमान् भोगान् विजयेन समं जयः ॥३२॥
सुतयाऽकंपनस्यासावाक्रीड्याद्रिषु चान्यदा । वंदनार्थं जिनेंद्रस्य वृषभस्य समागमत् ॥३३॥
प्रत्यासन्नमवोचंतीं प्रोवाच दयितां च सः । प्रिये पश्य जिनाधीशं त्रैलोक्यपरिवारितं ॥३४॥
प्रातिहार्यैर्युतोऽष्टाभिश्चतुस्त्रिंशन्महाद्भुतैः । अयं भाति विशुद्धांतो त्रैलोक्यपरमेश्वरः ॥३५॥
अमी चतुर्विधा देवाः सौधर्मप्रमुखाः प्रिये । देव्योऽमीपामपि मूर्ध्ना प्रणमंति जिनेश्वरं ॥३६॥
नानर्द्धियतिभिर्युक्ताः सप्ततिर्गणधारिणः । अमी वृषभसेनाद्याः प्रकाशंतेऽतिकं प्रभोः ॥३७॥
असौ बाहुबली कांते ! केवली जटिलो वृतः । स्वभ्रातृमुनिभिर्भाति न्यग्रोध इव पादपैः ॥३८॥
एष सोमप्रभो देवि ! शोभते गुरुरावयोः । श्रेयसा सहितो योगी तपःश्रीपरिवारितः ॥३९॥
अयं पुत्रसहस्रेण तपस्थो जनकस्तव । अकंपनमहाराजो राजते तपसा श्रिया ॥४०॥
दुर्मर्षणादयस्तेऽमी त्वत्स्वयंवरयोधिनः । उपशांतधियः कांते ! तपस्यंति महानृपाः ॥४१॥
ब्राह्मीयं सुंदरीयं च समस्तार्यागणाग्रणीः । कुमारीभ्यां प्रिये ताभ्यां मारभंगः स्फुटीकृतः ॥४२॥

अंतःपुरमिदं तस्य सुभद्रादिकमेकतः ॥४३॥
भरतोऽयं नृपैः सार्द्धमुपविष्टो जिनांतिके । तिर्यंचोऽमी समासीनाः सममेकत्र मित्रवत् ॥४४॥
पश्य पश्य प्रिये चित्रं यदन्योन्यविरोधिनः । सोऽवतीर्य मरुन्मार्गात् कृतजैनेंद्रसंस्तवः ॥४५॥
दर्शयन्निति कांतायै समवस्थितिमर्हतः । सुभद्रांतिकमासाद्य समासीना सुलोचना ॥ ४६॥
निविष्टश्चक्रिणः पार्श्वे विनयी नयविज्जयः । बोधिलाभमसौ लेभे मोहनीयतनुत्वतः ॥४७॥
धर्मं तत्र जयः श्रुत्वा सप्रपंचकथामृतं । पुत्रायानंतवीर्याय दत्वा राज्यं निजं कृती ॥४८॥
स्नेहपाशं दृढं छित्त्वा प्रबोध्य स सुलोचनां । प्रवव्राज जिनस्यांते विजयेन जयः समं ॥ ४९ ॥
चक्रिणा रुध्यमानोऽपि स स्नेहवशवर्तिना । कलत्रपुत्रमित्राणि सराज्यान्यवहाय ते ॥ ५० ॥
शतान्यष्टौ जयेनामा प्राव्रजन् क्षितिपास्तदा । ब्राह्मीं च सुंदरीं श्रित्वा प्रवव्राज सुलोचना ॥५१॥
दुःसंसारस्वभावज्ञा सपत्नीभिः सितांबरा । एकादशांगभृज्जाता साऽऽर्यिकाऽपि सुलोचना ॥५२॥
द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी । निष्क्रांतेषु श्रियस्त्यक्त्वा दोषिणीरिव योषितः ॥ ५३ ॥
भूचरेषु ततोऽन्येषु खेचरेषु च राजसु । सहस्राणि गणाश्चासन्नशीतिश्चतुरुत्तरा ॥ ५४ ॥
अभूवन् गणिनो भर्तुरशीतिश्चतुरुत्तरा । चतुर्थः शत्रुदमनो देवशर्मा च पंचमः ॥ ५५ ॥
आद्यो वृषभसेनोऽन्यः कुंभो दृढरथो गणी ।

षष्ठो गणधरो धीमान् धनदेव इतीरितः । नंदनः सोमदत्तश्च सुरदत्तस्तथा परः ॥ ५६ ॥
वायुशर्मा सुबाहुश्च देवाग्निर्द्वादशो गणी । अग्निदेवोऽग्निभूतश्च चतुर्दश उदीरितः ॥ ५७॥
तेजस्वी चाग्निमित्रश्च तथा हलधरः श्रुती । महीधरश्च माहेंद्रो वसुदेवो वसुंधरः ॥ ५८ ॥
तथैवाचलनामान्यो मेरुश्च जगतीष्यते । भूतिः सर्वसहो यज्ञः सर्वगुप्तस्तथापरः ॥ ५९ ॥
द्वौ च सर्वप्रियो[1] देवो विजयश्चापि संज्ञया । परो विजयगुप्तश्च मित्रांतविजयस्ततः ॥ ६० ॥
विजयश्रीरिति ख्यातः पराख्योऽप्यपराजितः वसुमित्रोऽपि सेनांतो वसुसाधुरनीदृशः ॥६१॥
सत्यदेव इति ज्ञेयः सत्यवेदः पुनर्गणी । सर्वगुप्तश्च मित्रश्च सत्यवानिति नामतः ॥६२॥
विनीतः संवरश्चोभावृषिगुप्तर्षिदत्तकौ । यज्ञदेव इति प्रोक्तो यज्ञगुप्तस्तथैव च ॥ ६३ ॥
यज्ञमित्रो यज्ञदत्तः स्वायंभुव इति स्तुतः । भागदत्तो भागफल्गुर्गुप्तफल्गुः प्रकीर्त्तितः ॥६४॥
तथाऽन्यो गणभृन्नाम्ना मित्रफल्गुः प्रजापतिः । ततः सत्ययशा नाम्ना वरुणो धनवाहकः[2]॥६५॥
गणी महेंद्रदत्तश्च तेजोराशिर्महारथः । विजयश्रुतिरन्यश्च महाबल इति श्रुतः ॥६६॥
सुविशालश्च वज्रश्च वैरनामा ततोऽपर. । सप्ततिश्चंद्रचूडोऽन्यस्ततो मेघेश्वरः परः ॥६७॥

१ सर्वप्रियौ देवौ इति क ख पुस्तकयोः । २ धनवाहिकः इति क पुस्तके ।

भद्रावलिश्च विख्यातो नमिश्च विनमिस्तथा ॥६८॥
कच्छश्चापि महाकच्छः सुकच्छोऽतिबलोऽपि च । महानुभावसंज्ञश्च नंदिमित्रश्च नामतः ॥ ६९ ॥
गणी भद्रबलो नंदी तथाऽन्यः समुदीरितः । वृषभस्य गणिनस्तेऽमी अशीतिश्चतुरुत्तरा ॥७०॥
तथैव कामदेवश्च चरमोऽनुपमः स्मृतः । विचित्रगुणपूर्णानामृषीणां वृषभेशिनः ॥७१॥
संघः परिषदि श्रीमान् बभौ सप्तविधस्तदा । पंचाशच्च महाभागा बभुः पूर्व[1]धरास्तदा ॥७२॥
सहस्राणि च चत्वारि तत्र सप्तशतानि च । श्रुतस्य शिक्ष[2]काः प्रोक्ताः संयताः संयताक्षकाः ॥७३॥
तावंत्येव सहस्राणि शतं पंचाशता युतं । विंशतिस्ते सहस्राणि केवलज्ञानलोचना[4] ॥७४॥
सहस्राणि नवाधीता मुनयोऽवधिलोचनाः[3] । विक्रियाशक्तियोगेन जयंतः शक्रमप्यलं[5] ॥७५॥
विंशतिस्ते सहस्राणि षट् शतानि च वैक्रियाः । पंचाशच्च युतास्तत्र मत्या विपुल[6]या बभुः ॥७६॥
द्वादशैव सहस्राणि तथा सप्तशतानि च । जेतारो हेतुवादज्ञा वादिनः प्रतिवादिनां ॥७७॥
तावंत एव संख्याताः संख्ययाऽसंख्यसद्गुणाः । श्राविकाः पंचलक्ष्यस्तास्त्रिलक्षाः श्रावकाश्च ते ॥७८॥
सपंचाशत्सहस्रास्ता शुद्धज्ञा बभुरार्यिकाः । विजहार महीं भव्यान् भवाब्धेस्तारयन् बहून् ॥७९॥
छद्मस्थकालनिर्मुक्तां पूर्वलक्षां जिनेश्वरः ।

१—४७५० । २—४१५० । ३—९००० । ४—२०००० । ५—२०६०० । ६—१२७५० ।

इत्थं कृत्वा समर्थं भवजलधिजलोत्तारणे भावतीर्थं
कल्पांतस्थायिभूयस्त्रिभुवनहितकृत् क्षेत्रतीर्थं स कर्त्तुं
स्वाभाव्यादारुरोह श्रमणगणसुरव्रातसंपूज्यपादः
कैलासाख्यं महीध्रं निषधमिव वृषादित्य इद्धप्रभाढ्यः ॥ ८० ॥
तस्मिन्नद्रौ जिनेंद्रः स्फटिकमणिशिलाजालरम्ये निषण्णो
योगानां संनिरोधं सह दशभिरथो योगिनां यैः सहस्रैः।
कृत्वा कृत्वांतमंते चतुरपरमहाकर्मभेदस्य शर्म-
स्थानं स्थानं स सैद्धं समगमदमलस्रग्धराभ्यर्च्यमानः ॥ ८१ ॥
उद्धः संघोऽस्य मौनःस्फुटभुवनगुरोर्देवदेवस्य देहं
देवौघश्चक्रवर्तिप्रमुखनृपगणश्चातिभक्त्या समेत्य ॥
गंधैः पुष्पैश्च धूपैः सुरभिभिरमलैरक्षतैश्च प्रदीपैः
संपूज्यानम्य सम्यग्वृषभजिनगुणश्रीफलं याचते स्म ॥ ८२ ॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ वृषभेश्वरपरिनिर्वाणवर्णनो नाम द्वादशः सर्गः।

त्रयोदशः सर्गः ।

अनुभूय चिरं लक्ष्मीं भूपतिर्भरतेश्वरः । आदित्ययशसं पुत्रमभिषिच्य भुवो विभुः ॥ १ ॥
दीक्षां जग्राह जैनेंद्रीमुग्रामात्मपरिग्रहां । दुर्निग्रहेंद्रियग्राममृगानिग्रहवागुरां ॥ २ ॥
पंचमुष्टिभिरुत्पाट्य त्रुटचद्बंधस्थितिः कचान् । लोचानंतरमेवापद् राजन् श्रेणिक! केवलं ॥ ३ ॥
द्वात्रिंशैस्त्रिदशेंद्रैः स कृतकेवलपूजनः । दीपको मोक्षमार्गस्य विजहार चिरं महीं ॥ ४ ॥
पूर्वलक्षाः कुमारत्वे तस्यागुः सप्तसप्ततिः । साम्राज्ये षट् प्रभोरेका श्रामण्ये विश्वदृश्वनः ॥ ५ ॥
शैलं वृषभसेनाद्यैः कैलासमधिरुह्य सः । शेषकर्मक्षयान्मोक्षमंते प्राप्तः सुरैः स्तुतः ॥ ६ ॥
आदित्ययशसः पुत्रो यातः स्मितयशःश्रुतिः । श्रियं तस्मै वितीर्यासौ तपसा प्राप निर्वृतिं ॥ ७ ॥
बलस्तस्मादभूत्पुत्रः सुबलोऽतो महाबलः । ततोऽतिबलनामा च तस्यामृतबलः सुतः ॥ ८ ॥
सुभद्रः सागरो भद्रो रवितेजाः शशी ततः । प्रभूततेजास्तेजस्वी तपनोऽन्यः प्रतापवान् ॥ ९ ॥
अतिवीर्यः सुवीर्योऽतस्तथोदितपराक्रमः । महेंद्रविक्रमः सूर्य इंद्रद्युम्नो महेंद्रजित् ॥ १० ॥
प्रभुर्विभुरविध्वंसो वीतभीर्वृषभध्वजः । गरुडांको मृगांकाख्य इत्याद्याः पृथिवीभृतः ॥ ११ ॥

---

१ कल्पवासिनः १२, भवनवासिनः १०, व्यन्तराः ८, सूर्याचंद्रमसौ इति =३२ ।

आदित्यवंशसंभूताः क्रमेण पृथुकीर्त्तयः । सुते न्यस्तभराः प्रापुस्तपसा परिनिर्वृतिं ॥१२॥
मोक्षमिक्ष्वाकवो जग्मुर्भरताद्या निरंतराः । ते चतुर्दशलक्षास्तु प्रापैकोऽग्रेऽहमिंद्रतां ॥१३॥
तथा दशगुणाश्चाष्टौ परिपाट्यां नरेश्वराः । मुक्तास्तदंतरे प्रापदेकैकः सुरनाथतां ॥१४॥
धीरा राज्यधुरां त्यक्त्वा धृत्वांतेऽन्ये तपोधुरां । स्वर्गमेकेऽपवर्गं तु जग्मुरादित्यवंशजाः ॥१५॥
योऽसौ बाहुबली तस्माज्जातः सोमयशाः सुतः । सोमवंशस्य कर्तासौ तस्य सुनुर्महाबलः ॥१६॥
ततोऽभूत्सुबलः सूनुरभूद्भुजबली ततः । एवमाद्याः शिवं प्राप्ताः सोमवंशोद्भवाः नृपाः ॥१७॥
पंचाशत्कोटिलक्षाश्च सागराणां प्रमाणतः । तीर्थे वृषभनाथस्य तदा वहति सनते ॥१८॥
इक्ष्वाकवो द्विधादित्यसोमवंशोद्भवाः नृपाः । उग्राद्या कौरवाद्याश्च मोक्षं स्वर्गं च भेजिरे ॥१९॥
नमेः खेचरनाथस्य रत्नमाली शरीरजः । रत्नवज्रोऽभवत्तस्मात्ततो रत्नरथस्तथा ॥२०॥
रत्नचिह्नाभिधानोऽस्मात् तस्माच्चंद्ररथः सुतः । वज्रजंघो बभूवास्मात् वज्रसेनसुतस्ततः ॥२१॥
संजातो वज्रदंष्ट्रोऽस्माद्भूद्वज्रध्वजस्ततः । वज्रायुधश्च वज्रोऽतः सुवज्रो वज्रभृत्सुनः ॥२२॥
वज्रभो वज्रबाहुश्च वज्रांको वज्रसुंदरः । वज्रस्यो वज्रपाणिश्च वज्रभानुश्च वज्रवान् ॥२३॥

१ 'परिपाद्या' इति क ख पुस्तकयोः ।

विद्युन्मुखः सुवक्त्रश्च विद्युद्दंष्ट्रस्तथैव च । विद्युत्वान् विद्युदाभश्च विद्युद्वेगश्च वैद्युतः ॥२४॥
इत्याद्याः सुतविन्यस्तश्रिभवाः खेचराधिपाः । आद्ये तीर्थे तपः कृत्वा स्वर्गं मोक्षं च भेजिरे ॥२५॥
स्वर्गाग्रादवतीर्याऽथ जातस्तीर्थकरोऽजितः । नाभेयस्यापि तस्यापि पंचकल्याणवर्णना ॥२६॥
काले तस्याभवच्चक्री द्वितीयः सगरश्रुतिः । अक्षीणनिधिरत्नेशः प्रसिद्धो भरतो यथा ॥२७॥
पुत्राःषष्टिसहस्राणि तस्य दुर्ललिताक्रियाः । परस्परमहाप्रीताः प्रत्याख्याताऽन्हुपूर्वकाः ॥२८॥
कृताष्टापदकैलासा दंडरत्नेन ते क्षितिं । भिंदानाः कुपितेनामी नागराजेन भस्मिताः ॥२९॥
संसारस्थितिविच्चक्री पुत्रशोकमुदस्य सः । दीक्षित्वाजितनाथांते मोक्षमैत् मुक्तबंधनः ॥३०॥
ततः संभवनाथोऽभूत्ततोऽभूदभिनंदनः । ततः सुमतिनाथश्च ततः पद्मप्रभो जिनः ॥३१॥
सुपार्श्वश्च जिनेंद्रोऽस्मात् ततश्चंद्रप्रभः प्रभुः । पुष्पदंतः परस्तस्माद्दशमः शीतलस्ततः ॥३२॥

इक्ष्वाकुःप्रथमप्रधानमुदगादादित्यवंशस्तत—
स्तस्मादेव च सोमवंश इति यस्त्वन्ये कुरूग्रादयः ॥
पश्चाद् श्रीवृषभादभूदृषिगणः श्रीवंश उच्चैस्तरा—
मित्थं ते नृपखेचरान्वययुता वंशास्तवोक्ता मया ॥३३॥

शृणु श्रेणिक ! शीतलस्य दशमे तीर्थे गतत्युज्ज्वले ।
काले केवलदीपकोज्ज्वलजगद्देवेंद्रदेवागमे ।
प्रोद्भूतः प्रकटप्रधानमहतां वंशो हरीणां यथा
वर्णः सोऽपि मया तथा जिनपथे तथ्यो नृपाकर्ण्यतां ॥ ३४ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ इक्ष्वाकुवंशवर्णनो नाम त्रयोदशः सर्गः ।

चतुर्दशः सर्गः ।

अस्ति वत्साभिधो देशो देशेष्विष्ट परेषु यः । सत्सु वत्साकृतिं भजे गोदोहे दोग्धगोचरे ॥१॥
कालिंदीस्निग्धनीलांबुप्रतिबिंबितसौधता । कौशांबी नगरी तस्य गंभीरा नाभिरत्यभात् ॥२॥
वप्रप्राकारपरिखा भूषणांबरधारिणी । नितंबस्तनभारार्त्तस्तंभितेव वधूरभात् ॥३॥
रत्नचित्रांबरभरा या प्रासादमुखैर्घनान् । वर्षानिशास्विव स्निग्धान् लेढि प्रौढाभिसारिका ॥४॥

१ 'दुग्धगोचरे' इति ख पुस्तके । २ सौधपंक्तिः ।

दोषाकरकराप्राप्ता रत्नभूषार्चिषां चयैः । लेभे बहुलदोषासु परभागं सतीव या ॥५॥
पुर्याः प्रभुरभूत्तस्याः प्रतापप्रभवो नृपः । सवितेव कराक्रांतदिक्चक्रः सुमुखः सुखी ॥६॥
वर्णसंकरविक्षेपिधनुपेंद्रधनुर्गुणैः । यस्याधिक्षिप्तमक्षिप्तवर्णसंकरदोषकं ॥७॥
दर्शनीयतमांगस्य संगतस्य युवाश्रिया । अदृष्टविग्रहानंगो रूपेणास्य समः कथं ॥८॥
धर्मशास्त्रार्थकुशलः कलागुणविशेषवान् । निग्रहेऽनुग्रहे शक्तः प्रजानामनुपालकः ॥९॥
सोऽवरोधनराजीववनराजीमधुव्रतः । ऋतून्मानयति प्राप्तानक्षतत्रिगुणक्षतिः ॥१०॥
अथ प्राप्तो वसंततुः सुमुखद्युतिरुद्यमी । पुष्पपल्लवरागश्रीवनमालामनोहरः ॥११॥
नवपल्लवरागाढ्याश्चूताश्चेतोहरा बभुः । वनमालानुरागस्य सूचकाः सुमुखस्य च ॥१२॥
जज्वलुर्ज्वलनज्वालालीलाः किंशुकराशयः । वियुज्येवानयुक्तानां विमुक्ता विरहाश्रयः ॥१३॥
रणन्नूपुरचारुस्त्रीकोमलक्रमताडितः । नवाशोकयुवोद्भिन्नपल्लवांगरुहो बभौ ॥१४॥
अखंडमधुगंडूषपानपूरितदौहृदः । बकुलोऽपूरयत्पुष्पैः प्रमदाजनदौहृदं ॥१५॥
चक्रे कुरवको यूनां शिलीमुखरवैः सुखं । सुखिनां यः स एवाभूदितरषां यथाश्रुति ॥ १६ ॥
पाटलामोदसुभगां वनश्रीवनितामलं । चक्रुः पुष्पवतीं फुल्लास्तिलकास्तिलकाश्रिया ॥ १७ ॥

जिगीषयेव विकसन्नागपुन्नागसंहतेः । सिंहकेशरसिंहस्य केशरश्रीर्व्यजृंभत ॥ १८ ॥
मालतीवल्लभां मासश्चिरविश्लेषशोषितां । चकाराश्लेषपुष्टांगीं सद्यः पुष्पवतीं मधुः ॥ १९ ॥
हिंदोलग्रामरागेण रक्तकंठाधरश्रियः । दोलाढ्यं दोलनक्रीडाव्यासक्ताः कोमलं जगुः ॥ २० ॥
उद्यानवनखंडेषु तत्कालोचितमंडनाः । स्त्रीसखाः कोचिदाभेजुः प्रीत्या पानपरंपरां ॥ २१ ॥
प्राग्दूर्वांकुरमासाद्य हारिण्यै हरिणो ददौ । तं साऽऽस्वाद्य ददौ तस्मै प्रियाघ्रातोऽपि हि प्रियः ॥२२॥
सल्लकीपल्लवोल्लासिकवलग्रामलालसाम् । स्वाननस्पर्शसौख्यांधां चकार कारिणीं करी ॥ २३ ॥
मधुपानमदोन्मत्तमधुपद्वंद्वमुत्स्वनं । मधौ विजृंभितेऽन्योऽन्यं जिघ्रातिस्म घनस्पृहं ॥ २४ ॥
कोकिलाकलकंठीनां गीतं श्रुत्वेव योषितां । चुकूज कोकिलस्तोषपोषी तस्य जिगीषया ॥२५॥
मधुपैः परपुष्टैश्च कलकोलाहलाकुलैः । गीयते स्म मधुर्यत्र तत्रान्येषु कथा नु का ॥ २६ ॥
इत्थं राजा मधौ मासे जाते जनमनोहरे । वभ्रे वनविहाराय मनो मदनविभ्रमं ॥ २७ ॥
कृतमंडनमारूढो द्विपेंद्रं कृतमंडनः । अखंडमंडलेद्धाभच्छत्रछन्नार्कमंडलः ॥ २८ ॥
पूर्यमाणः पुरो निर्यन् नृपैरोघैरिवोदधिः । राजा राजपथं भेजे वंदिवृंदस्तुतोऽन्यदा ॥ २९ ॥

१ 'नागसंहतिसंततेः' इति क पुस्तके ।

वसंतमिव साक्षात् तं वसंतं हृदि संततं । दिदृक्षुः क्षुभिता मंक्षु पौरनारीजनाततिः ॥ ३० ॥
वर्धस्व जय नंदेति कृतनादा कृतांजलिः । भूपरूपं पपौ सैषा नेत्रांजलिभिराकुला ॥ ३१ ॥
तत्र स्त्रीजनमध्यस्थामेकामत्यंतहारिणीं । रतिं साक्षादिव प्राप्तामद्राक्षीद् वनितां नृपः ॥ ३२ ॥
मुखेंदौ नेत्रयुग्माब्जे बिंबोष्ठे कंबुकंठके । स्तनचक्रे कृशे मध्ये गंभीरे नाभिमंडले ॥ ३३ ॥
सुघने जघने तस्या नितंबे सकुकुंदरे । उरुजानुलसज्जंघापाणिपादे पदे पदे ॥ ३४ ॥
लोलां निपातितां दृष्टिं मनसाधिष्ठितां निजां । न शशाकोपसंहर्तुमतिरक्तो नरेश्वरः ॥ ३५ ॥
दध्यौ वधूरियं कस्य रूपपाशेन मे मनः । बद्ध्वा मुग्धमृगीनेत्रा समाकर्षति हर्षिणी ॥ ३६ ॥
यदीयं नानुभूयेत मया हृदयहारिणी । ततो व्यर्थं ममैश्वर्यं रूपं च नवयौवनं ॥ ३७ ॥
लोकोऽयमेकतो भूयात्सर्वदा दुर्व्यतिक्रमः । अभिलापोऽन्यदारेषु दुःसहोऽयमथैकतः ॥ ३८ ॥
इति ध्यायन्मनश्चक्रे स तस्या हरणे नृपः । अपवादो हि सह्येत रक्तेन न मनोव्यथा ॥ ३९ ॥
यशः प्रकाशमानोऽपि लोकज्ञः सोऽत्यमुह्यत । तमः पतनकाले हि प्रभवत्यपि भास्वतः ॥ ४० ॥
साऽपि दर्शनतस्तस्य रूपिणः शिथिलांगिका । शशाक न मनो धर्तुं दोलारूढेव कामिनी ॥ ४१ ॥
विचित्ररससंस्पर्शप्रादुर्भावफलोदयं । भावं च प्रकटीचक्रे सानुलुब्धमनोगतं ॥ ४२ ॥

दूरात्कटाक्षविक्षेपि चक्षुरंते निकुंचितं । जहेऽस्यास्तन्मनोभंगि प्रतिचक्षुःप्रदानतः ॥ ४३ ॥
अधरस्तननाभ्यंतःश्रोणिचरणवीक्षणैः । परावृत्तेक्षितैश्चक्रे सा तस्य स्मरदीपनं ॥ ४४ ॥
प्रियालापेक्षिभिः स्निग्धैरन्योन्यघटितैः कृते । जिह्वा विह्वलयोर्वाचि न लेभेऽवसरं तयोः ॥४५॥
तावारूढौ च दुर्मोचप्रेमबंधौ मनोरथं । दुर्लभाश्लेपसंभोगफललाभार्थमार्थिनौ ॥ ४६ ॥
रक्तायाश्चित्तमादाय प्रदायास्यै मनो निजं । नगर्या निर्ययौ राजा पणबंधात्कृतीव सः ॥४७॥
यमुनोत्तंसमुद्यानं वसंतस्यावतंसकं । विवेश जनतानंदि नरेंद्रो नंदनोपमं ॥ ४८ ॥
रम्यं नागलताश्लिष्टैः पुष्पितैः फलितैर्द्रुमैः । क्रमुकैर्नालिकेराद्यैर्दाडिमीकदलीवनैः ॥४९॥
विजहार वने हृद्ये स्त्रीजनैः स निजैर्वृतः । वयस्यैरनुकूलैश्च नृपपुत्रैः सहारमत् ॥५०॥
कांचित्कालकलां तस्य क्रीडतो जनसंकुला । शून्येव वनमालाऽऽसीद् वनमालावियोगिनः ॥५१॥
वनमालानुरागेण ह्रियमाणोऽविशत्पुरीं । क्षितीशः स्थीयते स्वस्थैः परचित्तैः कियच्चिरं ॥५२॥
अपृच्छत्सुमतिर्मंत्री तमुपांशु विशां विभुं । विपण्णोऽसि किमद्येश ! कथ्यतामिति सादरः ॥५३॥
एकच्छत्रमिदं राज्यमनुरक्ताः प्रजाः प्रभो । अनुरागप्रतापाभ्यां निभृता भृत्यभूभृतः ॥५४॥
इष्टार्थस्य प्रदानेन प्रीणितोऽर्थिजनोऽखिलः । वल्लभाः प्रणयोद्रेकान्मानिताश्च प्रसादिना ॥५५॥

धर्मे चार्थे च कामे च प्रार्थितं दुर्लभं न ते । तदित्थं नाथ ! सौस्थित्यै मनो दुःखमितं कुतः ॥५६॥
संविभज्य मनोदुःखं सख्यौ प्राणसमे सुखी । संपद्यते जनः सर्व इतीयं जगतः स्थितिः ॥५७॥
तदुच्यतां प्रभोऽद्यैव विदधामि तवेप्सितं । सुस्थिते हि प्रभौ लोके सुस्थिताः सकलाः प्रजाः ॥५८॥
इत्युक्तः सोऽभ्यधात् सद्यो मया द्योतनयाऽनया । दृष्टया परवध्वाऽऽशु विद्ययेव वशीकृतः ॥५९॥
ईदृशी दृक् स्वनेपथ्या प्रायेण भवताऽप्यसौ । लक्षितैव निजं भावं कथयंती स्फुटेंगितैः ॥६०॥
इति श्रुत्वाऽवदन्मंत्री लक्षिता लक्षिता विभो । वणिजो वीरकस्यासौ वनमालाभिधा वधूः ॥६१॥
नृपोऽवादीत्तया योगो यदि मेऽद्य न जायते । न मन्ये जीवितं स्वस्य तस्याश्च कुटिलभ्रुवः ॥६२॥
मन्ये दिवसमप्येषा सहते न मया विना । अनयाऽहमपि क्षिप्रं तद्विधत्स्व प्रतिक्रियां ॥६३॥
दुर्यशःप्राप्यतेऽमुष्मिन्ननर्थोऽमुत्र मूढधीः । तथापि नेक्षते कार्यं यथैव निमिषांधकः ॥६४॥
तत्त्वया न निवार्योऽहमकार्येऽपि प्रवृत्तधीः । पापोपशमनोपायाः संत्येव सति जीविते ॥६५॥
अनुमेने वचो मंत्री तदन्यायमपि प्रभोः । अत्यभ्यर्णविपत्तीनां मंत्रिणो हि निवर्त्तकाः ॥६६॥
आह चात्यनुकूलस्तमित्यसौ प्रणतः प्रभो । वनमालां सुकंठे ते पश्याद्यैव मया कृतां ॥६७॥
त्वं मज्जनविधिं सद्यः भुक्तिं च भज पूर्ववत् । दिव्यानुलेपनश्लक्ष्णवस्त्रतांबूलमाल्यकं ॥६८॥

इति विज्ञापितो नत्वा प्रज्ञानेत्रेण मंत्रिणा। कर्तुमैच्छत्तदुद्दिष्टं द्विष्टभुक्तिरपि प्रभुः ॥६९॥
विज्ञाय सुमुखाकूतं कृपयेव विभाकरः। प्रतीचीमगमच्छीघ्रमुपसंहृतदीधितिः ॥ ७० ॥
प्रौढेऽस्ताभिमुखे ध्वस्तप्रतापे मित्रमंडले। सोद्यमोऽप्यभवल्लोको निखिलः खलितोद्यमः ॥७१॥
दृष्टिरश्मिभिराकृष्य चक्रवाकैर्धृतो यथा। तदा कथमपि प्रायात् शनैर्भानुरदृश्यतां ॥ ७२ ॥
संध्यारागेण चच्छन्नं भुवनं तदनंतरं। वनमालानुरागेण सुमुखस्येव भूरिणा ॥ ७३ ॥
संकोचः पद्मखंडानां ततोऽभूत्खंडितौजसां। मित्रोदयोदयाः के वा मित्रापदि विकासिनः॥७४॥
संध्यारागानुसंधाने ध्वांतेनापि कृते बभौ। मुक्तरक्तांबरं गूढं जगन्नीलपटेन वा ॥७५॥
लब्धो वर्णविवेको न लब्धवर्णैरपि क्षणं। प्रदोषे विषमे काले तिमिरोपप्लुतैस्तदा ॥७६॥
वेलायां तत्र संमंत्र्य मंत्री दूतीमजीगमत्। आत्रेयीं[1] वनमालायाः समीपं सुमुखाज्ञया ॥७७॥
मानिताऽऽसनदानाद्यैः संफली वनमालया। साभिनंद्य रहस्येतामुवाचैवं विचक्षणा ॥७८॥
वनमाले प्रिये वत्से विचित्तेवाद्य लक्ष्यसे। वद वैचित्यहेतुं मे पत्या किमसि कोपिता ॥७९॥
वीरको ह्येकपत्नीकस्तत्र किं कोपकारणं। अन्यदत्र निमित्तं स्यात्स्वसंवेद्यं निगद्यतां ॥८०॥

१ दूती।

पुत्रि ! सर्वरहस्येषु नन्वहं तु परीक्षिता । भवत्या मयि सत्यां वा दुर्लभं किमभीप्सितं ॥८१॥
इत्युक्ता सोष्णनिश्वासग्लपिताधरपल्लवा । तया प्रार्थितया वार्त्ता कथमप्यब्रवीद्वचः ॥८२॥
त्वां मुक्त्वाऽत्र न मे काचिद्विश्रंभस्थानमत्र हि । षट्कर्णो भिद्यते मंत्रो रक्षणीयः सयत्नतः॥८३॥
दृष्टो मयाऽद्य सद्रूपः सुमुखः सुमुखो नृपः । दृष्टमात्रं प्रविष्टोऽमा स मनो मे मनोभुवा ॥८४॥
दुर्लभेऽप्यभिलाषस्य द्वेपिणः सुलभो जनः । हृदयस्य खलस्येव वृत्तिरात्मोपतापिनी ॥८५॥
दिग्धं चंदनपंकेन[1] हृदयं मम शुष्यति । वहिरंगो विधिः कुर्यादंतरंगे विधौ तु किं ॥८६॥
आर्द्रवस्त्रमपि न्यस्तमंगोपांगेऽतिशुष्यति । शीतस्पर्शोऽल्पशोऽत्युष्णे किं करोतु निधापितः॥८७॥
यस्य पल्लवतल्पोऽपि कल्पितो म्लायतेतरां । तापकर्कशगात्रस्य मृदुशीतः करोतु किं ॥८८॥
अंगस्पर्शाद्विना तस्य नाहं पश्मामि निर्वृतिं । तत्कुरुष्व दयां पूते तत्समागममेव मे ॥८९॥
तस्यापि हि मनोवृत्तिं प्रतीहि मम दर्शनात् । मदभिप्रायसंमिश्रां सर्वाकारोपलक्षितां ॥९०॥
तदा तस्मा प्रवीणे ! द्वौ त्वं नौ रहसि योजयेः । सुखेनैव हि कालज्ञे तप्तं तप्तेन योज्यते ॥९१॥
निशम्य वनमालायास्तद्वचो भावसूचकं । जगाद वचनं दूती तदेति मुदितात्मिका ॥ ९२ ॥

---

१ चंदनलेपेन ।

वत्से वत्सेश्वरेणाहं त्वद्रूपहृतचेतसा । प्रहिताऽस्मि तदेह्याऽऽशु तेन त्वां घटयाम्यहं ॥ ९३ ॥
इति स्वेष्टार्थसंवादे वनमाला स्मरातुरा । दूत्या पत्यौ परोक्षे द्रागविशद्राजमंदिरं ॥ ९४ ॥
विलोक्य मनसश्चौरीं सुमुखः सुमुखीं मुदा । एह्येहीति प्रियालापाच्चकार सुखिनीं सुखी ॥९५ ॥
हस्तस्तनाद्युलुप्तां तां स्वेदिनिस्वेदिना युवा । हस्तेनादाय तन्वंगीं शयने स्वे न्यवेशयत् ॥ ९६ ॥
प्रौढयौवनयोर्योगमनुकर्त्तुमिवैतयोः । उदियाय निशानाथो प्रसादितनिशामुखः ॥ ९७ ॥
शशांकस्य करस्पर्शान्मुमोदाशु कुमुद्वती । सुमुखस्येव करस्पर्शाद् वनमालेवहारिणी ॥ ९८ ॥
उक्तप्रत्युक्तयुक्तार्थां स्त्रीपुंसगुणसंगतान् । प्रेमबंधप्रवृद्धयै तौ बहून् भावांस्तु चक्रतुः ॥ ९९ ॥
सोऽपि विश्रंभदूरास्तनवसंगमसाध्वसां । तामुत्संगे कृतां गाढमालिलिंगांगसंगतां ॥१००॥
असंतोषभुजाश्लेषैर्विश्लेषसुखितश्रमैः । चुंबनैश्चूषणैर्दंशैः कंठग्रहकचग्रहैः ॥१०१॥
नितंबास्फालनैरगप्रत्यंगस्पर्शनैर्मिथः । मिथुनं मन्मथोद्दीप्तं चिक्रीड विविधक्रियं ॥१०२॥
यथासत्त्वं यथाभावं यथावैदग्ध्यमंगना । पुंसः सुखाय तस्याऽसौ बभूव सुरतोत्सवे ॥१०३॥
श्रमप्रस्विन्नसर्वांगौ कृतसंवाहनौ मिथः । नागाविव कृताश्लेषौ शयने शयितावुभौ ॥१०४॥

प्रकृष्टवैदग्धहृतात्मनोस्तयोः प्रसुप्तयोः प्रेमनिबद्धचित्तयोः ।
प्रवृत्तवृत्तांतमिव प्रवेदितुं प्रभातसंध्या व्यसृजत्प्रभाकरः ॥१०५॥
सहेंदुना बंधुरयाऽप्रसंधया सुरंजिता द्यौरभजत्परां द्युतिं ॥
सुचित्तवृत्या सुमुखेन सन्मुखी वधूरिवाऽसौ वनमालिका नवा ॥१०६॥
नृपं शयानं सुमुखं विभाकरः सरोरुहश्रीवनमालया सह ।
महोदयाद्रिस्थित एव च द्रुतो व्यबोधयल्लोकमिमं यथा जिनः ॥१०७॥

इति "अरिष्टनेमि" पुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ सुमुखवनमालावर्णनो नाम चतुर्दशः सर्गः ।

पंचदशः सर्गः ।

अथ विबुद्धसरोजवनस्पृशा सुरभिणा स्पृशता महता तदा ।
हृतवपुः श्रमकं मिथुनं मिथस्तदकरोदुपगूढमतिश्लथं ॥ १ ॥
मृदुतरंगघने शयनस्थले मृदितपुष्पचये शयितोत्थितः ।
सह बभौ प्रियया सुमुखो यथा समदहंसयुवा सिकतास्थले ॥ २ ॥

विपहते स्म वियोगविषं क्षणं विरहिणोरिव रात्रिषु पक्षिणोः।
प्रियवधूवरयोर्वरयोस्तयोर्न हृदयं हृदयंगमचेष्टयोः ॥ ३ ॥
न विससर्ज ततः स्वपतेर्गृहं स्वगृह एव रुरोध वधूं प्रभुः।
रहसि दुर्लभमाप्य मनोर्पितं न हि विमुंचति लब्धरसो जनः ॥ ४ ॥
सुमुखमुख्यवधूजनमुख्यतां समधिगम्य निजैः सुमुखैर्गुणैः।
वरवधूरतिगौरवमाप सा न सुलभं सुमुखे किमु भर्त्तरि ॥ ५ ॥
अवततार कदाचिदचिंतितो निधिरिवोरुतपोनिधिरंचितः।
नृपगृहं वरधर्ममुनिर्गृहानतिथिरेति हि भूरिशुभोदये ॥ ६ ॥
परमदर्शनशुद्धविशुद्धधीरधिकबोधविबुद्धपदार्थकः।
व्रतसुगुप्तिसमित्यतिशुद्धतामयचरित्रपवित्रितविग्रहः ॥ ७ ॥
अनशनाध्ययनादितपःश्रिया धवलया प्रशमास्तविकारया।
जनितगौरवया शुचिभूषितो विपुलनिर्जरया जरया यथा ॥ ८ ॥
विजितदोपकपायपरीषहं सुनिगृहीतजितेंद्रियवृत्तकं।

यतिवृषं सुमुखः स्वगृहागतं तमभिवीक्ष्य नृपः सहसोत्थितः ॥ ९ ॥
प्रमदभारवशीकृतमानसस्तमभिगन्य परीतबधूयुतः ।
सविनयं प्रतिगृह्य शुचिः शुचिं शुचिनि साधुमधान्मणिकुट्टिमे ॥ १० ॥
प्रियबधूकरधारितसत्कनत्कनककर्करिका[1]जलधारया ।
व्यपगतांशुकया वरभूभृता स्वकरधौतमकारि मुनेः पदं ॥ ११ ॥
सुरभिगंधशुभाक्षतपुष्पसत्प्रकरदीपकधूपपुरःसरैः ।
समभिपूज्य वचस्तनुचेतसा तमभिवंद्य सुदानमदान्मुदा ॥ १२ ॥
समगुणात्परिणामविशेषतः परभवे सहभोगफलोदयं ।
सुमनसा सुमुखो वनमालया सह बबंध सुपुण्यमपुण्यभित् ॥ १३ ॥
बहुदिनानशनव्रतधारणः कृततनुस्थितये कृतपारणः ।
विहितदातृसुखोदयकारणः स मुनिरैत्पटुतत्वविचारणः ॥ १४ ॥
व्रजति नित्यसुखे सुमुखेशिनः सममनेहसि पुण्यफलाशिनः ।

---

१ झारी ।

परयुवत्यपहारदुरीहितं प्रतिकृतानुशयस्य हताहितं ॥ १५ ॥
मणिगणच्छविविच्छरितोदरे सुरभिगर्भगृहे विहितादरे ।
सह कदाचिदसौ गुणमालया दयितया शयितो वनमालया ॥ १६ ॥
अथ तयोः परिपाकमुपेयुषि प्रगुणमानसयोः प्रगुणायुषि ।
अधिपपात हि कालनियोगतो जलदकालसमागतचंचला ॥ १७ ॥
अशनिपातसहोज्झितजीवितौ परमदानफलोदयसेवितौ ।
सुविजयार्द्धगिराविह ताविती विपुलखेचरतां सुखभावितौ ॥ १८ ॥
उभयकोटितटीघटितोदधिर्धवलिताधरितेंदुपयोदधिः ।
स्फुरितराजतमूर्तिरसौ यतः क्षितिवधूपृथुहार इवायतः ॥ १९ ॥
वियदतीत्य भुवो दशयोजनीं स्वजगतीद्वितयांसयुगेन सः ।
जगति भोगभुवोऽभिनवा यथा वहति खेचरराजपुरीर्गिरिः ॥ २० ॥
सुभृतभारतभूरिगिरीशते स्थिरदशोत्तररम्यपुरीशते ।

---

१ क्षणरुचिः सहसा समयोगतः । २ विजयार्धे ११० पुर्यः ।

॥ २१ ॥

उदितपंचकविंशतियोजने विततत[1]द्द्विगुणे सुखयोजने ।
पुरमिहोत्तरमस्ति सुखक्षमं विनिदिताखिले[2]चाक्षगणश्रमं ॥ २२ ॥

हरिपुरं विदितं तदभिख्यया हरिपुरप्रतिमं यदभिख्यया ।
अभवदस्य पुरस्य तु गोपिता पवनपूर्वगिरिः ख[3]चरः पिता ॥ २३ ॥

सुमुखराजचरस्य मृगावती गुणवती जननी हि कलावती ।
अभूत चार्थवतीमभिधामयं प्रकटमार्य इतीह सुधामयं ॥ २४ ॥

वचनमार्यजनप्रमदावहं स्मरणमन्यभवप्रमदावहं ।
पुरमथोत्तरदिग्जगतीमितं भवति तत्र गिरौ विभवामितं ॥ २५ ॥

यदिह मेघपुरं परमं परां वहति सन्मणिसौधपरंपरां ।
अधिवसत्यथ तद्मनोहरी रिपुमदेभकुलस्य मनोहरी ॥ २६ ॥

रतिषु यस्य मनोहराति प्रिया पवनवेगखगस्य रतिप्रिया ।
अजनि साथ तयोर्दुहिता सती सहचरी सुमुखस्य हिता सती ।

---

१ पचाशद्योजनाविष्कंभे । २ रणितकेतुसुधालयसुक्षमं । ३ खचराधिपः ।

विदितपूर्वभवाऽत्र मनोहरा जगति चंद्रकलेव मनोरमा ॥ २७ ॥
कुलमुवाह विवाहविधोचितं शुचि यथैव तथाकृतभावितं।
शिशुसमागममाशु विधिः स्वयं कृतिषु यद् यतते सकला स्वयं ॥ २८ ॥
मिथुनमर्भकयोः सुखलालितं निजनिषंगकृताक्षिनिमीलितं।
स्मितमुखं सुमुखं वचनाध्वनि स्वजनतोषमपोषयदुद्ध्वनि ॥ २९ ॥
स्वजननीस्तनपानकृताशनं निजरुचोपमितार्कहुताशनं।
भजति भोगभुवां शिशुभावनां विजयिनीं मिथुनं स्म सुभावनां ॥ ३० ॥
स्वतनुवृद्धिमतश्च शनैः शनैः सह कलाभिरिदं च दिने दिने।
शशिवपुर्यदियाय यथा यथा स्वजनमुज्जलधिश्च तथा तथा ॥ ३१ ॥
निखिलखेचरसाधितविद्यया मिथुनमेतदभाद् भवविद्यया।
ललितयौवनभाररुचा तया जनमनोऽत्यहरद् गुणयातया ॥ ३२ ॥
अथ तया स खगेंद्रयुवाऽन्यदा कमलयेव च खेचरकन्यया।

१ विवोचितभावितं इति ख पुस्तके। २ स्वजनहर्षोदधिः। ख पुस्तके 'जनमनोमुदितं च तथा तथा' इति पाठः

परमभूतिविवाहविधानतः [1]समयोजि निजैर्जनतानतः ॥ ३३ ॥

अनुबभूव सुखं चिरमेतया मदनभावविलाससमेतया ।
सुरतनाटकभूमिविनीतया मदननर्त्तकसूरिविनीतया ॥ ३४ ॥

सुरवधूवरसुंदरकंदरे परमवल्लभया सह मंदरे ।
सुरभिदेवतरून्नतचंदने चिरमरंस्त तया सह नंदने ॥ ३५ ॥

स कुलशैलसरःसरितां तथा सह तटेषु सरागमतांतया ।
रतिमवाप कदाचन कांतया तरुषु भोगभुवामपि कांतया ॥ ३६ ॥

स्थितिमितं विजयार्द्धगिरौ पुरे रणितदिव्यवधूपदनूपुरे ।
भुवि यदन्यसुदुर्लभमर्थितं [2]भजति तत्तदयन्न समर्थितं ॥ ३७ ॥

अथ स वीरक ईश्वरवंचितः प्रियतमाविरहान्नसिवंचितः ।
क्वचिदियाय शुचा मृदुपल्लवे शिशिरतल्पतलेऽस्तविपल्लवे ॥ ३८ ॥

न समसीशमदस्य शशी करैः हृदयदाहममा हिमशीकरैः ।

---

१ नृपतिना समयोजि बुधानतः । २ भजति तत्तदयन्नसमर्पितं ।

निशि सदा विहगस्य नियोगिनः सुसरसोऽपि[1] यथा भुवि योगिनः ॥ ३९ ॥
स विनिगृह्य चिराद्विरहव्यथां रतिरहस्यगृहाश्रममाश्रमं ।
जिननिदेशितमाश्रितवान् वशी स हि परं शरणं शरणार्थिनां ॥ ४० ॥
अतिवितप्य तपस्तनुशोषणं विषयलुब्धमनोभवपेषणं ।
अगमदेष सुखांबुधिपोषणं प्रथमकल्पमथामरतोषणं ॥ ४१ ॥
सुरवधूनिवहादिपरिग्रहः सकलभूषणभूषितविग्रहः ।
सुरसुखामृतसागरसंगतः सममतिष्ठत भावरसं गतः ॥ ४२ ॥
दिवि कदाचिदसौ वरकामिनीनिवहमध्यगतोऽवधिगोचरं ।
समनयद्वनितां वनमालिकां परिचितः प्रणयः खलु दुस्त्यजः ॥ ४३ ॥
सुमुखराजकृतं च पराभवं स परिचिंत्य सुरस्तदनंतरं ।
विषमितोन्मिषितावधिचक्षुषः मिथुनमैक्षत खेचरयोस्तयोः ॥ ४४ ॥
प्रभुतया प्रविधाय पराभवं परभवे हृतवांश्च मम प्रियां ।

---

१ समरसोऽपि ।

इह भवेऽपि तथैव सहेक्ष्यते रातिमितः स परां सुमुखः खलः ॥ ४५ ॥
कृतवतोपकृतिं विषमां द्विषो द्विगुणिता यदि सा न विधीयते ।
प्रभुतया किमनर्थिकया प्रभोः प्रभवतोऽपि निरुद्यमचेतसः ॥ ४६ ॥
इति विचिंत्य रुषा कलुषीकृतः प्रतिविधानकृतौ कृतनिश्चयः ।
भुवमवातरदाशु स वैरधीस्त्रिदिवतो दिवसाधिपभास्वरः ॥ ४७ ॥
स खलु खेचरराजसुतं सुरः सुमुखराजचरं खचरीसखं ।
प्रविलसंतमवाप यदृच्छया सुहरिवर्षगतं हरिविभ्रमं ॥ ४८ ॥
तदवलोक्य सुरो मिथुनं वरं प्रथमयौवननिर्जरविग्रहं ।
अकृत खंडितविद्यमखंडया सहजखंडतया सुरमायया ॥ ४९ ॥
परवधूप्रियवीरकवैरिणं स्मरसि किं सुमुख प्रमुखाधुना ।
त्वमपि किं सुखले वनमालिके ! स्खलितशीलभरे ! परजन्मनि ॥ ५० ॥
अहमसौ तपसा सुरतामितः खचरतां मुनिदानफलाद् युवां ।
अरतिमेव ममारतिदायिनोः क्षपितविद्यकयोः प्रददामि वां ॥ ५१ ॥

इति निगद्य तदा विबुधः खगौ चकितकंपितचित्तशरीरकौ ।
गरुडवत्परिगृह्य खमुद्ययौ भरतवर्षवरं प्रतिदक्षिणं ॥ ५२ ॥
मृतवतामृतदीधितिकीर्त्तिना रहितयाऽनृपया वरचंपया ।
स तमयोजयदत्र महीपतिं प्रणतराजकमैच्च दिवं सुरः ॥ ५३ ॥
त्रिदशखंडितविद्यकदंपती क्षपितपक्षशकुंतवदक्षमौ ।
वियति पर्यटितुं त्रुटितेच्छकौ सह समीयतुरत्र धृतिं क्षितौ ॥ ५४ ॥
नवतिकार्मुकपूर्वसुलक्षितस्थितिमतो दशमस्य मुनेरिदं ।
समधिकाब्धिशतोज्झितकोटिके वहति तीर्थपथे कथि वृत्तकं ॥ ५५ ॥
स बुभुजे भुजदंडवशीकृतप्रणतपार्थिवमानितशासनः ।
विषयसौख्यमखंडितरागया सुचिरकालमतृप्तमतिस्तया ॥ ५६ ॥
अथ तयोस्तनयो हरिरित्यभूद्धरिरिव प्रथितः पृथिवीपतिः ।
समनुभूय सुतश्रियमूर्जितां स्वचरितोचितलोकमितौ च तौ ॥ ५७ ॥
हरिरयं प्रभवः प्रथमोऽभवत्सुयशसो हरिवंशकुलोद्गतेः ।

जगति यस्य सुनाम परिग्रहाच्चरति भो हरिवंश इति श्रुतिः ॥ ५८ ॥
अभवदस्य महागिरिरंगजो हिमगिरिस्तनयः सुनयस्ततः ।
वसुगिरिश्च ततो गिरिरित्यमी त्रिदिवमोक्षयुजस्तु यथायथं ॥ ५९ ॥
शतमखप्रतिमाः शतशस्ततः क्षितिभृतो हरिवंशविशेषकाः ।
क्रमधृताधिकराज्यतपोधुराः शिवपदं ययुरत्र दिवं परे ॥ ६० ॥
व्यपगतेषु नृपेषु बहुष्वतः क्षितिपतिर्मगधाधिपतिः क्रमात् ।
इह बभूव हरिप्रभवान्वये कुशलधामकुशाग्रपुराधिपः ॥ ६१ ॥
स हि सुमित्र इति श्रुतनामकः श्रुतविशेषविभूषितपौरुषः ।
अनुशशास भुवं सह पद्मया श्रितसुखः प्रियया जिनभक्तया ॥ ६२ ॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ हरिवंशोत्पत्तिवर्णनो नाम पंचदशः सर्गः ।

षोडशः सर्गः।

श्रीशीतलादिह परेषु जिनेषु पश्चात् तीर्थं प्रवर्त्य भरते जगतां हितार्थं।
कालक्रमेण नवसु श्रितवत्सु मोक्षं स्वर्गादिहैष्यति जिनाधिपतौ च विंशे ॥१॥
शक्राज्ञया प्रतिदिनं वसुधारयोच्चैरापूरयत्यवनिपस्य गृहं कुबेरः।
पद्मावती मृदुतले शयने शयाना स्वप्नान् ददर्श दश षट् च निशावसाने ॥ २ ॥
नागोक्षसिंहकमलाकुसुमस्रगिंदु–बालार्कमत्स्यकलशाब्जसरोंबुराशीन्।
सिंहासनामरविमानफणींद्रगेह–सद्रत्नराशिशिखिनो जिनसूरपश्यत् ॥ ३ ॥
सोपासिता नवनवत्युपमाव्यतीत–दिव्यप्रभावदिगभिख्यकुमारिकाभिः।
शय्यातले सकुसुमे शुशुभे विबुद्धा लेखा यथा नभसि तारकिता हिमांशोः ॥४॥
उन्निद्रपद्मनयनाननपाणिपादा सा रागिणी दिनमुखेऽधिपतिं सुमित्रं।
भद्रासनोदयगतं स्थलपद्मिनीव पद्मावती समुदियाय सपुंडरीका ॥ ५ ॥
चित्रांबरांबुरसनाग्रणितातिमंजु–मंजीरसिंजितविहंगनिनादरम्या।

१ तीर्थंकरजननी। २ सुमित्राख्य नृपं, सूर्यं च।

मीनेक्षणा त्रिवलिभंगतरंगिणी सा स्त्रीवाहिनी समगमद् वरवाहिनीशं ॥ ६॥
पीनस्तनस्तवकभारनतांगयष्टिराताम्रपल्लवकरा मृदुबाहुशाखा ।
संचारिणी मणिविभूषणभृन्महीशकल्पद्रुमं युवतिकल्पलता ननाम ॥७॥
आसीनयाऽऽसनवरे स तया समीपे स्वप्नावलीफलमिलाधिपतिः प्रपृष्टः ।
तस्यै जगौ जिनपतेर्जगतां त्रयस्य भर्तुर्गुरू लघु भवाव इति प्रहृष्टः ॥ ८ ॥
स्पृष्टा नृपोत्किरणमालिवचोमयूखैः सा तोषपोषभृशहृष्टतनूरुहाऽभात् ।
स्त्रैणं निकृष्टमपि तीर्थकृतो गुरुत्वात् मत्वा प्रशस्तमिति विस्तृतपद्मिनीव ॥ ९॥
आरात्सहस्रपदपूर्वपदादुदारा–दारान्नमत्सुरसहस्रगणोऽवतीर्य ।
मासानुवास नवगर्भगृहे प्रशुद्धे सार्धाष्टमीह गणनान्मुनिसुव्रतोऽस्याः ॥ १० ॥
आनीलचूचुकविपांडुपयोधरश्रीः सा वज्रसंहतिसगर्भतया स्फुरंती ।
विद्युत्प्रभाभरणबृंहितभा बभासे वर्षा शरत्समयसान्नियुता यथा द्यौः ॥ ११ ॥
साऽसूत सूतिसमयेंद्रमहे च माघ–पक्षे सिते जनमनोनयनोत्सवं तं ।

१ शीघ्रं ।

द्वादश्यभीक्षिततिथौ श्रवणे श्रमेण स्त्री द्यौरवद्यरहिता जिनपूर्णचंद्रं ॥ १२ ॥
जातेन तेन शुभलक्षणचर्चितेन पद्मावती प्रमुदिता मुनिसुव्रतेन ।
सा रागरूढशिखिकंठरुचा चकासे स्निग्धेंद्रनीलमणिना करभूरिवैका ॥ १३ ॥
आकंपितासनतिरीटजगत्त्रयेंद्राः सद्यःप्रयुक्तविशदावधयोऽधिगम्य ।
चेलुः सुरा जिनसमुद्भवमद्भुतोच्चैर्घंटामृगे पटहशंखरवैश्च शेषाः ॥ १४ ॥
गत्वांबुवर्षमृदुमारुतपुष्पवृष्टिं संपूरिताखिलजनद्रवलयाःसमंतात् ।
आगत्य चाशु सुकृतोज्ज्वलभूपवेषाः शक्रादयाः पुरुकुशाग्रपुरं परीयुः ॥ १५ ॥
नत्वा जिनं जिनगुरू च सुरासुराश्च तज्जातकर्मणि कृते सुरकन्यकाभिः ।
ऐरावतं तमधिरोप्य महाविभूत्या गत्वा परीत्य गिरिराजमधित्यकायां ॥ १६ ॥
संस्थाप्य पांडुकशिलातलमस्तके तं सिंहासने सुपयसोद्यपयःपयोधेः ।
भूत्याभिषिच्य कृतभूषमभिष्टवैस्ते स्तुत्वाऽभिधाय मुनिसुव्रतनामधेयं ॥ १७ ॥
आनीय नीतिकुशला जननी शुभांकमारोप्य नाटकविधिं प्रविधाय देवाः ।
नत्वा ययुः शतमखप्रमुखा यथास्वमानंदितत्रिभुवनं सगुरुं जिनं ते ॥ १८ ॥

ज्ञानत्रयं सहजनेत्रमुदारनेत्रो विभ्राज्जिनः सुरकुमारकसेव्यमानः ।
कालानुरूपकृतसर्वकुबेरयोगक्षेमो ययाववपघनस्य गुणस्य वृद्धिं ॥ १९ ॥
रम्यांगनाश्च कुलशैलसमुद्भवास्तमाद्यंतमध्यसतताभ्युदया युवानं ।
लावण्यवाहिनमवाप्य विवाहपूर्वं नद्यः समुद्रमिव संवरयांबभूवुः ॥ २० ॥
राज्यस्थितः स हरिवंशमरीचिमाली राजा प्रजाकमलिनीहितलोकपालः ।
राजाधिराजसुरसेवितपादपद्मो भेजे चिरं विषयसौख्यमखंडिताज्ञः ॥ २१ ॥
प्राप्ता कदाचिदथ तं शरदंबुजाक्षा[1] बंधूकबंधुरतयाधरपल्लवश्रीः ।
काशाच्छचामरकरा विशदंबुवस्त्रा वर्षावधूव्यतिगमे स्ववधूरिवैका ॥ २२ ॥
अंतर्दधे धवलगोकुलघोषघोषैर्मेघावली लघुविधूतरवेव धूम्रा ।
मेघावरोधपरिमुक्तदिशासु सूर्यः पादप्रसारणसुखं श्रितवांश्चिरेण ॥ २३ ॥
रोधोनितंबगलदंबुविचित्रवस्त्राः सावर्त्तनाभिसुभगाश्चलमीननेत्राः ।
फेनावलीवलयवीचिविलासवाहाः क्रीडासु जहुरबलासरितोऽस्य चित्तं ॥ २४ ॥

---

१ ' शरदंबुजास्या ' इति ख पुस्तके ।

ऊर्मिभ्रुवश्चटुलनेत्रसफर्यपांगाः मत्तद्विरेफकलहंसनिनादरम्याः ।
फुल्लारविंदमकरंदरजोऽङ्गरागा रागं रतो विदधुरस्य वधूसरस्यः ॥ २५ ॥
नम्रो भृशं फलभरेण सुगंधिशालिः शालेयजा च विकचोत्पलजातिरुत्था ।
सौभाग्यगंधवशवर्त्तितयांगमंगमासाद्य जिघ्रतुरिवास्यमजस्रमेतौ ॥ २६ ॥
धूली कदंबमदधूलिगतागरागाधारा कदंबमधुनो विधुराः स्मरंतः ।
माद्यद्द्विपेंद्रमदगांधिषु षट्पदौघाः सप्तच्छदेषु विततेषु रतिं वितेने ॥ २७ ॥
काले स तत्र मुनिसुव्रतराजहंसः कैलाशशैलसदृशे स्थितवान् सुसौधे ।
लीलावधूतरतिविभ्रमराजहंसीः व्रीडाभयातिरुचिराभरणाःप्रपश्यन् ॥ २८ ॥
पश्यन् दिशः सकलशारदसस्यशोभाः मेघं ददर्श शशिशुभ्रमदभ्रशोभं ।
व्योमार्णवारमणतृष्णमिवावतीर्ण—मैरावणं भ्रमणविभ्रमवारणेंद्रं ॥ २९ ॥
निःशेषनिर्गलितनीरनिजोत्तरीयमाशावधूविपुलपीनपयोधरं सः ।
प्रोत्तुंगपांडुपरिणाहिनमंबरस्य भूपायमाणमवलोक्य तमाप तोपं ॥ ३० ॥
पश्चात्प्रचंडतरमारुतवेगघातानिर्मूलितावयवमाशु विलीयमानं ।

विभुरित्थमचिंतयत्सः ॥ ३१ ॥
ज्वालोपनीतमिव तं नवनीतपिंडमालोक्य लोक
क्षीर्णः शरज्जलधरः कथमेष शीघ्रमायुः शरीर वपुषां विशरारुतायाः ।
लोकस्य विस्मरणशीलविशीर्णबुद्धेराशूपदेशमिव विश्वगतं वितन्वन् ॥ ३२ ॥
अल्पप्रमाणपरमाणुसमूहराशि—रासंचितः स परिणामवशादसारः ।
कालप्रभंजनजवात्रनिपातमात्रादायुर्घनः प्रलयमत्र लघु प्रयाति ॥ ३३ ॥
वज्रात्मसंहननसंहृतसंधिवंधसत्संनिवेशवनरम्यशरीरमेघः ।
मेघीभवत्यसुभृतामसमर्थ एष वायुप्रकोपभरभग्नसमस्तगात्रः ॥ ३४ ॥
सौभाग्यरूपनवयौवनभूषणस्य भूलोरुचित्तनयनामृतवर्षणस्य ।
देहांबुदस्य दिनकृत्प्रतिघातिनी स्याच्छायावयःपरिणतिद्रुतवात्ययाऽस्य ॥ ३५ ॥
शौर्यप्रभावसुवशीकृतसागरांतभूराजसिंहचिररक्षितभूमिभागाः ।
सौराज्यभोगगिरयोऽपि विशीर्णशृंगाश्चूर्णीभवंति समयांतरवज्रघातैः ॥ ३६ ॥
नेत्रं मनश्च भवदत्र कलत्रमिष्टं प्राणैः समं समसुखासुखमित्रपुत्रं ।
व्येतीह पत्रमिव शुष्कमदृष्टवाताद्दैवोऽप्युपैति हि भवे प्रियविप्रयोगं ॥ ३७ ॥

पश्यन्नपि क्षणविभंगुरमंगभाजामंगादिकं स्वयममृत्युभयोऽयमंगी।
मोहांधकारपिहितागमदृष्टिरिष्टं मार्गं विहाय विषयामिषगर्तमेति ॥ ३८ ॥
प्रत्यंगमंगजमतंगजसंगतांगः स्वांगैः स्पृशन् प्रियवधूजनगात्रयष्टीः।
धिक् स्पर्शसौख्यविनिमीलितनेत्रभागो मातंगवद् विषमवंधमियर्त्ति मर्त्यः ॥ ३९ ॥
आहारमिष्टमिह षड्रसभेदभिन्नमाहारयन् बहुविधं स्पृहयापदृष्टिः।
जिह्वावशो दलितशंकुविलग्नमांसपेशीप्रियश्चपलमीन इवैति वंध ॥ ४० ॥
घ्राणेंद्रियप्रियसुगंधिसुगंधसंधो जंगाबलादिव विलंघिततृप्तिमार्गः।
दुष्पाकमस्तधिषणो विषपुष्पगंधमाघ्राय शीघ्रमघमेति यथा षडंघ्रिः ॥ ४१ ॥
चित्तद्रवीकरणदक्षकटाक्षपातसस्मेरवक्त्रवनितांगनिविष्टदृष्टिः।
रूपप्रियोऽपि लभते परितापमुग्रं ग्रासः पतंग इव दीपशिखाग्रपातं ॥ ४२ ॥
स्वेष्टांगनामुखरनूपुरमेखलादिनानाविभूषणरवैः प्रियभाषणैश्च।
संगीतकैश्च मधुरैर्हृतधीरधीरःश्रोत्रेंद्रियैर्मृग इव म्रियते मनुष्यः ॥ ४३ ॥
संक्लिश्यते विषयभोगकलंकपंके यत्पुंगवां ततिरिहाल्पबला निमग्ना।

वज्रकायपुंनागसंततिरितीदमतीव चित्रं ॥ ४४ ॥

चित्रं न तद् यदतिमज्जति वज्रकायपुंनागसंततिरितीदमतीव चित्रं ।
यः स्वर्गसौख्यजलधीनतिदीर्घकालं पीत्वाऽपि तृप्तिमगमद् बहुशो न जीवः ।
सौहित्यमल्पदिवसैः कथमस्य कुर्यात् भूलोकसौख्यमणुलोलतृणोदबिंदुः ॥ ४५ ॥
अग्नेरिवेंधनमहानिचयैर्न तृप्तिरंभोनिधेरिव सदापि नदीसहस्रैः ।
जीवस्य तृप्तिरिह नास्ति तथाभिषेकैः सांसारिकैरुपचितैरपि कामभोगैः ॥ ४६ ॥
भोगाभिलाषविषमाग्निशिखाकलापसंवृद्धये हि विषयेंधनराशिरुच्चैः ।
तस्यैव तु प्रशमहेतुरिहैव तस्मात् व्यावृत्तिरिंद्रियजिति स्थिरवारिधारा ॥ ४७ ॥
हित्वा ततो विषयसौख्यमसारभूतं शीघ्रं यतेऽहमिह मोक्षपथे सनाथे ।
स्वार्थं प्रसाध्य परमं प्रथमं परार्थं तीर्थप्रवर्त्तनमथ प्रथयामि तथ्यं ॥ ४८ ॥
इत्थं मतिश्रुतयुतावधिबोधनेत्रे ज्ञाने स्वयंभुवि तदा स्वयमेव बुद्धे ।
आकंपितासनमभूदमरेंद्रवृंदं सर्वार्थसिद्धिसुरपर्यवसानमाशु ॥ ४९ ॥
लौकांतिका ललितकुंडलहारशोभाः सारस्वतप्रभृतयो निभृताः सिताभाः ।

१ "लवलोल" इति क पुस्तके ।

आगत्य मौलिमिलितांजलयः किरंतः पुष्पांजलीनिति जिनं नुनुवुर्नमंतः ॥ ५० ॥
वर्धस्व नंद जय जीव जिनेंद्रचंद्र ! विज्ञानरश्मिहतमोहतमोवितान ।
निर्बंधबंधुतम ! भव्यकुमुद्वतीनां तीर्थस्य विंशतितमस्य हितस्य कर्ता ॥ ५१ ॥
त्वं वर्त्तय त्रिभुवनेश्वर ! धर्मतीर्थं यत्रायमुग्रभवदुःखशिखिप्रतप्तः ।
स्नात्वा जनस्त्यजति मोहमलं समस्तमह्नाय याति च शिवं शिवलोकमग्र्यं ॥ ५२ ॥
चारित्रमोहपरमोपशमात्प्रबुद्धं लौकांतिका इति जिनं प्रतिबोधयंतः ।
नान्यज्जगुर्निजनियोगनिवेदनेषु युक्ता हि यांति न पुनः पुनरुक्तदोषं ॥ ५३ ॥
सौधर्मपूर्वविबुधाश्च चतुर्णिकाया नानाविमाननिवहस्थगितांतरिक्षाः ।
संप्राप्य नाथमभिषिच्य सुगंधितोयैस्तं भूषितं विदधुरद्भुतभूषणाद्यैः ॥ ५४ ॥
पुत्रं च सुव्रतमसौ मुनिसुव्रतेशः प्राभावतेयमभिराज्यपदेऽभ्यषिंचत् ।
श्वेतातपत्रसितचामरविष्टराणि सोऽलंचकार हरिवंशनभःशशांकः ॥ ५५ ॥
भूपोद्धृतां नभसि देवगणैरूढामारुढवान् सुरुचिरां शिबिकां विचित्रां ।
यातो वनं विदितकार्त्तिकशुक्लपक्षे षष्ठोपवासकृदुपाश्रितसप्तमीकः ॥ ५६ ॥

भूभृत्सहस्रपरिवारभृदेष बभ्रे दीक्षां समक्षमखिलस्य जगत्त्रयस्य ।
तन्मूर्धजानधिनिधाय निजोत्तमांगे शक्रश्चकार विधिना सुपयःपयोधौ ॥ ५७ ॥
कृत्वामराश्च जिननिष्क्रमणं तृतीयकल्याणपूजनममी जगुरीश्वरोऽपि ।
ज्ञानैश्चतुर्भिरनुगैश्च सहस्रसंख्यैस्तैः पार्थिवैर्दिनमणिः किरणैरिवाभात् ॥ ५८ ॥
षष्ठोपवासिनि परेद्युरिनेऽवतीर्णे भिक्षाविधिप्रकटनाय कुशाग्रपुर्यां ।
भिक्षां ददौ वृषभदत्त इति प्रसिद्धः सत्पात्रशंसविधिना मुनिसुव्रताय ॥ ५९ ॥
स्वाधीनमप्रतिहतं स्थितिभुक्तियुक्तं सत्पाणिपात्रमधिपेन विधानपूर्वं ।
प्रावर्त्ति वर्तनसुवर्त्तनसाधुयोग्यं तीर्थे निजे स्थितिविदा जिनभास्करेण ॥ ६० ॥
चित्रं तदा हि परमान्नमृषींद्रपाणौ शुद्धान्वितेन ददता परिनिष्ठशेषं ।
शेषैरशेषपतिभिश्च सहस्रसंख्यैर्वोभुज्यमानमपरैश्च ययौ न निष्ठां ॥ ६१ ॥
नेदुस्ततस्त्रिदिशदुंदुभयो निनादाः साधुस्वनः सकलमंबरमाततान ।
वायुर्ववौ सुरभिरद्भुतपुष्पवृष्टिर्व्योम्नः पपात महती वसुनश्च धारा ॥ ६२ ॥
आश्चर्यपंचकमिदं चिरमंबरस्था देवा विकृत्य परमं परदुर्लभं ते ।

संपूज्य दानपतिमर्जितपुण्यपुंजं जग्मुर्जिनोऽपि विजहार विहारयोग्यं ॥ ६३ ॥
छद्मस्थकालमतिवाह्य समासवर्षं सन्मार्गशीर्षसुतिथिं सितपंचमीं तु ।
ध्यानाग्निदग्धघनघातिसमित्समृद्धिः कैवल्यलाभविभवेन चकार पूतं ॥ ६४ ॥
साक्षाच्चकार युगपत्सकलं स मेयमेकेन केवलविशुद्धविलोचनेन ।
नाथस्तदा न हि निरावरणो विवस्वानभ्युद्गतः क्रमसहायपरः प्रकाश्ये ॥ ६५ ॥
नेमुः ससप्तपदमेत्य निजासनेभ्यः सर्वेऽहमिंद्रनिवहाः कृतमौलिहस्ताः ।
तं प्रापुरभ्युदिततोषविशेषचित्ताः शेषामरेंद्रसुरसंततयः समंतात् ॥ ६६ ॥
भक्त्याऽर्चयन् त्रिभुवनेश्वरमानवेंद्रास्तं देवमभ्युदितचंपकचैत्यवृक्षं ।
सत्प्रातिहार्यविभवातिविशेषरूपमार्हंत्यमद्भुतमचिंत्यमनंतमेकं ॥ ६७ ॥
स द्वादशस्त्वथ गणेषु निरण्णवत्सु स द्वादशांगमनुयोगपथं जिनेंद्रः ।
धर्मं विशाखगणिना विनयेन पृष्टः संभाष्य तीर्थमवनौ प्रकटं प्रचक्रे ॥ ६८ ॥
कल्याणपूजनमिनस्य तुरीयमिंद्राः कृत्वा यथायथमगुः प्रणिपातपूर्वं ।
देशान् जिनोऽपि विजहार बहून् बहूनां धर्मामृतं तनुभृतां घनवत्प्रवर्षन् ॥ ६९ ॥

अष्टौ च विंशतिरिनस्य जिनेंद्रचर्याः क्रोडीकृताखिलचतुर्दशपूर्वशास्त्राः ।
त्रिंशत्सहस्रगणना परिषद् यतीनां नानागुणैरजनि सप्तविधः स संघः ॥ ७० ॥

स्युस्तत्र पंचशतपूर्वधरा यतीशा एकादिविंशतिसहस्रभिदाश्च शिक्षाः ।
अष्टादशैव गदितानि शतानि तेषु प्रत्येकमस्य मुनयोऽवधिकेवलाप्ताः ॥ ७१ ॥

द्वाविंशतिर्यतिशतानि तु वैक्रियाख्यास्तान्येव पंचदश ते विपुलास्तु मत्या ।
स्युर्द्वादशैव हि शतानि विवांतवैराः सद्वादिनो मुनिपतेः प्रथिताः सभायां ॥ ७२ ॥

पंचाशदात्मकसहस्रभिदास्तदार्याः शिक्षागुणव्रतधरा गृहिणोऽपि लक्षाः ।
सम्यक्त्वपूतमनसो वनिताखिलक्षाः सभ्योडुभिः परिवृतश्च बभौ जिनेंदुः ॥ ७३ ॥

त्रिंशद्गुणप्रथितवर्षसहस्रजीवी प्राक् पंचसप्ततिशताब्दकुमारकालः ।
राज्येऽपि पंचदशवर्षसहस्रभोगी सत्संयमेन विजहार स शेषकालं ॥ ७४ ॥

अंते स संमदविधायिवनांतकांतं सम्मेदशैलमधिरुह्य निरस्तबंधः ।
बंधांतकृन्मुनिसहस्रयुतो जगाम मोक्षं महामुनिपतिर्मुनिसुव्रतेशः ॥ ७५ ॥

माघत्रयोदशतिथौ सितपक्षभाजि मासोपसंहृतविहारविसृष्टदेहे ।

स्थित्वाऽपराह्णसमये वरपुण्ययोगे सिद्धे जिने ननु महं विदधुः सुरेंद्राः ॥ ७६ ॥
षड्वर्षलक्षपरिमाणमिनस्य तस्य प्रावर्त्तत प्रविततं भुवि धर्मतीर्थं ।
विद्यावबोधनुधितार्थमुनिप्रभावं देवागमाविरतिवर्द्धितलोकहर्षं ॥ ७७ ॥
विंशस्य तस्य चरितस्य जिनस्य लोके कल्याणपंचकविभूति विभावयन् यः ।
भक्त्या शृणोति पठति स्मरतीदमस्मिन् भव्यो जनो भजति सिद्धिसुखं स शीघ्रं ॥७८॥
एवं वसंततिलकप्रचुरप्रसूनमालामिमां समधिरोप्य विनूतवृत्तः ।
विघ्नान् विधूय विदिधातु समाधिबोधिर्धीरो जिनो जितभवो मुनिसुव्रतो नः ॥ ७९ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ मुनिसुव्रतनाथपंचकल्याणवर्णनो नाम षोडशः सर्गः ।

सप्तदशः सर्गः ।

बभूव हरिवंशानां प्रभुर्वश्यवसुंधरः । अरिषड्वर्गजिन् मार्गस्त्रिधर्मस्य स सुव्रतः ॥ १ ॥
स दक्षं दक्षनामानं पुत्रं कृत्वा निजे पदे । दीक्षितः स्वपितुस्तीर्थे प्राप मोक्षं तपोबलात् ॥ २ ॥

ऐलेयाख्यामिलायां स दक्षः पुत्रमजीजनत् । मनोहरीं च तनयामर्णवोऽपि यथा श्रियं ॥ ३ ॥
ववृधेऽनुकुमारं च कुमारी नेत्रहारिणी । साऽनुचंद्रं यथा कांतिः कलागुणविशेषिणी ॥ ४ ॥
यौवनेन कृताश्लेषा कृशमध्याऽवभासते । स्तनभारेण गुरुणा जघनेन च भारिणा ॥ ५ ॥
साधीने सति रूपास्त्रे तस्या धीरमनोभिदि । मनोभवोऽत्यजत्स्वेषु कुसुमास्त्रेषु गौरवं ॥ ६ ॥
तद्रूपास्त्रविमोक्षेण मनोभूरकरोद् भृशं । दक्षस्यापि मनोभेदमन्येषां नु किमुच्यतां ॥ ७ ॥
कन्यया हृतचित्तं स ततो दक्षः प्रजापतिः । आहूय छद्मना सद्म पपच्छ प्रणताः प्रजाः ॥ ८ ॥
पृष्टा वदत यूयं मे सज्जना जगति स्थितिं । अविरुद्धं विचार्येह विश्वे विदितवृत्तयः ॥ ९ ॥
यद्वस्तु भुवनेऽनर्घ्यं हस्त्यश्ववनितादिकं । प्रजानुचितमेतस्य राजा विभुरहो नवा ॥ १० ॥
केचिद्दुर्जनास्तत्र विचार्य चिरमात्मनि । यत्प्रजानुचितं देव ! तत्प्रजापतये हितं ॥ ११ ॥
यथा नदीसहस्राणां सद्रत्नानां च सागरः । आकरोऽनर्घरत्नानां तथैवात्र प्रजापतिः ॥ १२ ॥
तद् यत्तव स्थितं चित्ते समस्ते वसुधातले । स्वाकरेषु समुत्पन्नं तद्रत्नं क्रियतां करे ॥ १३ ॥
एवं दक्षः प्रजावाक्यमाकर्ण्य विपरीतधीः । प्रजानुमतिकारित्वं प्रकाश्य विससर्ज ताः ॥ १४ ॥
ततः स दुहितुस्तस्या स्वयमेवाग्रहीत्करं । कामग्रहगृहीतस्य का मर्यादा क्रमोऽपि कः ॥ १५ ॥

इला देवी ततो रुष्टा पत्युः पुत्रमभेदयत् । तावद्धार्यादयो यावन्मर्यादासंस्थितः प्रभुः ॥ १६ ॥
इला चैलेयमावृत्ता महासामंतसंवृता । अत्यवस्थानमकरोद्दुर्गदेशमुपाश्रिता ॥ १७ ॥
त्रिविष्टपपुराकारं संनिविष्टं पुरं तया । इलया वर्धमानं यदिलावर्धनसंज्ञया ॥ १८ ॥
ऐलेयः स्थापितो राजा रेजे तत्र प्रजावृतः । वीर्यधैर्यनयाधारो हरिवंशविशेषकः ॥ १९ ॥
पार्थिवेन सता तेन ताम्रलिप्तिप्रसिद्धिकां । निवेशितं पुरं कांतमंगदेशनिवासिना ॥ २० ॥
जिगीषता परान् देशान् नर्मदातटमीयुषा । मह्यां माहिष्मती ख्याता नगरी विनिवेशिता ॥२१॥
तत्र स्थितश्चिरं राज्यं कृत्वा प्रणतपार्थिवं । पुत्रं कुणिमनामानं संस्थाप्य तपसे ययौ ॥ २२ ॥
कुणमश्च विदर्भेषु विजिगीषुर्द्विषं तपः । कुंडिनाख्यं पुरं चक्रे वरदायास्तटे वरे ॥ २३ ॥
कुणिमः क्षणिकं मत्वा जीवितं निजवैभवं । पुलोमाख्ये सुते न्यस्य तपोवनमयात्स्वयं ॥ २४ ॥
पुलोमपुरमेतेन विनिवेशितमीशिना । श्रियं न्यस्य तपस्यागात्पौलोमचरमाख्ययोः ॥ २५ ॥
जगत्प्रभावसंभारी तावखंडितमंडलौ । सूर्याचंद्रमसौ नित्यं विजिगीषू प्रजिग्यतुः ॥ २६ ॥
ताभ्यामिंद्रपुरं चक्रे रेवायाः सरितस्तटे । जयंतीवनवास्यौ द्वे चरमेण पुरौ कृते ॥ २७ ॥

---

१ पतिः ।

संजयश्चरमस्यासीत् तनयो नयवित्तथा । पौलोमस्य महीदत्तस्तपस्थौ जनकौ च तौ ॥ २८ ॥
महीदत्तेन नगरं कृतं कल्पपुराख्यया । सोऽरिष्टनेमिमत्स्याख्यौ तनयावुदपादयत् ॥ २९ ॥
मत्स्यो भद्रपुरं जित्वा सेनया चतुरंगया । तथा हास्तिनपुरं प्रीतस्सोऽध्यतिष्ठत्प्रतापवान् ॥३०॥
तस्य पुत्राः शतं याताः शतमन्युसमाः क्रमात् । अयोधनादयो ज्येष्ठे राज्यं न्यस्य स दीक्षितः ॥३१॥
अयोधनसुतो मूलः शालस्तस्य सुतोऽभवत् । सूर्यस्तस्याभवत्सूनुस्तेन शुभ्रपुरं कृतं ॥३२॥
तस्यासीत्त्वमरस्तेन वज्राख्यं पुरमाहितं । देवदत्तस्ततो जातो देवेंद्रसमविक्रमः ॥३३॥
मिथिलानाथमुत्पाद्य विदेहानामभूद्विभुः । हरिषेणस्ततो जज्ञे नभसेनस्तु तत्सुतः ॥३४॥
ततः शंख इति ख्यातस्ततो भद्र इतीरितः । अभिचंद्रस्ततश्चाभूदभिभूतरिपुद्युतिः ॥३५॥
विंध्यपृष्ठेऽभिचंद्रेण चेदिराष्ट्रमधिष्ठितं । शुक्तिमत्यास्तटेऽधायि नाम्ना शुक्तिमती पुरी ॥३६॥
उग्रवंशप्रसूतायां वसुमत्यामभूद्वसुः । अभिचंद्राद् यथार्द्रात्मा चंद्रकांतमहामणिः ॥३७॥
नाम्ना क्षीरकदंबोऽभूत्तत्र वेदार्थविद्द्विजः । तस्य स्वस्तिमती पत्नी पर्वतस्तनयस्तयोः ॥३८॥
अध्यापितास्त्रयस्तेन वसुपर्वतनारदाः । सरहस्यानि शास्त्राणि गुरुणा धिषणावता ॥३९॥
आरण्यकमसौ वेदमरण्येऽध्यापयन् सुतान् । आकर्णयद् गिरं व्योम्नि मुनेराकाशगामिनः ॥४०॥

वेदाध्ययनसक्तानां मध्येऽमीषामधोगतिं । गंतारौ द्वौ नरौ पापाद् द्वौ पुण्यादूर्ध्वगामिनौ ॥४१॥
इत्युक्त्वा मुनिरन्यस्मै साधवेऽवधिलोचनः । करुणावान् गतः क्वापि ज्ञातसंसारसंस्थितिः ॥४२॥
श्रुत्वा क्षीरकदंबोऽपि वचनं शंकिताशयः । विसृज्य सदनं शिष्यानपराह्णेऽन्यतो गतः ॥४३॥
अपश्यंती पतिं शिष्यान् पप्रच्छ स्वस्तिमत्यसौ । उपाध्यायो गतः पुत्राः ! कुतो ब्रूतेति शंकिता ॥४४॥
तेऽब्रुवन्नहमेमीति वयं तेन विसर्जिताः । आयात्येवानुमार्गे नो मातर्माभूस्त्वमुन्मनाः ॥४५॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा तस्थौ स्वस्तिमती दिवा । रात्रावपि यदा चाऽसौ गृहं नागतवाँस्तदा ॥४६॥
गता सा शोकिनी बुद्ध्वा भर्तुराकूतमाकुला । ध्रुवं प्रव्रजितो विप्र इत्यरोदीच्चिरं निशि ॥४७॥
तमन्वेष्टुं प्रभाते तौ गतौ पर्वतनारदौ । वनांते पश्यतां श्रांतौ दिनैः कतिपयैरपि ॥ ४८ ॥
स निषण्णमधीयानं निर्ग्रंथं गुरुसन्निधौ । पितरं पर्वतो दृष्ट्वा दूरान्निववृतेऽधृतिः ॥ ४९ ॥
मात्रे निवेद्य वृत्तांतं तया दुःखितचित्तया । कृत्वा दुःखं विशोकाऽसौ तिष्ठति स्म यथासुखं॥५०॥
नारदस्तु विनीतात्मा गुरोः कृत्वा प्रदक्षिणं । प्रणम्याणुव्रती भूत्वा संभाष्य गृहमागतः ॥५१॥
आशास्य शोकसंतप्तां नत्वा पर्वतमातरं । जगाम निजधामाऽसौ नारदोऽतिविशारदः ॥ ५२ ॥
वसोरपि पिता राज्यं वसौ विन्यस्य विस्तृतं । संसारसुखनिर्विण्णः प्रविवेश तपोवनं ॥ ५३ ॥

वसुना वासवेनेव नवयौवनवर्तिना । वनितेव विनीतत्वं नीता नीतिविदावनिः ॥ ५४ ॥
नभःस्फाटिकमूर्द्धस्थसिंहासनमधिष्ठितं । नभस्थमेव भूपास्तं दृष्ट्वास्थानममंसत ॥ ५५ ॥
भूमौ कीर्तिरभूत्तस्य महिम्ना धर्मजन्मना । अस्योपरिचरस्यात्र वसोरन्वर्थतायुषः ॥ ५६ ॥
इक्ष्वाकुवंशजा जाया कुरुवंशोद्भवा परा । दशपुत्रास्तयोर्जाताः वसोर्वसुसमाः क्रमात् ॥५७॥
बृहद्वसुरिति ज्ञेयः पूर्वश्चित्रवसुः परः । वासवश्चार्कनामा च पंचमश्च महावसुः ॥ ५८ ॥
विश्वावसू रविः सूर्यः सुवसुश्च बृहद्ध्वजाः । इत्यमी वसुराजस्य सुताः सुविजिगीषवः ॥५९॥
सुतैर्दशभिरन्योऽन्यप्रीतिबद्धमनोरथैः । इंद्रियार्थैरिवोपेतः पार्थिवः सुखमन्वभूत् ॥ ६० ॥
एकदा नारदश्छात्रैर्बहुभिश्छात्रिभिर्वृतः । गुरुवद्गुरुपुत्रेच्छः पर्वतं द्रष्टुमागतः ॥ ६१ ॥
कृतेऽभिवादने तेन कृतप्रत्यभिवादनः । सोऽभिवाद्य गुरोः पत्नीं गुरुसंकथया स्थितः ॥ ६२ ॥
अथ व्याख्यामसौ कुर्वन् वेदार्थस्यापि गर्वितः । पर्वतः सर्वतश्छात्रैर्वृतो नारदसन्निधौ ॥६३॥
अजैर्यष्टव्यमित्यत्र वेदवाक्ये विसंशयं । अजशब्दः किलाम्नातः पश्वर्थस्याभिधायकः ॥ ६४ ॥
तैरजैः खलु यष्टव्यं स्वर्गकामैरिह द्विजैः । पदवाक्यपुराणार्थपरमार्थविशारदैः ॥६५॥
प्रतिबंधमिहांधस्य तस्य चक्रे स नारदः । युक्तागमबलालोकध्वस्ताज्ञानतमस्तरः ॥६६॥

भट्टपुत्र! किमित्येवमपव्याख्यामुपाश्रितः । कुतोऽयं संप्रदायस्ते सहाध्यायिन्नुपागतः ॥६७॥
एकोपाध्यायशिष्याणां नित्यमव्यभिचारिणां । गुरुशुश्रुषतां त्यागे संप्रदायभिदा कुतः ॥६८॥
न स्मरत्यजशब्दस्य यथेहार्थो गुरूदितः । त्रिवर्षा व्रीहयो बीजा अजा इति सनातनः ॥६९॥
इत्युक्तोऽपि स दुर्मोचग्राहग्रहगृहीतधीः । सोऽनादृत्य वचस्तस्य प्रतिज्ञामकरोत्पुनः ॥७०॥
किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद ! वस्तुनि । पराजितोऽस्मि यद्यत्र जिह्वाच्छेदं करोम्यहं ॥७१॥
नारदेन ततोऽवाचि किं दुःखाग्निशिखातता । पतंग इव दुःपक्षः पर्वत ! पतसि स्वयं ॥७२॥
पर्वतोऽपि ततोऽवोचद् यातः किं बहुजल्पितैः । सोऽस्तु नौ वसुराजस्य सभायां जल्पविस्तरः ॥७३॥
नष्टस्त्वं दुष्ट इत्युक्त्वा स्वावासं नारदोऽगमत् । पर्वतोऽपि च तां वार्त्तां मातुरार्त्तमतिर्जगौ ॥७४॥
सा निशम्य हतास्मीति वदंती तांतमानसा । निनिंद नंदनं मिथ्या त्वदुक्तामिति वादिनी ॥७५॥
नारदस्य वचः सत्यं परमार्थनिवेदनात् । वचस्तवान्यथा पुत्र ! विपरीतपरिग्रहात् ॥७६॥
समस्तशास्त्रसंदर्भगर्भनिर्भेदशुद्धधीः । पिता ते पुत्र ! यत्प्राह तदेवाख्याति नारदः ॥७७॥
एवमुक्त्वा निशांते सा निशांतमगमद्वसोः । आदरेणेक्षिता तेन पृष्टा चागमकारणं ॥७८॥
निगद्य वसवे सर्वं ययाचे गुरुदक्षिणां । हस्तन्यासकृतां पूर्वं स्मरयित्वा गुरोर्गृहे ॥ ७९ ॥

जानताऽपि त्वया पुत्र ! तत्त्वाऽतत्त्वमशेषतः । पर्वतस्य वचः स्थाप्यं दूष्यं नारदभाषितं ॥८०॥
सत्येन श्रावितेनास्या वचनं वसुना ततः । प्रतिपन्नमतः साऽपि कृतार्थेव ययौ गृहं ॥ ८१ ॥
आस्थानी समये तस्थौ दिनादौ वसुरासने । तमिंद्रमिव देवौघाः क्षत्रियौघाः सिषेविरे ॥८२॥
प्रविष्टौ च नृपास्थानीं विप्रौ पर्वतनारदौ । सर्वशास्त्रविशेषज्ञैः प्राश्निकैः परिवारितौ ॥ ८३ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राः साश्रमिणोऽविशन् । लौकिकाः सहजं प्रष्टुमविशेषादृते सभां॥८४॥
तत्समानि जगुः केचिज्जनश्रोत्रसुखान्यलं । तत्र प्रोच्चारणं मृष्टं केचिद् विप्राः प्रचाक्रिरे ॥८५॥
यजूंषि प्रणवारंभघोषभाजोऽपरेऽपठन् । पदक्रमयुषो मंत्रानामनंति स्म केचन ॥ ८६ ॥
उदात्तस्यानुदात्तस्य स्वरस्य स्वरितस्य च । ह्रस्वदीर्घप्लुतस्थस्य स्वरूपमुदचीचरत् ॥ ८७ ॥
द्विजैः सामयजुर्वेदमारभ्याध्ययनोद्धुरैः । वधिरीकृतदिक्चक्रैर्निचितं सदसोऽजिरं ॥८८॥
सिंहासनस्थमाशीभिर्दृष्ट्वोपरिचरं वसुं । पीठमर्दैः सहासीनौ विप्रौ नारदपर्वतौ ॥ ८९ ॥
कूर्चप्रारोहिणस्तत्रकमंडलुबृहत्फलाः । सवल्कलजटाभारास्तस्थुस्तापसपादपाः ॥ ९० ॥
सदःसागरसंक्षोभसेतुबंधेषु केषुचित् । अपक्षपातसंबंधतुलादंडेषु केषुचित् ॥ ९१ ॥
उत्पथोत्थानवादीभस्वंकुशेषु च केषुचित् । निकषोत्पलकल्पेषु केषुचित्तत्त्वमार्गणे ॥ ९२ ॥

पंडितेषु यथास्थानं निविष्टेषु यथासनं । भूपं ज्ञानवयोरूपाः केचिदेवं व्यजिज्ञपन् ॥ ९३ ॥
राजन् ! वस्तुविसंवादादिमौ नारदपर्वतौ । विद्वांसावागतौ पार्श्वे न्यायमार्गविदस्तव ॥९४॥
वैदिकार्थविचारोऽयं त्वदन्येषामगोचरः । विच्छिन्नसंप्रदायानामिदानीमिह भूतले ॥९५॥
तदत्र भवतोऽध्यक्षममीषां विदुषां पुरः । लभेतां निश्चयादेतौ न्याय्यौ जयपराजयौ ॥९६॥
न्यायेनावसिते ह्यत्र वादे वेदानुसारिणां । स्यात्प्रवृत्तिरसंदिग्धा सर्वलोकोपकारिणी ॥९७॥
इत्युर्वीद्रः स विज्ञप्तः पूर्वपक्षमदापयत् । पर्वताय सदस्यैस्तैः सगर्वः पक्षमग्रहीत् ॥९८॥
अजैर्यज्ञविधिः कार्यः स्वर्गार्थिभिरिति श्रुतिः । अजाश्चात्र चतुष्पादाः प्रणीताः प्राणिनः स्फुटं।९९।
न केवलमयं वेदे लोकेऽपि पशुवाचकः । आवृद्धादंगनाबालादजशब्दः प्रतीयते ॥१००॥
नरोऽजपोतगंधोयमजायाः क्षीरमित्यपि । नाऽपनेतुमियं शक्या प्रसिद्धिस्त्रिदशैरपि ॥१०१॥
सिद्धशब्दार्थसंबंधे नियते तस्य बाधने । व्यवहारविलोपः स्यादंधमूकमिदं जगत् ॥१०२॥
अबाधितः पुनर्न्याये शाब्दे शब्दः प्रवर्त्तते । शास्त्रीयो लौकिकश्चात्र व्यवहारः सुगोचरे ॥१०३॥
यथाग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम इति श्रुतौ । अग्निप्रभृतिशब्दानां प्रसिद्धार्थपरिग्रहः ॥॥१०४॥
तथैवात्राजशब्दस्य पशुरर्थः स्फुटः स्थितः । कुत्र यागादिशब्दार्थः पशुपातश्च निश्चितः ॥१०५॥

अतोऽनुष्ठानमास्थेयमजपोतनिपातनं। अजैर्यष्टव्यमित्यत्र वाक्यैर्निष्ठितसंशयैः ॥१०६॥
आशंका च न कर्तव्या पशोरिह निपातने। दुःखं स्यादिति मंत्रेण सुखमृत्योर्न दुःखिता ॥१०७॥
मंत्राणां वाहने साक्षाद् दीक्षांतेति सुखासिका। मणिमंत्रौषधीनां हि प्रभावोऽचिंत्यतां गतः ॥१०८॥
निपातनं च कस्यात्र यत्रात्मा सूक्ष्मतां श्रितः। अवध्योऽग्निविषास्त्राद्यैः किं पुनर्मंत्रवाहनैः ॥१०९॥
सूर्यं चक्षुर्दिशं श्रोत्रं वायुं प्राणानसृक्पयः। गमयंति वपुःपृथ्वीं शमितारोस्य याज्ञिकाः ॥११०॥
स्वमंत्रेणेष्टमात्रेण स्वर्लोकं गमितः सुखं। याजकादिवदाकल्पमनल्पं पशुरश्नुते ॥ १११ ॥
अभिसंधिकृतो बंधः स्वर्गाप्त्यै सोस्य नेत्यपि। न बलाद्याज्यमानस्य शिशोर्वृद्धिर्घृतादिभिः ॥११२॥
स्वपक्षमित्युपन्यस्य विरराम स पर्वतः। नारदस्तमपाकर्त्तुमित्युवाच विचक्षणः ॥ ११३ ॥
श्रृण्वंतु मद्वचः संतः सावधानधियोऽधुना। पर्वतस्य वचः सर्वं शतखंडं करोम्यहं ॥ ११४ ॥
अजैरित्यादिके वाक्ये यन्मृषा पर्वतोऽब्रवीत्। अजाःपशव इत्येवमस्यैषा स्वमनीषिका ॥११५॥
स्वाभिप्रायवशाद् वेदे न शब्दार्थगतिर्यतः। वेदाध्ययनवत्साक्षादुपदेशमुपेक्षते ॥ ११६ ॥
गुरुपूर्वक्रमादर्थात् दृश्या शब्दार्थनिश्चितिः। सान्यथा यदि जायेत जायेताध्ययनं तथा॥११७॥
अथाध्ययनमन्यः स्यादन्यः स्यादर्थवेदनं। स्थिते साधारणे न्याये कामचारगतिःकुतः ॥११८॥

शब्दस्यार्थं स्वतो वेत्ति प्रज्ञासातिशयोऽपि हि । न शब्दमिति शापोयं कुतः कस्यात्र दुस्तरः॥११९॥
न चार्थं संप्रदायोऽस्मायेकस्मै गुरुणोदितः । त्रयः शिष्याः वयं योग्या वसुनारदपर्वताः ॥१२०॥
समानश्रुतिकाः शब्दाः संति लोकेऽत्र भूरिशः । गवादयः प्रयोगोपि तेषां विषयभेदतः ॥१२१॥
पशुरश्मिमृगाक्षाशावज्रवाजिषु वाग्भुवोः। गोशब्दव्यक्तयो व्यक्ताः प्रयुज्यंते पृथक् पृथक्॥१२२॥
न हि चित्रगुरित्यत्र रश्मिवस्तुनि शेमुषी । न चाशीतगुरित्यत्र सास्नादिमति वर्तते ॥१२३॥
रूढ्या क्रियावशाद्वाच्ये वाचां वृत्तिरवस्थिता । तामास्थिरोपदेशास्तु विस्मरंति गुरूदितं ॥१२४॥
तदत्र चोदनावाक्ये रूढिशब्दार्थदूरगः । क्रियाशब्दसमाम्नातो न जायंत इति ह्यजाः ॥ १२५ ॥
ऐश्वर्गे रूढिशब्दस्य विद्भिर्लोकशास्त्रयोः । अजगंधोयमित्यादौ प्रयोगो न निषिध्यते ॥ १२६॥
तेन पूर्वोक्तदोषोऽपि नैवास्माकं प्रसज्यते । व्यवहारोपयोगित्वात् वाचां स्वोचितगोचरे॥१२७॥
सत्यां क्षित्यादिसामग्र्यामप्ररोहादिपर्यया:। व्रीहयोऽजा :पदार्थोऽयं वाक्यार्थो यजनं तु तैः॥१२८॥
देवपूजा यजेरर्थस्तैरजैर्यजनं द्विजैः । नैवेद्यादिविधानेन यागः स्वर्गफलप्रदः ॥ १२९ ॥
षट्कर्मणां विधातारं पुराणपुरुषं परं । त्रातारमिंद्रमिंद्रेज्यं वेदे गीतं स्वयंभुवं ॥ १३० ॥

१ शब्दस्यार्थ कुतो वेत्ति । २ सार्थोयं ।

देशकं मुक्तिमार्गस्य शोषकं भववारिधेः। अनंतज्ञानसौख्यादिमहेशाख्यं महेश्वरं ॥ १३१ ॥
ब्रह्माणं विष्णुमीशानं सिद्धं बुद्धमनामयं। आदित्यवर्णवृषभं पूजयंति हितैषिणः ॥ १३२ ॥
ततः स्वर्गसुखं पुंसां ततो मोक्षसुखं ध्रुवं। ततः कीर्त्तिस्ततः कांतिस्ततो दीप्तिस्ततो धृतिः ॥१३३॥
पिष्टेनापि न यष्टव्यं पशुत्वेन विकल्पितात्। संकल्पादशुभात्पापं पुण्यं तु शुभतो यतः ॥१३४॥
यो नामस्थापनाद्रव्यैर्भावेन च विभेदनात्। चतुर्धा हि पशुः प्रोक्तस्तस्य चिंत्यं न हिंसनं ॥१३५॥
यदुक्तं मंत्रतो मृत्योर्न दुःखमिति तन्मृषा। न चेद् दुःखं न मृत्युःस्यात् स्वस्थावस्थस्य पूर्ववत्। १३६॥
पादनासाधिरोधेन विना चेन्निपतेत्पशुः। मंत्रेण मरणं तत्स्यादसंभाव्यमिदं पुनः ॥ १३७ ॥
सुखासिकाऽपि नैकांतान्मर्त्तुर्मंत्रप्रभावतः। दुःखिताप्यारटज्जंतोर्ग्रहार्त्तस्य निरीक्ष्यते ॥ १३८ ॥
सुसूक्ष्मत्वादवध्योऽयमात्मेति यदुदीरितं। तन्न स्थूलशरीरस्थः स्थूलोऽपि सम्भवेद्यतः ॥ १३९॥
प्रदीपवदयं देही देहाधारवशाद् यतः। सूक्ष्मस्थूलतया याति स्वसंहारविसर्पणं ॥१४०॥
अनीदृशस्तु संसारी शरीरानंतवेदकः। सूक्ष्म एष कथंकारं सुखदुःखमवाप्नुयात् ॥१४१॥
अतः शरीरबाधायां मंत्रतंत्रास्त्रयोगतः। बाधनं नियमादस्य देहमात्रस्य देहिनः ॥१४२॥
म्रियमाणोऽतिदुःखेन चक्षुरादिभिरिंद्रियैः। वियुज्यते [illegible] स्वयं तेन कोऽन्यस्तेषां वियोजकः॥१४३॥

प्राणिघातकृतः स्वर्गः कुतःस्याद्याजकादयः । याज्यस्य स्वर्गगामित्वे दृष्टांतत्वं गता यतः ॥१४४॥
धर्ममेव हि शर्माप्त्यै कर्मयाज्यस्य जायते । नह्यपथ्यं शिशोर्दत्तं मात्राऽपि स्यात्सुखाप्तये ॥१४५॥
परिपत्प्रावृषि स्फूर्जद्वचोवज्रमुखैरिति । भित्त्वा पर्वतदुःपक्षं स्थिते नारदनीरदे ॥१४६॥
साधुकारो मुहुर्दत्तस्तस्मै धर्मपरीक्षकैः । सलौकिकैः शिरःकंपं स्वांगुलिस्फोटानिस्वनैः ॥१४७॥
राजोपरिचरः पृष्टस्ततः शिष्टैर्बहुश्रुतैः । राजन् यथाश्रुतं ब्रूहि त्वं सत्यं गुरुभाषितं ॥१४८॥
मूढसत्यविमूढेन वसुना दृढबुद्धिना । स्मरताऽपि गुरोर्वाक्यमिति वाक्यमुदीरितं ॥१४९॥
युक्तियुक्तमुपन्यस्तं नारदेन समा जनाः । पर्वतेन यदत्रोक्तं तदुपाध्यायभाषितं ॥१५०॥
वाङ्मात्रेण ततो भूमौ निमग्नः स्फटिकासनः । वसुः पपात पाताले पातकात् पतनं खलु ॥१५१॥
पातालस्थितकायोऽसौ सप्तमीं पृथ्वीं गतः । नरके नारको जातो महारौरवनामनि ॥१५२॥
हिंसानंदमृषानंदरौद्रध्यानाविलो वसुः । जगाम नरकं रौद्रं रौद्रध्यानं हि दुःखदं ॥१५३॥
प्रत्यक्षं सर्वलोकस्य पाताले पतिते वसौ । तदाकुलः समुत्तस्थौ हा हा धिग्धिगिति ध्वनिः ॥१५४॥
लब्ध्वा सत्यफलं सद्यो निनिंदुर्नृपतिं जनाः । पर्वतं च निराचक्रुः खलीकृत्य खलं पुरात् ॥१५५॥

---

१ धूर्तं.

तत्त्ववादिनमक्षुद्रं नारदं जितवादिनं । कृत्वा ब्रह्मरथारूढं पूजयित्वा जना ययुः ॥१५६॥
पर्वतोऽपि खलीकारं प्राप्य देशान् परिभ्रमन् । दुष्टं द्विष्टं निरैक्षिष्ट महाकायमहासुरं ॥ १५७ ॥
ततस्तस्मै पराभूतिं पराभूतिजुषे पुरा । निवेद्य तेन संयुक्तः कृत्वा हिंसागमं कुधीः ॥ १५८ ॥
लोके प्रतारको भूत्वा हिंसायज्ञं प्रदर्शयत् । अरंजयज्जनं मूढं प्राणिहिंसनतत्परं ॥ १५९ ॥
मृत्वा पापोपदेशेन पापशापवशान्मृतः । सेवामिव वसोः कुर्वन् पर्वतो नरकेऽपतत् ॥ १६० ॥
स्थापिता वसुराज्येऽष्टौ ज्येष्ठानुक्रमशः क्रमात् । स्वल्पैरेव दिनैर्मृत्युं सूनवोऽपि वसोर्ययुः ॥१६१॥
ततो मृत्युभयात्त्रस्तः सुवसुः प्रपलायितः । गत्वा नागपुरेऽतिष्ठन्मथुरायां बृहद्ध्वजः ॥ ६२ ॥
कष्टं ख्यातिमवाप्य सत्यजनितां पापादधोऽगाद्वसुः
पापं पर्वतकोऽभिमानवशगस्तस्यैव पश्चाद् ययौ ।
सम्यग्दृष्टिदिवाकराख्यखचरं लब्ध्वा सखायं पुनः
क्षिप्त्वा पर्वतदुर्मतं कृतितया स्वर्गं गतो नारदः ॥ १६३ ॥
धर्मः प्राणिदया दयाऽपि सततं हिंसाव्युदासो मनो–
वाक्कायैर्विरतिर्वधात्प्राणिहितैः प्राणात्ययेऽप्यात्मनः ।

१ ध्रुवं.

धत्तेऽसौ बुधमादरेण चरितः स्वर्गापवर्गार्गलां
भित्त्वा मोहमयीं सुखेऽतिविपुले धर्मो जिनव्याहृतः ॥ १६४ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ वसूपाख्याने नारदपर्वत विवादवर्णनो नाम सप्तदशः सर्गः ।

अष्टादशः सर्गः ।

अथ योऽसौ वसोः सूनुर्मथुरायां बृहद्ध्वजः । सुबाहुरभवत्तस्मात्तनयो विनयोद्यतः ॥ १ ॥
लक्ष्मीं स तत्र निक्षिप्य तपोलक्ष्मीमुपाश्रितः । सुबाहुर्दीर्घबाहौ च वज्रबाहौ नृपश्च सः ॥ २ ॥
सोऽपि लब्धाभिमानेऽसौ भानौ सोऽपि यवौ सुते । सुभानौ तनये सोऽपि भीमनामनि स प्रभुः ॥३॥
एवमाद्यास्तथाऽन्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः । मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽतीयुः क्षितीश्वराः ॥४
आयुर्वर्षसहस्राणि यस्य पंचदशाऽगमत् । नमेर्वहति तस्येह पंचलक्षाब्दके पथि ॥ ५ ॥
उदियाय यदुस्तत्र हरिवंशोदयाचले । यादवप्रभवो व्यापी भूमौ भूपविभाकरः[1] ॥ ६ ॥

---

१ भूपतिभास्करः ।

सुतो नरपतिस्तस्मादुदभूद् भूवधूपतिः । यदुस्तस्मिन् भुवं न्यस्य तपसा त्रिदिवं गतः ॥ ७ ॥
शूरश्चापि सुवीरश्च शूरौ वीरौ नरेश्वरौ । स तौ नरपती राज्ये स्थापयित्वा तपोऽभजत् ॥८॥
शूरः सुवीरमास्थाप्य मथुरायां स्वयं कृती । स चकार कुशद्येषु पुरं शौर्यपुरं पुरं ॥ ९ ॥
शूराच्चांधकवृष्ण्याद्याः शूरादुदभवन् सुताः । वीरा भोजकवृष्ण्याद्याः सुवीरान्मथुरेश्वरात् ॥१०॥
ज्येष्ठपुत्रे विनिक्षिप्तक्षितिभारौ यथायथं । सिद्धौ शूरसुवीरौ तौ सुप्रतिष्ठेन दीक्षितौ ॥ ११ ॥
आसीदंधकवृष्णेश्च सुभद्रा वनितोत्तमा । पुत्रास्तस्या दशोत्पन्नास्त्रिदशाभा दिवश्च्युताः ॥१२ ॥
समुद्रविजयोऽक्षोभ्यस्तथा स्तिमितिसागरः । हिमवान् विजयश्चान्योऽचलो धारणपूरणौ ॥१३॥
अभिचंद्र इहाख्यातो वसुदेवश्च ते दश । दशार्हाः सुमहाभागाः सर्वेऽप्यन्वर्थनामकाः ॥ १४ ॥
कुंती मद्री च कन्ये द्वे मान्ये स्त्रीगुणभूषणे । लक्ष्मीसरस्वतीतुल्ये भगिन्यौ वृष्णिजन्मनां ॥१५॥
राज्ञो भोजकवृष्णेर्या पत्नी पद्मावती सुतान् । उग्रसेनमहासेनदेवसेनानसूत सा ॥ १६ ॥
सुवसोस्त्वभवत्सूनुः कुंजरावर्त्तवर्त्तिनः । वृहद्रथ इति ख्यातो मागधेशपुरेऽवसत् ॥ १७ ॥
तस्मादप्यंगजो जातस्ततो दृढरथोग्रजः[1] । तस्मान्नरवरो जज्ञे ततो दृढरथस्ततः ॥ १८ ॥

१ दृढरथोंगजः इति ख पुस्तके ।

जातः सुखरथस्तस्माद्दीपनः कुलदीपनः । सूनुः सागरसेनोऽस्मात्सुमित्रो वप्रथुस्ततः ॥ १९ ॥
विंदुसारः सुतस्तस्माद्देवगर्भस्तदर्भकः । ततः शतधनुर्वीरो धनुर्धरपुरःसरः ॥ २० ॥
क्रमात् शतसहस्रेषु व्यतिक्रांतेषु राजसु । जातो निहतशत्रुः स सुतः शतपतिर्नृपः ॥ २१ ॥
जातो बृहद्रथो राजा ततो राजगृहाधिपः । तस्य सूनुर्जरासंधो वशीभूतवसुंधरः ॥ २२ ॥
स रावणसमो भूत्या त्रिखंडभरताधिपः । नवमः प्रतिशत्रूणां सुरश्रीसदृशौजसां ॥ २३ ॥
मध्ये कालिंदसेनाख्या महिषी महिषीगुणा । तनयाः सनयास्तस्य ते कालयवनादयः ॥२४ ॥
अपराजित इत्याद्या भ्रातरश्चक्रवर्तिनः । हरिवंशमहावृक्षशाखाया फलितात्मनः ॥ २५ ॥
एकस्या एकवीरोऽयं धारको धरणीपतिः । बहुविद्याधरेंद्राणां दक्षिणश्रेण्युपाश्रितां ॥ २६ ॥
संहतिं नृपसिंहोऽसौ शास्ति राजगृहे स्थितः । उत्तरापथभूपालाः दक्षिणापथभूभृतां ॥ २७ ॥
पूर्वापरसमुद्रांता मध्यदेशाश्च तद्वशाः । भूचरैः खेचरैः सर्वैः शेखरीकृतशासनः ॥ २८ ॥
चक्रवर्तिश्रियो भर्ता बिभर्तींद्रस्य विभ्रमं । जातु शौर्यपुरोद्याने गंधमादननामनि ॥ २९ ॥
रात्रौ प्रतिमया तस्थौ सुप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः । पूर्ववैराद्यतेस्तस्य चक्रे यक्षः सुदर्शनः ॥ ३० ॥
अग्निपातं महावातं मेघवृष्ट्यादिदुःसहं । उपसर्गं स जित्वाऽऽप केवलं घातिघातकृत् ॥ ३१ ॥

तद्वंदनार्थमिंद्रौघाः सौधर्माद्याश्चतुर्विधैः । देवैः सह समागत्य तेऽर्चयित्वा ववंदिरे ॥ ३२ ॥
वृष्णिरप्यागतो भक्त्या पुत्रदारावलान्वितः । संपूज्यानम्य सौम्यं तं निजभूमावुपाविशत् ॥३३॥
सावधाने स्थिते धर्मदत्तकर्णे कृतांजलौ । जगज्जने जगादेत्थं सुप्रतिष्ठमुनीश्वरः ॥ ३४ ॥
धर्मात्त्रिवर्गनिष्पत्तिस्त्रिषु लोकेषु भाषिता । ततस्तामिच्छता कार्यः सततं धर्मसंग्रहः ॥ ३५ ॥
धर्मो धामनि संधत्ते शर्माधारे शरीरिणां । निर्मितो वाङ्मनःकायकर्मभिः शुभवृत्तिभिः ॥३६॥
धर्मो मंगलमुत्कृष्टमहिंसासंयमस्तपः । तस्य लक्षणमुद्दिष्टं सद्दृष्टिज्ञानलक्षितं ॥ ३७ ॥
धर्मो जगति सर्वेभ्यः पदार्थेभ्य इहोत्तमः । कामधेनुः स धेनूनामप्यनूनसुखाकरः ॥ ३८ ॥
धर्म एव परं लोके शरणं शरणार्थिनां । मृत्युजन्मजरारोगशोकदुःखार्कतापिनां ॥ ३९ ॥
विश्वाभ्युदयसौख्यानां मनुजामरवर्त्तिनां । धर्म एव मतो हेतुर्निश्रेयससुखस्य च ॥ ४० ॥
नमिना भाषितो धर्मः समन्वंतरवर्त्तिना । एकविंशेन नाथेन कर्त्रा तीर्थस्य सांप्रतं ॥ ४१ ॥
पंचकल्याणपूजानां स्वर्गावतरणादिषु । भाजनं यो बभूवात्र तेन धर्मोऽयमीरितः ॥ ४२ ॥
महाव्रतानि साधूनामहिंसा सत्यभाषणं । अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च निर्मूर्च्छा चेति पंचधा ॥ ४३ ॥
गुप्तिश्च त्रिविधा प्रोक्ता पंचधा समितिस्त्विदं । सर्वसावद्ययोगस्य प्रत्याख्यानं मतं सतः ॥४४॥

पंचधाऽणुव्रतं प्रोक्तं त्रिविधं च गुणव्रतं । शिक्षाव्रतं चतुर्भेदं धर्मोऽयं गृहिणां स्मृतः ॥ ४५ ॥
हिंसादेर्देशतो मुक्तिरणुव्रतमुदीरितं । दिग्देशानर्थदंडेभ्यो विरतिश्च गुणव्रतं ॥ ४६ ॥
सामायिकं त्रिसंध्यं तु प्रोपधातिथिपूजनं । आयुरंते च सल्लेखः शिक्षाव्रतमितीरितं ॥ ४७ ॥
मांसमद्यमधुद्यूतक्षीरिवृक्षफलोज्झनं । वेश्यावधूरतित्याग इत्यादिनियमो मतः ॥ ४८ ॥
इदमेवेतितत्त्वार्थश्रद्धानं ज्ञानदर्शनं । शंकाऽऽकांक्षाजुगुप्सान्यमतशंसास्तवोज्झनं ॥ ४९ ॥
तथोपगूहनं मार्गभ्रंशिनां स्थितियोजनं । हेतवो दृष्टिसंशुद्धे वात्सल्यं च प्रभावना ॥ ५० ॥
साक्षादभ्युदयोपायः पारंपर्येण मुक्तये । गृहिधर्मोऽत्र मौनस्तु साक्षान्मोक्षाय कल्पते ॥ ५१ ॥
स धर्मो मानुषे देहे प्राप्यते नान्यजन्मनि । मानुषस्तु भवो दुःखाल्लभ्यते भवसंकटे ॥ ५२ ॥
स्थावरत्रसकायेषु चतुर्गतिषु देहिनः । कर्मोदयवशात्क्लेशानश्नंतः पर्यटंत्यमी ॥ ५३ ॥
पृथिव्यप्तेजसां काये मरुतां च वनस्पतेः । स्पर्शनेंद्रियो जीवो दीर्घकालमटाट्यते ॥ ५४ ॥
संति चानंतभेदास्ते जीवाः कर्मकलंकिता । येऽत्र सत्त्वमनापन्नाः कुनिगोदनिवासिनः ॥ ५५ ॥
कुयोन्यशीतिलक्षासु चतुरभ्यधिकास्वमी । अनेककुलकोटीषु बभ्रम्यंते तनूभृतः ॥ ५६ ॥
प्रत्येकं सप्तलक्षाः स्युर्नित्येतरनिगोदयोः । पृथिवीवायुतेजोऽम्भःकायेष्वपि तथैव ताः ॥ ५७ ॥

द्विसप्तद्विश्चतस्रस्तास्तिर्यङ्नारकनाकिनां ॥ ५८ ॥
ता वनस्पतिकायेषु दश षट् विकलेंद्रिये । द्विसप्तद्विश्चतस्रस्तास्तिर्यङ्नारकनाकिनां ॥ ५८ ॥

द्वाविंशतिपृथिव्यंगा लक्षाः सप्तांबुवायुजाः । तेजस्कायिकजीवानां त्रिलक्षाः कुलकोटयः ॥५९॥
वनस्पतिजलक्षास्ता अष्टाविंशतिरीरिताः । द्वित्रींद्रियेषु सप्ताष्टौ चतुरिंद्रियजा नव ॥ ६० ॥
अर्धत्रयोदश प्रोक्ता लक्षा जलचरेष्वपि । पक्षिषु द्वादशैव स्युश्चतुष्पात्सु दशांगिषु ॥ ६१ ॥
नवोरःपरिसर्पेषु मनुजेषु चतुर्दश । नारकामरभेदेषु विंशतिः पंच षड् युताः ॥ ६२ ॥
कोटीकोटी च लक्षाश्च नवतिर्नवभिः सह । पंचाशच्च सहस्राणि कुलकोट्यः समासतः ॥ ६३ ॥
द्वाविंशतिसहस्राणि वत्सराणि खरक्षितेः । आयुर्मृदुपृथिव्यास्तु द्वादश प्राणधारिणां ॥ ६४ ॥
सप्ताप्कायिकजीवानां त्रीणि वायुमयांगिनां । अहोरात्रास्त्रयस्तेजोमयानां समये मताः ॥ ६५ ॥
दशवर्षसहस्राणि वनस्पतिमयांगिनां । द्वादश द्वींद्रियाणां च वर्षाण्यायुरुदीरितं ॥ ६६ ॥
दिनान्येकोनपंचाशत्त्रींद्रियाणां प्रकीर्त्तितं । चतुरिंद्रियजीवानां षण्मासाः परमायुषः ॥ ६७ ॥
द्वासप्ततिसहस्राणि वर्षाण्यपि च पक्षिणां । द्विचत्वारिंशदब्दानां सहस्राण्यहिदेहिनां[1] ॥ ६८ ॥
नव पूर्वांगमानं स्यादुरसा परिसर्पिणां । पूर्वकोटी मनुष्याणां मत्स्यानां चापि जीवितं ॥ ६९ ॥

१ सहस्राण्यहदेहिनां इति ख पुस्तके ।

भौमा मसूरसंस्थाना जीवा आप्यास्तृणांबुवत्। तैजसाः सूचिसंस्थानाः पताकावच्च वायुजाः॥७०॥
बहुसंस्थानभाजस्तु वनस्पतिभवांगिनः। विज्ञेया हुंडसंस्थाना विकलेंद्रियनारकाः॥ ७१॥
षट्संस्थानभृतो मर्त्यास्तिर्यंचः कथितास्तथा। समेन चतुरस्रेण संस्थानेन युताः सुराः॥ ७२॥
देहः सूक्ष्मनिगोदस्य भागोऽसंख्येय अंगुलः। अपर्याप्तस्य जातस्य तृतीयसमयेऽल्पशः॥७३॥
स एवैकेंद्रियादीनां देहः स्यादल्पमानतः। पंचेंद्रियावसानानां सूक्ष्मोदारप्रभेदिनां॥ ७४॥
सहस्रयोजनं पद्मं सगव्यूतं प्रमाणतः। समस्तैकेंद्रियोत्कृष्टदेहमानमिदं मतं॥ ७५॥
उत्कर्षाद् द्वींद्रियेषु स्यात् शंखो द्वादशयोजनः। त्रींद्रियोंगी त्रिगव्यूतो भ्रमरो योजनांगकः॥७६॥
सहस्रयोजनो मत्स्यः सपर्याप्तः स्वयंभुवः। सिक्थप्रमाणकोऽत्यल्पः प्राणी जलचरः स्मृतः॥७७॥
संमूर्छनजसत्त्वानां खजलस्थलचारिणां। तिरश्चां तु वितास्तिः स्यादपर्याप्तशरीरिणां॥ ७८॥
अपर्याप्ताः पुनः सत्त्वा ये जलस्थलगर्भजाः। संमूर्च्छनोत्थपर्याप्ताः खगा जलधरास्तथा॥ ७९॥
धनुः पृथक्त्वमुत्कर्षात् खगाश्चापि च गर्भजाः। पर्याप्ताश्चाप्यपर्याप्ता देहमानं वहंति ते॥ ८०॥
जलगर्भजपर्याप्ताः स्युः पंचशतयोजनाः। त्रिपल्यायुर्नृतिर्यंचास्त्रिगव्यूताः प्रमाणतः॥८१॥
पंचचापशतोत्सेधा उत्कर्षान्नारकाः सुराः। पंचविंशतिचापाः स्युरायुस्तेषां पुरा ययौ॥ ८२॥

पर्याप्तयः षडाहारशरीरेंद्रियगोचराः । आनप्राणमनोभाषाभेदैस्ताः परिभाषिताः ॥ ८३ ॥
स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुः श्रोत्रं तथैव तत् । इंद्रियं पंचकं प्रोक्तं स्थावरत्रसगोचरं ॥ ८४ ॥
लब्धिश्चैवोपयोगश्च भावेंद्रियमिहोदितं । द्रव्येंद्रियं तु निर्वृत्तिं सहोपकरणैर्मतं ॥ ८५ ॥
स्पर्शनं नैकसंस्थानं रसनं तु क्षुरप्रवत् । घ्राणं चानुकरोत्येवमतिमुक्तककचंद्रिकां ॥ ८६ ॥
चक्षुर्मसूरमन्वेति श्रोत्रं तु यवनालिकां । स्वाकारेणेति संस्थानं तद्द्रव्येंद्रियगोचरं ॥ ८७ ॥
धनुःशतानि चत्वारि स्पर्शनेंद्रियगोचरः । एकेंद्रियस्य चोत्कृष्टस्ततो यावदसंज्ञिनां ॥ ८८ ॥
अष्टौ षोडश संख्यातो द्वात्रिंशद्द्विगुणान्यपि । चतुःषष्टिःशतं दंडा घ्राणांते द्विरसंज्ञिनः ॥ ८९ ॥
चतुःपंचशता सार्द्धमेकोनत्रिंशदीक्षते । शतानि योजनानां तु चक्षुषा चतुरिंद्रियः ॥ ९० ॥
योजनानां शतान्येकन्यूनं षष्टिः सहाष्टभिः । असंज्ञिचक्षुर्विषयो योजनं श्रोत्रगोचरः ॥ ९१ ॥
स्पर्शं रसं च गंधं च नवयोजनमात्रगं । संज्ञी यथास्वमादत्ते शब्दं द्वादशयोजनं ॥ ९२ ॥
सहस्रैःसप्तभिः सत्रा चत्वारिंशत्सहस्रकैः त्रिषष्ट्या च द्विशत्या च योजनैश्चक्षुषेक्षते ॥ ९३ ॥
इत्यनेकविकल्पेऽस्मिन् संसारे सारवर्जिते । मोक्षसाधनतः सारं मानुष्यं दुर्लभं च तत् ॥ ९४ ॥

१–४७२६३ योजनानि चक्षुषः विषयः ।

दुष्कर्मोपशमाल्लब्ध्वा तन्मानुष्यं कथंचन । यत्नो भवविरक्तेन विधेयो मुक्तये विदा ॥ ९५ ॥
अथात्रावसरेऽपृच्छन्नत्वा केवलिनं भवान् । पूर्वानंधकवृष्णिः स्वानित्युवाच च सर्ववित् ॥९६॥
साकेते रत्नवीर्यस्य राज्ञो राज्ये जिताहिते । तीर्थे वृषभनाथस्य वर्तमाने महोदये ॥ ९७ ॥
श्रेष्ठी सुरेंद्रदत्तोऽभूद्द्वात्रिंशत्कोटिभिर्धनी । तस्य जैनस्य मित्रं च रुद्रदत्तोऽभवद्द्विजः ॥ ९८ ॥
तिथिपर्वचतुर्मासी जिनपूजार्थमस्य सः । दत्त्वार्थं द्वादशाब्दांतं वणिज्यातो वणिज्यया ॥ ९९ ॥
स द्यूतवेश्याव्यसनी विनाश्य द्रविणं द्विजः । चौर्यगृहीतमुक्तोऽगादुल्कामुखवनं खलः ॥१००॥
स हि मुष्णन् सह व्याधैर्लोकं व्याधिनिभो हतः । सेनान्या श्रेणिकेनागान्नरकं रौरवं ततः ॥१०१॥
देव स्तस्य विनाशेन त्रयस्त्रिंशदुदन्वतां । समं कालं महादुःखं प्राप्योद्वर्त्याभ्रमद् भवे ॥'०२॥
पापस्योपशमात्पश्चादुदभूद्गजपुरे पुरे । कापिष्ठलायनाभिख्यादनुमत्यामिह द्विजः ॥१०३॥
निःश्रीगौतमनामाऽसौ कृतमातृपितृक्षयः । साधुं भुंजानमद्राक्षीद्भिक्षार्थी पर्यटन् वटुः ॥ १०४ ॥
समुद्रदत्तनामानमनुगम्य तमाश्रमे । जगादात्मसमं यूयं कुरुत्वं मां बुभुक्षित ॥ १०५ ॥
भव्यसत्त्वमसौ बुद्ध्वा दीक्षां तस्मै ददौ गुरुः । पापं वर्षसहस्रेण विघ्नकृत्सोऽप्यशीशमत् ॥१०६॥
स श्रीगौतमसंज्ञाकः प्राप्तोऽक्षीणमहानसं । पदानुसारिणीं लब्धिं बीजबुद्धिसुरर्द्धिमान् ॥१०७॥

आराध्याराधनां सम्यक् सुविशालमगाद् गुरुः । शिष्यो वर्षसहस्राणि पंचाशत् स तपोऽतपत् ॥१०८॥
उदियाय स तत्रैव सुविशाले विशालधीः । स्थितिं संमानयन्मान्यामष्टाविंशतिसागरैः ॥१०९॥
अहमिंद्रसुखं भुक्त्वा सोऽवतीर्य ततो नृपः । संजातोऽधकवृष्णिस्त्वमहं तु भवतो गुरुः ॥११०॥
अप्राक्षीत्पूर्वजन्मानि दुःखितः क्षितिपः पुनः । स्वपुत्राणां दशानां च केवली च जगाविति ॥१११॥
सद्भद्रिलपुरे राजा नाम्ना मेघरथोऽभवत् । भार्या तस्य सुभद्राख्या तयोर्दृढरथः सुतः ॥११२॥
इभ्यो राजसमस्तस्य भार्या नंदयशाः सुते । सुदर्शना च सुज्येष्ठा धनदत्तस्य सूनवः ॥११३॥
धनश्च जिनदेवो च पालांतास्ते त्रयो मताः । अर्हद्दासः प्रसिद्धश्च जिनदासस्तथा परः ॥११४॥
अर्हद्दत्त इति ख्यातो जिनदत्तः परः स्मृतः । प्रियमित्रः प्रतीतोऽन्यस्तथा धर्मरुचिध्वनिः ॥११५॥
सुमंदरगुरोः पार्श्वे प्रवव्राज नरेश्वरः । धनदत्तोऽपि पुत्रैस्तैर्नवभिः सह दीक्षितः ॥११६॥
सुदर्शनार्यिकापार्श्वे सुभद्रा च सुदर्शना । सुज्येष्ठा च तपो ज्येष्ठं सहैव प्रतिपेदिरे ॥११७॥
धनदत्तो गुरुश्चैव वाराणस्यां नृपस्तथा । केवलज्ञानमुत्पाद्य विहृता वसुधां क्रमात् ॥११८॥
सप्तभिः पंचभिः पूजा वर्षैर्द्वादशभिश्च ते । अंते सिद्धाशिलारूढाः सिद्धा राजगृहे पुरे ॥११९॥

१ षष्ठग्रैवेयके विशालनाम्नि विमाने । २ श्रेष्ठी ।

अंतर्वत्नी प्रसूता सा पूर्वनंदयशःसुतं । धनमित्रं तथा योग्यं संत्यज्य तपसि स्थिता ॥१२०॥
पुत्रान् सिद्धिशिलारूढान् प्रायोपगमनास्थितान् । वंदित्वा पुत्रमातृत्वमावृणोत्स्नेहमोहिता॥१२१॥
स्नेहगह्वरमोहिन्यौ भगिन्यौ च तदिच्छतां । सोदरत्वं भवेऽन्यत्र किं वा स्नेहस्य दुष्करं ॥१२२॥
माता सुताः समाराध्य देवा भूत्वाऽच्युतेऽखिलाः । द्वाविंशतिसमुद्रांतं कालं भुक्त्वा परं सुखं॥१२३॥
अवतीर्य ततो भूमिं देवीदुहितृदेहजाः । तवैव भूप ! चित्रा हि परिणामवशाद्गतिः ॥ १२४ ॥
बभाण भगवानंते वसुदेवभवांतरं । प्रणिधानपरोत्कर्म नरदेवसभांतरे ॥ १२५ ॥
कश्चिद्भवाब्धिदुःखोर्मिनिमग्नोन्मग्नताकुलः । प्राणी प्राप युगच्छिद्रं कीलवत् नृभवांतरं ॥ १२६॥
मागधाभिधदेशेऽसौ शालिग्रामेऽग्रजन्मनोः । अभूद्दुर्विधयोस्तोकं स्तोकं चोपनयत्सुखं ॥१२७॥
गर्भस्थेऽपि पिता तस्मिन्नर्भके मृतमातृकः । दुर्भगस्याष्टवर्षस्य निर्भा मातृष्वसा शुचा ॥१२८॥
पुरे राजगृहे सोऽथ मातुलस्य गृहेऽवसत् । भर्तुःस्वस्रीय इत्येष पितृष्वस्रानुपालितः ॥ १२९ ॥
मलग्रस्तशरीरोऽसावुग्रगंधोऽजपोतवत् । विकीर्णशीर्णकेशाग्रः कुचेलः पिंगलेक्षणः ॥ १३० ॥
दुहितृर्मातुलस्यासौ वांछन् दमरकश्रुतेः । ताभिर्जुगुप्सुभिर्दुःखी स्वगृहाद्विनिघाटितः ॥ १३१ ॥

दुर्भाग्याग्निशिखालीढः स्थाणुरेष मणीमयः । मर्तुमिच्छन्पतंगाभो वैभारे साधुभिर्वृतः[1] ॥१३२॥
निंदित्वात्मानमाकर्ण्य धर्माधर्मफलं ततः । प्राव्राजीद् गुरुपादांते शांतः संख्याख्ययोगिनः॥१३३॥
चचार गुरुसंदेशादाशापाशविनाशनः । तपोऽन्यदुश्चरं चारुचारित्रज्ञानदर्शनः ॥ १३४ ॥
ननंद नंदिषेणाख्यस्तपसोत्पन्नलब्धिभिः । एकादशांगभृत्साधुः सोढाशेषपरीषहः ॥ १३५ ॥
उपवासविधिर्यो यः शासनेऽन्यातिदुष्करः । तस्य धैर्यवतः साधोः स सर्वः सुकरोऽभवत्[2] ॥१३६॥
आचार्यग्लानशैक्षादिदशभेदमुदीरितं । वैयावृत्यतपश्चक्रे सविशेषमसावृषिः ॥ १३७ ॥
महालब्धिमतस्तस्य वैयावृत्योपयोगि यत् । वस्तु तच्चिंतितं हस्ते भेषजाद्याशु जायते ॥ १३८ ॥
तपो वर्षसहस्राणि बहूनि तपतोऽस्य च । वैयावृत्यं तपः शक्रः शशंस सुरसंसदि ॥ १३९ ॥
काले संप्रति साधूनां वैयावृत्यं करोति यः । नंदिषेणपरो जातो जंबूद्वीपस्य भारते ॥ १४० ॥
यद्येन चिंतितं पथ्यमनुल्लाघसुदृष्टिना । तत्तस्य क्षिप्रमक्षूणं स संपादयति क्षमी ॥ १४१ ॥
प्रासुकद्रव्ययोगेन वैयावृत्योद्यतस्य हि । संयतस्यापि नो बंधो निर्जरैव तु जायते ॥ १४२ ॥
धर्मसाधनमाद्यं हि शरीरमिह देहिनां । तस्य धारणमाधेयं यथाशक्ति च शासने ॥ १४३ ॥

१ धृत इति ख पुस्तके । २ अस्मादग्रे 'तपोलब्धिप्रभावेन वैयावृत्यं करोति सः' इति ख पुस्तकेऽधिकः ।

सम्यग्दृष्टिरशेषोऽपि मंदग्लानादिरादरात् । पर्युपासनया नित्यमुपचर्यः सुदृष्टिना ॥ १४४ ॥
प्रतीकारसमर्थोऽपि यत्सुदृष्टिमुपेक्षते । व्याधिक्लिष्टमसौ नष्टः सम्यक्त्वस्यापबृंहकः ॥ १४५ ॥
यन्नोपयुज्यते यस्य धनं वा वपुरेव वा । स्वशासनजने तेन तस्य किं बंधुहेतुना ॥ १४६ ॥
तदेव हि धनं तस्य वपुर्वा सर्वथा मतं । यद्यस्य शासनस्थानं यथास्वमुपयुज्यते ॥ १४७ ॥
शक्तस्योपेक्षमाणस्य सद्दृष्टिजनमापदि । का वा कठिनचित्तस्य जिनशासनभक्तता ॥ १४८ ॥
सम्यक्त्वशुद्धिशुद्धे तु जैने भक्तिविलोपने । पुंसो मिथ्याविनीतस्य का वा दर्शनशुद्धिता ॥ १४९ ॥
बोधिलाभनिमित्ताया दृष्टिशुद्धेर्विराधने । पुनर्बोधिपरिप्राप्तिर्दुर्लभा भवसंकटे ॥ १५० ॥
बोधिलाभपरिप्राप्तावसत्यां मुक्तिसाधनं । कुतो वृत्तमभावेऽस्य कुतो मुक्तिस्तदर्थिनः ॥ १५१ ॥
मुक्त्यभावे कुतः सौख्यमनंतमनपायि च । सौख्याभावे कुतः स्वास्थ्यं स्वास्थ्याभावे कुतः कृती १५२
अतः सर्वात्मना भाव्यं यथास्वं स्वहितैषिणा । वैयावृत्योद्यतेनाऽत्र यतिना गृहिणा तथा ॥ १५३ ॥
शरीरं दर्शनज्ञानं चारित्रं परमं तपः । वैयावृत्यकृता सर्वं स्थापितं हि परात्मनोः ॥ १५४ ॥
शासनस्थितिविद् विद्वानुपकुर्वन् परं स्वयं । निरपेक्षोपकारो यः परात्मलघुमोक्षभाग् ॥ १५५ ॥
वैयावृत्यप्रवृत्तो यः शासनार्थातिभावितः । नस शक्यः सुरै रोद्धुं किं पुनः क्षुद्रजंतुभिः ॥ १५६ ॥

॥ १५७ ॥
नंदिषेणमुनिश्चैप तथाविध इति स्तुतेः । सौधर्मेंद्रेण देवास्तं प्रशशंसुः प्रणामिनः ॥ १५८ ॥
मुनिधैर्यपरीक्षार्थं तत्रैको विबुधस्तदा । मुनिरूपधरः प्राह नंदिषेणमिति श्रितः ॥ १५९ ॥
वैयावृत्यमहानंद नंदिषेण मुने शृणु । व्याधिव्यथितदेहस्य देहि मे किंचिदौषधं ॥ १६० ॥
इत्युक्तस्स तमाहैवमविकल्पानुकंपया । ददामि व्रत ते साधो रुचिः कस्मिन्निहाशने ॥ १६१ ॥
पूर्वदेशजशालीनामोदनः सुरभिः शुभः । पंचालदेशमुद्गानां सूपः स्वादुरसान्वितः ॥ १६२ ॥
हैयंगवीनमुत्तममपरांतभुवां गवां । पयः कलिंगधेनूनां सुसृष्टं व्यंजनांतरं ॥ १६३ ॥
लभ्येत यदि साधु स्यात् श्रद्धा ह्यत्र ममाधिका । इत्युक्तश्चानयामीति जगाम श्रद्धयान्वितः ॥ १६४ ॥
विरुद्धदेशवस्तूनां प्रार्थनेऽप्यविषण्णधीः । गत्वा गोचरवेलायामानीय सहसा ददौ ॥ १६५ ॥
उपभुक्तान्नपानोऽसौ शरीरांतर्मलाविलः । श्रौतस्तेन स्वहस्ताभ्यां निशि निर्विचिकित्सया ॥ १६६ ॥
अभग्नोत्साहमालोक्य नंदिषेणमनिंदितं । वैयावृत्यकृतं प्रोचे दिव्यरूपधरः सुरः ॥ १६७ ॥
यथा देवसभेऽस्तैपीत् भगवंतं मघवान्नृषे । वैयावृत्योद्यतो लोके तथैव भगवान् भवान् ॥ १६८ ॥
अहो लब्धिरहो धैर्यमहो निर्विचिकित्सता । अहो शासनवात्सल्यमशल्यं तव सन्मुने ॥ १६९ ॥
अन्येषामपि यद्येषा मनीषा स्यान्मनीषिणां । कालत्रये तपस्यत्र तेषां शासनभक्तता ॥ १६९ ॥

इति स्तुत्वा मुनिं नत्वा सम्यक्त्वं प्रतिपद्य सः। स्वर्गी स्वर्गमगान्मार्गं जैनेंद्रमतिवर्तयत् ॥१७०॥
पंचत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाण्यतिगमय्य सः। प्रायोपगमनं भेजे षण्मासावधि धीरधीः ॥ १७१ ॥
सन्यस्तवपुराहारः स्वपरास्तप्रतिक्रियः। श्रीसौभाग्यनिदानेन स्वं बबंध सुमोहतः ॥ १७२ ॥
निंदितं नाकरिष्यच्चेन्निदानं स मुनिस्तदा। अबध्यत तदा शक्त्या तीर्थकृन्नाम तद्ध्रुवं ॥१७३॥
स चाराध्य महाशुक्रे शक्रतुल्यस्ततोऽभवत्। तत्र तस्थौ सुखं कालं सार्द्धं षोडशसागरं ॥१७४॥
स भुक्तसुरसौख्यस्ते ततः प्रच्युत्य पार्थिव। पार्थिवो वसुदेवोऽयं सुभद्रायामभूत्सुतः ॥ १७५ ॥
इति श्रुत्वा भवान् पूर्वान् वृष्णिभार्यासुताः स्वकान्। धर्मसंवेगसंपन्नाः संजाता नृसुरास्तथा॥१७६॥
सुप्रतिष्ठं प्रणम्येयुस्त्रिदशा नृपतिः पुनः। समुद्रविजयं राज्ये साभिषेकमतिष्ठपन् ॥ १७७ ॥
समर्प्य वसुदेवं च समुद्रविजयाय सः। सुप्रतिष्ठस्य पादांते निष्क्रांतस्तद्भवांतकृत् ॥ १७८ ॥
राज्ये भोजकवृष्णिश्च मथुरायां निधाय सः। उग्रसेनं समग्रेऽयं निर्ग्रंथव्रतमग्रहीत् ॥ १७९ ॥
समुद्रविजयः शिवां विहितपट्टबंधां प्रियां वधूनिवहमुख्यतामधिगमय्य राज्यस्थितिं।
स्थिरां स परिपालयत्सहजबंधुभव्यांबुजः प्रतापमभिवर्धयन्नुदयनैर्जिनार्को यथा ॥ १८० ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ समुद्रविजयराज्यलाभवर्णनो नामाष्टादशः सर्गः।

एकोनविंशः सर्गः।

अथाह गणनाथाद्यः शृणु श्रेणिक वर्ण्यते। चेष्टितं वसुदेवस्य वसुधाविजयार्द्धजं॥ १॥
समुद्रविजयो भूभृदष्टानां नवयौवने। भ्रातॄणां राजपुत्रीभिः सत्कल्याणमकारयत्॥ २॥
उवाह धृतिमक्षोभ्यस्ततस्तिमितसागरः। स्वयंप्रभां प्रभाऽनूनां सुनीतां हिमवानपि॥ ३॥
सिताख्यां विजयः ख्यातां प्रियालापां तथाऽचलः। उपयेमे युवा धीरो धारणश्च प्रभावतीं॥४॥
कालिंगीं पूरणश्चार्वीमभिचंद्रश्च सुप्रभां। अष्टौ स्त्रीषु महादेव्यस्त्वष्टानामपि ताः स्मृताः॥ ५॥
कलागुणविदग्धानां तेषामासीत् सयोषितां। अन्योन्यप्रेमबद्धानामनन्यसदृशी रतिः॥ ६॥
तदा देवकुमाराभो वसुदेवो श्रिया श्रितः। शौर्यपुर्यां च चिक्रीड कुमारक्रीडया युतः॥ ७॥
रूपलावण्यसौभाग्यभाग्यवैदग्धवारिधिः। जहार जनचेतांसि कुमारो मारविभ्रमः॥ ८॥
चतुर्णां लोकपालानां वेपमादाय हारिणां। इंद्रादिदिक्षु निक्षुद्रः क्रमात्पुर्या विनिर्ययौ॥ ९॥
निर्याति सूर्यदीप्तांगे चंद्रसौम्यमुखांबुजे। तत्र शौर्यपुरे स्त्रीणां भवत्याकुलता परा॥ १०॥
संघट्टः पुरनारीणां वसुदेवदिदृक्षया। जायतेऽर्णववेलायां पूर्णचंद्रोदयं यथा॥ ११॥

भूमौ रथ्या यथा स्त्रीभिस्त्यक्तप्रारब्धकर्मभिः । प्रासादेषु गवाक्षाश्च संछाद्यंते दिदृक्षुभिः ॥१२॥
सौभाग्यहृतचेतस्कं बहिरंतरितस्ततः । बभूव पुरमुद्भ्रांतं वसुदेवकथामयं ॥ १३ ॥
अन्यदा पुरवृद्धास्ते समुद्रविजयं नृपं । नत्वा व्यजिज्ञपन्नित्थमुपांशु पिहितांतराः ॥ १४ ॥
अभयं नः प्रदाय त्वं शृणु विज्ञापनां विभो । युक्तं वा यदि वाऽयुक्तं बालस्येव वचः पिता ॥१५॥
नृपस्त्वं रक्षणान्नृणां भूपो रक्षणतो भुवः । त्वमेव जगतो राजा राजन् ! प्रकृतिरंजनात् ॥१६॥
त्वयि राजनि राजंते प्रमदाः सकलाः प्रजाः । अक्षुद्रोपद्रवाः पूर्वं पितरीव तवाधुना ॥ १७ ॥
उर्वरा सर्वसस्यौघैः शालिव्रीह्यादिभिर्वरैः । अवग्रहोज्झितैर्धत्ते प्रतिवर्षमवंध्यतां ॥ १८ ॥
यथा कृषिस्तथात्यर्थं वणिज्या फलति प्रभो । क्रयविक्रयबाहुल्याद् वणिजां राज्यमूर्जितं ॥१९॥
घटोघ्न्यो घटपूरं हि गोमहिष्युद्धधेनवः । दुहंति सततं दुग्धं प्रभूताः सुहितास्तृणैः ॥ २० ॥
गृहार्थमन्नमत्यल्पं प्रसाधितमयत्नतः । नांतमेति दिनांतेऽपि दानधर्मात्मभुक्तिभिः ॥ २१ ॥
स्वस्वभावविभक्तान्यभावेष्टचाष्टवस्तुनि (?) । त्वत्प्रभावाच्चिरस्थैर्यः कालो दुंदुभिरेव नः ॥२२॥
एवं सति सुखे दुःखं स्वल्पं तदपि भूपते । न प्रकाशयितुं शक्यं यथात्मोदरपाटनं ॥ २३ ॥

१ प्रस्तुत ।

इत्याकर्ण्य नृपः प्राह पौरप्राग्रहरानिति । ब्रूत वीतभया दुःखं यूयं मह्यं हिता यदि ॥ २४ ॥
आधिर्व्याधिरिवाल्पोऽपि हृदये कृतसंनिधिः । प्राणकारणमप्यन्नं प्रतिहंति न संशयः ॥ २५ ॥
इत्युक्तास्तेन ते प्रोचुरिति विस्रंभमागताः । दुर्विज्ञप्तिमिमां राजन् निबुध्यस्व प्रजाहितं ॥ २६ ॥
वसुदेवकुमारस्य नित्यं निःसरतः पुरात् । रूपदर्शनविभ्रांता विस्मरंति वपुः स्त्रियः ॥ २७ ॥
निर्गमे च प्रवेशे च कुमारस्यान्यदंगनाः । न पश्यंति न शृण्वंति भवंति विकलेंद्रियाः ॥ २८ ॥
तिष्ठंतु तावदन्यानि स्वानुष्ठेयानि योषितां । स्तनंधयस्तनादानं रागांधानां सुविस्मृतं ॥ २९ ॥
अतिरूपतमो धीरः स्वभावस्वच्छमानसः । सर्वोपधाविशुद्धात्मा कुमारः शीलशेखरः ॥ ३० ॥
नृप ! कस्य न विज्ञातस्समस्ते वसुधातले । तथापि किं वयं कुर्मो चित्तोद्भ्रांतमभूत्पुरं ॥ ३१ ॥
यदत्र युक्तमाधातुं तत्त्वमेव निरूपय । यथास्वंतं पुरस्येश ! कुमारस्य च जायते ॥ ३२ ॥
तन्निशम्य वचो राजा विचिंत्य चिरमात्मनि । तथेति प्रतिपद्यैतान् विससर्ज ययुश्च ते ॥ ३३ ॥
पर्यट्य चिरमागत्य प्रणतं भ्रातरं नृपः । आलिंग्यांकं तमारोप्य स्नेहेनाघ्राय मस्तके ॥ ३४ ॥
भ्रांतोऽत्यंतं कुमार ! त्वं चिरं भ्रांत्वा वनांतरं । विवर्ण ! क्षुत्पिपासार्त्त ! किमित्येवं चिरायितं ॥ ३५ ॥
वातातपपरिम्लानशिरःशेखरनीरुचिः । अगणय्य वपुःखेदं पर्यटस्यटनाप्रियः ॥ ३६ ॥

स्नानभोजनवेलाया मा कृथास्त्वमतिक्रमं । अद्य प्रभृति शुद्धांतवनांतेष्वारमाधुना ॥ ३७ ॥
इति राजाऽनुजं भक्तमनुशिष्य शिवागृहं । सप्तकक्षापरिक्षेपि तं गृहीत्वा करेऽविशत् ॥ ३८ ॥
स्नात्वा भुक्त्वा स तेनामा कृतरक्षाविधिः स्वयं । तदलक्षितसंकेतो बभूव नृपतिः सुखी॥ ३९ ॥
कुमारोऽपि शिवादेव्याः स वनोद्यानभूमिषु । क्रीडन्नाद्यसुगीताद्यैर्विनोदैश्चावसत्सदा ॥ ४० ॥
एकदा तु शिवादेव्यै समालंभनमेकया । कुब्जया नीयमानं तां खलीकृत्य जहार सः ॥ ४१ ॥
सा जगाद ततो रुष्टा कुमार ! तव चेष्टितैः । ईदृशैरेव संप्राप्तो बंधनागारमीदृशं ॥ ४२ ॥
स तां पप्रच्छ शंकासात् कुब्जे ! किमिति जल्पितं । न्यवेदयच्च सा तस्मै यथावन्नृपमंत्रणं ॥४३॥
ततः स्वं वचनं ज्ञात्वा विमनाः स नृपं प्रति । सद्मनश्छद्मना दक्षो निरगान्नगरात्ततः ॥ ४४ ॥
गत्वैकानचरो मंत्रसाधनव्याजवान्निशि । श्मशाने चैकदेशस्थं तं कृत्वोत्तरसाधकं ॥ ४५ ॥
किंचिद्दूरे निवेश्यैकं मृतकं भूषणैर्निजैः । विभूष्य चितिकामध्ये निक्षिप्य वदति स्म सः ॥४६॥
आर्यस्तातसमो राजा पौराश्च पिशुनाश्चिरं । सुखं जीवंतु संतुष्टाः प्रविष्टोऽहं हुताशनं ॥ ४७ ॥
इत्युक्त्वोच्चैः प्रधाव्यासौ प्रदर्श्याग्निप्रवेशनं । अंतर्धानं गतो दूरं भुजिष्योऽपि पुरं ततः ॥ ४८ ॥
वसुदेवस्य वृत्तांते तद्भृत्येन निवेदिते । स पौरांतःपुरभ्रातृवृष्णिवर्गस्तदा नृपः ॥ ४९ ॥

कुमाराभरणं तत्र रुदित्वा मृत इत्यसौ ॥ ५० ॥
संप्राप्य प्रातराक्रंदमुखरो वीक्ष्य भस्मनि । निंदन् मंदोद्यमः स्वं च वंचितोऽहमिति स्थितः ॥५१॥
पश्चात्तापहतो दुःखी स कृतोचिततत्क्रियः । द्विजवेषधरो धीरो योजनानि बहून्ययात् ॥ ५२ ॥
वसुदेवस्तु निःशंको गृहीत्वा पश्चिमां दिशं । क्षत्रियान्वयजेनात्र दृष्टो गंधर्वसूरिणा ॥ ५३ ॥
प्रापद्विजयखेटाख्यं पुरं खेटपुरोपमं । वीक्ष्यैवाकारमेतस्य वशीकृत इवाऽभवत् ॥ ५४ ॥
सुग्रीव इत्यनुग्राही गांधर्वार्थिजनस्य सः । अन्या विजयसेनाख्या रूपपारमिते शुभे ॥५५॥
कन्याऽनन्यसमा तस्य सोमा सोमसमानना । गांधर्वे योऽनयोर्जेता स भर्त्तेत्यभिमन्यते ॥ ५६ ॥
गंधर्वादिकलापारं प्राप्तयोः स तयोः पिता । तत्र तत्र सभामध्ये ते जिगाय स यादवः ॥ ५७ ॥
लक्ष्यलक्षणयोगेन यत्र यत्र तयोर्जयः । परिणीय मुदा रेमे प्रासादवरभूमिषु ॥ ५८ ॥
सुग्रीवेण सतोषेण कन्ये दत्ते ततः शुभे । शौरिः शौर्यसहायोऽयादविज्ञातविनिर्गतः ॥ ५९ ॥
सूनुं विजयसेनायामुत्पाद्याक्रूरसंज्ञकं । अपश्यच्च सरो रम्यं हंससारसवारिजैः ॥ ६० ॥
गच्छन्मार्गवशात् क्वाऽपि प्रविवेश महाटवीं । शीतं प्रपाय पानीयं सस्नौ तत्र चिरंतनं ॥ ६१ ॥
नाम्नांतः स जलावर्तमवगाह्य महासरः । निशस्य रवमुत्तस्थौ तत्र सुप्तो महागजः ॥६२॥
जलं मुरजनिर्घोषं समवाहयदुन्नतः ।

आपतंतं स तं हंतुं वंचयन्नतिदक्षिणः । चिक्रीड दंतिदंताग्रे दोलाप्रेंखनमाचरन् ॥६३॥
वशीकृत्य वशी शीतकरशीकरशोभितं । आरुह्यास्फाल्य हस्तेन हास्तिनं निश्चलं स्थितं ॥६४॥
विस्मितः स्वयमेवासौ सशिरःकंपमुत्करः । अरण्यरुदितं जातमित्यचिंतयदेककः ॥६५॥
अभविष्यदिभक्रीडा यदि शौर्यपुरे त्वियं । अभविष्यत्ततो लोको मुखरः साधुकारतः ॥६६॥
इति ध्यायंतमेवैनं जह्रतुर्गजमस्तकात् । सौम्यरूपधरौ धीरौ विद्याधरकुमारकौ ॥६७॥
नीत्वा तं कुंजरावर्त्ते नगरं विजयार्द्धजं । चक्रतुर्बहिरुद्याने सर्वकामिकनामनि ॥६८॥
अशोकानोकहस्याधः शोकक्लेशविवर्जितं । वसुदेवं सुखासीनं नत्वा ताविदमूचतुः ॥६९॥
स्वामिन्नशनिवेगस्य विद्याधरमहेशिनः । शासनात्त्वामिहानीतो जानीहि श्वशुरः स ते ॥७०॥
अर्चिमाली कुमारोऽहं वायुवेगोऽयमित्यमुं । निवेद्य पुरमेकोऽगादस्थादेकोऽत्र पालकः ॥७१॥
दिष्ट्या त्वं वर्द्धसे स्वामिन्नानीतो द्विपमर्दनः । धीरः शूरोऽभिरूपश्च विनीतो नवयौवनः ॥७२॥
नत्वेति ज्ञापितस्तेन स प्रमोदवशो नृपः । अंगस्पृष्टं ददज्जातः परिधानविशेषकः ॥७३॥
ततः समंगलं तेन नगरं स प्रवेशितः । अलंकृतवपुः पौरनरनारीभिरीक्षितः ॥७४॥
प्रशस्ततिथिनक्षत्रमुहूर्त्तकरणोदये । कन्यामशनिवेगस्य श्यामां श्यामामुवाह सः ॥७५॥

रेमे कामं स कामिन्या कलागुणविदग्धया। तया तदा तदुग्रत्विट् मुखपंकजषट्पदः ॥७६॥
सा सप्तदशतंत्रीकां वादयंती प्रियाऽमुना। विपंचीतोषिणाऽवाचि वृणीष्व वरमित्यरं ॥७७॥
सा प्रणम्य वरं वव्रे दिशायां यदि वा दिवा। मया विनेश! न स्थेयं स प्रसादवरोऽस्तु मे ॥७८॥
शृणु कारणमेतस्य वरस्य वरणप्रिय। रिपुरंगारको रंध्रे त्वां हरेदिति मे भयं ॥७९॥
अस्तीह किंनरोद्गीतं किन्नरोद्गीतसद्गुणं। वैताढ्यदाक्षिणश्रेण्यां नगरं नगरशेखरं ॥८०॥
अर्चिमाली प्रभुस्तत्र खेचरार्चितशासनः। प्रिया प्रभावती पुत्रौ वेगांतौ ज्वलनाशनी ॥८१॥
राज्यं प्रज्ञप्तिविद्यां च वितीर्य ज्येष्ठसूनवे। युवराज्यं कनिष्ठाय दीक्षितोऽरिदमांतिके ॥८२॥
तनयोंऽगारको राज्ञो विमलायामभूत्ततः[1]। अहं त्वशनिवेगस्य सुप्रभायां प्रभोऽभवम् ॥८३॥
राज्यं ज्वलनवेगोंऽते दत्त्वा मज्जनकाय सः[2]। प्रज्ञप्तियौवराज्यं च सूनवे मुनितामितः ॥८४॥

---

१ साऽन्यदाऽशनिवेगाय मत्पित्रे राज्यमूर्जितं। प्रज्ञप्तियुवराज्यं चांगारकाय सुसूनवे ॥
दत्त्वा जग्राह जैनेंद्रीं दीक्षां कर्मविनाशिनीं। नाम्ना चांगारको दुष्टो युवराजोऽन्यदा मम ॥
निर्द्धाध्य पितरं देशात्प्राज्यं राज्यं जहार सः। इति घ पुस्तके।

२ राजा राज्यं च मत्पित्रे प्रज्ञप्तिं च स्वसूनवे। दत्त्वा जग्राह जैनेंद्रीं दीक्षां कल्याणदायिनीं ॥
नाम्ना चांगारको दुष्टो युवराजोतिगर्वितः। निर्घाट्याशु नृप देशात्पाप्मा राज्यं जहार सः॥ इति क पुस्तके।

अंगारकोऽपि संग्रामे प्रज्ञः प्रज्ञप्तिविद्यया । निर्वाध्य मे पितुः शीघ्रं राज्यं प्राज्यं जहार सः ॥८५॥
तिष्ठत्यत्र पिता भ्रष्टः कुंजरावर्त्तपत्तने । नरकुंजर ! चितार्त्तः पिंजरस्थशकुंतवत् ॥८६॥
अन्यदाष्टापदं जातो दृष्ट्वा गिरिसमागतं । चारणश्रमणं नत्वा ज्ञात्वा त्रैलोक्यदर्शिनं ॥८७॥
पिता मे पृष्टवानेवं भगवन् ! दिव्यचक्षुषा । राज्यं पश्यसि मेऽवश्यं स्थाने नाथ ! पुनर्नवा ॥८८॥
कथितं मुनिना दिव्यचक्षुरुन्मील्य निर्मलं । श्यामायास्तव कन्यायाः पत्या राज्यपुनर्भवः ॥८९॥
पुनः पृष्टे कथं नाथ ! ज्ञायत इति स स्फुटं । तेनोक्तं यो जलावर्त्ते मदेभमदवर्त्तनः ॥९०॥
भविता तव कन्याया श्यामायाः पतिरित्यलं । तदादेशात्सरस्यां च द्वौ द्वौ तत्र नभश्चरौ ॥
पित्रा नित्यं नियुक्तौ मे तवास्थातां गवेषणे ॥ ९१ ॥
लब्धस्त्वमाचिरेणैव मन्मनोरथसारथिः । जायते जातुचिन्नाथ ! न हि मिथ्या मुनेर्वचः ॥९२॥
अंगारकेण वृत्तांतो निश्चितः स्यात्महि द्विपन् । धूमायमानमूर्त्तिर्नो धूमकेतुरिवोत्थितः ॥९३॥
अविद्याकुशलं त्वाऽसौ महाविद्यावलोद्धतः । विद्यावत्या मया मुक्त कदाचित्स हरेदरिः ॥९४॥
श्यामाया वचनं श्रुत्वा कोऽत्र दोपस्तथाऽस्त्विति । स्मेरः स्मेरमुखीं गाढं प्रियामुपजुगूह सः॥९५॥

१ नेयम्पंक्तिः ख पुस्तके ।

शिशिक्षे क्षतमत्सरः ॥ ९६ ॥
सविशेषमसौ तत्र विद्याधरजगद्गतं । हृद्यं गांधर्वविज्ञानं शिशिक्षे क्षतमत्सरः ॥९७॥
निःप्रमादतया याति तयोः काले कदाचन । चिराय सुरतक्रीडाखिन्नयोर्निशि सुप्तयोः ॥९८॥
संगत्यांगारकः स्वैरं विश्लिष्याश्लेषबंधनं । श्यामाया शयनात् जह्रे गरुडो वा नृपोरगं ॥९९॥
स्वं बुद्ध्वा ह्रियमाणं खे खेचरं स निरीक्षितं । कस्त्वं हरसि मां पाप मुंचमुंचेति भाषणः ॥१००॥
बुद्धाप्यांगारकं शत्रुं श्यामया कथिताकृतिं । नावधीद् बद्धमुष्टिः खादधःपतनशंकया ॥१०१॥
तावच्च सहसा बुद्ध्वा खड्गखेटकहस्तया । वेगिन्या प्राप्तया रुद्धः शौरिबध्वा सशूरया ॥१०२॥
तिष्ठ तिष्ठ दुराचार चौरखेचर निर्घृण ! हरसि प्राणनाथं मे जीवंत्यां मयि भोः कथं ॥१०३॥
राज्यस्थोऽपि न संतुष्टः सदाऽस्मद्दुःखचिंतक । चिरेणाद्य मया दृष्टः क्व प्रयासि मृतोऽधुना॥१०४॥
इति व्याहृत्य रुद्ध्वाऽग्रे खड्गमुद्गीर्य तां स्थितां । बभाण रिपुमात्मानं रक्षन् राक्षसरूक्षवाक् ॥१०५॥
श्यामिके स्त्रीवधो लोके गर्हितोऽपसराधमे । स्वसाऽपि मे कथं हस्तो हंतुमुद्यत्कृतिस्त्रिकां ॥१०६॥
का स्त्री का वा स्वसा भ्राता को वै कार्याभिलाषिणः । वैरिणो ननु हंतारो हंतव्या नात्र दुर्यशः॥१०७ ॥
सिंही व्याघ्री च किं पुंसां मारयंती न मार्यते । वृथा न्यायविचारोऽयं जहि यद्यस्ति पौरुषं ॥१०८॥
विद्याशाखाबलेनोत्थां रुद्धमार्गां जघान सः । खड्गधाराशिलाघातैः श्याममंगारकोत्करः ॥

अन्योन्यप्रतिघातोभूत्खड्गखेटकसंकटः[1] । खड्गस्यूतस्फुलिंगांगमंगारकमथाकरोत् ॥ १०९ ॥
मायायुद्धमिदं दृष्ट्वा तयोः स हृदये रिपुं । दृढमुष्टिप्रहारेण प्राणसदेहमावहत् ॥ ११० ॥
मुक्तश्च दुःखिना खिन्नः स खे श्यामानियुक्तया । स्वपुरं नीयमानोऽसौ तया खाद्ध्वनिरुद्धतः॥१११॥
खेटस्यैनात्र लाभोऽस्ति भविष्यो मुंच सांप्रतं । मुंचितो यादवेंद्रोऽसौ तया श्यामलछायया ॥११२॥
समर्पितः स्वविद्याया जगाम स्वगृहं प्रति । विद्यया पर्णलघ्वायं गां शनैः पर्णवल्लघुः ॥ ११३ ॥
वाह्योद्याने ऽथ चंपायाः पतितोंवुजसंगमे । सरस्यंवुरुहच्छन्ने तदुत्तीर्य तटीमितः ॥ ११४ ॥
मानस्तंभादिसंलक्ष्यं वासुपूज्यजिनालयं । परीत्य तत्र वंदित्वा दीपिकोज्ज्वलितेऽवसत् ॥ ११५ ॥
देवार्चनार्थमायातं प्रत्यूषे द्विजमत्र सः । अपृच्छद्विपयः कोऽयं पुरीयं चेति सोऽवदत् ॥११६॥
अंगो जनपदश्चंपा—पुरी त्रिभुवनश्रुता । किं न वेत्सि किमाकाशात्पतितस्त्वं महामते ॥ ११७ ॥
सत्यमेतद् द्विज! ज्ञातं किमु ज्योतिषविद् भवान् । अस्ति संवादि ते ज्ञानं नान्यथा जिनशासनं॥११८॥
हृतो यक्षकुमारीभ्यां रूपलोभान्नभस्तलात् । च्युतश्च पतितो भूमावन्योन्यकलहे तयोः ॥ ११९ ॥
इत्युत्तरमसौ दत्त्वा विप्रवेषधरोऽभवत् । पुरीं विशन् विशालाक्षो गंधर्वनगरीनिभां ॥ १२० ॥

---

१ प्रतिघातमनेकाऽभूत्खड्गखेटकसंकटा । इति क पुस्तके ।

लोकं वीक्ष्य तु तत्राऽसौ वीणाहस्तमितोऽमुतः । अप्राक्षीद्विप्रमेकं हि बभ्रमीतीति किं जनः ॥१२१॥
सोऽब्रवीच्चारुदत्ताख्यः कुबेरविभवः प्रभुः । पुर्यामिभ्यपतिस्तस्य तनयारूपगर्विता ॥ १२२ ॥
नाम्ना गंधर्वसेनेति गांधर्वपथपंडिता । गांधर्वे योऽत्र मे जेता स भर्त्तेत्यत्रतिष्ठते ॥ १२३ ॥
तदर्थमत्र लोकोऽयं मिलितो लोभनोदितः । वीणावादनविज्ञानो नानादेशसमागतः ॥ १२४ ॥
रूपलावण्यसौभाग्यसागरप्लवकारिणी । हरिणी हरिणीनेत्रा कन्या व्यमोहयज्जगत् ॥ १२५ ॥
कन्यार्थी च यशोऽर्थी च वीणाविधिविशारदः। ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो जयार्थी हि जनः स्थितः १२६
मासे मासे समाजश्च भवत्यत्र कलाविदां । सदा जयपताकाया हर्त्री कन्या सरस्वती ॥१२७॥
समाजः समतीतश्च ह्यस्तनेऽहनि सांप्रतं । गुणनैकमनस्कानां पुनर्मासेन जायते ॥१२८॥
उपाध्यायः प्रसिद्धोऽत्र किंनामा सांप्रतं पुरि । वदेति तेन पृष्टश्च जगौ सुग्रीव इत्यसौ ॥१२९॥
ऊचे गत्वेति सुग्रीवमभिवाद्य गृहीव सः । गौतमो गोत्रतस्तेऽहं कर्त्तुमिच्छामि शिष्यतां ॥१३०॥
अभिरूपोऽतिमुग्धोऽयमिति मत्वा दयावता । प्रतिपन्नश्च तत्रास्थाद्वीणया हासयज्जनं ॥१३१॥
संप्राप्ते दिवसे तस्मिन् समाजोऽभूत्स पूर्ववत् । वसुदेवोऽपि संविश्य पश्यति स्म महाजनं ॥१३२॥
सा चुक्षोभ सभा लोकैर्वाद्यश्रवणवेदिभिः । कौतूहलिभिरन्यैश्च महाकोलाहलाकुलैः ॥१३३॥

ततः कन्या सभामध्यमविशद्विशदप्रभा । स्वलंकृता दिवो मध्यं प्रावृषीव शतहृदा ॥१३४॥
वीणावाद्यविदग्धेषु जितेषु बहुषु क्रमात् । गंधर्वसेनया यद्वत् मूर्तगांधर्वविद्यया ॥१३५॥
वसुदेवः समासीनस्ततः सोऽपि वरासने । समानीताः समानीतां वीणाः स समदूषयत् ॥१३६॥
सुघोषाख्यां ततो वीणां दत्तां गंधर्वसेनया । सुसप्तदशतंत्रीकां संताड्य मुदितोऽवदत् ॥१३७॥
साध्वी साध्वी सुवीणेयं प्रवीणे ! दोषवर्जिता । वद गांधर्वसेने ! ते गेयवस्तु मनीषित ॥१३८॥
मूद्रूपवीणयाम्येषामादेशस्थानमग्रतः । विदुषां दीयतां मेऽद्य गेयवस्तुनि पंडिते ॥ १३९ ॥
साऽऽह विष्णुकुमारस्य बलिबंधनकारिणः । त्रिविक्रमकृतौ गीतं हाहातुंबुरुनारदैः ॥१४०॥
यत्तदद्य त्वया वस्तु वाद्यतां वाद्यविद् यदि । पुराणप्रतिबद्धं हि गेयवस्तु प्रशस्यते ॥ १४१ ॥
ततं चाप्यनवद्धं च घनं सुषिरमित्यपि । यथास्वं लक्षणैर्युक्तमातोद्यं स्याच्चतुर्विधं ॥ १४२ ॥
ततं तंत्रीगतं तेषामनवद्धं हि पौष्करं । घनं तालस्ततो वंशस्तथैव सुषिराख्यया ॥ १४३ ॥
प्राणिप्रीतिकरं प्रायः श्रवणेंद्रियतर्पणात् । गांधर्वदेहसंबद्धं ततं गांधर्वमीरितं ॥ १४४ ॥
वीणा वंशश्च गानं च तस्य योनिरितीरितं । गांधर्वं त्रिविधं चैतत्स्वरतालपदे गतं ॥ १४५ ॥
वैणाश्चापि च शारीरा द्विविधास्तु स्वराः स्मृताः । विधानं लक्षणं चापि तेषामिति निरूपितं ॥१४६॥

अतिवृत्तिस्वरग्रामवर्णालंकारमूर्च्छनाः । धातुसाधारणाज्याश्चै[1] दारुवीणां स्वराः स्मृताः ॥१४७॥
जातिवर्णस्वरग्रामस्थानसौधरणाक्रियाः । सालंकारविधिश्चायं शारीरस्वरगोचरः ॥ १४८ ॥
अतितद्धितवृत्तानि संधिस्वरविभक्तयः । नामाख्यातोपसर्गाद्या वर्णाद्यास्ते पदे विधिः ॥ १४९ ॥
आवायश्चापि निःक्रामो विक्षेपश्च प्रवेशनं । शम्याताले परावर्त्तः सन्निपातः सवस्तुकः ॥१५०॥
मंत्राविदार्यगलयागातिप्रकरणं यतिः । गीती च मार्गावयवाः पादभागाः सपाणयः ॥ १५१ ॥
द्वाविंशतिप्रमाणोऽयं विधिस्तालगतस्तदा । गंधर्वसंग्रहस्तत्र प्रयुक्तस्तेन विस्तरः ॥ १५२ ॥
षड्गश्चाप्यृषभश्चैव गांधारो मध्यमोऽपि च । पंचमो धैवतश्च स्यान्निषादः सप्तमः स्वरः ॥१५३॥
वादी चापि च संवादी तौ विवाद्यनुवादिनौ । प्रयुक्ता वसुदेवेन चत्वारोऽमी यथाक्रमं ॥१५४॥
संवादो मध्यमग्रामे पंचमस्यर्षभस्य च । षड्गग्रामे च षड्गस्य संवादः पंचमस्य च ॥ १५५ ॥
षड्गश्चतुःश्रुतिश्च स्यादृषभास्त्रिश्रुतिस्तथा । गांधारो द्विश्रुतिश्चैव मध्यमश्च चतुःश्रुतिः ॥ १५६ ॥
चतुर्भिः पंचभिश्चैव द्विश्रुतिर्धैवतस्तथा । त्रिश्रुतिश्च निषादोऽपि षड्गग्रामे स्वरास्त्वमी ॥१५७॥
चतुःश्रुतिश्च विज्ञेयो मध्यमे मध्यमाश्रयः । द्विःश्रुतिश्चैव गांधार ऋषभास्त्रिश्रुतिः स्मृतः ॥१५८॥

१ 'द्याश्च' इति ख पुस्तके ।

षड्गश्चतुःश्रुतिश्चैव निषादो द्विश्रुतिस्तथा । धैवतस्त्रिश्रुतिर्ज्ञेयः पंचमस्त्रिश्रुतिस्तथा ॥ १५९ ॥
द्वाविंशतिस्त्विमा वेद्या श्रुतयोऽत्र निदर्शनात् । द्वैग्रामिक्यस्तथैव स्युर्मूर्च्छनास्तु चतुर्दश॥१६०॥
आदावुत्तरमंद्रा स्याद् रजनी चोत्तरायता । चतुर्थी शुद्धषड्गा तु पंचमी मत्सरीकृतः ॥ १६१ ॥
अश्वक्रांता तथा षष्ठी सप्तमी चाभिरुद्गता। षड्गग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेयाः सप्त मूर्च्छनाः॥१६२॥
सौवीरी हरिणाश्वा च स्यात्कलोपनता तथा । शुद्धमध्यमसंज्ञा च मार्गवी पौरवी तथा ॥१६३॥
रिष्यका सप्तमी चेति मूर्च्छनाः सप्त वर्णिताः । मध्यमग्रामसंभूता बोद्धव्या बुधसत्तमैः ॥१६४॥
षड्गेनोत्तरमंद्रा स्याद्दषभेनाद्रिरुद्गता । अश्वक्रांता तु गांधारे मध्यमे मत्सरीकृता ॥ १६५ ॥
पंचमे शुद्धषड्गा स्याद्धैवते चोत्तरायता । निषादे रजनी ज्ञेया इत्येता सप्त मूर्च्छनाः ॥ १६६ ॥
मध्यमग्रामजाश्चापि मध्यमे गंधरर्षभैः । षड्गेन च निषादेन धैवतेन च मूर्च्छनाः ॥ १६७ ॥
पंचमेन च विज्ञेया सौवीर्याद्या यथाक्रमं । रिष्यकांता इतीमाश्च ताश्चतुर्दश मूर्च्छनाः ॥ १६८ ॥
षट्पंचैकस्वरास्तानाः षाडवौडवसंश्रयाः । साधारणकृताश्चैव काकलीसमलंकृता ॥ १६९ ॥
आंतरस्वरसंयुक्ता मूर्च्छना ग्रामयोर्द्वयोः । द्विधैकमूर्च्छनासिद्धिर्यथायोगमुदाहृताः ॥ १७० ॥
तानाश्चतुरशीतिः स्युः पंचषट्स्वरसंभवाः । ते पंचत्रिंशदेकान्नपंचाशच यथाक्रमं ॥ १७१ ॥

अतरस्वरसंयोगो नित्यमारोहिसंश्रयः। कार्योऽह्यल्पविशेषेण नावरोही कदाचन ॥ १७२ ॥
क्रियमाणोऽवरोही स्यादल्पो वा यदि वा बहु। याति रागं श्रुतिश्चैव नयते स्वं ततस्वरः॥१७३॥
षड्गी स्यादार्षभी चैव धैवत्यथ निषादजा। सुषड्गा दिव्यवाचैव तथा वै षड्गकौशिकी॥१७४॥
षड्गमध्या तथा चैव षड्गग्रामसमाश्रया। जातयोऽष्टादशोद्दिष्टा मध्यमग्रामजाश्रिताः ॥१७५॥
गांधारी मध्यमा चैव गांधारी दिव्यवा तथा। पंचमी रक्तगांधारी तथाऽन्या रक्तपंचमी॥१७६॥
मध्यमोदिव्यवा चैव नंदयंती तथैव च। कर्मारवी च विज्ञेया तथांध्री कौशिकी तथा ॥१७७॥
स्वरसाधारणगतास्तिस्रो ज्ञेयास्तु जातयः। मध्यमा षड्गमध्या च पंचमी चेति सूरिभिः॥१७८॥
ताश्चापि द्विविधाः शुद्धा विकृताश्च प्रकीर्त्तिताः। अपरस्परनिष्पन्ना ज्ञेयाश्चैव तु जातयः॥१७९॥
अपृथग्लक्षणैर्युक्ता द्वैग्रामिक्यः स्वरप्लुताः। चतस्रो जातयो नित्यं ज्ञेयाः सप्त स्वरा बुधैः॥१८०॥
चतस्रः षट्स्वराश्चान्या दश पंच स्वराः स्मृताः। मध्यमो दीव्यवा चैव तथा वै षड्गकौशिकी॥१८१॥
कर्मारवी च संपूर्णा तथा गांधारपंचमी। षड्गांध्री नंदयंती च गांधारो दीव्यवा तथा ॥१८२॥
चतस्रः षट् स्वरा ह्येताः शेषाः पंच स्वरा दश। निषादवृषभी चैव धैवती षड्गमध्यमा ॥१८३॥
षड्गोदीच्यवती चैव पंच षड्गाश्रया स्मृताः। गांधारी रक्तगांधारी मध्यमा पंचमी तथा॥१८४॥

कौशिकी चेति विज्ञेया पंचैता मध्यमाश्रयाः । यास्ताः पंच स्वरा ज्ञेया याश्चैताः षट् स्वराः स्मृताः ॥
कदाचित् षोडशी भूता कदाचित् षड्वीकृताः । षड्गग्रामे च संपूर्णा विज्ञेया बहुकौशिकी ॥१८६॥
षट् स्वराश्चैव विज्ञेया षड्गे ता गानयोगतः । संपूर्णा मध्यमग्रामे ज्ञेया कर्मारवी तथा ॥ १८७ ॥
गांधारपंचमी चैव मध्यमोदीच्यवा तथा । पुनश्च षट्स्वरोपेता गांधारोदीच्यवा तथा ॥१८८॥
आंध्री च नंदयंती च मध्यमग्रामसंश्रयाः । एवमेता बुधैर्ज्ञेया द्वैग्रामिक्यो हि जातयः ॥ १८९ ॥
षट् स्वरैः सप्तमस्त्वंशो नेष्यते षड्गमध्यमः । संवादिलोपाद् गांधारस्तत्रैव न विशिष्यते ॥१९०॥
गांधारी रक्तगांधारी कैशिकीनां च पंचमः । षड्गायाश्चैव गांधारी मनसं द्विद्विषाडवं ॥१९१॥
षाडवे धैवतो नास्ति षड्गोदीच्या वियोगतः । संवादिलोपात्सप्तैताः षट्स्वरेण विवर्जिताः॥१९२॥
आसां तु रक्तगांधार्याः षड्गमध्यमपंचमाः । सप्तमश्चैव विज्ञेयो येषु नौडवितं भवेत् ॥ १९३ ॥
द्वौ षड्गमध्यमावंशौ गांधारोऽथ निषादवान् । ऋषभश्चैव पंचम्याः कौशिक्याश्चैव धैवतः॥१९४॥
एवं तु द्वादशैवेह वर्ज्या पंच स्वरे सदा । यास्तु नौडविता नित्यं कर्तव्या हि स्वराश्रयाः॥१९५॥
सर्वस्वराणां नाशस्तु विहितस्त्वथ जातिषु । न मध्यमस्य नाशस्तु कर्तव्यो हि कदाचन॥१९६॥
सर्वस्वराणां प्रवरो ह्यनाशान्मध्यमः स्मृतः । गांधर्वकल्पे विहिते समस्तेष्वपि मध्यमः ॥ १९७ ॥

अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौदुचिते तथा ॥१९८॥
जातीनां लक्षणं तारो मंद्रो न्यासादिरेव च । यथा यस्मिन् रसे यावदिति तत्प्रतिपाद्यते ॥ १९९ ॥
एवमेता बुधैर्ज्ञेया जातयो दशलक्षणाः । मंद्रश्च तारमंद्रश्च योऽत्यर्थमुपलभ्यते ॥ २०० ॥
यस्मिन् भवति रागश्च यस्माच्चैव प्रवर्त्तते । अनुवृत्तिश्च या चेह सोंऽशः स्यादुपलक्षणः ॥२०१॥
ग्रहोपन्यासविन्याससंन्यासन्यासगोचरः । द्विविधोत्तरमार्गस्तु जातीनां व्यक्तिकारकः ॥२०२॥
संसारोत्साचलस्थानमल्पत्वं दुर्बलासु च । गांधारो न्यासलिंगं तु दृष्टमार्षभमेव च॥२०३॥
मंद्रात्वं पसरो नास्ति न्यासौ तु द्वाववस्थितौ । यत्प्रवृत्ते भवेदंशः सोंऽशो ग्रहविवर्जितः ॥ २०४ ॥
ग्रहस्तु सर्वजातीनामंशवत् परिकीर्त्तितः । अंशास्त्रिषष्टिर्विज्ञेयास्तासां वै षट् सुसंग्रहं ॥२०५॥
द्वैग्रामिकीनां जातीनां सर्वासां चैव नित्यशः । ततो गांधारपंचम्यां पंचमोंऽशो ग्रहस्तथा ॥ २०६ ॥
मध्यमोदीच्यवायास्तु नंदयंत्यास्तथैव च । पंचम्याश्च तथा ज्ञेयौ ग्रहांशौ पंचमर्षभौ ॥ २०७ ॥
धैवत्याश्च तथा द्व्यंशौ विज्ञेयौ धैवतर्षभौ । आर्षभ्यास्तु तथा चैव विज्ञेया धैवतर्षभौ ॥ २०८ ॥
गांधारो दीच्यवायाश्च ग्रहांशौ षड्जमध्यमौ । तथैव षड्गकौशिक्याः षड्गगांधारमध्यमाः ॥ २०९ ॥
निषादः षाडवश्चैव गांधारोऽथर्षभस्तथा । गांधार ऋषभश्चैष निषादः पंचमस्तथा ॥ २१० ॥
तिसृणामपि जातीनां ग्रहान्यासाश्च कीर्त्तिताः ।

ग्रहाद्यंगाश्च चत्वारस्तथैवांत्याः प्रकीर्त्तिताः । पड्गश्चाप्यृपभश्चैव मध्यमः पंचमस्तथा ॥ २११ ॥
मध्यमायां ग्रहांशौ तु गांधारो धैवतस्तथा । निपादपड्गगांधारा मध्यमाः पंचमस्तथा ॥२१२॥
गांधारो रक्तगांधार्यां गृहांशाः परिकीर्त्तिताः। अंचितर्पभयोगास्तु कौशिकांशा ग्रहास्तथा॥२१३॥
स्वराः सर्वे च विज्ञेयाः ग्रहाशौ पड्जमध्यमौ। एवं त्रिपष्टिर्विज्ञेया ग्रहाश्चांशाःस्वजातपु ॥२१४॥
अंशवच्च ग्रहा ज्ञेयाः सर्वास्वपि हि जातपु । सर्वासामेव जातीनां त्रिजात्यस्तु गुणाःस्मृताः॥२१५॥
पड्गुणस्तेपु विज्ञेया वर्द्धमानाः स्वरास्तथा ।एकस्वरो द्विस्वरश्च त्रिस्वरोऽथ चतुःस्वराः ॥२१६॥
पंचस्वरस्तथा चैव पट्स्वराः सप्तकस्तथा। पूर्वमुक्तमिदं त्वासां ग्रहांशपरिकल्पनं ॥ २१७ ॥
पंचैव तु भवेत् पड्गे निपादर्पभहीनतः।उपन्यासा भवंत्यत्र गांधारः पंचमस्तथा ॥ २१८ ॥
न्यासश्चात्र भवेत् पष्ठो लोपो वै सप्तमर्पभौ ।गांधारस्य तु बाहुल्यं तत्र कार्यं प्रयोक्तृभिः ॥२१९॥
आर्पभ्यास्तु तथा त्वंशौ निपादो धैवतस्तथा । एतावंतो ह्युपन्यासा न्यासश्चाप्यार्पभस्तथा ॥२२०॥
धैवत्या धैवतश्चैव न्यासश्चैवार्पभः स्मृतः।उपन्यासा भवंत्यत्र धैवतर्पभपंचमाः ॥ २२१ ॥
पड्गपंचमहीनं च पंचस्वर्यं विधीयते। पंचमे च विना चैव पाडवः परिकीर्तितः ॥ २२२ ॥

१ कौशिकीसग्रहास्तथा इति ख पुस्तके ।

आरोहणीयौ तौ कार्यौ लंघनीयौ तथैव च । निषादश्चर्षभश्चैव गांधारो बलवाँस्तथा ॥ २२३ ॥
निषादश्च निषादोऽसौ गांधारश्चर्षभस्तथा । एवमेते ह्युपन्यासा न्यासश्चैव तु सप्तमः ॥ २२४ ॥
धैवत्या अपि कर्त्तव्यो षाडवौडविकौ तथा । तद्वच्च लंघनीयौ तु बलवंतौ तथैव च ॥ २२५ ॥
अंशास्तु षड्जकैशिक्या ज्ञेयौ गांधारपंचमौ । उपन्यासाश्च विज्ञेयाः षड्पंचममध्यमाः ॥ २२६ ॥
गांधारश्च भवेन्न्यासो हीनस्वर्यं नवात्र तु । दौर्बल्यं चात्र कर्त्तव्यं धैवतस्यर्षभस्य च ॥२२७॥
षड्जश्च मध्यमश्चैव निषादो धैवतस्तथा । षड्जगोदीच्यवांशास्तु न्यासश्चैवात्र मध्यमः ॥२२८॥
उपन्यासस्तथा चैव धैवतः षड्ज एव तु । परस्परांशातिगमच्छंदतश्च विधीयते ॥२२९॥
पंचमर्षमहीनं तु पंचमं यत्तु तत्र वै । षड्जश्चाप्यर्षभश्चैव गांधारश्च बली भवेत् ॥२३०॥
षड्जमध्यास्तु सर्वेषामुपन्यासास्तथैव च । षड्जश्च सप्तमश्चैव न्यासौ कार्यौ प्रयोक्तृभिः ॥२३१॥
गांधारं सप्तमोपेतं पंचस्वर्यं च तद् भवेत् । षाडवः सप्तमोपेतः कार्यश्चैवात्र योगतः ॥२३२॥
सर्वस्वराणां संचार इष्टवस्तु विधीयते । षड्जग्रामाश्रया ह्येताः विज्ञेयाः सप्त जातयः ॥२३३॥
गांधार्याः पंचधैवांशा धैवतर्षभवर्जिताः । षड्जश्च पंचमश्चैव ह्युपन्यासाः प्रकीर्त्तिताः ॥२३४॥
गांधारोऽत्र भवेन्न्यासौ षाडवर्षभसंभवः । धैवतर्षभहीनं च तथा चौड्डवितं भवेत् ॥२३५॥

लंघनीयौ च तौ नित्यमार्षभाद्धैवतं व्रजेत्। इति गांधाराविहितः स्वरन्यासांशसंचरः ॥२३६॥
लक्षणं रक्तगांधार्या एवं तत्समतां गतं। बलवांश्चैव तत्र स्याद्धैवतः पंचमस्तथा ॥२३७॥
गांधारषड्जयोश्चाऽत्र संचारो ह्युभयं विना। उपन्यासो मध्यमस्तु मध्यमस्तु विधीयते[1] ॥२३८॥
बहुमध्यमयोश्चाऽत्र कार्यं बाहुल्यमेव हि। गांधारलंघनं चात्र नित्यं कार्यं प्रयोक्तृभिः ॥२३९॥
मध्यमोदीच्यवायाः स्यादेको ह्यंशस्तु मध्यमः। शेषो विधिश्च कर्त्तव्यो मध्यमायास्तु यो भवेत्।२४०।
द्वादशावथपंचम्यामृषभः पंचमस्तथा। उपन्यासो भवेदेको न्यासश्चैव तु पंचमः ॥२४१॥
मध्यमाया विधिर्योऽत्र षाडवौडविते तथा। दौर्बल्यं चात्र कर्त्तव्यं षड्गांधारपंचमैः ॥२४२॥
कुर्यादत्र संचारं पंचमस्यर्षभस्य च। गांधारगमनं चैव कुर्यादपि च पंचमैः ॥२४३॥
अथ गांधारपंचम्याः पंच दोषाः प्रकीर्त्तिताः। पंचमश्चर्षभश्चैव ह्युपन्यासः प्रकीर्तितः ॥२४४॥

---

१ ख पुस्तके अस्मादग्रेतनः पाठः—

गाधारोदीच्यवायास्तु विज्ञेयौ षड्जमध्यमौ। सप्तमश्च ततोऽन्यत्र षट्स्वर्थमृषभं विना ॥
कार्यःस्वंतरमार्गश्च न्यासोपन्यास एव च। गांधारोदीच्यवायास्तु तत्र सर्वो विधिः स्मृतः ॥
मध्यमायाः भवेदंशौ विना गधार सप्तमः। एक एव ह्युपन्यासो न्यासश्चैव तु मध्यमः ॥
गांधारसप्तमोपेतं पंचस्वर्थं विधीयते। षट्स्वरं चापि गांधारं कर्त्तव्यं तु प्रयोगतः ॥

न्यासश्चैवानुगांधारः स च पूर्वस्वरो भवेत् । पंचम्यास्त्वथ गांधार्याः संचरः संविधीयते ॥२४५॥
ऋषभः पंचमश्चैव गांधारोऽथ निषादवान् । चत्वारोंऽशास्तथा चैतद्ध्युपन्यासास्त एव च ॥२४६॥
गांधारश्च तथा न्यासः षड्जोपेतश्च षाडवः । गांधारर्षभयोश्चापि संचरस्तु परस्परं ॥२४७॥
सप्तमस्य च षष्ठस्य न्यासगत्यनुपूर्वशः । षड्जस्य लंघनं चात्र नास्ति चौडुवितं तथा ॥२४८॥
मंदयंत्या अपि न्यासा अंशाश्चापि तथैव च । गांधारो मध्यमश्चैव पंचमश्चैव नित्यशः ॥२४९॥
न षड्जो लंघनीयोंशौ न चांध्रीसंचरस्मृतः । लंघनं ह्यर्षभश्चात्र तच्च मंद्रगतं स्मृतं ॥२५०॥
तारे चापि ग्रहे कार्यस्तथा न्यासश्च नित्यशः । कर्मारव्यास्तथा ह्यंश ऋषभः पंचमस्तथा ॥२५१॥
धैवतश्च निषादोऽपि ह्युपन्यासः प्रकीर्त्तितः । पंचमश्च भवेन्न्यासो हीनस्वर्यस्तथैव च ॥२५२॥
गांधारस्य विशेषेण सर्वतो गमनं भवेत् । कौशिक्यास्तु सषड्जायाः सर्वे चैवार्षभं विना॥२५३॥
एत एव ह्युपन्यासा गांधारः सप्तमो भवेत् । धैवतं सनिषादे च न्यासः पंचम एव च ॥२५४॥
उपन्यासः कदाचित् स ऋषभोऽभिविधीयते । द्व्यार्षभं षाडवं चात्र धैवतं चर्षभं विना ॥२५५॥
तथा चौडवितं कुर्याद्बलिनश्चात्र पंचमः । दौर्बल्यमृषभस्यात्र लंघनं च विशेषतः ॥२५६॥

सषड्जो मध्यमश्चात्र संचारस्तु विधीयते। यथा रसं विना योज्या जातयः स्वरसंचराः ॥२५७॥
इत्यादि स यथायोग्यं तथा गंधर्वविस्तारे। सुगीते वसुदेवेन श्रोतारो विस्मयं ययुः ॥ २५८॥
तुंबुरुर्नारदः किंवा गंधर्वः किंनरो ह्ययं। वीणावादनमीदृक्षं कुतोऽन्यस्येति वेदनं ॥ २५९ ॥
विष्णुगीतक्रमोद्देशस्थानं गीतं सुवीणया। श्रुत्वा गांधर्वसेनाऽभूद्विस्मिता च निरुत्तरा ॥२६०॥
तदा जयपताकायां वसुदेवेन संसदि। गृहीतायां समुत्तस्थौ गंभीरःसाधुनिस्वनः ॥ २६१ ॥
अनुरागवती वव्रे वसुदेवं स्वभावतः। कंठे कंठगुणं कन्या कुर्वती तस्य संसदि ॥ २६२ ॥
गंधर्व इव देवोऽसौ वृतो गंधर्वकन्यया। गांधर्वसेनया हर्षसंबंधं जगतो व्यधात् ॥ २६३ ॥
चारुदत्तस्ततस्तुष्टो यथोक्तविधिना ततः। विवाहो मगधाधीशो निरवर्त्तयदेतयोः ॥ २६४ ॥
सुग्रीवश्च यशोग्रीव उपाध्यायो च कन्यके। वितीर्य वसुदेवाय नितांतं तोषमापतुः॥ २६५ ॥
कलागुणविदग्धाभिस्ताभिरानकदुंदुभिः। रामाभिरभिरामाभिश्चिरं चिक्रीड तत्र सः ॥ २६६ ॥

लब्ध्वा लुब्धेन रंध्रं कथमपि हरता वैरिणा खेऽतिदूरं
नीत्वा मुक्तं पतंतं गतशरणमधः पद्मखंडोपधानं।

कृत्वा यः शीघ्रमस्मिन्झटिति घटयति प्राज्यलाभैःपुमांसं
कर्त्तुं भव्यास्तमेकं पथि जिनकथिते धर्मबंधुं यतध्वं ॥ २६७ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृतौ गांधर्वसेनावर्णनो नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ।

विंशतितमः सर्गः ।

अथापृच्छत्पृथुश्रीकः श्रेणिकोऽत्र गणेश्वरं । कथं विष्णुकुमारेण विभो बालिरबध्यत ॥ १ ॥
अभणीद्गणमुख्यश्च शृणु श्रेणिक ! वैष्णवीं । दृष्टिशुद्धिकरीं श्रव्यां सत्कथां कथयामि ते ॥ २ ॥
उज्जयिन्यां भवेद्राजा श्रीधर्मो नाम विश्रुतः । श्रीमती श्रीमती तस्य महादेवी महागुणा ॥ ३ ॥
चत्वारो मंत्रिणश्चास्य मंत्रमार्गविदो बालिः । वृहस्पतिश्च नमुचिःप्रल्हाद इति चांचितः ॥ ४ ॥
अन्यदा श्रुतपारस्थः ससप्तशतसंयतः । आगत्याकंपनस्तस्थौ बाह्योद्याने महामुनिः ॥ ५ ॥
वंदनार्थं नृपो लोकं निर्यातमिव सागरं । प्रासादस्थस्तदालोक्य मंत्रिणोऽपृच्छदित्यसौ ॥ ६ ॥
अकालयात्रया लोकः क यातीति ततो बालिः । राजन्नज्ञानिनो द्रष्टुं श्रमणानित्यवेदयत् ॥ ७ ॥
ततो जिगमिषू राजा निषिद्धोऽपि बलाद् ययौ । मंत्रिणोऽपि सहागत्य दृष्ट्वा किंचिदवीवदन् ॥८॥

गुर्वादेशाच्च संघोऽपि स्थितो मौनमुपाश्रितः। यांतःप्रतिनिवृत्यामी संमुखं वीक्ष्य योगिनं ॥९॥
अनूनुदं नृपाध्यक्षं मिथ्यामार्गविमोहिताः। प्रमाणमार्गतस्तान् सः जिगाय श्रुतसागरः ॥ १० ॥
स्थितं प्रतिमया रात्रौ जिघांसूस्तांश्च तद्दिवा। देवतास्तंभितान् दृष्ट्वा राजा देशादपाकरोत् ॥ ११ ॥
तदा नागपुरे चक्री महापद्म इतीरितः। अष्टौ च कन्यकास्तस्य ताश्च विद्याधरैर्हृताः ॥ १२ ॥
आनीताः शुद्धशीलास्ताः संवेगिन्यः प्रवव्रजुः। तेऽपि संवेगिनोऽष्टौ च खचराः तपसि स्थिता॥१३॥
चक्रवर्ती च तद्धेतोः पद्मं लक्ष्मीमतीसुतं। ज्येष्ठं राज्ये निधायांत्यदेहोऽदीक्षिष्ट विष्णुना ॥१४॥
तपो विष्णुकुमारोऽसौ रत्नत्रयधरस्तपन्। निधिर्बभूव लब्धीनां नदीनां वा नदीपतिः ॥१५ ॥
नवराज्यस्थमागत्य पद्मं वलिपुरोगमाः। मंत्रिणोऽशिश्रियन् देशकालावस्थाविदस्तथा ॥१६॥
स्थितं सिंहबलं दुर्गे पद्मो वल्युपदेशतः। गृहीत्वाऽऽह गृहाणेष्टं वरीत्वेति वलिस्तदा ॥१७॥
तं प्रणम्य विदग्धोऽसौ हस्तन्यासं न्यधाद् वरं। ततः संतोषिणां तेषां काले याति कदाचन॥१८॥
आगत्याकंपनाचार्यस्तदा नागपुरं शनैः। मुनीनामग्रहीद् योगं चातुर्मास्यावधिं बहिः ॥१९॥
ततस्ते मंत्रिणो भीताः शंकाविषमुपागताः। तदपाकरणोपायं चिंतयंति स्म सस्मयाः ॥२०॥
अब्रवीद् वलिराश्रित्य पद्मं राजन्! वरस्त्वया। दत्तः स दीयतां मेऽद्य राज्यं सप्तदिनावधि ॥२१॥

दत्तं गृहाण ते राज्यमित्युक्त्वाऽदृश्यवत्स्थितः। राज्यस्थोऽपि बलिस्तेषामुपद्रवमकारयत् ॥२२॥
यतीनभ्यंतरीकृत्य परितोऽहर्निशं कृतः। पत्रधूमादिकोच्छिष्टशरावोत्सर्जनादिकं ॥२३॥
उपसर्गसहास्तेऽपि कायोत्सर्गेण योगिनः। तस्थुः सालंबमादाय प्रत्याख्यानं सद्वरयः ॥२४॥
तस्मिन् काले गुरुर्विष्णोर्मिथिलायामवस्थितः। दिव्यज्ञानी जगौ ध्यात्वा स संयुक्तोऽनुकंपया २५
आचार्याकंपनादीनां ससप्तशतयोगिनां। वर्त्तते वृत्तपूर्वोऽयमुपसर्गोऽद्य दारुणः ॥२६॥
क्षुल्लकः पुष्पदंतस्तं क्व नाथेत्यतिसंभ्रमः। अप्राक्षीदित्यथ प्राह हास्तिनपुरे स्फुटं ॥२७॥
कुतोऽपवर्त्तते नाथ स इत्युक्ते जगौ गुरुः। प्राप्तवैक्रियकसामर्थ्याद्विष्णोर्जिष्णोर्विबुध्यतः॥२८॥
तस्मै स क्षुल्लको गत्वा तमुदंतं न्यवेदयत्। विक्रियालब्धिसद्भावपरीक्षामकरोन्मुनिः ॥२९॥
बाहुः प्रसारितस्तेन गिरिभित्तौ विभिद्यतां। अरुद्धः प्रसरो दूरं सहसाप्सु यथा तथा ॥३०॥
ज्ञातलब्धिपरिप्राप्तिर्जिनशासनवत्सलः। गत्वा पद्मं मुनिः प्राह प्रणतं प्रणतप्रियः ॥३१॥
पद्मराज ! किमारब्धं भवता राज्यवर्त्तिना। न वृत्तं कौरवेष्वत्र कदाचिदपि यद्भुवि ॥३२॥
अनार्यजनसंवृत्तमुपसर्गं तपस्विनां। निवर्त्तयेन्नृपस्तस्य प्रवृत्तिस्तु कुतस्ततः ॥३३॥
निर्वाप्यते ज्वलन्नग्निर्जलेन सुमहानपि। उत्तिष्ठेद् यद्यसौ तस्मात्तस्य शांतिः कुतोऽन्यतः ॥३४॥

न त्वाऽऽज्ञाफलमैश्वर्यमाज्ञादुर्वृत्तशासनं । ईश्वरः स्थाणुरप्युक्तक्रियाशून्यो यदीश्वरः ॥३५॥
तन्निवर्त्तय दुर्वृत्ताद्बलिमाशु पशूपमं । प्रद्वेषः कोऽस्य मित्रारिसमभावेषु साधुषु ॥३६॥
साधोः शीतलशीतस्य तापनं न हि शांतये । गाढतप्तो दहत्येव तोयात्मा विकृतिं गतः ॥३७॥
धीराः प्रच्छन्नसामर्थ्याः सुगाढा बद्धमूर्त्तयः। साधवोऽपि कदाचित स्युर्दाहका ननु चाग्निवत् ॥३८॥
तेन ते यावदायाति नापायो बल्युपेक्षणं । नृप ! तावन्निवर्त्तस्व मोपेक्षस्व स्वतोऽन्यतः ॥३९॥
पद्मस्ततो नतः प्राह नाथ ! राज्यं मया बलेः । सप्ताहावधिकं दत्तं नाधिकारोधुनाऽत्र मे ॥४०॥
त्वमेव भगवन् गत्वा साधि ते कुरु ते वचः । बलिर्दाक्षिण्यतोऽक्षूणादित्युक्ते बलिमाप सः ॥४१॥
आह चैनमथो साधो ! किं दिनार्द्धनिमित्तकं । संवर्द्धनमधर्मस्य कुरुषे कर्म गर्हितं ॥४२॥
तपः कर्मैकनिष्ठैस्तैः किमनिष्टमनुष्ठितं । वरिष्ठेन त्वया येषु कनिष्ठेनेव यत्कृतं ॥४३॥
स्वकर्मबंधभीरुत्वान्नान्यानिष्टं कदाचन । तपस्विनो विचेष्टंते मनोवाक्कायकर्मभिः ॥४४॥
तदित्थमुपशांतेषु न ते युक्त दुरीहितं । उपसंहर शांत्यर्थमुपसर्गं प्रमादज ॥४५॥
ततो बलिरुवाचामी यांति मे यदि राज्यतः। तदा निरुपसर्गः स्यादन्यथा तदवस्थितिः ॥४६॥
विष्णुरुचे स्वयोगास्था न यांति पदमप्यतः । कुर्वंत्यमी तनुत्यागं न व्यवस्थितिलंघनं ॥४७॥

मातिकर्कशमात्मानं कुर्वयाचकयाचितः ॥४८॥
अनुमन्यस्व मे भूमिं स्थातुं तेषां पदत्रयं । मा दोषोऽत्र विद्यते ॥४९॥
अनुमन्याब्रवीदित्थं तद्बहिः पदमप्यमी । यद्यतीयुस्ततो दंड्या न मे दोषोऽत्र विद्यते ॥४९॥
तदा हि पुरुषो लोके प्रत्यवायेन युज्यते । यदा प्रच्यवते वाक्यात् न तु वाक्यस्य पालकः ॥५०॥
तं छलव्यवहारस्थमविनेयमनार्जवं । दुष्टाहिमिव दुःशीलं वशीकर्त्तुं प्रचक्रमे ॥५१॥
मिमामि पाप ! पश्य त्वं पदत्रयमितीरयन् । व्यंजृंभत महाकायो ज्योतिःपटलमास्पृशन् ॥५२॥
मेरावेकक्रमो न्यस्तो द्वितीयो मानुषोत्तरे । अलाभादवकाशस्य तृतीयोऽभ्रमदंबरे ॥५३॥
तदा विष्णोः प्रभावेन क्षुभिते भुवनत्रये । किं किमेतदितिध्वाना जाताः किंपुरुषादयः ॥५४॥
अनुकर्णं मुनेस्तस्य वीणावंशादिवादिनः । मृदुगीताः सनारीकाः जगुर्गंधर्वपूर्वकाः ॥५५॥
तस्य रक्ततलः पादो भ्रमन् स्वैरं नभस्यभात् । संगीतकिंनरादिस्त्रीमुखाब्जनखदर्पणः ॥५६॥
संक्षोभं मनसो विष्णो प्रभो संहर संहर । तपः प्रभावतस्तेऽद्य चलितं भुवनत्रयं ॥५७॥
देवैर्विद्याधरैर्वीरैः श्रव्यगांधर्ववीणिभिः । सिद्धांतगीतिकागानैरुच्चैराकाशचारणैः ॥५८॥
इति प्रसाद्यमानोऽसौ शनैः संहृत्य विक्रियां । स्वभावस्थोऽभवद्भानुर्यथोत्पातः समोत्थितः ॥५९॥
उपसर्गं विनाश्याशु बलिं बद्ध्वा सुरास्तदा । विनिगृह्य दुरात्मानं देशाद्दूरं निराकरन् ॥६०॥

वीणाघोपोत्तरश्रेणौ खगानां किंनरैः कृता । सिद्धकूटे महाघोषा सुघोषा दक्षिणे तटे ॥६१॥
कृत्वा शासनवात्सल्यमुपसर्गविनाशनात् । विष्णुः स्वगुरुपादांते विक्रियाशल्यमुज्जहौ ॥६२॥
तपो घोरमसौ कृत्वा कृत्वांतं घातिकर्मणां । विहृत्य केवली विष्णुर्मोक्षमंते ययौ विभुः ॥६३॥
इदं विष्णुकुमारस्य चरितं दुरितनाशनं । यः शृणोति जनो भक्त्या दृष्टिशुद्धिं श्रयेत् सः ॥६४॥

स्वस्थानाच्चलयेदलं गुरुतरांन्कामंदरान्मंदरां—
श्चंद्रार्कानपि पातयेंऽवरतलव्यापारतः पारतः ।
तोयेशान् विकिरेदुपप्लवयुतान्निर्मुक्तये मुक्तये
साधुः स्यात् किमु दुष्करं जिनतपःश्रीयोगिनां योगिनाम् ॥६५॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ विष्णुकुमारमाहात्म्यवर्णनो नाम विंशः सर्गः ।

एकविंशतितमः सर्गः ।

अथ गांधर्वसेनां तां कथंचित्खेचरान्वयां । अतिराजविभूतिं च चारुदत्तं निरूप्य सः ॥ १ ॥
चारुगोष्ठीसुखास्वादश्चारुदत्तं यदूत्तमः । उदारचरितोऽपृच्छदुदारचरितप्रियः ॥ २ ॥

प्रतीक्ष कथमीदृश्यः सादृश्यपरिवर्जिताः । दैवपौरुषदुश्चिन्त्यः संपदो भवतार्जिताः ॥ ३ ॥
वद विद्याधरी चेयं कुतः स्तुत्या तवास्पदे । न्यवसद् वसुभिः पूर्णे वर्षत्कर्णामृतं मम ॥ ४ ॥
इति पृष्टोऽवदत्सोऽस्मै प्रहृष्टमतिरादरात् साधु पृष्टमिदं धीर ! वच्मि ते शृणु वृत्तकं ॥ ५ ॥
आसीदत्रैव वैश्येशश्चंपायां सुमहाधनः । भानुदत्त इति ख्यातः सुभद्रा तस्य भामिनी ॥ ६ ॥
सम्यग्दर्शनसंशुद्धिनानाणुव्रतधारिणोः । काले याति सुखांभोधिमग्नयोर्यौवनस्थयोः ॥ ७ ॥
चिरायति तयोश्चित्तनयनामृतवर्षिणि । साक्षाद्गृहिफले श्रीमदपत्यमुखपंकजे ॥ ८ ॥
अर्हदायतने पूजां कुर्वाणावन्यदा च तौ । चारणश्रमणं दृष्ट्वा पुत्रोत्पत्तिमपृच्छतां ॥ ९ ॥
अचिरेणैव तेनापि यतिना कृपया तयोः । प्रधानसुतसंभूतिरादिष्टा पृष्टमात्रतः ॥ १० ॥
उत्पन्नश्चाचिरेणाहं तयोः प्रीतिकरःसुतः । चारुदत्ताभिधानश्च कृतः कृतमहोत्सवः ॥ ११ ॥
कृताणुव्रतदीक्षश्च ग्राहितः सकलाः कलाः । बालचंद्रः परां वृद्धिं बांधवांभोनिधेरधात् ॥ १२ ॥
वराहगोमुखाभिख्यहरिसिंहतमोंऽतकाः । मरुभूतिरिति प्रीता वयस्या मेऽभवंस्तदा ॥ १३ ॥
तैः सह क्रीडया यातो निम्नगां रत्नमालिनीं । आपदोपहतं पश्यन् दंपत्योः पुलिने पदं ॥१४॥
जाताविद्याधराशंकाः प्रगत्याऽनुपदं च तं । रतशय्यामपश्याम श्यामले कदलीगृहे ॥ १५ ॥

रतिव्यतिकरम्लानपुष्पपल्लवतल्पतः। अल्पमंतरमन्विष्य सुमहागहनं वनं ॥१६॥
दृष्टो विद्याधरो वृक्षे कीलितो लोहकीलकैः। पार्श्वे खेटकखड्गाग्रव्यग्ररक्तनिरीक्षणः ॥१७॥
तिस्रः खेटकसंगूढा गृहीत्वौषधिवर्त्तिकाः। चालनोत्कीलनोन्मूलव्रणरोहा कृता मया ॥१८॥
निःकीलो निर्व्रणश्चासौ गृहीत्वा खड्गखेटकौ। निरुत्तरः खमुत्पत्य दधावोत्तरया दिशा ॥१९॥
प्रलापानुपदं गत्वा ह्रियमाणां द्विषा प्रियां। विमोच्यादाय तामेत्य मामवोचन्महादरः ॥२०॥
भद्र! दत्ता यथा प्राणा म्रियमाणाय मे त्वया। तथैव दीयतामाज्ञां वद किं विदधामि ते ॥२१॥
वैताढ्येऽस्ति नृपः श्रेण्यां दक्षिणस्यां हि दक्षिणः। महेंद्रविक्रमो नाम्ना नगरे शिवमंदिरे ॥२२॥
तस्यामितगतिर्नाम्ना तनयोऽहमतिप्रियः। मित्रं मे धूमसिंहश्च गौरमुंडश्च खेचरः ॥२३॥
ह्रीमंतं पर्वतं ताभ्यामागतेन मयाऽन्यदा। यौवनश्रियमारूढा दृष्टा तापसकन्यका ॥२४॥
हिरण्यरोमतनया शिरीषसुकुमारिका। जहार हृदयं हृद्या नाम्ना मे सुकुमारिका ॥२५॥
गाढाकल्पकशल्याय पित्रा मे याचिता च सा। संवृत्तश्चोभयोराशु विवाहः परमोत्सवः ॥२६॥
धूमसिंहोऽपि चामुष्यां साभिलाषोऽभिलक्षितः। अप्रमत्ततया चाहं विहरामि तया सदा ॥२७॥
रममाणोऽद्य तेनाऽहं कीलितो मोचितस्त्वया। हृताऽसौ मोचिता शत्रोर्मयेयं सुकुमारिका ॥२८॥

तदेष योज्यतामद्य जनः कर्मणि वांछिते। वयोज्येष्ठोऽपि तं कुर्वे प्राणदस्यानुवर्त्तनं ॥२९॥
भवतोद्धृतशल्यं मां जीवंतमिह जन्मनि। कृतप्रत्युपकारं ते प्रतीह्युद्धृतशल्यकं ॥३०॥
इति प्रियंवदोऽवादि स्त्रीसखः खेचरो मया। कृतं कृतं हि मे सर्वं त्वया सद्भावदर्शिना ॥३१॥
शुद्धं दर्शयता भावं वद किं न कृतं त्वया। तदेवोपकृतं पुंसां यद् सद्भावदर्शनं ॥३२॥
पुण्यवान् ननु पूज्योऽहं यच्चयानघ दर्शनं। जातं मे सुलभं लोके सामान्यनरदुर्लभं ॥३३॥
सर्वसाधारणं नृणामवस्थांतरवर्धनं। त्वं विषण्णमना मा भूः कीलितोऽस्मीति वैरिणा ॥३४॥
उपकारमतिस्तात ! यदि मां प्रति ते ततः। मय्यपत्यमतिः कार्या त्वया नित्यमितीरिते ॥३५॥
बाढमित्यभिधायासौ नाम गोत्रं च मे ततः। पृष्ट्वाभिधाय मां पृच्छ्य स्त्रीसखः स खमुद्ययौ ॥३६॥
प्रविष्टाश्च वयं चंपां विद्याधरकथारताः। दृष्टश्रुतानुभूतं हि नवं धृतिकरं नृणां ॥३७॥
रूढा च यौवनस्थेन नाम्ना मित्रवती मया। सर्वार्थस्य सुमित्राया मातुलस्य तनूभवा ॥३८॥
शास्त्रव्यसनिनो मेऽभून्नात्मस्त्रीविषयेऽपि धीः। शास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकं ॥३९॥
रुद्रदत्तः पितृव्यो मे बहुव्यसनशक्तधीः। सन्मान्य योजितो मात्रा कामुकव्यवहारवित् ॥४०॥
आसीत्कलिंगसेनाऽत्र गणिका गणनायिका। सुता वसंतसेनाऽस्या वसंतश्रीरिव श्रिया ॥४१॥

कन्याऽसौ नृत्यगीतादिकलाकौशलशालिनी। सौरूप्यस्य परा कोटिर्यौवनस्य नवोन्नतिः ॥४२॥
नृत्यारंभेऽन्यदा तस्या रुद्रदत्तेन संगतः। ससाहित्यजनाकीर्णे स्थितोऽहं नृत्यमंडपे ॥४३॥
सूचिनाटकमुच्चयग्रे सा जातिमुकुलांजलिं। व्यकिरत् प्रविकाशं च प्राप्तेषु मुकुलेषु च ॥४४॥
सुष्ठुंकारे प्रयुक्तेऽस्याः कैश्चित्साहित्यवर्त्तिभिः। मया विकाशकालज्ञमालाकारस्य योजिते ॥४५॥
तस्या दत्ते बुधैस्तस्मिन्नंगुष्ठेऽभिनये कृते। नापितस्य मया दत्ते नखमंडलशोधिनः ॥४६॥
कुक्षेर्गोमक्षिकायाश्च व्युदासाभिनये कृते। पूर्ववत् तैः कृते प्राप्तगोपालस्य मया पुनः ॥ ४७ ॥
रसभावविवेकस्य व्यंजिका सा च संप्रति। सुष्ठुकारमदात्प्रीता स्वांगुलिस्फोटकारिणी ॥ ४८ ॥
ततः सर्वस्य लोकस्य पश्यतो मम संमुखं। ननाट नाटकं हारि साऽनुरागवशा च सा ॥ ४९ ॥
उपसंहृतनृत्या च निजप्रासादवर्त्तिनी। स्वमात्रेऽकथयद्भावमिति साकल्यकातुरा ॥ ५० ॥
इह जन्मनि मे मातश्चारुदत्तात्परस्य न। संकल्पस्तेन तेनारं मां योजयितुमर्हसि ॥ ५१ ॥
माता ज्ञात्वा सुताचित्तं चारुदत्तस्य योजने। दानमानादिनाभ्यर्च्य रुद्रदत्तमयोजयत् ॥ ५२ ॥
तेन चाहमुपायेन पृष्ठतश्चाग्रतः पथि। गजौ प्रयोज्य तद्वेश्यावेश्म जातु प्रवेशितः ॥ ५३ ॥
कृतसंकेतया पूर्वं कृतः कालिंगसेनया। स्वागतासनदानाद्यैरुपचारोऽत्र चावयोः ॥ ५४ ॥

द्यूते तत्रोत्तरीयं च रौद्रदत्तं जितं तया। ततोऽहमुद्यतो रंतुमपसार्य तमेतया ॥ ५५ ॥
वसंतसेनया द्यूतादपसार्य स्वमातरं। कृता दुरोदरक्रीडा मया सह विदग्धया ॥ ५६ ॥
आसक्तश्च चिरं तत्र पायितोऽतिपिपासितः। मतिमोहनयोगेन वासितं शिशिरोदकं ॥ ५७ ॥
अतिविस्रंभतस्तस्यामनुरागे ममोद्गते। करग्रहणमेतस्या जनन्या कारितोऽस्म्यहं ॥ ५८ ॥
वसता तत्र वर्षाणि मया द्वादश विस्मृतौ। पितरौ मित्रवत्यामा कार्येष्वन्येषु का कथा ॥ ५९ ॥
वृद्धसेवाविवृद्धा मे गुणास्तरुणिसेवया। दोषैरुपचितैश्छन्नाः सज्जना इव दुर्जनैः ॥ ६० ॥
स्वर्णषोडशकोटीषु प्रविष्टासु निजं गृहं। दृष्ट्वा कालिंगसेनांते मित्रवत्या विभूषणं ॥ ६१ ॥
जगौ वसंतसेनां तामेकांते मंत्रकोविदा। दुहितर्हितमाभाषे कर्णे मद्वचनं कुरु ॥ ६२ ॥
गुरुवाक्यामृतं मंत्रं सदाभ्यस्यति यो जनः। तमनर्थग्रहा दूरात् ढौकंते न कदाचन ॥ ६३ ॥
जानास्येव जघन्यातो वृत्तिर्यद्विनवान् प्रियः। हेयः पीलितसारः स्यादिक्ष्वलक्तकवन्नरः ॥ ६४ ॥
तनुलग्नमलंकारं चारुदत्तस्य भार्यया। प्रेषितं प्रेष्यकारुण्याद् व्यसर्जयमहं पुनः ॥ ६५ ॥
तदस्य पीतसारस्य कुरु तावद्विमोक्षणं। सारवंतं नरं त्वन्यं नवेक्षुमिव भक्षय ॥ ६६ ॥
शंकुनेव ततः कर्णे ताडिता साऽतिपीडिता। जगाद मातरं मातः किमिदं गादितं त्वया ॥ ६७ ॥

कौमारं पतिमुज्झित्वा चारुदत्तं चिरोषितं। कुबेरेणापि मे कार्यं नेश्वरेण परेण किं ॥ ६८ ॥
प्राणैरपि हि मे नाथश्चारुदत्तो वियोजकैः। मैवंवोचः पुनर्मातर्यदि मे जीवितं प्रियं ॥ ६९ ॥
पूरितं कोटिशो द्युम्नैर्गृहं ते तद्गृहागतैः। तथापि तज्जिहासाऽभूदकृतज्ञा हि योषितः ॥ ७० ॥
कलापारमितस्यास्य रूपातिशययोगिनः। सद्धर्मदर्शिनो मेऽस्य स्यात्त्यागस्त्यागिनः कुतः ॥७१॥
अन्यासक्तामिति ज्ञात्वा कृत्वा तदनुवर्त्तनं। चिंतयंती स्थितोपायमावयोः सा वियोजने ॥७२॥
आसने शयने स्नाने भोजने चापि युक्तयोः। योगेनायुज्य नौ निद्रामहं रात्रौ बहिः कृतः ॥७३॥
निद्रापाये गृहं गत्वा भर्तृनिःक्रांतदुःखिनीं। अपश्यं मातरं दुःखी भार्यां च कृतरोदनीं ॥७४ ॥
ततः कृततदाश्वासः प्रियालंकारहस्तकः। उशीरावर्त्तमायातो मातुलेन वाणिज्यया ॥ ७५ ॥
क्रीत्वा तत्र च कार्प्पासं ताम्रलिप्तं प्रगच्छतः। दैवकालनियोगेन सोऽप्यदाहि दवाग्निना ॥७६॥
मुक्त्वा मातुलमश्वेन पूर्वाशां गच्छतो मृतः। सोऽपि पद्भ्यां ततो यातः प्रियंगुं नगरं श्रमी॥७७॥
सुरेंद्रदत्तनाम्नाऽहं पितृमित्रेण वीक्षितः। विश्रांतः कतिचित्तत्र दिनानि सुखसंगतः ॥७८॥
समुद्रयात्रया यातः षट्कृत्वो भिन्ननौस्थितिः। अष्टकोटीश्वरश्चाहमभवं भिन्नपात्रकः ॥ ७९ ॥
आसाद्य फलकं कृच्छ्रादुत्तीर्य मकरालयं। प्राप्तो राजपुरं तत्र परिव्राजकमैक्षिषि ॥ ८० ॥

तेनाहं शांतवेषेण श्रांतो विश्रांतिमादृतः । रसलोभेन च विश्वास्य कांतारं च प्रवेशितः ॥ ८१ ॥
मुग्धः सदुग्धिको रज्ज्वा परिव्राजावतारितः । प्रविष्टोऽहं बिलं भीमं प्रेरितो रसतृष्णया ॥८२॥
रसाया मूलमाशाया रज्ज्वारूढो दृढासनः। आददानो रसं पुंसा निषिद्धस्तत्र केनचित् ॥८३॥
मा स्प्राक्षीस्त्वं रसं भद्र! रौद्रं यदि जिजीविषुः। स्पृशेत चेन्न जीवंतं मुंचति क्षयरोगवत् ॥ ८४ ॥
ततश्चकितचित्तोऽहमवोचं तमिति द्रुतं । त्वं भोः कः केन वा क्षिप्त इहेत्युक्तो जगाद सः ॥८५॥
उज्जयिन्या वणिग्भिन्नपात्रोऽपात्रेण लिंगिना । रसमादाय निक्षिप्तो रसराक्षसवक्षसि ॥ ८६ ॥
त्वगस्थिशेषभूतोऽहं रसभुक्तो व्यवस्थितः। ममातो निर्गमो भद्र! मृतस्यैव न जीवतः ॥ ८७ ॥
संपृष्टस्तेन भोः कस्त्वमित्यवोचमहं पुनः। चारुदत्तो वणिक् क्षिप्तः परिव्राजा तवारिणा ॥८८॥
प्रियवादीति विश्वस्य वकवृत्तेर्दुरात्मनः । अधोऽधोऽनुचरो मुग्धः पततीति किमद्भुतं ॥ ८९ ॥
पूरयित्वा रसं तेन रज्जुमारोप्य चालितं । एकामाकृष्य कृत्वैकां कृतार्थः स खलो गतः ॥९०॥
पतितस्य तटे तेन पुंसा निर्गमनाय मे । उपायः साधुनाऽवाचि ततश्चेति कृपावता ॥ ९१ ॥
गोधैका रसपानाय साधोऽत्रावतरिष्यति । सृत्वा शीघ्रं हि तत्पुच्छं धृत्वा निर्गच्छ निश्चयं ॥९२॥
तदेत्युक्तवते धर्मं तस्मै सम्यक्त्वपूर्वकं । सप्रपंचमुवाचाहं सहपंचनमस्कृतिं ॥ ९३ ॥

परेद्युश्च रसं पीत्वा गच्छंत्याः पुच्छमाश्वहं। गोधाया धृतवान् दोर्भ्यामाकृष्टश्च बहिस्तया॥९४॥
तटीपाटितगात्रोऽहं बहिर्मुक्तोऽतिमूर्च्छितः। विबुद्धश्च पुनर्जन्मजातमिति व्यचिंतयम् ॥ ९५ ॥
शनैरुत्थाय गच्छंतमन्वधावद् यमोपमः। महिषो वनमध्ये मां प्रविष्टोऽहं गुहां ततः ॥ ९६ ॥
प्रसुप्तोऽजगरस्तत्र मयाक्रांतः समुत्थितः। अभिधावंतमत्युग्रं सोऽगृहीन्महिषं मुखे ॥ ९७ ॥
यावच्चोद्धतयोर्युद्धं वर्तते विषमं तयोः। तावत् तत्पृष्ठमाक्रम्य निर्गतोऽहमतिद्रुतं ॥ ९८ ॥
विनिसृत्य महारण्याद् प्रत्यंतग्राममाप्नुयां। काकतालीयतस्तत्र रुद्रदत्तं ददर्श तं ॥ ९९ ॥
क्षुत्पिपासार्तिहरणं कृत्वाऽसौ मे ततोऽब्रवीत्। चारुदत्त! विषादं मा कार्षीस्त्वं शृणु मे वचः॥१००॥
सुवर्णद्वीपमाविश्य समुपार्ज्य धनं महत्। प्रत्येप्यावः पुनर्येन रक्ष्यते कुलसंततिः ॥ १०१ ॥
एकवाक्यतया तेन यातौ चैरावतीं नदीं। उत्तीर्य गिरिकूटं च गिरिं वेत्रवनं वनं॥ १०२ ॥
टंकणं देशमासाद्य क्रीत्वाऽजौ गतिदाक्षिणौ। गतौ वामपथेनातिविषमेण शनैः शनैः ॥ १०३ ॥
अतिलंघ्य समां प्राह रुद्रदत्तोऽन्वितादरः। चारुदत्त! पशून् हत्वा कृत्वा भस्त्राप्रवेशनं ॥१०४॥
आश्वहे तत्र नौ द्वीपे भारुंडाश्चंडतुंडकाः। गृहीत्वाऽऽमिषलोभेन पक्षिणः प्रक्षिपंति हि ॥ १०५॥
निषिद्धोऽपि वधाद्रौद्रो रुद्रदत्तोऽवधीन्निजं। अजं मदीयमप्यंतं निनाय विनयच्युतः ॥१०६॥

पंचनमस्कृतिः ॥ १०७ ॥
यावन्न मार्यते तावत्पूर्वमेव प्रतीकृतः । मार्यमाणाय चादायि तस्मै
शस्त्रहस्तो व्यवस्थितः॥१०८॥
भस्त्रां कृत्वा सशस्त्रां मामंतस्तस्य निधाय सः । प्रविश्य स्वमन्यस्यां
भस्त्रा काणेन मेऽन्यत्र नीत्वा क्षिप्ता क्षितौ ततः ॥१०९॥
भारुंडैश्चंडतुंडाभ्यां भस्त्रे नीते विहायसा । द्वीपमायतं ॥ ११० ॥
वेगाद्विपाद्य तां भस्त्रां निर्गतःस्वर्गसंनिभं । रत्नरश्मिभिरुद्दीप्तमपश्यं
पश्यता च दिशो रम्याः पर्वताग्रे जिनालयः। प्रेक्षितो मरुदुद्धूतपताकाभिरिवानटत् ॥ १११ ॥
तत्र तापनयोगस्थश्चारणः श्रमणोऽतिके । वीक्षितो वीक्ष्य यं प्राप प्रागप्राप्तं परं सुखं ॥११२॥
ततः पर्वतमारुह्य त्रिःपरीत्य जिनालयं । वंदिता जिनचंद्राणां कृत्रिमाः प्रतिमा मया ॥११३॥
योगस्थो योगभक्त्याऽसौ वंदितश्च मुनिर्मया । समाप्तनियमश्चाह दत्त्वाऽऽसीनस्तदाशिषं ॥११४॥
कुशली चारुदत्ताऽत्र कुतः स्वप्न इवागमः । प्राकृतस्य यथा पुंसः सहायरहितस्य ते ॥ ११५ ॥
कुशलं नाथ! युष्माकं प्रसादादिति वादिना । नत्वा विस्मितचित्तेन मयाऽपृच्छ्यत सन्मुनिः॥११६॥
प्रत्यभिज्ञा कुतो नाथ तव मद्विषया च ते । अपूर्वदर्शनं मन्ये मान्यमान्यस्य पावनं ॥ ११७ ॥
इति पृष्टेन तेनोक्तं चंपायां यस्तदा द्विषा । खेचरोऽमितगत्याख्यः कीलितो मोचितस्त्वया॥११८॥
राज्ये संस्थाप्य मां प्राज्ये सम्यग्दर्शनभावितं । गुरोर्हिरण्यकुंभस्य समीपे प्राव्रजत् पिता ॥११९॥

भार्या विजयसेना मे नाम्नाऽन्यासीन्मनोरमा । ख्याता गांधर्वसेनाख्या प्रथमायामभूत्सुता ॥१२०॥
इतरस्यामभूत्पुत्रो ज्येष्ठो सिंहयशःश्रुतिः । वाराहग्रीवनामान्यो विनयादिगुणाकरः ॥ १२१ ॥
राज्ये तौ यौवराज्ये च स्थापयित्वा यथाक्रमं । गुरोरेव गुरोरंते प्रव्रज्यां श्रितवानहं ॥ १२२ ॥
कुंभकंटकनामायं द्वीपः सागरवेष्टितः । गिरिः कर्कोटकश्चात्र चारुदत्तागतः कथं ॥ १२३ ॥
इत्युक्ते यतिनाथंतां सुखदुःखविमिश्रितां । कथं कथमहं तस्मै कथामकथन्निजां ॥ १२४ ॥
तदा विद्याधरौ द्वौ तं मुनिं पुत्रौ नभस्तलात् । अवतीर्य ववंदाते वंदनीयमनिंदितौ ॥ १२५ ॥
कुमारौ ! चारुदत्तोऽयं भ्राता यो वां मयोदितः । इत्युक्ते मां परिष्वज्य स्थितावुक्त्वा बहुप्रियं ॥१२६॥
तावच्च द्वौ विमानाग्रादवतीर्य सुरौ पुरा । मां प्रणम्य मुनिं पश्चान्नत्वासीनौ ममाग्रतः ॥ १२७ ॥
अक्रमस्य तदा हेतुं खेचरौ पर्यपृच्छतां । देवावृषिमतिक्रम्य प्राग्नतौ श्रावकं कुतः ॥ १२८ ॥
त्रिदशावूचतुर्हेतुं जिनधर्मोपदेशकः । चारुदत्तो गुरुः साक्षादावयोरिति बुध्यतां ॥ १२९ ॥
तत्कथं कथमित्युक्ते छागपूर्वःसुरोऽभणीत् । श्रूयतां मे कथा तावत् कथ्यते खेचरौ ! स्फुटं ॥१३०॥
वाराणस्यां पुराणार्थवेदव्याकरणार्थवित् । ब्राह्मणः सोमशर्माऽसीत्सौमिल्ला तस्य भामिनी ॥१३१॥
तयोर्दुहितरौ भद्रा सुलसा च सुयौवने । वेदव्याकरणादीनां शास्त्राणां पारगे परे ॥ १३२ ॥

कुमार्यावेव वैराग्यात् परिव्राजकतां श्रिते । सुप्रसिद्धिं गते भूमौ जित्वा वादेषु वादिनः ॥१३३॥
याज्ञवल्क्य इति ख्यातः परिव्राट् पर्यटन् धरां । वाराणसीं तदायासीच्चाज्जिगीषामनीषया ॥१३४॥
सुलसा जल्पकालेऽस्य सावलेपा सभांतरे । स्यां शुश्रूषाकरी जेतुरिति संगरमग्रहीत् ॥ १३५ ॥
पूर्वपक्षमुपन्यस्तं तया न्यायविदां पुरः । संदूष्य याज्ञवल्क्यस्तं स स्वपक्षमतिष्ठपत् ॥ १३६ ॥
याज्ञवल्क्यो वृतो वादे सुपराजितया तया । विषयामिषलुब्धस्तां सस्मरां समरीरमत् ॥ १३७ ॥
सुलसायाज्ञवल्क्यौ तौ जनयित्वा शुभं शिशुं । अश्वत्थतरुमूलस्थं कृत्वा यातौ कृपाच्युतौ ॥ १३८ ॥
तत्रोत्तानशयं भद्रा दृष्ट्वा स्वच्छ (स्थ) फलादिनं । पिप्पलादाभिधानेन व्याहूयैनमवीवृधत् ॥१३९॥
पारगः सर्वशास्त्राणामेकदाऽपृच्छदित्यसौ । मातः! किमभिधानो मे पिता जीवति वा न वा ॥१४०॥
तयोक्तं ते पिता पुत्र! याज्ञवल्क्यः कनीयसी । मम तेन जिता वादे सुलसा जननी तव ॥ १४१ ॥
जातमात्रमपत्राणं त्वां तौ पुत्र! तरोरधः । मुक्त्वा मुक्तकृपौ पापौ यातावद्यापि जीवतः ॥ १४२ ॥
स्तनैरन्यस्त्रियाः क्लेशान्मया समभिवर्द्धितः । कर्म पूर्वं कृतं पुत्र! पितरौ तु स्मरातुरौ ॥ १४३ ॥
इत्याकर्ण्य तदा तस्याः कर्णदाहकरं वचः । तद्वार्त्ताकर्णनोत्कर्णो लब्धवर्णो रुषा स्थितः ॥ १४४॥
लब्धवार्त्तो रुषा गत्वा स जित्वा जनकं ततः । सुश्रूषां च तयोश्चक्रे मिथ्याविनयपूर्वकं ॥ १४५॥

स मातृपितृसेवाख्यं पिप्पलादः स्वयं कृतं । कर्तुं प्रवर्त्य तौ निन्ये समन्युर्मृत्युगोचरं ॥ १४६ ॥
पिप्पलादस्य शिष्योऽहं जडग्रंथेन वाग्वलिः । तद्दर्शनं समर्थ्यागान्नरकं घोरवेदनं ॥ १४७ ॥
ततो निर्गत्य जातोऽस्मि पञ्चवारानजपोतकः । हुतश्च यज्ञविद्याज्ञैर्यज्ञे पर्वतदर्शिते ॥ १४८ ॥
सप्तमेऽपि च वारेऽहं देशे टंकणकेऽभवत् । अज एव निजैः पापैः प्रेरितः प्राणिघातजैः ॥१४९॥
चारुदत्तेन मे जैनो धर्मोऽदर्शि निरंजनः । दत्तः पंचनमस्कारो मरणे करुणावता ॥१५०॥
जातोऽहं जिनधर्मेण सौधर्मे विबुधोत्तमः । चारुदत्तो गुरुस्तेन प्रथमो नमितो मया ॥ १५१ ॥
इत्युक्त्वा निरते तस्मिन्नितरोऽपि सुरोऽब्रवीत् । श्रूयतां चारुदत्तो मे यथाऽभूद्धर्मदेशकः ॥१५२॥
रसकूपे परिव्राजा पातितः पतिताय मे । सद्धर्मं वणिजोऽत्रोचच्चारुदत्तः कृपापरः ॥ १५३ ॥
मृतो गृहीतधर्मोऽहं सौधर्मेऽभवमुत्तमः । सुरस्तेन गुरुःपूर्वं चारुदत्तो नतो मया ॥ १५४ ॥
पापकूपे निमग्नेभ्यो धर्महस्तावलंबनं । ददता कः समो लोके संसारोत्तारणं नृणां ॥ १५५ ॥
अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा । दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशिनं ॥१५६॥
पूर्वं कृतोपकारस्य पुंसः प्रत्युपकारतः । कृतित्वमुपकार्यस्य नान्यथेति विदो विदुः ॥ १५७ ॥
तत्कृतौ शक्तिवैकल्ये कुलीनः स कथं न यः । सद्भावं दर्शयेत्तस्मै स्वाधीनं विगतस्मयः॥१५८॥

इत्युक्त्वा महतीमृद्धिं मुनिखेचरसंनिधौ । संप्रदर्श्य तदा देवौ देवदेवीविमानकैः ॥ १५९ ॥
वस्त्रैरग्निविशोध्यैर्मां भूषामाल्यविलेपनैः । भूषयित्वा ससत्कारमभाषेतां सुभूषणैः ॥ १६० ॥
आदेशो दीयतां स्वामिन् कर्तव्ये समुपस्थिते । चंपां किं प्राप्यसेऽद्यैव सद्यो भूर्यर्थसंगतः ॥ १६१ ॥
इत्युक्तेन मया प्रोक्तं व्रजतो निजमास्पदं । स्मरणानंतरं देवौ पुनरागम्यतामिति ॥ १६२ ॥
यथादेशमिति प्रोच्य प्रांजलि प्रणिपत्य तौ । मुनिं मां च समापृच्छ्य प्रयातौ त्रिदिवं निजं ॥ १६३ ॥
अहं च मुनिमानम्य विमानेन विहायसा । खेचराभ्यां सहायातः प्राविशं शिवमंदिरं ॥ १६४ ॥
तत्र स्वर्ग इवातिष्ठन् सुखेन खचरार्चितः। जन्मान्यदिव च प्राप्तः श्रृण्वन् निजयशोजनात् ॥ १६५ ॥
अन्यदा मातृपुत्रास्ते मयाऽमा संप्रधारणं । चक्रुर्गांधर्वसेनाख्यां कुमारीं संप्रदर्श्य मे ॥ १६६ ॥
चारुदत्त ! श्रृणु श्रीमानेकदावाधि चक्षुषं । राजेति पृष्टवान् भर्ता के मे दुहितुरीक्ष्यते ॥ १६७ ॥
सोऽवोचच्चारुदत्तस्य गृहे गांधर्वपंडितः । जेताऽस्या भविता तेऽसौ कन्याया यादवः पतिः ॥ १६८ ॥
इत्याकर्ण्य तदा तेन राज्ञा प्रव्रजताऽपि च । स्थिरीकृतमिदं कार्यं प्रमाणं त्वं ततोऽसि नः ॥ १६९ ॥
दिष्ट्याभ्युपगतं तत्तु बंधुकार्यं मया ततः । धात्र्यादिपरिवाराद्या कन्येयं मे समर्पिता ॥ १७० ॥
कन्याया भ्रातरौ नानारत्नस्वर्णादिसंपदां । वृतौ खेचरवाहिन्या सज्जौ चंपागमं प्रति ॥ १७१ ॥

मित्रकार्यसमुद्युक्तौ मित्रदेवौ मया स्मृतौ । स्मरणादेव संप्राप्तौ निधिहस्तौ ममांतिकं ॥ १७२ ॥
चारुहंसविमानेन साकं गांधर्वसेनया । आनीय मित्रदेवौ मां भूत्या विस्मयनीयया ॥१७३॥
सुव्यवस्थाप्य चंपायामक्षयैर्निधिभिः सह । नत्वा देवौ गतौ स्वर्गं खेचरौ च निजास्पदं ॥१७४॥
मातुलं मातरं पत्नीं बंधुवर्गं च सादरं । दृष्ट्वा तुष्टमतिं प्राप्तं प्राप्तोऽहं सुखितां परं ॥ १७५ ॥
तां शुश्रूषाकरीं श्वश्रूं मदणुव्रतसंगतां । श्रुत्वा वसंतसेनां च प्रीतः स्वीकृतवानहं ॥ १७६ ॥
दत्तं किमिच्छकं दानं दीनानाथांगितर्पणं । विश्वस्मै बंधुलोकाय दीयते स्म यथेप्सितं ॥१७७॥
एष यादव ! संबंधः कथितस्ते मयाऽखिलः । खेचरेंद्रकुमार्या मे विभवस्य च संभवः ॥१७८॥
यदर्थं रक्षिता कन्या स त्वं प्राप्तोऽसि धन्यया । कृतकृत्य कृतश्चाहं भवता यदुनंदन ! ॥ १७९ ॥
प्रत्यासन्नापवर्गस्य मम स्वर्गस्तपस्विभिः । तपस्थस्योदितश्वेतो यतिष्ये च तपस्यहं ॥ १८० ॥
इति गांधर्वसेनाया श्रुत्वा संबंधमादितः । चारुदत्तस्य चोत्साहं तुष्टस्तुष्टाव यादवः ॥ १८१ ॥
अहो चेष्टितमार्यस्य महौदार्यसमन्वितं । अहो पुण्यबलं गण्यमनन्यपुरुषोचितं ॥ १८२ ॥
न हि पौरुषमीदृक्षं विना दैवबलं तथा । ईदृक्षान् विभवान् शक्याः प्राप्तुं ससुरखेचराः ॥१८३॥
श्रुत्वेति चारुदत्तीयमात्मीयं च विचेष्टितं । तस्मै गांधर्वसेनादिपर्यंतं यादवोऽवदत् ॥ १८४ ॥

इत्यन्योन्यस्वरूपज्ञा रूपविज्ञानसागराः। त्रिवर्गानुभवप्रीताश्चारुदत्तादयः स्थिताः ॥ १८५ ॥

क्षीणार्थोऽपि पयोधिमप्यधिगतः कूपावतीर्णोऽप्यतो
दुर्लंघ्येऽपि च संचरन् गिरितटे द्वीपांतरे वा पुमान्,
लक्ष्मीं धर्मसखः प्रयाति निखिलां पापव्यपायाद्यत-
स्तद्धर्मं जिनबोधितं बुधजनाश्चिन्वंतु चिंतामणिं ॥ १८६ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ चारुदत्तचरितवर्णनो नाम एकविंशतितमः सर्गः।

द्वाविंशतितमः सर्गः

चंपायां रममाणस्य सह गांधर्वसेनया। वसुदेवस्य संप्राप्तः फाल्गुनाष्टदिनोत्सवः ॥ १ ॥
देवा नंदीश्वरं द्वीपं खेचरा मंदरादिकं। यांति वंदारवः स्थानमानंदं दधतस्तदा ॥ २ ॥
जन्मनिष्क्रमणज्ञाननिर्वाणप्राप्तितोऽर्हतः। वासुपूज्यस्य पूज्यां तां चंपां प्रापुः स्फुरद्गृहां ॥३॥
आगच्छंति तदा कर्तुं जिनेंद्रमाहिमोत्सवं। सर्वतः पुत्रदाराद्यैर्भूचराश्च नभश्चराः ॥ ४ ॥
चंपावासी जनः सर्वो निश्चक्राम सराजकः। प्रतिमां वासुपूज्यस्य पूज्यां पूजयितुं वहिः ॥ ५ ॥

रथैः केचिद्गजैः केचित् वाजियुग्यादिभिः परे। निर्यांति स्त्रीजनाः पुर्या यात्रायां चित्रभूषणाः॥६॥
शौरिरश्वरथारूढः सार्द्धं गांधर्वसेनया । जिनं पूजयितुं पुर्या निर्यातोऽसौ सपर्यया ॥ ७ ॥
भटमंडलमध्यस्थो गच्छन् जिनगृहागतः । मातंगकन्यकावेषां नृत्यत्कन्यां निरैक्षत ॥ ८ ॥
नीलोत्पलदलश्यामां वृत्तोत्तुंगपयोधरां । भूषाविद्युल्लताश्लिष्टां योषां वा प्रावृषः श्रियं ॥ ९ ॥
सुवंधूकाधरच्छायां सुपद्मपदपाणिकां। पुंडरीकदृशं दृश्यां मूर्त्तामिव शरच्छ्रियं ॥ १० ॥
श्रियं ह्रियं धृतिं बुद्धिं लक्ष्मीं चापि सरस्वतीं । स्वयं जिनेंद्रभक्तेव नृत्यंतीमतिरूपिणीं ॥११॥
स्थितो रंगविभागेऽत्र गायकः सपरिग्रहः । मृदंगी पणवी चैव दर्दरी कंसवादकः ॥ १२ ॥
वैपंची वैणिकश्चैव कुतुपः परिभाषितः । उत्तमाधममध्याभिः स्थितः प्रकृतिभिर्युतः ॥ १३ ॥
कुतुपेषु यथास्थानं सुप्रयुक्तं प्रयोक्तृभिः । अलातचक्रप्रतिमं गानं वाद्यं च नाटकं ॥ १४ ॥
रसाभिनयभावानामभिव्यक्तिं सुनर्त्तकी । सा कुर्वाणा रथस्थेन शौरिणैक्षि सजानिना ॥ १५ ॥
रूपविज्ञानपाशेन तं बबंधाशु सा स तां । बंधव्यबंधकत्वं तावन्योन्यस्य तदापतुः ॥ १६ ॥
ततो गांधर्वसेनाऽभूदीर्ष्याकुंचितलोचना। विपक्षस्य हि सांनिध्यमाक्षिसंकोचकारणं ॥ १७ ॥
सापायमत्र वित्रासकोपायं च चिरास्थितं । मन्वाना सारथिं साह धन्विनो रथिनः प्रिया ॥१८॥

॥ १९ ॥ शर्कराप्यलमास्वाद्य नाददाति रसांतरं ॥ १९ ॥
क्षिप्रमस्मात्प्रदेशात्त्वं रथं प्रेरय सारथे। जिनवेश्म तमास्थाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणां ॥२०॥
इत्युक्तो नोदयद्वेगात्सारथी रथमाप सः। अभिषिच्य जिनेंद्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः ॥ २१ ॥
क्षीरेक्षुरसधारौघैर्घृतदध्युदकादिभिः। पुष्पैर्नानाविधैरुद्धैर्धूपैः कालागुरूद्भवैः ॥ २२ ॥
हरिचंदनगंधाढ्यैर्गंधशाल्यक्षताक्षतैः। तावानर्चतुरर्चां तामर्चनाविधिकोविदौ ॥ २३ ॥
दीपैर्दीप्रशिखाजालैर्नैवेद्यैर्निरवद्यकैः। उच्चार्योपांशुपाठेन प्रागीर्यापथदंडकं ॥ २४ ॥
समपादौ पुरः स्थित्वा जिनार्चनकृतांजली। जैनेऽतिनिपुणौ क्षोण्यां निष्पन्नौ पुनरुत्थितौ ॥२५॥
कायोत्सर्गविधानेन शोधितेर्यापथौ पथि। चतुरुत्तममांगल्यशरणप्रतिपादिनौ ॥ २६ ॥
पुण्यं पंचनमस्कारपदपाठपवित्रतौ। धर्मक्षेत्रे त्रिकालेभ्यो जिनादिभ्यो नमोऽस्त्विति ॥ २७ ॥
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु ससप्ततिशतात्मके। संप्रत्याख्यामि कायं च तावदित्युज्झितांगकौ ॥२८॥
सामायिकं करोमीति सर्वं सावद्ययोगकं। समतालाभलाभे मे तावदित्यंतराशयौ ॥ २९ ॥
शत्रौ मित्रे सुखे दुःखे जीविते मरणेऽपि वा। इत्युदारहतां श्रव्यं तौ चतुर्विंशतिस्तवं ॥ ३० ॥
सप्तप्राणप्रमाणं तु स्थित्वा कृत्वा शिरोऽञ्जलिं। शंभवाय नमः शश्वदभिनंदन ते नमः ॥ ३१ ॥
ऋषभाय नमस्तुभ्यमजिताय नमो नमः।

नमः सुमतिनाथाय नमः पद्मप्रभाय ते। नमः सुपार्श्वविश्वेशे नमश्चंद्रप्रभार्हते ॥ ३२ ॥
नमस्ते पुष्पदंताय नमः शीतलतायिने। नमोऽस्तु श्रेयसे श्रीशे श्रेयसे श्रितदेहिनां ॥ ३३ ॥
नमोस्तु वासुपूज्याय सुपूज्याय जगत्त्रये। वर्तते यस्य चंपायां निःकंपोऽयं महामहः ॥ ३४ ॥
विमलाय नमो नित्यमनंताय नमो नमः। नमो धर्मजिनेंद्राय शांतये शांतये नमः ॥ ३५ ॥
नमस्ते कुंथुनाथाय तथाऽराय नमस्त्रिधा। मल्लये शल्यमल्लाय मुनिसुव्रत! ते नमः ॥ ३६ ॥
नमोऽस्तु नमिनाथाय नमितास्त्रिभुवने सदा। यस्येदं वर्तते तीर्थं सांप्रतं भरतावनौ ॥ ३७ ॥
अरिष्टनेमिनाथाय भविष्यत्तीर्थकारिणे। हरिवंशमहाकाशशशांकाय नमो नमः ॥ ३८ ॥
नमः पार्श्वजिनेंद्राय श्रीवीराय नमोऽस्तु ते। सर्वतीर्थंकराणां च गणेंद्रेभ्यो नमः सदा ॥ ३९ ॥
कृत्रिमाकृत्रिमेभ्यश्च सदनेभ्योर्हतां नमः। भुवनत्रयवर्तिभ्यः प्रतिबिंबेभ्य एव च ॥ ४० ॥
इत्थं कृत्वा स्तवं भक्त्या तौ प्रहृष्टतनूरुहौ। प्रणेमतुः शिरोजानुकरस्पृष्टधरातलौ ॥ ४१ ॥
पूर्ववत्पुनरुत्थाय कायोत्सर्जनयोगतः। पुण्यं पंचगुरुस्तोत्रमुदरीरचतामिति ॥ ४२ ॥
अर्हद्भ्यः सर्वदा सर्वसिद्धेभ्यः सर्वभूमिषु। आचार्येभ्य उपाध्यायसाधुभ्यश्च नमो नमः ॥४३॥
परीत्य जिष्णुधिष्ण्यंतौ रथमारुह्य हारिणौ। प्रविष्टौ दंपती चंपां संपदा परया ततः ॥ ४४ ॥

मानिनीमनयद्वशं ॥ ४५ ॥
नर्त्तकीप्रेक्षणक्षिप्तश्चक्षुरिंगितलक्षितः। स तां प्रणाममात्रेण प्रणामो हि निवर्त्तकः ॥ ४६ ॥
विपक्षप्रेक्षणासक्तिसापराधेऽपि भर्त्तरि। स्त्रीणां प्रणयकोपस्य प्रणामो हि निवर्त्तकः ॥ ४७ ॥
अथ विद्याधरीवृद्धा वृद्धा विद्येव रूपिणी। तत्कन्ययान्यदोत्सृष्टा त्रिपुंड्रकृतमंडना ॥ ४८ ॥
एकांते सुस्थितं हर्म्ये कथंचिच्चित्तहारिणी। दत्ताशीः शौरिमाहैवमासीना सन्मुखासने ॥ ४९ ॥
पुराणवस्तुनो वीर ! विस्तरस्तव चेतसि। शुद्धादर्शतले यद्वद् यद्यपि प्रतिभासते ॥५०॥
तथाप्यनूद्यते वस्तु मया विद्याधराश्रितं। सो (?) विषौषधिनाथस्य स्पृष्टं किं नौषधिःस्पृशेत् ॥५१॥
प्रदर्शितजगज्जीव्यो युगाद्यो वृषभेश्वरः। भरतेश्वरविन्यस्तराज्योऽसौ प्राव्रजद् यदा ॥५२॥
राजक्षत्रोग्रभोजाद्यास्तदा तत्तपसि स्थिताः। चतुःसहस्रसंख्या ये प्राग्भग्नाश्च परीषहैः ॥५३॥
तेषां मध्ये तु यौ भग्नौ नमिर्विनमिरित्युभौ। भ्रातरौ पादयोर्लग्नौ भर्तुस्तस्थतुरर्थिनौ ॥ ५४ ॥
धरणेन शरण्येन निर्गत्य धरणेः सह। दित्यदित्याभिधानाभ्यां देवीभ्यामागतेन तौ ॥ ५५॥
आश्वास्य जिनभक्तेन विद्याकोशो जिनांतिके। ताभ्यां प्रदापितस्तेन स्वदेवीभ्यां महात्मना ॥५६॥
विद्यानामदितिस्त्वष्टौ निकायान् प्रददौ तदा। गांधर्वसेनकश्चासौ विद्याकोशः प्रकाशितः ॥५६॥

मनुश्च मानवस्तत्र निकायः कौशिकस्तदा । गौरिकश्चैव गांधारो भूमितुंडश्च खंडितः ॥ ५७ ॥
निकायौ चापरौ ख्यातौ मूलवीर्यकशंकुकौ । ते चार्यादित्यगंधर्वास्तथा व्योमचराःस्मृताः ॥५८॥
दित्या चाष्टौ निकायास्ते वितीर्णाः पन्नगाभिधाः। मातंगः पांडुकः कालः स्वपाकः पर्वतोऽपि च५९
वंशालयः पांशुमूलो वृक्षमूलस्तथाष्टमः । दैत्यपन्नगमातंगनामतः परिभाषिताः ॥ ६० ॥
षोडशानां निकायानामिमा विद्याः प्रकीर्तिताः। सर्वविद्याप्रधानत्वं या प्रपद्य व्यवस्थिताः ॥६१॥
प्रज्ञप्ती रोहिणी विद्या विद्या चांगारिणीरिता । महागौरी च गौरी च सर्व विद्यापकार्षिणी ॥६२॥
महाश्वेताऽपि मायूरी हारी निर्वज्ञशाड्वला । सा तिरस्कारिणी विद्या छायासंक्रामिणी परा ॥६३॥
कूष्मांडगणमाता च सर्वविद्याविराजिता । आर्यकूष्मांडदेवी च देवदेवी नमस्कृता ॥ ६४ ॥
अच्युतार्यवती चाऽपि गांधारी निर्वृतिः परा । दंडाध्यक्षगणाश्चापि दंडभूतसहस्रकं ॥ ६५ ॥
भद्रकाली महाकाली काली कालमुखी तथा । एवमाद्याः समाख्याता विद्या विद्याधरेशिनां॥६६॥
एकपर्वा द्विपर्वा च त्रिपर्वा दशपर्विका । शतपर्वा सहस्राख्या लक्षपर्वाऽवलाक्षिता ॥ ६७ ॥
उत्पातिन्यश्च ताः सर्वास्त्रिपातिन्यस्तथापि च । धारिण्यंतर्विचारिण्यो जलाग्निगातिदाक्षिणाः ॥६८॥
निःशेषेषु निकायेषु नानाशक्तिसमन्विताः । नानानगनिवासिन्यो नानौषधिविदस्तथा ॥६९॥

सर्वार्थसिद्धा सिद्धार्था जयंती मंगला जया । संक्रामिन्यः प्रहाराणाम[1]शय्याराधनी तथा ॥७०॥
विशल्यकारिणी चैव व्रणसंरोहिणी तथा । सवर्णकारिणी चैव मृतसंजीवनी परा ॥ ७१ ॥
सर्वाः परमकल्याण्यः सर्वा मंत्रपरिष्कृताः । सर्वविद्याबलैर्युक्ताः सर्वलोकहितावहाः ॥७२॥
सर्वाः पठितविद्यास्ता विद्या दिव्यौषधिस्तथा । धरणो नमये तस्मै ददौ विनमयेऽप्यसौ ॥७३॥
धरणेंद्रवितीर्णे च विजयार्धे धराधरे । नमिर्दक्षिणभागेऽस्थादुत्तरे विनमिस्तथा ॥ ७४ ॥
नानाजनपदोपेतौ मित्रबांधवसंस्तुतौ । सुखेन तस्थतुर्वीरौ तौ श्रेण्योरुभयोरुभौ ॥ ७५ ॥
औषधीश्चापि विद्याश्च सर्वेभ्यो ददतुश्च तौ । विद्यानिकायसंज्ञाभिः ख्याताः विद्याधराश्च ते ॥७६॥
गौरिणां गौरिका वेद्या मनूनां मनुनामकाः । गांधारीणां च गांधारा मानवीनां च मानवाः ॥७७॥
कौशिकीनां च विद्यानां वेद्याः कौशिकनामकाः । भूमितुंडकविद्यानां भूमितुंडाः प्रभाषिताः ॥७८॥
तथैव मूलवीर्यास्तु मूलवीर्यकखेचराः । शंकुकानां च विद्यानां शंकुकाः खेचराः स्मृताः ॥७९॥
विद्यानां पांडुकीनां च पांडुकेयाः प्रभाषिताः। कालाः कालकविद्यानां स्वपाकानां स्वपाकजाः॥८०॥
मातंगीनां च विद्यानां मातंगा नामतो मताः ।पर्वतानां च विद्यानां पार्वतेयाः खचारिणः॥८१॥

1 'अशब्द्वाराधिनी' इति ख पुस्तके ।

वंशालयानां विद्यानां वंशालयगणः स्मृतः । पांशुमूलकविद्यानां विज्ञेयाः पांशुमूलिकाः ॥ ८२ ॥
विद्यानां वृक्षमूलानां खेचरा वार्क्षमूलिकाः । एवं ते क्रमशः प्रोक्ता निकायानां खचारिणः॥८३॥
दशोत्तरशतं तेषां नगराणि खगामिनां । षष्टिरुत्तरभागे स्युः पंचाशद्दक्षिणे पुनः ॥ ८४ ॥
आदित्यनगरं रम्यं पुरं गगनवल्लभं । पुरी चमरचंपा च पुरं गगनमंडलं ॥ ८५ ॥
विजयं वैजयंतं च शत्रुंजयमरिंजयं । पद्मालं केतुमालं च रुद्राश्वं च धनंजयं ॥ ८६ ॥
वस्वौकं सारनिवहं जयंतमपराजितं । वराहं हस्तिनं सिंहं सौकरं हस्तिनायकं ॥ ८७ ॥
पांडुकं कौशिकं वीरं गौरिकं मानवं मनुः । चंपा कांचनमैशानं मणिवज्रं जयावहं ॥ ८८ ॥
नैमिषं हास्तिविजयं खंडिका मणिकांचनं । अशोकं वेणुमानंदं नंदनं श्रीनिकेतनं ॥ ८९ ॥
अग्निज्वालं महाज्वालं माल्यं तत्पुरनंदिनी । विद्युत्प्रभं महेंद्रं च विमलं गंधमादनं ॥ ९० ॥
महापुरं पुष्पमालं मेघमालं शशिप्रभं । चूडामणिं पुष्पचूडं हंसगर्भं वलाहकं ॥ ९१ ॥
वंशालयं सौमनसं तथैव परिकीर्त्तितं । विजयार्धोत्तरश्रेण्यां षष्टिरिष्टा इमाः पुरः ॥ ९२ ॥
रथनूपुरमानंदं चक्रवालमरिंजयं । मंडितं वहुकेत्वाख्यं नगरं शकटामुखं ॥ ९३ ॥
पुरं गंधसमृद्धं च नगरं शिवमंदिरं । वैजयंतं रथपुरं श्रीपुरं रत्नसंचयं ॥ ९४ ॥

आषाढं मानवं सूर्यं स्वर्णनाभं शतह्रदं । अंगावर्तं जलावर्त्तं तथावर्त्तं वृहद्गृहं ॥ ९५ ॥
शंखवज्रं च नाभांतं मेघकूटं मणिप्रभं । कुंजरावर्त्तनगरं तथैवासितपर्वतं ॥ ९६ ॥
सिंधुकक्षं महाकक्षं सुकक्षं चंद्रपर्वतं । श्रीकूटं गौरिकूटं च लक्ष्मीकूटं धराधरं ॥ ९७ ॥
कालकेशपुरं रम्यं पार्वतेयं हिमाह्वयं । किंनरोद्गीतनगरं नभस्तिलकनामकं ॥ ९८ ॥
मगधासारनलकां पांशुमूलं परं तथा । दिव्यौषधं चार्कमूलं तथैवोदयपर्वतं ॥ ९९ ॥
विख्यातामृतधारं च मातंगपुरमेव च । भूमिकुंडलकूटं च जंबूशंकुपुरं परं ॥ १०० ॥
श्रेण्यां तु दक्षिणस्यां हि पुराण्येतानि पर्वते । शोभया स्वर्गतुल्यानि पंचाशच्चैव संख्यया ॥१०१॥
पुरेषु तेषु च स्तंभास्तन्निकायाख्ययाऽऽहिताः। ऋषभाधीशनागेशदित्यदित्यर्चयांकिताः॥१०२॥
सूनवो विनमेर्युक्ता विनयेन नयेन च । नानाविद्याकृतोद्योता जाताः सुबहुशस्ततः ॥ १०३ ॥
संजयोऽरिंजयो नाम्ना शत्रुंजयधनंजयौ । मणिचूलो हरिश्मश्रुमेघानीकःप्रभंजनः ॥ १०४ ॥
चूडामणिः शतानीकः सहस्रानीकसंज्ञकः । सर्वंजयो वज्रबाहुर्महाबाहुररिंदमः ॥ १०५ ॥
इत्यादयस्तु ते स्तुत्या उत्तरश्रेणिभूषणाः । भद्रा कन्या सुभद्रान्या स्त्रीरत्नं भरतस्य सा ॥१०६॥
नमेस्तु तनया जाता बहुशो बहुरोचिषः । रविस्तनयसोमश्च पुरुहूतोंऽशुमान् हरिः ॥ १०७ ॥

जयः पुलस्त्यो विजयो मातंगो वासवादयः । कन्या कनकपुंजश्रीः कन्या कनकमंजरी ॥१०८॥
नमिश्च विनमिः पश्चाद्विपश्चित्पुत्रमंडले। न्यस्तविद्याधरैश्वर्यौ निवृत्तौ जिनदीक्षितौ ॥ १०९ ॥
मातंगो विनमेः सूनुः सूनवस्तस्य भूरिशः । तत्पुत्रपौत्रसंतानो जातः स्वर्मोक्षसाधनः ॥११०॥
जिनस्य ह्येकविंशस्य तीर्थे मातंगवंशजः । राजा प्रहसितो जातः पुरे ह्यसितपर्वते ॥ १११ ॥
श्रीमातंगान्वयव्योमपतंगस्य प्रतापिनः । अहं हिरण्यवत्याख्या विद्यावृद्धस्य भामिनी ॥ ११२ ॥
पुत्रो मे सिंहदंष्ट्राख्यस्तस्य नीलांजना प्रिया। नीलनीरजनीलाभा कन्या नीलंयशास्तयोः ॥११३॥
अनीलयशसस्तस्याः कुलशीलकलागुणैः । कृतोद्यमं मया वंशो वर्णितो लब्धवर्णया ॥ ११४ ॥
हरिवंशनभश्चंद्र ! चंद्रमुख्याऽवलोकितः । नृत्यंत्या त्वं तयेहैत्य वासुपूज्यमहाहवे ॥ ११५ ॥
तत्र दर्शनमेतस्या सुखहेतुरभूद् यथा । दुःखहेतुस्तथैवाद्य वर्तते विरहे स्मृतं ॥ ११६ ॥
न सा स्नाति न सा भुंक्ते न सा वक्ति न चेष्टते। साऽनंगशरशल्या च जीवतीति महाद्भुतं ॥११७॥
तस्यामेतदवस्थायां कुलमस्माकमाकुलं । न वेत्ति किं करोमीति पितृमातृपुरोगमं ॥ ११८ ॥
कन्याया मानसं प्रश्ने द्योतितं कुलविद्यया । पद्मिन्येवान्यथा भूत्या युवमातंगदूषितं ॥ ११९ ॥
ततो विनिश्चितास्माभिर्यादवश्च तवेप्सया । मत्तमातंगगामिन्याः कन्याया हृदयव्यथा ॥१२०॥

सा तवैव विदोद्दिष्टा तदेहि परिणीयतां ॥ १२१ ॥
आगताऽस्मि ततो नेतुं भवंतं तत्र यादव। सोत्कंठितोऽपि तत्काले नैच्छच्चंपाविनिर्गमं ॥१२२॥
स श्रुत्वा तदवस्थां तां चेतश्चोरणकारिणीं। अब ! बिंबाधरां गत्वा ममोदंतेन सांत्वय ॥ १२३॥
आगमिष्याम्यहं तावत्त्वं तां तावत्तनूदरीं। मनोरथरथारूढा गत्वा कन्यामसांत्वयत् ॥१२४॥
सेत्युक्त्यनुज्ञया मुक्ता दत्त्वाशीरेवमस्त्विति। कृत्वा पयोधराश्लेषं कांतया शयितोऽन्यदा ॥१२५॥
स्नात्वा पयोधरोन्मुक्तैर्वसुदेवो नवोदकैः। विबुद्धोऽताडयन्मुग्धो भुजेन दृढमुष्टिना ॥ १२६ ॥
भीमदर्शनयाऽऽकृष्टकरो वैतालकन्यया। रथ्यामार्गेण दुर्ग्राहं महापितृवनं यदुः ॥ १२७ ॥
नीतश्च निशि निस्त्रिंशनराकारभृता तया। संगतामिंगितज्ञोऽत्र मातंगीं शौरिरैक्षत ॥ १२८ ॥
मातंगीभिर्भृशं भृंगीसंगीताङ्गप्रभात्मभिः। सिक्त्वा वैतालविद्याभिर्हंसत्यंतरधीयत ॥ १२९ ॥
एहि स्वागतमित्याह सा हसती तमेतया। कल्पो मातंगविद्यायाः शौरेऽयं कार्यसाधनः॥१३०॥
मातंग इति मा मंस्था त्वं हिरण्यवतीत्यहं। बाला वष्टि दृढं नेतुं बाहुपाशेन बंधनं ॥ १३१ ॥
सेयं त्वा नाप्सितो म्लाना बाला चेतोमलिम्लुचं। बल्लभः स्पृश सोऽयं ते करेण करपल्लवं ॥ १३२ ॥
तमित्युक्त्वांतिकं प्राप्तां सा नीलयशसं जगौ। प्रसारितांगुलिं बाला स्वेदिन्स्तादृशाऽग्रहीत् ॥१३३॥
साऽनुज्ञाता करेणास्य प्रस्विन्नावयवा करं।

तयोः प्रेमतरुः सिक्तस्तनुस्पर्शसुखांभसा । रोमांचव्यपदेशेन व्यमुंचन् कर्करांकुरान् ॥ १३४ ॥
पाणिग्रहणमाद्यं हि तदेवासीत्तदा तयोः । भावार्द्रीकृतयोः पश्चाद्भाविता व्यावहारिकं ॥१३५॥
सद्यो विद्याधरी वृंदं खमुत्पत्य ततोऽखिलं । शौरिणा सह संहृष्टमुत्तरादिशमुद्ययौ ॥ १३६ ॥
भूषौषधिप्रभापिंडखंडितध्वांतसंततिः । रेजे खे खेचरस्त्रीणां संहतिस्तडितां यथा ॥ १३७ ॥
तदा शौरिरिवार्कोऽपि करसंपर्कमात्रतः । प्राचीलाशावधूवक्त्रमकरोत्प्रभयोज्ज्वलं ॥१३८॥
अर्धोदितो नभौ भानुः पाटलः प्राग्वधूमुखे । दिवसस्य स्फुरद्गाढमर्धदष्ट इवाधरः ॥ १३९ ॥
सर्वोदितमभात्प्राच्या मुखमंडलमंडनं । मार्तंडमंडलं यद्वत्सौवर्णं कर्णकुंडलं ॥ १४० ॥
रविणा शौरिणेवाशु भुवनद्योतकारिणा । द्यावापृथिव्यौ विस्पष्टे द्राक् दृष्टिप्रसरे कृते ॥१४१॥
शौरिं हिरण्यवत्याह महारण्यनगावृतं । अधः पश्यसि यं भूमौ कुमार! गिरिमुन्नतं ॥ १४२ ॥
श्रीमंतं प्रवदंतीमं ह्रीमंतं नामतो गिरिं । तपः श्रीमंतमाधत्ते लोकं ह्रीमंतमप्ययं ॥ १४३ ॥
श्यामयाऽशनिवेगस्य दुहित्रांगारकः खगः। युद्धे खंडितविद्योऽत्र विद्यासिद्धिं प्रतिस्थितः॥१४४॥
दर्शनेन तवास्याशु किल विद्या प्रसिद्ध्यति । तवाऽस्यानुग्रहेच्छा चेद्देहि देहि स्वदर्शनं ॥१४५॥
इत्युक्तो विदितश्यामाक्षेमवार्त्तः स तोषवान् । जगाद किमनिष्टेन दृष्टेनांगारकेण मे ॥ १४६ ॥

कालातिपातिभिर्व्यर्थैः क्रीडितैरिह किं कृतैः । प्रयामो वयमास्स्व त्वं पश्यामः श्वासुरं पुरं ॥१४७॥
एवमास्त्विति नीत्वाऽसौ स्थापितोऽसितपर्वते । कृतविद्याधरीरक्षो वाह्योद्याने मनोहरे ॥ १४८ ॥
प्रविष्टा तुष्टचित्ता च निजं नीलयशाः पुरं । शौरिसंकथया तस्थौ तत्समागमकांक्षया ॥ १४९ ॥
सुस्नातोऽलंकृतो भूत्या महत्या स रथः स्थितः । प्रवेशितः पुरं वीरः खेचरैः स्वर्गसंनिभं॥१५०॥
दृष्टः सप्रश्रयं श्रीमानवितृप्तविलोचनैः । जनैः स सिंहदंष्ट्रैः सतुष्टांतःपुरपूर्वकैः ॥ १५१ ॥
ततः पुण्यदिने पुण्यपूर्णयोः पूर्णरूपयोः । विधिपूर्वं तयोर्वृत्तं पाणिग्रहणमंगलं॥ १५२ ॥
स नीलयशसा शौरिर्नगरेऽसितपर्वते । रत्येव सहितः कामः कामभोगानसेवत ॥ १५३ ॥

नीलं नीलयशो यशो न जनितं स्त्रीभिर्जितः स्वैर्गुणैः
शौरेः शौर्यशरीरिणो हि न यशः कृष्णीकृतं खेचरैः ।
तत्तत्र स्थितयोस्तयोः सुखरसं प्रेमप्रशक्तात्मनोः
शाकल्येन जनो जिनप्रवचनज्ञो हि प्रवक्तुं क्षमः ॥ १५४ ॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनेसनाचार्यकृतौ नीलयशोवर्णनो नाम द्वाविंशः सर्गः ।

त्रयोविंशः सर्गः ।

प्रासादस्थोऽन्यदा श्रुत्वा महाकलकलध्वनिं । इत्यपृच्छत्प्रतीहारीं शौरिः पार्श्वव्यवस्थितां ॥१॥
कुतो हेतोरयं लोको वर्तते मुखरोऽखिलः । इत्युक्ता साऽवदत्तस्मै वृत्तवृत्तांतवेदिनी ॥ २ ॥
शृणु देवास्ति शैलेऽस्मिन् नगरं शकटामुखं । तस्येशो नीलवान् नाम्ना व्योमगानामधीश्वरः॥३॥
नीलस्तस्य सुताः कन्या मान्या नीलांजनाभिधा । कुमारकन्ययोर्वृत्ता संकथा च तयोरिति ॥४॥
पुत्रो मे ते यदा कन्या भविता भविता तयोः। अविवादो विवाहोऽत्र गोत्रप्रीतौ परस्परं ॥५॥
ऊढायाः सिंहदंष्ट्रेण श्वशुरेण तत्रामुना । सेयं नीलांजनायाश्च याता नीलयशाः सुता ॥ ६ ॥
नीलस्योदूढभार्यस्य नीलकंठस्तु यः सुतः। जातोऽस्मै याचते स्मैतां स नीलयशसं तदा ॥७॥
सिद्धादेशस्य सत्साधोरादेशात्तु वृहस्पतेः । दत्तेयं तेऽर्द्धचक्रेशपित्रे पित्रा यशस्विने ॥ ८ ॥
पितृपुत्रौ च तौ नीलनीलकंठौ सभांतरे । खलौ च सिंहदंष्ट्रेण व्यवहारं श्रिताविमौ ॥ ९ ॥
न्यायेन च तयोरत्र जितयोः श्वशुरेण ते । उच्चैः खेचरलोकेन कृतः कलकलध्वनिः ॥ १० ॥
इति श्रुत्वा प्रतीहार्या वचः सूर्यपुरोद्भवः । कृतस्मितमुखं तस्थौ स नीलयशसा सह ॥ ११ ॥
प्राप्तां घनकृताश्लेषां प्रावृष विषयप्रियां । शुक्लापांगस्वनैर्हृद्यां सोऽन्वभूतां वधूमिव ॥ १२ ॥

प्राप्तः शरदृतुर्हंसः शरपुंखकरस्ततः । गुंजद्भृंगज्यया सज्ज्यं प्राज्यबाणासनश्रिया ॥ १३ ॥
काले विद्याधरास्तत्र स्वविद्यौषधिसिद्धये । निगृहीतमनोवेगा मनोवेगा विनिर्ययुः ॥ १४ ॥
तदा तौ दंपती शैलं ह्रीमंतं कामवर्षिणौ । प्रयातौ विद्ययाश्लिष्टौ घनं विद्युद्घनौ यथा ॥१५॥
असंपत्नसपत्नीकतापसस्त्रीधरोरसं । असिधाराव्रतं तीव्रं चरंतमिव संततं ॥ १६ ॥
मधुपानमदोन्मत्तपतत्रिमधुपा रवैः । विध्यतो मदनस्यैव स शरज्यारवैर्युतः ॥ १७ ॥
अवतीर्णौ तमुद्गंधि सप्तपर्णावतंसकं । हारिणं वर्णयंतौ तौ मरुद्घूर्णितभूरुहं ॥ १८ ॥
परिभ्रम्य चिरं शोभां पश्यंतौ तृप्तिवर्जितौ । गिरेः सानुषु रम्येषु रम्येते स्म सस्मरौ ॥ १९ ॥
तयोः संभोगसंभारः पुष्पपल्लवकल्पिते । तल्पेऽनल्पोऽपि खेदाय समजायत नो तदा ॥ २० ॥
चिरेण रतिसंभोगसंभूतस्वेदभूषितौ । निष्क्रांतौ कदलीगेहात् तौ रक्तांतविलोचनौ ॥ २१ ॥
मुक्तकेकारवं तत्र चित्रगात्रमपश्यतां । कलापिनमकस्मात्तौ मयूरं मत्तलोचनं ॥ २२ ॥
शोभया हृताचित्तां तां मुक्तादित्सुः सकौतुका । स्कंधमारोप्य तेनाऽसौ नीता नीलयशाः नभः ॥२३॥
नीचेन नीलकंठेन नीलकंठवपुर्भृता । हृतायां विह्वलो बध्वां वसुदेवोऽभ्रमद्वने ॥ २४ ॥

१ ' असम्पन्नसपत्नीकतापसश्रीधरोरसं ' इत्यापिपाठः ।

गोष्ठे गोपवधूधूतक्षुत्पिपासापरिश्रमः । उषित्वा प्रातरुत्थाय स प्रायाद्दक्षिणां दिशं ॥ २५ ॥
पुरं गिरितटं तत्र वप्रप्राकारवेष्टितं । दृष्ट्वा हृष्टः प्रविष्टोऽसौ विशिष्टजनतावृतं ॥ २६ ॥
वेदाध्ययननिर्घोषमुखरीकृतदिग्मुखे । तत्रापृच्छन्नरं कंचिदिति शौरिः स कौतुकः ॥ २७ ॥
किं केनात्र महादानमाहवेभ्यः प्रवर्त्तितं । येनामी मिलिता विश्वे मेदिन्या वेदवेदिनः ॥२८॥
सोऽवोचद्वसुदेवोऽत्र भोजकोऽस्यास्ति कन्यका । सोमश्रीरिव सोमश्रीः कलावेदविशारदा॥२९॥
जेता वेदविचारेऽस्याः यः स भर्त्ता भविष्यति । इति दैवज्ञवाक्येन संहता वैदिकी प्रजा ॥ ३० ॥
जघनस्तनभारार्त्ता तनुमध्यातिरूपिणी । भरक्षमस्य नो विद्मः कस्योपरि पतिष्यति ॥ ३१ ॥
श्रुत्वैवं शब्दमात्रेण सा कन्या श्रोत्रहारिणी । हंसीव राजहंसस्य चक्रे सोत्कंठितं मनः ॥ ३२ ॥
ब्रह्मदत्तमुपाध्यायं सोभ्युपेत्य निवेद्य च । गोत्रसंचारणं वेदानद्योध्यापय मामिति ॥ ३३ ॥
आर्षांस्त्वमिह किं वेदान् धर्मानाधिजिगांससे । अनार्षानथवा वेदानित्यवादीदसौ गुरुः ॥३४॥
कथं द्वैविध्यमेतेषामिति पृष्टोऽवदत्पुनः । प्रहृष्टहृदयोऽत्यर्थं यथार्थवचनो द्विजः ॥ ३५ ॥
षट्कर्मसु प्रजा प्राप्ताः कल्पवृक्षपरिक्षये । यः शशास पुरा वेदैस्त्रिभिर्वर्णैरिवाश्रिताः ॥ ३६ ॥
हिमविंध्यस्तनाभोगां रौप्यपर्वतहारिणीं । वार्धिकांचीगुणां राजा योऽन्वभूद्वसुधावधूं ॥ ३७ ॥

राज्ये पुत्रशतं प्राज्ये संस्थाप्य भरतादिकं। यो मुमुक्षुर्विनिःक्रांतः सचतुर्नृसहस्रकः ॥ ३८ ॥
धीरो वर्षसहस्रं वै पराजितपरीषहः ॥ ३९ ॥
यश्चत्वारश्चतुर्वेदस्तपो दुश्चरमात्मभूः। धर्मतीर्थं खलोज्झितं ॥ ४० ॥
समुत्पादितकैवल्यवेदनेत्रेक्षिताखिलः। धर्मतीर्थेन यश्चक्रे धर्मतीर्थं खलोज्झितं ॥ ४० ॥
यौ द्वौ धर्माश्रमौ धर्म्यौ गृहिश्रमणसंश्रयौ। स्वर्गापवर्गसौख्यस्य सिद्ध्यै दर्शयन्मुनिः ॥४१॥
द्वादशांगविकल्पेषु वेदेषु यतिवृत्तिषु। अंतर्गता गृहस्थानां यथोक्ताचारदर्शिना ॥ ४२ ॥
गुणशिक्षाव्रतस्थानामनेकनियमाश्रितां। तेन ये दर्शिता वेदा ऋषभप्रभुणार्षभाः ॥ ४३ ॥
तानधीत्य तदुक्तेन विधिना भरतार्चितः। धर्मयज्ञानयच्छाद्ययुगे विप्रगणोऽखिलः ॥ ४४ ॥
अनार्षाणां तु वेदानामुत्पत्तिरभिधीयते। ऐदंयुगीनविप्राणां तात्पर्यं यत्र वर्त्तते ॥ ४५ ॥
भूपो धारणयुग्मेऽभूत्पुरे यो रणभूमिषु। अयोधनतया योधैरयोधन इतीरितः ॥ ४६ ॥
भूषितादित्यवंशस्य सोमवंशतनूद्भवा। दितिस्तस्य महादेवी तृणविंदोः कनीयसी ॥ ४७ ॥
सा योषिद्गुणमंजूषामसूत सुलसां सुतां। यौवने च पिता तस्याः स्वयंवरमचीकरत् ॥४८॥
आगताश्च समाहूताः पृथिव्यां पृथुकीर्त्तयः। स्वयंवरार्थिनो भूपाः सादराः सगरादयः ॥४९॥
सगरस्य प्रतीहारी नाम्ना मंदोदरी दितेः। गृहं गताऽन्यदाऽश्रौषीदेकांते वचनं दितेः ॥५०॥

सुलसे ! शृणु वृत्तं मे वत्से त्वं मातृवत्सले । सूत्यानुसारिणी स्नेहव्यक्तिर्मातरि यन्मता॥५१॥
जातः सर्वयशोदेव्यां तृणविंदोर्ममाग्रजात् । स्थितं क्षेत्रभधिक्षिप्य श्रिया नु मधुपिंगलः ॥५२॥
पूर्वमेव मया तस्मै मनसा त्वं निरूपिता । मन्मनोरथमेवातः पूरय त्वं स्वयंवरे ॥ ५३ ॥
इत्युक्त्वा सुलसा साश्रुं मातरं प्राह सा वरा । मारोदीर्मातरिष्टं ते कुर्वे राजन्यसंनिधौ ॥५४॥
इत्युक्तमखिलं श्रुत्वा गत्वा मंदोदरी रहः । कन्यास्वीकारचित्ताय सगराय न्यवेदयत् ॥ ५५ ॥
ततः पुरोहितेनाशु सगरो विश्वभूतिना । नरलक्षणविज्ञापि रहः शास्त्रमकारयत् ॥ ५६ ॥
स्वयंवरधरोत्खात लोहमंजूषिकोद्धृतं । अदर्शयत्पुरो राज्ञां पुस्तकं धूमधूसरं ॥ ५७ ॥
स्वयंवरार्थिनां तेषां पुरः पुस्तकमुच्चकैः । अवाचयत्पुरोधाश्च लक्षणश्रवणार्थिनां ॥५८॥
मत्स्यशंखकुशाद्यंकौ पद्मगर्भनिभोदरौ । सुपार्ष्णिभागशोभाढ्यौ सुश्लिष्टांगुलिपर्वकौ ॥५९॥
स्निग्धताम्रनखौ पादौ गूढगल्फौ शिरोज्झितौ । सोष्णौ कूर्मोन्नतौ स्वेदमुक्तौ स्तां पृथिवीपतेः॥६०॥
सूर्पाकारौ शिरानद्धौ वक्रौ रूक्षनखौ स्मृतौ । पादौ पापवतः पुंसः संशुष्कौ विरलांगुली ॥ ६१ ॥
सच्छिद्रौ सकषायौ च वंशच्छेदकरौ तु तौ । हिंस्रस्य दग्धमृच्छायौ पीतौ गम्येत रोषिणः ॥६२॥

१ सुलसे शृणु वत्से मे वचस्त्वं मातृवत्सले । इति ख पुस्तके ।

वृत्तोरवः शुभा निंद्याः शुष्कजंघोरुजानवः ॥ ६३ ॥
अल्पातितनुरोमानुवृत्तजंघा सुजानवः । वृत्तोरवः शुभा निंद्याः शुष्कजंघोरुजानवः । त्र्यादीनि जडनिस्वानां केशाश्चैवं फलाः स्मृताः ॥६४॥
एकैकं कूपके रोम राज्ञां द्वे द्वे सुमेधसां । त्र्यादीनि जडनिस्वानां केशाश्चैवं फलाः स्मृताः । शिश्नं तद्विपरीतं तु विपरीतफलं मतं ॥ ६५ ॥
अल्पं दक्षिणतो वक्रं स्थूलग्रंथि शुभं शिशोः । शिश्नं तद्विपरीतं तु विपरीतफलं मतं । प्रलंबवृषणा नराः ॥ ६६ ॥
म्रियंते स्वल्पवृषणा विषमैः स्त्रीबलाश्च तैः । समैर्भूपाश्चिरायुष्काः प्रलंबवृषणा नराः । श्रीशास्तु नेतरे ॥६७॥
सशब्दमूत्राः सुखिनो विपरीतास्तु दुःखिनः । द्वयादिप्रदक्षिणावर्त्तधाराः श्रीशास्तु नेतरे । व्याघ्रादुद्धतस्फिक्मृतिं व्रजेत्
स्थूलस्फिक्च पुमान्निस्वो मांसलस्फिक् सुखी भवेत् । मांडूकस्फिक् नरो व्याघ्रादुद्धतस्फिक्मृतिं व्रजेत् । घटोरुपिठरोदरः ॥ ६९ ॥
राजा सिंहकटिः प्रोक्तो वानरौष्ट्रकटिर्धनी । समोदरः सुखी दुःखी घटोरुपिठरोदरः । समकुक्षयः ॥ ७० ॥
संपूर्णैर्धनिनः पार्श्वैर्निम्नवक्रैरभोगिनः । कुक्षिभिश्च तथा निम्नैर्भोगिनः समकुक्षयः । बहुभोजनाः ॥ ७१ ॥
उन्नतैः कुक्षिभिर्भूपाः कुधना विषमैश्च तैः । सर्पोदरा दरिद्रास्तु भवंति बहुभोजनाः । क्लेशभाजनः ॥७२॥
विस्तीर्णोन्नतगंभीरवृत्तनाभिः सुखी नरः । निम्नाल्पादृश्यनाभिस्तु कथितः क्लेशभाजनः । सान्यं मेधां करोति च ॥७३॥
शूलबाधाश्च दारिद्र्यं विषमावलिमध्यमाः । सा वामदक्षिणावर्ता सान्यं मेधां करोति च । ॥ ७४ ॥
कुरुते भूपतिं नाभिः पद्मकर्णिकया समा । आयतोपर्यधःपार्श्वविस्तगोमच्चिरायुषः । ॥७५॥
शास्त्रार्थस्त्रीप्रियो नित्यमाचार्यो बह्वपत्यकः । एकद्वित्रिचतुर्भिः स्याद्वलिभिः क्षितिपो बलिः

ज्ञेयाः स्वदारसंतुष्टा ऋजुभिर्वलिभिर्नराः। अगम्यगामिनः पापा त्रिषमैर्वलिभिः पुनः ॥ ७६ ॥
मांसलैर्मृदुभिः पार्श्वैर्दक्षिणावर्त्तरोमभिः। भूपास्तद्विपरीतैस्तु परप्रेष्यकरा नराः ॥ ७७ ॥
सुभगाः स्युरनुद्धूतैश्चूचुकैः पीवरैर्नराः। दीर्घैश्च विषमैर्मर्त्या जायंते धनवर्जिताः ॥ ७८ ॥
मांसलं हृदयं राज्ञां पृथून्नतमवेपनं। विपरीतमपुण्यानां खररोमभिराचितं ॥ ७९ ॥
वक्षोभिश्च समैराढयाः पीनैः शूरास्त्वकिंचनाः। तनुभिर्विषमैर्निस्वास्तथा शस्त्रांतजीविनः ॥८०॥
पीनेन जानुना ह्याढयो भोगवानुन्नतेन तु। निःस्वो निम्नास्थिनद्धेन विषमो विषमेण ना ॥ ८१॥
नित्यमस्वेदनाः कक्षाः पीनोन्नतसुगंधयः। निश्चेतव्या धनेशानां संकुलाः समरोमभिः ॥ ८२ ॥
निस्वस्य चिपिटा ग्रीवा संशुष्का च शिराचिता। कंवुग्रीवो नृपः शूरो महिषग्रीवमानवः ॥८३॥
अरोमशमभग्नं च पृष्टं शुभकरं मतं। रोमशं चातिभग्नं च न शुभावहमिष्यते ॥ ८४ ॥
अल्पावमांसलौ भग्नौ रोमशावधनस्य तु। सुश्लिष्टौ मांसलावंसौ शौर्यवित्तवतां नृणां ॥ ८५ ॥

१ अन्यदाररता नीचा वर्जिता विषमैर्नराः। इति ख पुस्तके

२ अस्मादग्रेतनः ख पुस्तकेऽयमधिकः पाठः—

'स्थूलैश्च मृदुभिः पार्श्वैर्दक्षिणावर्तरोमभिः। राजा भवति मर्त्योऽसावन्यथा किंकरो भवेत् ॥'

पीनौ समौ प्रलंबौ च करौ करिकरोपमौ । नृपाणामधनानां तु नृणां ह्रस्वौ च रोमशौ ॥८६॥
दीर्घा दीर्घायुषां पुंसां करशाखासुकोमलाः । सुभगानामवलिताः सूक्ष्मा मेधाविनां पुनः ॥८७॥
स्थूला धनाविमुक्तानां चिपटाः प्रेष्यकारिणां । आढ्याः कपिकरा मर्त्या क्रूरा व्याघ्रकराः स्मृताः ॥८८
निगूढगूढसुश्लिष्टसंधिसन्मणिबंधनैः । भूपा दारिद्र्ययुक्तास्तैः सशब्दैश्च श्लथैस्तथा ॥ ॥ ८९ ॥
निम्नैः करतलैः क्लीबाः पितृवित्तविवर्जिताः । धनिनः संवृतैर्निम्नैः प्रोत्तानैस्तु प्रदायकाः ॥ ९० ॥
लाक्षाभैरीश्वरा निस्स्वा विषमैर्विषमाश्च तैः अगम्यगामिनः पीतैरूक्षैः रूपाविवर्जिताः ॥ ९१ ॥
तुषच्छाविनखैः क्लीबाः स्फुटितैर्वित्तवर्जिताः । आताम्रैश्च चमूनाथाः कुनखैः परितर्किणः ॥९२॥
अंगुष्ठजैर्यवैराढ्याः पुत्रिणोऽगुष्ठमूलजैः । निम्नातिस्निग्धरेखाभिर्धनिनो व्यत्ययेऽन्यथा ॥९३॥
सुघनांगुलयोऽर्थाढ्या विरलांगुलयोऽन्यथा । तिस्रः करमितारेखा नृपतेर्माणिबंधनात् ॥ ९४ ॥
प्रदेशिनी स्मृता रेखा लक्षणं परमायुषः । छिन्नाभिस्ताभिरूनाभिरायुरूनं निरूपितं ॥ ९५ ॥
असिशक्तिगदाकुंतचक्रतोमरपूर्विकाः । कथयंति चमूनाथं कररेखाःपरिस्फुटं ॥ ९६ ॥
कृशैस्तु चिबुकैर्दीर्घैर्निस्वा धन्यास्तु मांसलैः। उष्ठैरस्फुटिता वक्त्रैर्भूपा बिंबफलोपमैः ॥ ९७ ॥
तीक्ष्णदंष्ट्रा समा स्निग्धा बिशदा दशना घनाः। जिह्वा रक्ता च दीर्घा च श्लक्ष्णा भोगवतां नृणां॥९८॥

आननं संवृत सौम्यं समं राज्ञामवक्रकं । दुर्भगानां वृहद्वक्त्रं शठानां परिमंडलं ॥ ९९ ॥
स्त्रीवक्त्रमनपत्यानां निम्नं वक्त्रं च निश्चितं । ह्रस्वं कृपणमर्त्यानां दीर्घमद्रव्यभागिनां ॥१००॥
शंकुकर्णाः महीपालाः रोमकर्णाश्चिरायुषः । ऋज्वी समपुटा नासा स्वल्पच्छिद्रा च भोगिनां॥ १०१॥
सकृत्कृतं धनेशानां द्विस्त्रिः शास्त्रवतां विदुः । संहतं च प्रमुक्तं च विदितं चिरजीविनां ॥१०२॥
रक्तांतैः पद्मपत्राभैर्नेत्रैः श्रीधनभागिनः । गजेंद्रवृषनेत्रास्तु भवंति वसुधाधिपाः ॥ १०३ ॥
अमंगलदृशः पापाः पिंगलासंगसांगिनः । असंभाष्याः सदा पुंसामदृश्याश्च विशेषतः ॥१०४॥
मानसैर्वाचिकैः कायैः पापैः संचर्चिताः सदा । दुर्जना दुर्भगाः क्रूराः पापा मार्जारलोचनाः॥१०५॥
लक्षणानां समस्तानां गुणदोषविचिंतने । चक्षुर्लक्षणमेवात्र पर्याप्तं फलसाधने ॥ १०६ ॥
मानोन्मानस्वरं देहं गतिसंहतिमन्वयं । सारं वर्णं बुधो दृष्ट्वा प्रकृतिं च वदेत्फलं ॥ १०७ ॥
इति प्रवाच्यमानेऽसौ पुस्तके मधुपिंगलः । नेत्रदोषकृताशंको निर्गत्य सदसोऽगमत् ॥ १०८ ॥
सुलसां च परित्यज्य प्रव्रज्य नवयौवनः । मुनिचर्याश्रितो देशान् पर्यटन्मधुपिंगलः ॥ १०९ ॥
इतः सुलसदंभोजलोचनां सुलसां स्वयं । प्राप्तः स्वयंवरे दक्षः सगरः सुखमन्त्रभूत् ॥ ११० ॥
तदात्वेऽभ्येति शब्दाश्चेद् वैदग्ध्यमभिकथ्यते । नातिगूढतया जंतुरायत्यां तु दुरंततां ॥ १११ ॥

सामुद्रिकोऽन्यदाऽद्राक्षीन्निसंगमधुपिंगलं । मध्याह्ने पुरि कस्यांचित्पारणार्थमुपागतं ॥ ११२ ॥
पादमस्तकपर्यंतान्निरूप्यावयवान्यतेः । सशिरःकंपमाहासौ महाविस्मयसंगतः ॥ ११३ ॥
तिलमात्रोऽपि देहस्य नेक्षतेऽवयवो मुनेः । सामुद्रया सुदृष्ट्या यः शुद्धया परिदूष्यते ॥ ११४ ॥
तिष्ठत्वन्यादिहामुष्य सल्लक्षणकदंबकं । राज्यं सौभाग्यमप्याह मधुपिंगलनेत्रता ॥ १.५ ॥
ईदृग्लक्षणयुक्तोऽपि यदयं नवयौवने । परिभ्रमति भिक्षार्थी तद्धिक् सामुद्रशास्त्रकं ॥ ११६ ॥
यद्येष दग्धदैवेन कदर्थयितुमार्थितः । तत्किमर्थमनिंद्येन लक्षणौघेन चर्चितः ॥ ११७ ॥
अथवा दुःखभीरुत्वान्न स्पृशंति सुखैषिणः । फलितामपि दुष्पाकां विषवल्लीमिव श्रियं ॥११८॥
शुभलक्षणपूर्णस्य पुनः शुद्धान्वयस्य हि । युज्यते क्षपितोऽमुष्य मुमुक्षोर्दीक्षया धृतिः ॥ ११९ ॥
सामुद्रिकवचः श्रुत्वा नरः कश्चिदुवाच तं । किं सामुद्रिकवार्त्ताऽस्य न श्रुता विश्रुतावनौ॥१२०॥
मिलितैः खलभूपालैः सुलसायाः स्वयंवरे । चक्षुर्लक्षणहीनोऽयमिति संसदि दूषितः ॥ १२१ ॥
यथैव सूचकः पुंसां पृष्ठमांसस्य खादकः । निंदितः स्वप्रशंसी च तथैव किल पिंगलः ॥१२२॥
परप्रमाणको मुग्धो मत्वात्मानमलक्षणं । मधुपिंगः शुभाक्षोऽयं विलक्षस्तपसि स्थितः ॥१२३॥
प्रमादालस्यदर्पेभ्यो ये स्वतो नागमेक्षिणः । ते शठैर्विप्रलभ्यंते दृष्टादृष्टार्थगोचरे ॥ १२४ ॥

स्वयंवरे नरश्रेष्ठः कन्यया सगरो वृतः । वृतक्षत्रसमूहेन भोगाशक्तोऽवतिष्ठते ॥ १२५ ॥
इति श्रुत्वा महाक्रोधः स मृत्वा मधुपिंगलः । जातोऽत्रनिकायेषु महाकायोऽधमामरः ॥ १२६ ॥
अहो कषायपानस्य वैषम्यं यद्विरोधिनः । सम्यक्त्वौषधिपानस्य जातमत्यंतदूषणं ॥ १२७ ॥
सुलसापहृतिं ध्यात्वा सोपायां सगरेण सः । क्रोधाग्निना महाकालो जज्वाल हृदये भृशं॥१२८॥
स्त्रीवैरविपदग्धस्य हृदयस्य विदाहिनः । स दाहोपशमं कर्त्तुं न शशाक शमांबुना ॥ १२९ ॥
अचिंतयदसौ येन शत्रोर्दुःखपरंपरां । जायते दीर्घसंसारे तमुपायं करोम्यहं ॥ १३० ॥
प्राणी प्रत्यपकाराय चेष्टते ह्यपकारिणः । तैरुपायैर्यकैर्याति मूढधीः स्वयमप्यधः ॥ १३१ ॥
आगतश्च महाकालः क्षत्रक्रोधेन दीपितः । नारदेन जितं जल्पे पश्यति स्म स पर्वतं ॥ १३२ ॥
शांडिल्याकृतिरूपोऽत्र तस्य विश्वासमाह सः। मागः पर्वत ! निर्वेदं जल्पेऽहं जित इत्यलं ॥१३३॥
श्रौण्यनाम्नो गुरोः शिष्यः शांडिल्योऽहं पिता च ते। वैन्यश्चापि तथोदंचः प्रावृतश्चैव पंचमः॥१३४॥
सूनोः क्षीरकदंबस्य भवतो यः पराभवः । स ममैव ततोऽस्याहं मार्जनाय समुद्यतः ॥ १३५ ॥
सहायं मां परिप्राप्य कुरु क्षेत्रमकंटकं । मरुत्सखस्य रौद्रस्य शिखिनः किमु दुष्करं ॥ १३६ ॥
इति पर्वतमाभाष्य पुरस्कृत्य स दुष्टधीः । सक्षत्रं भरतक्षेत्रं चक्रे व्याधिशताकुलं ॥ १३७ ॥

चक्रे व्याधिविनाशाय शांतिकर्म च पर्वतः । विश्वासेन ततो लोकः शरणं प्रतिपद्यते ॥ १३८ ॥
सगरः क्षत्रलोकेन सहोपेत्य तमादरात् । होमैर्मंत्रविधानैश्च बभूव विगतज्वरः ॥ १३९ ॥
हिंसानोदनयाऽनार्षान् क्रूरान् क्रूरः स्वयंकृतान् । वेदानध्यापयन् विप्रान् क्षिप्रं देवो नयद्दशं ॥ १४० ॥
अश्वमेधोऽजगोमेधो यागो यागफलैषिणां । दर्शितः क्षत्रियादीनां साक्षात्प्रत्ययकारिणां ॥ १४१ ॥
सूयंते यत्र राजानः शतशोऽपि सहस्रशः । राजसूयक्रतुस्तेन दर्शितो राजवैरिणा ॥ १४२ ॥
प्राग्दिवाकरदेवाख्यः खेचरो नारदान्वितः । पापविघ्नकरस्तेन विघ्नितः सुरमायया ॥ १४३ ॥
अणिमादिसुरोत्कृष्टे विकुर्वाणे सुराधमे । विद्याबलसमृद्धोऽपि मानुषः किं करिष्यति ॥ १४४ ॥
घातयित्वा बहून् जीवान् ब्राह्मणादिभिरुद्यतैः । यष्टे यष्टा स दुष्टस्तां स्वपरानिष्टकृत्सुरः ॥ १४५ ॥
इष्ट्वा च सगरं यागे सुलसां च कृपोज्झितः । हिंसानंदं परिप्राप्तः प्रयातश्च निजं पदं ॥ १४६ ॥
प्रवर्तिताश्च ते वेदा महाकालेन कोपिना । विस्तारितास्तु सर्वस्यामवनौ पर्वतादिभिः ॥ १४७ ॥
नारदस्य सुलायाऽसौ खेचरोऽपि सुदृष्टये । सुतां परमकल्याणीं ददौ विद्यासमन्वितां ॥ १४८ ॥
अन्वये तनुजातेयं क्षत्रियायां सुकन्यका । सोमश्रीरिति विख्याता वसुदेव ! द्विजन्मनः ॥ १४९ ॥
...पश्चाद्दत्तेन मुनिना दिव्यचक्षुषा । वेदे जेतुः समादिष्टा महतः सहचारिणी ॥ १५० ॥

इति श्रुत्वा तदाधीत्य सर्वान् वेदान् यदूत्तमः । जित्वा सोमश्रियं श्रीमानुपयेमे विधानतः ॥१५१॥
वरे प्रेम वरं जातं नववध्वा यथा दृढं । वरस्यापि तथा तस्यां तत्र का सुखवर्णना ॥ १५२ ॥

रहस्यकृतवक्षसा घनपयोधरोत्पीडनं
चुचुंब सकचग्रहं जघनमाजघानाधरं ॥
ददंश नृवरो वरः सनखपातमस्या वधू–
र्विवेद मदनातुरा न च तथाविधं बाधनं ॥ १५३ ॥
चचार खचरीसखः खचरलोकलोकाधिकः
स्वरूपगुणसंपदारातिषु दक्षिणो यो युवा ।
स्वतंत्रजिनभक्तयाऽरमदतीव सोमश्रिया
पुरे गिरितटाभिधे सुमतिचारुयोषित्सखः ॥ १५४ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ सोमश्रीलाभवर्णनो नाम त्रयोविंशः सर्गः ॥

चतुर्विंशः सर्गः

अथासावेकदा शौरिरिंद्रशर्मोपदेशतः । उद्याने साधयन् विद्यां निशि धूर्त्तैर्निरीक्षितः ॥ १ ॥
आरोप्य शिविकां कापि दूरं नीतो दिवानने । अपसृत्य ततो यातो नगरं तिलवस्तुकं ॥ २ ॥
बाह्यचैत्यगृहोद्याने रात्रौ सुप्तः प्रबोधितः । केनचिद्राक्षसेनेव पुंसा मानुषभक्षिणा ॥ ३ ॥
भो ! भो ! बुध्यस्व बुध्यस्व कस्त्वं स्वपिषि मानुष । व्याघ्रस्येव क्षुधार्त्तस्य ममास्ये पतितः स्वयं॥४॥
विनिद्रो रौद्रनादेन शौरिः शूरतरोऽमुना । जिघांसंतं भुजेनास्मिाजघान भुजेन सः ॥ ५ ॥
दृढमुष्टिघनाघातघोरानिर्घोषभीषणं । भूतं भूतलसंक्षोभं युद्धमुद्धतयोस्तयोः ॥ ६ ॥
चिरेण दानवाकारो यादवेन बलीयसा । निहत्य मल्लयुद्धेऽसौ मोचितः प्रियजीवितं ॥ ७ ॥
प्रभाते पौरलोकस्तं नराशिनरनाशनं । रथेन पुरमावेश्य सत्पौरुषमपूजयत् ॥ ८ ॥
कन्याः पंचशतान्यत्र रूपलावण्यवाहिनीः । कुलशीलवतीर्लब्ध्वा तत्र तावदतिष्ठपत् ॥ ९ ॥
कुतस्त्योऽयं नृमांसादः पुरुषः परुषाशयः । इति तेन तदा पृष्टैर्वृद्धैरिति निवेदितं ॥ १० ॥
आसीन्नृपः कलिंगेषु पुरे कांचननामनि । जितशत्रुगणः ख्यातो जितशत्रुरभिख्यया ॥ ११ ॥
आसीदयममोघाज्ञः स्वदेशे देशपालकः । जीवघातनिवृत्तेच्छः सर्वत्राभयघोषणः ॥ १२ ॥

तनयस्तस्य सौदासः स मांसरसलालसः। मायूरमांसमात्रायाः पितुराज्ञामदापयत् ॥ १३ ॥
प्रत्यहं शिखिनां मांसं सूपकारेण संस्कृतं। भक्षयत्यप्रकाशं तत् प्रासादांतरवस्थितः ॥ १४ ॥
कदाचित्तु हृते मांसे मार्जारेण पुरो वहिः। सूपकारो गतोऽपश्यन्मृतं शिशुमुपांशु च ॥ १५ ॥
आनीयादात्सुसंस्कृत्य सौदासोऽप्यघसन्मुदा। अपृच्छच्च स तं मांसं कस्येदमिति सादरः ॥ १६ ॥
अशितानि पुरा भद्र! पिशितानि वहूनि भोः। न शतांशेन तान्यस्य स्पृशंति स्म रसांतरं ॥ १७ ॥
सत्यं ब्रूहि हितं साधो! सत्यमस्मन्न ते भयं। इत्युक्तः सोऽवदत्सर्वं नीत्या युक्तः स्वचेष्टितं॥१८॥
सौदासोऽपि च तत् श्रुत्वा सूपकारं शशास सः। तुष्टोऽस्मि मर्त्यमांसं मे नित्यमानीयतामिति ॥१९॥
पितर्युपरते तावत्सौदासेऽपि पदस्थिते। सोपायं सूपकारोऽभूदन्वहं शिशुमारकः ॥ २० ॥
प्रत्येकं प्रत्यहं हानिमपत्यानामवेक्ष्य वै। परीक्ष्य भक्षको लोकैराशु देशादपाकृतः ॥ २१ ॥
रंध्रे व्याघ्रवदापत्य निशि नीत्वा नु मानुषान्। दिवाऽरण्ये चरः कुर्याद् व्यसनोपहतो न किं॥२२॥
असाध्यो लोकवित्रासी स एष भवताऽधुना। प्रापितः साधुना मृत्युमसाधारणशक्तिना ॥ २३ ॥
इत्यावेद्य वयोवृद्धाः सौदासस्य कुचेष्टितं। वस्त्रमाल्यविभूषाद्यैः पूजयंति स्म यादवं ॥ २४ ॥
लेभे च सोऽचलग्रामे सार्थवाहस्य देहजां। वेद सामपुरं चामा प्रयातो वनमालया ॥ २५ ॥

तत्पुराधिपतिं युद्धे स जित्वा कपिलश्रुतिं । उवाह विधिना वीरस्तत्कन्यां कपिलाभिधां ॥ २६ ॥
तस्यामजनयत्पुत्रं प्रसिद्धं कपिलाख्यया । प्रीतिं श्वशुरपुत्रेण प्राप्तश्चांशुमता परां ॥ २७ ॥
वारिबंधेऽन्यदा गंधगजेन ह्रियमाणकः । दृढमुष्टिर्जघानेभं नीलकंठः स चाभवत् ॥ २८ ॥
पतितश्च शनैः शौरिस्तडागांभस्यनाकुलः । अटव्याश्च विनिष्क्रम्य गतः शालगुहां पुरीं ॥ २९ ॥
तत्र पद्मावतीं लेभे धनुर्वेदोपदेशतः । जित्वा जयपुरेशं च तत्रैतामपि लब्धवान् ॥ ३० ॥
साकमंशुमता यातो भद्रिलाख्यपुरं परं । पौंड्रश्च नृपतिस्तत्र दुहिता चारुहासिनी ॥ ३१ ॥
दिव्यौषधिप्रभावेन सा युवन्वेषधारिणी । तेन विज्ञातवृत्तांता परिणीतातिहारिणी ॥ ३२ ॥
पुत्रं पात्रं श्रियां तस्यां स पौंड्रमुदपादयत् । निशि हंसापदेशेन हृतश्चांगारकारिणा ॥ ३३ ॥
विसृष्टश्चापि गंगायां पपात वियतः शनैः । अपश्यत्पुरं प्रातरिलावर्धनसंज्ञकं ॥ ३४ ॥
तत्रापणे निविष्टोऽसौ वणिक्दत्तवरासने । आपणः क्षणमात्रेण पूर्यते स्म धनैश्च सः ॥ ३५ ॥
तत्प्रभावमसौ बुद्ध्वा वणिक् नीत्वा स्वमंदिरं । ददौ रत्नवतीं यूने कन्यां धन्याय संपदा ॥३६॥
ञानः स तथा दिव्यान् भोगानंतरवर्जितान् । यातः शक्रमहं द्रष्टुमेकदा तु महापुरं ॥ ३७ ॥
हेरसौ दृष्ट्वा प्रासादान् विपुलान् बहून् । पृष्टवानिति केनामी किमर्थं वा निवेशिताः ॥३८॥

तेनोक्तं सोमदत्तेन राज्ञा कन्या स्वयंवरे । कारिता बहुशश्चित्राः प्रासादाः पृथिवीभृतां ॥ ३९ ॥
स्वयंवराविधेः कन्या कुतश्चिदपि हेतुतः । विरक्ताऽभूदतः सर्वे राजानश्च विसर्जिताः ॥ ४० ॥
इत्याकर्ण्य स तस्याश्च चिंतयन्मनसो गतिं । पश्यन्निंद्रमहं तत्र शौरिर्यावदवस्थितः ॥ ४१ ॥
तावच्च सहसा प्राप्ताः सरक्षाः नृपतिस्त्रियः । इंद्रध्वजं च वंदित्वा प्रस्थिताः स्वगृहं पुनः ॥४२॥
आलानस्तंभमाभज्य तदा च समदद्विपः । मारयन्सहसाऽऽगच्छन्मर्त्यान्मृत्युरिव स्वयं ॥ ४३ ॥
लोकस्य मार्यमाणस्य महाकलकलध्वनिः । दिशो दश तदा व्याप रसतः पश्यतः पथि ॥४४॥
प्राप्तश्च मत्तमातंगो वेगी प्रवहणान्यसौ । कन्या प्रवहणाच्चैका पपात सभया क्षितौ ॥ ४५ ॥
करिणं निर्मदीकृत्य तां ररक्ष भयाकुलां । पश्यतः सर्वलोकस्य कृतक्रीडः स यादवः ॥ ४६ ॥
परित्यज्य गजं श्रांतं कन्यां भयविमूर्च्छितां । समाश्वासयदुत्थाय सा तमैक्षिष्ट रूपिणं ॥ ४७ ॥
दीर्घमुष्णं च निश्वस्य वाष्पाकुलविमोचना । त्रपानता करं तस्य जग्राह स्पर्शसौख्यदं ॥ ४८ ॥
गते शौरौ यथास्थानं धात्री वृद्धा महत्तराः । प्रगृह्य कन्यकां तां च ययुरन्तःपुरालयं ॥ ४९ ॥
ततः कुबेरदत्तस्य भुवने कृतभूषणं । शौरिमेत्य प्रतीहारी राजादेशात्ततोऽवदत् ॥ ५० ॥
ज्ञातमेव हि ते नूनं वृत्तं देव ! यथा नृपः । सोमदत्तः प्रिया चास्य पूर्णचंद्रेति कीर्त्तिता ॥ ५१ ॥

नाम्ना भूरिश्रवाः पुत्रः सोमश्रीस्तनयाऽनयोः । अस्याः स्वयंवरार्थं च समाहूता नरेश्वराः ॥५२॥
सोमश्रीर्निशि हर्म्यस्था देवागमनदर्शनात् । जातिस्मरणसंयुक्ता मुमूर्च्छ प्रेमवाहिनी ॥ ५३ ॥
लब्धसंज्ञा समुत्थाय ध्यायंती स्वर्गिणं पतिं । स्नानाशनानिवृत्तेच्छा मौनव्रतमशिश्रियत् ॥५४॥
एकांते पृष्टया कृच्छ्रात् कथितं च ममानया । पूर्वजन्मनि देवेन सह क्रीडितमात्मनः ॥ ५५ ॥
पूर्वप्रच्युतदेवस्य हरिवंशे समुद्भवः । विज्ञातश्चानया देव्या सत्यात् केवलिभाषितात् ॥ ५६ ॥
समागमश्च विज्ञातः पत्या हस्तिभयच्छिदा । संवादे चाधुना जाते सा ते वांछति संगमं ॥५७॥
राज्ञा मद्वचनाज्ज्ञात्वा प्रेपिताहं तवांतिकं । सौम्य ! सोमश्रिया सार्कं भज विवाहमंगलं ॥ ५८ ॥
इत्यावेदितसंबंधः स तुष्टोऽधकवृष्टिजः । सोमश्रियमुवाहेष्टां सोमदत्ततनूद्भवां ॥ ५९ ॥
स्वास्यारविंदसौगंधमकरंदोपयोगिनोः । काले याति सुखे तावत् सोमश्रीवसुदेवयोः ॥ ६० ॥
अथ कोऽप्येकदा भर्त्तुर्भुजपंजरशायिनीं । सोमश्रियं श्रियं वाऽरिरहरन्निशि खेचरः ॥ ६१ ॥
विबुद्धस्तु पतिः पत्नीमपश्यन् परमाकुलः । सोमश्रीः क्व गताऽसि त्वमेह्येहीति जुहाव तां ॥ ६२ ॥
वचोऽनंतरमेषाऽहमिति दत्त्वा वचः श्रितां । खेटस्वसारमद्राक्षीत्सोमश्रीरूपवर्त्तिनीं ॥ ६३ ॥
निष्क्रांतासि बहिः कांते किमर्थमिति नोदिता । घर्मशांत्यर्थमित्याह सोमश्रीरिव सा स्वयं ॥६४॥

कृतरूपपरावर्तिः शौरिरूपवशीकृता । कन्याभावमुदस्यैनमरीरमदरिस्वसा ॥ ६५ ॥
नित्यशो भुक्तभोगा च सुप्ते पत्यौ स्वपित्यसौ । प्राक् प्रबुद्धा करोत्यूरुपादसंवाहनादिकं ॥ ६६ ॥
अन्यदा तु विबुद्धोऽसौ प्रथमं कथमप्यथ । सोमश्रीरूपमुक्तां तां ददर्श शयितां निशि ॥ ६७ ॥
धीरो विस्मययुक्तस्तां सहसा स्वयमुत्थितां । अप्राक्षीद् ब्रूहि हे का त्वं सोमश्रीरिव वर्तसे ॥ ६८ ॥
सा प्रणम्याभणीत्सौम्य ! दक्षिणश्रेण्यवस्थितं । स्वर्णाभं पुरमस्येशश्चित्तवेगो नभश्चरः ॥ ६९ ॥
पत्न्यंगारवती तस्य प्रत्यंगं संगतप्रभा । सूनुर्मानसवेगोऽस्याः सुता वेगवती त्वहं ॥ ७० ॥
राज्यं मानसवेगे च पिता न्यस्य तपस्यया । पापस्योपशमं कर्तुं तपोवनमुपाविशत् ॥ ७१ ॥
नीता मानसवेगेन सोमश्रीः स्वपुरं परं । आर्य ! तिष्ठति तत्रासौ शीलवेलावलंबिनी ॥ ७२ ॥
तस्याः प्रसादने तेन प्रयुक्ताऽहमशक्तितः । त्वात्प्रियायाः सखी जाता सत्त्वशीलवशीकृता ॥७३॥
वार्तानिवेदनायाहं प्रेषिताऽशु तया तदा । त्वत्कलत्रत्वमायाता विचित्राश्चित्तवृत्तयः ॥ ७४ ॥
इत्यावेद्य तदादेशाद्वेगवत्या निवेदितं । सक्रमं पितृबंधुभ्यः सोमश्रीहरणादिकं ॥ ७५ ॥
श्रुत्वा च तत्तथा तेऽपि विपण्णमतयः स्थिताः । वेगवत्यपि पत्यामा प्रकृत्या चिरमारमत् ॥७६॥
तया सह सुखं तस्य रममाणस्य भोगिनः । संप्राप्तो माधवो मासो मधुमत्तमधुव्रतः ॥ ७७ ॥

कदाचित्सह सुप्तोऽसौ तया सुरतखिन्नया । हृतो मानसवेगेन खेचरेण निशि द्रुतं ॥ ७८ ॥
ताडितश्च विबुद्धेन खेचरो दृढमुष्टिना । तेन गंगाजले तं च मुमोच भयविह्वलः ॥ ७९ ॥
विद्यां साधयतस्तत्र स्कंधे विद्याधरस्य सः । पपात नभसस्तस्य विद्यासिद्धिस्तथोदिता ॥ ८० ॥
सिद्धविद्यः प्रणम्यासौ प्रयातो यदुनंदनं । कन्या विद्याधरी चैनं निनाय खचराचलं ॥ ८१ ॥
तदनंतरमाकीर्णखेचरैर्नभसस्तलं । पुष्पाणि पंचवर्णानि मुंचाद्भिः प्रणतैः पुरः ॥ ८२ ॥
प्रवेशितः पुरं सोऽथ रथेन रविरोचिषा । तूर्यशंखनिनादेन पूरिताखिलदिङ्मुखं ॥ ८३ ॥
कन्यां मदनवेगां च मदनोपमविभ्रमः । उपयेमे मुदा दत्तां खगैर्दधिमुखादिभिः ॥ ८४ ॥
बिभ्राणो वसुदेवोऽत्र भावं मदनवेगजं । चिक्रीड निविडस्तन्या चिरं मदनवेगया ॥ ८५ ॥

अनुभवंतममुं जिनधर्मजं
समसुखं गजमंगजगोचरं ।
रतिषु लब्धवरा वरमंगना
जनकबंधविमोक्षमयाचत ॥ ८६ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ मदनवेगालाभवर्णनो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः ।

पंचविंशः सर्गः।

भ्राता मदनवेगायाः श्रित्वा दधिमुखोऽन्यदा। पितृबंधुविमोक्षार्थी संबंधं शौरयेऽवदत् ॥ १ ॥
शृणु देव! नमेर्वंशे संख्यातीतेषु राजसु। अरिंजयपुराधीशो मेघनादोऽभवन्नृपः ॥ २ ॥
पद्मश्रीस्तस्य कन्याऽभूत् सा च नैमित्तिकैः पुरा। स्त्रीरत्नं भवितेत्येवमादिष्टा चक्रवर्त्तिनः ॥३॥
नभस्तिलकनाथश्च प्रियपूर्वमनेकशः। वज्रपाणिरिति ख्यातस्तामयाचत रूपिणीं ॥ ४ ॥
अलाभे च ततस्तस्या स रुष्टो दुष्टखेचरः। युद्धे जेतुमशक्तोऽगादकृतार्थो निजं पुरं ॥ ५ ॥
मेघनादोऽपि तत्काले जातकेवललोचनं। मुनिमभ्यर्च्य पप्रच्छ नृसुरासुरसंसदि ॥ ६ ॥
प्रभो! मे दुहितुर्भर्त्ता भविता भरतेऽत्र कः। इति पृष्टोऽवदत्सोऽपि वरमन्वयपूर्वकं ॥ ७ ॥
कौरवान्वयसंभूतो भूतो गजपुरे नृपः। कार्तवीर्य इति ख्यातिं बिभ्रद्वीर्यसमुद्धतः ॥ ८ ॥
सोऽवधीत् कामधेन्वर्थं यमदग्निं तपस्विनं। क्रोधात्परशुरामस्तं जघान पितृघातिनं ॥ ९ ॥
क्षत्रियेषु तथाऽन्येषु सकलत्रेषु शत्रुणा। क्रुद्धेन दत्तयुद्धेषु मार्यमाणेषु भूरिषु ॥ १० ॥
अंतर्वत्नी तदा पत्नी कार्तवीर्यस्य कातरा। तारा रहसि निःसृत्य प्राविशत्कौशिकाश्रमं ॥११॥
वसंती तत्र सा भीरुः प्रसूता तनयं शुभं। क्षत्रियत्रासनिर्भेदमष्टमं चक्रवर्त्तिनं ॥ १२ ॥

कौशिकस्याश्रमे रम्ये प्रच्छन्नो वर्धतेऽधुना ॥ १३॥
यस्माद्भूमिगृहे जातः सुभौमस्तेन भाषितः। दुहितुर्भविता भर्त्ता भवतोऽल्पैर्दिनैरिह ॥ १४ ॥
स हंता जामदग्न्यस्य षट्खंडपतिरूर्जितः। रामोऽपि निभृतं चेतो धत्ते द्विजहितेऽधुना ॥ १५ ॥
ससकृत्वःकृतांताभः स कृत्वा क्षत्रमारणं। प्रतापाग्निपरीताशः पूरिताशो विजृंभते ॥ १६ ॥
एवमेकातपत्रायां पृथिव्यां जमदग्निजः। उत्पाताः शतशो जाता जामदग्न्यगृहेऽधुना ॥ १७ ॥
सुभौमे वर्धमाने तु तापसाश्रमवासिनि। उत्पाताः कथयंतीमे किमनिष्टमिति श्रुतं॥१८॥
आशंकितः स नैमित्तं पृच्छति स्म सविस्मयः। विज्ञेयः कथमित्युक्ते प्राह नैमित्तिकस्ततः ॥ १९ ॥
स आह वर्धते वैरी भवतोऽतर्हितः क्वचित्। पायसत्वेन वर्त्तेत स एवारिस्तवोद्धतः ॥ २० ॥
हतक्षत्रियसंघानां दंष्ट्रा यस्य जिघत्सतः। विशालां सत्र शालां तामाश्वेव समचीकरत् ॥ २१ ॥
इति श्रुत्वा स जिघांसुः शत्रुं क्षत्रियपुंगवं। निरूपिततदध्यक्षो यत्नवानवतिष्ठते ॥ २२ ॥
सत्रमध्ये व्यवस्थाप्य दंष्ट्राभरितभाजनं। गत्वा गजपुरं शीघ्रं पश्यति स्म कुमारकं ॥ २३ ॥
आकर्ण्य मेघनादस्तं कृत्वा केवलिवंदनां। ज्वलत्प्रतापमभितो भानुमंतमिवोदितं ॥ २४ ॥
शस्त्रशास्त्रार्णवस्यांते वर्त्तमानमधिश्रियं। अहितेंधनदाहाय वायुनेव तनूनपात् ॥ २५ ॥
शनैः स प्रेरितस्तेन वृत्तांतविनिवेदिना।

आजगाम च तेनैव सह शत्रुगृहं गृहात्। बुभुक्षुरुपविष्टश्च दर्भासनपरिग्रहः ॥ २६ ॥
दंष्ट्राभोजनमग्रेऽस्य द्विजाग्रासनवर्तिनः। विन्यस्तं तत्प्रभावेन दंष्ट्रा पायसतां ययुः ॥ २७ ॥
ततोऽध्यक्षनरैराशु रामाय विनिवेदितं। स जिघांसुस्तमागच्छत्परशुव्यग्रपाणिकः ॥ २८ ॥
भुंजानः पायसं पात्र्यां सुभौमो हन्यमानकः। जघानारिं तथैवाशु चक्रत्वपरिवृत्तया ॥ २९ ॥
तं चतुर्दशरत्नानि निधयो नव भेजिरे। द्वात्रिंशच्च सहस्राणि नृपाश्चक्रिणमष्टमं ॥ ३० ॥
स्त्रीरत्नलाभतुष्टेन मेघनादोऽपि चक्रिणा। नीतो विद्याधरेशित्वमवधीद्वज्रपाणिकं ॥ ३१ ॥
एकविंशतिवारांश्च चक्रवर्त्यपि रोषणः। चक्रेणाब्रह्मणां क्षोणीं शठं प्रतिशठस्तथा ॥ ३२ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि जीवित्वा तृप्तिवर्जितः। सुभौमः सार्वभौमोऽन्ते सप्तमीं पृथिवीं गतः ॥ ३३ ॥
संतानो मेघनादस्य विद्यावलसमुद्धतः। प्रतिशत्रुरभूत्षष्ठस्त्रिखंडाधिपतिर्बलिः ॥ ३४ ॥
नंदश्च पुंडरीकश्च हलशक्रधरौ ततः। अभूतां निहतस्ताभ्यां वलिभ्यां बलिराहवे ॥ ३५ ॥
वलेर्वंशे समुत्पन्नः सहस्रग्रीवखेचरः। परः पंचशतग्रीवो द्विशतग्रीव इत्यतः ॥ ३६ ॥
एवमादिष्वतीतेषु खेचरेषु वहुष्वभूत्। विद्युद्वेगः पिताऽस्माकं श्वशुरस्तव यादव ॥ ३७ ॥
सोऽन्यदा मुनिमप्राक्षीदवधिज्ञानचक्षुषं। पतिर्मदनवेगायाः कोऽस्त्वस्या भगवन्निति ॥ ३८ ॥

पतिष्यति ॥ ३९ ॥
मुनिराह भवत्सूनोर्विद्यां साधयतो निशि । चंडवेगस्य यः स्कंधे गंगास्थस्य पतिष्यति ॥ ३९ ॥
तं निश्चित्य पिता पुत्रं चंडवेगं न्ययोजयत् । गंगायां चंडवेगायां विद्याराधनकर्मणि ॥ ४१ ॥
नभस्तिलकनाथश्च खेटस्त्रिशिखरः खलः । याचित्वैनां स्वपुत्राय सूर्यकाय न लब्धवान् ॥ ४२ ॥
युद्धे रंध्रमसौ लब्ध्वा बध्वाऽस्मज्जनकं व्यधात् । वैरानुबंधबुद्धिस्तं बंधनागारवर्तिनं ॥ ४३ ॥
संप्राप्तश्च त्वमस्माभिः सांप्रतं पुरुविक्रमः । श्वशुरस्यारिबद्धस्य कुरु बंधविमोक्षणं ॥ ४४ ॥
पूर्वजानां च दत्तानि सुभौमेन प्रसादिना । विद्यास्त्राणि गृहाणेश ! शात्रवस्य जिघांसया ॥ ४५ ॥
श्रुत्वा दधिमुखस्योक्तं वसुदेवः प्रतापवान् । श्वशुरस्य विमोक्षार्थं मतिमात्मनि चादधे ॥ ४६ ॥
चंडवेगस्ततस्तस्मै विद्यास्त्राणि बहून्यसौ । विधिपूर्वं ददौ यूने सेवितानि सुरैः सदा ॥ ४७ ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम्ना लोकोत्सादनमप्यतः । आग्नेयं वारुणं चास्त्रं माहेंद्रं वैष्णवं तथा ॥ ४८ ॥
यमदंडमथैशानं स्तभनं मोहनं तथा । वायव्यं जृंभणं चापि बंधनं मोक्षणं ततः ॥ ४९ ॥
विशल्यकरणं चास्त्रं व्रणसंरोहणं तथा । सर्वास्त्रच्छादनं चैव छेदनं हरणं परं ॥ ५० ॥
एवमाद्यानि चान्यानि सरहस्यानि यादवः । चंडवेगवितीर्णानि जग्राहास्त्राणि सादरः ॥ ५१ ॥
वयमेव बलोद्रेकान् क्रूरस्त्रिशिखरो बलैः । युयुत्सुरागमत्क्षिप्रं चंडवेगपुरांतिकं ॥ ५१ ॥

गत्वा वध्यः स्वयं प्राप्तः समीपमिति तोपवान् । शौरिः श्वशुरपुत्रादिवलेनामा विनिर्ययौ ॥५२॥
खेचराणां निकायस्य मध्ये स यदुनंदनः । कल्पवासिनिकायस्य पुरंदर इवाबभौ ॥ ५३ ॥
खे मातंगनिकायस्य मध्ये त्रिशिखरो बभौ । रौद्रासुरनिकायस्य यथैव चमरासुरः ॥ ५४ ॥
विमानैश्च महामानैर्गजैश्च मदमत्सरैः । तुरंगैर्वायुवेगैश्च बलयोः स्थगितं नभः ॥ ५५ ॥
शस्त्रजालकरच्छन्नचंडांशुकरयोरभूत् । तूर्यादिरवतोपिण्योः संघातो व्योम्नि सैनयोः ॥ ५६ ॥
आकर्णाकृष्टकोदंडमंडलोन्मुक्तसायकैः । अभिद्यत नृणां बाह्या नांतस्था हृदयस्थली ॥ ५७ ॥
अछिद्यंत शिरांस्युग्रचक्रधाराभिराहवे । शशिशंखविशुद्धानि न यशांसि मनस्विनां ॥ ५८ ॥
पपात सुभटः खड्गधारापातेन मूर्च्छितः । अनेकरणनिर्व्यूढप्रतापस्तु न संयुगे ॥ ५९ ॥
घोरमुद्गरघातेन चक्षुर्बभ्राम मानिनः । विपक्षस्य जयोद्ग्रासघस्मरं तु न मानसं ॥ ६० ॥
गजाश्वरथपादातं यथास्वं सुमनोरथं । युयुधे युधि धैर्येण शौर्येण च विशेषितं ॥ ६१ ॥
शस्त्रार्थैः प्राकृतैर्योधाः कृतयुद्धमहोत्सवाः । युद्धभ्रमविनिर्मुक्ताश्चिरं युयुधिरेऽधिकं ॥ ६२ ॥
शौर्यकांगारवैगारिर्नीलकंठपुरोगमाः । पुरस्कृत्य जिताश्वंडाश्वंडवेगेन वेगिना ॥ ६३ ॥
जवनाश्वरथारूढं नानाशस्त्रास्त्रभीषणं । अग्रे दधिमुखं शौरिं प्राप्तस्त्रिशिखरोऽभितः ॥ ६४ ॥

प्राकृतास्त्रैस्तयोरासीत्प्रथमं प्रधनं महत् । परस्परशरासारव्यासाशांतांतरिक्षयोः ॥ ६५ ॥
क्षिप्रं चिक्षेप चाग्नेयमस्त्रं शौरिर्धनुर्धरः । रौद्रज्वालाकुलेनाशु तेनादाहि रिपोर्बलं ॥ ६६ ॥
अस्त्रेण वारुणेनारिर्विध्याप्याग्नेयमाहवे । मोहनेन महास्त्रेण शौरिसैन्यं व्यमोहयत् ॥ ६७ ॥
चित्तप्रसादनेनाशु मोहनास्त्रमपास्य सः । शौरिर्व्यनाशयद् व्योम्नि वायव्येन च वारुणं ॥ ६८ ॥
क्षिप्रं क्षिप्रं निरस्यासावस्त्रमस्त्रेण वैरिणः । माहेंद्रास्त्रेण चिच्छेद शिरस्तस्य यदूत्तमः ॥ ६९ ॥
तस्मिन्नस्तमिते दीप्ते क्षिप्रं शेषा नभश्चराः । नेशुराशाः परित्यज्य रत्नानिव करोत्कराः ॥ ७० ॥
ततः शौरिः समस्तैस्तैरात्मीयैः खेचरैर्वृतः । श्वशुरं बंधनागाराद्विमोच्य स्वपुरं ययौ ॥ ७१ ॥

दुर्जयमप्यरिलोकमनेकैः शांतिमतो निखिलं गतगर्धैः । ॥ ७२ ॥
आशु निर्जित्य जनो जिनधर्मादाभयनामिह यानि वतनां

चतुर्णिकायदेवैः स मर्त्यैश्च कृतपूजनः । संपृष्टो वैरसंबंधः पित्रा नु जितशत्रुणा ॥ २९ ॥
मृगध्वजमुनिः प्राह देवदानवमानवैः । कथावर्णनसंतुष्टचित्तकर्णपुटैर्वृतः ॥ ३० ॥

षड्विंशः सर्गः ।

शौरिर्मदनवेगायां मदनप्रतिमोऽभवत् । अनावृष्टिरिति ख्यातस्तनयो नयविद्बली ॥ १ ॥
सस्त्रीकाः खेचरा याताः सिद्धकूटजिनालयं । एकदा वंदितुं सोऽपि शौरिः मदनवेगया ॥ २ ॥
कृत्वा जिनमहं खेटाः प्रवंद्य प्रतिमागृहं । तस्थुः स्तंभानुपाश्रित्य बहुवेषा यथायथं ॥ ३ ॥
विद्युद्वेगोऽपि गौरीणां विद्यानां स्तंभमाश्रितः । कृतपूजास्थितिः श्रीमान् स्वनिकायपरिष्कृतः ॥४॥
पृष्टया वसुदेवेन ततो मदनवेगया । विद्याधरनिकायास्ते यथास्वामिति कीर्त्तिताः ॥ ५ ॥
अस्मदीयं विभो स्तंभं ये श्रिताः पद्मपाणयः । पद्ममालाधरास्तेऽमी गौरिकाख्या नभश्चराः ॥६॥
रक्तमालाधराश्चैते रक्तकंबलवाससः । गांधारस्तंभमाश्रित्य गांधाराः खेचराः स्थिताः ॥ ७ ॥
नानावर्णमयस्वर्णपीतकौशेयवाससः । मानवस्तंभमेत्यामी स्थिता मानवपुत्रकाः ॥ ८ ॥
किंचिदारक्तवस्त्रा ये लसन्मणिविभूषणाः । मानस्तंभमिता ह्येते खेचरा मनुपुत्रकाः ॥ ९ ॥
विचित्रौषधिहस्तास्तु विचित्राभरणस्रजः । औषधिस्तंभमायाता मूलवीर्या नभश्चराः ॥ १० ॥
सर्वर्त्तुकुसुमामोदकांचनाभरणस्रजः । अंतर्भूमिचरा ह्येते ये स्तंभे भूमिमंडके ॥ ११ ॥
विचित्रकुंडलाटोपा ये नागांगदभूषणाः । शंकुस्तंभाश्रितास्तेऽमी शंकुकाः खचराः प्रभो ॥ १२ ॥

ये तेऽमी कौशिकाः खेटाः कौशिकस्तंभमाश्रिताः ॥ १३ ॥
आबद्धमुकुटापीडविलसन्मणिकुंडलाः। निकायान् शृणु वच्मि ते ॥ १४ ॥
अमी विद्याधरा ह्यार्याः समासेन समीरिताः। मातंगानामपि स्वामिन् ।
नीलांबुदचयश्यामा नीलांबरवरस्रजः। अमी मातंगनामानो मातंगस्तंभसंगताः ॥ १५ ॥
श्मशानास्थिकृतोत्तंसा भस्मरेणुविधूसराः। श्मशाननिलयास्त्वेते श्मशानस्तंभसंश्रिताः ॥ १६ ॥
नीलवैडूर्यवर्णानि धारयंत्यंबराणि ये। पांडुरस्तंभमेत्यामी स्थिताः पांडुकखेचराः ॥ १७ ॥
कृष्णाजिनधरास्त्वेते कृष्णचर्मांबरस्रजः। कालस्तंभं समभ्येत्य स्थिताः कालश्वपाकिनः ॥ १८ ॥
पिंगलैर्मूर्धजैर्युक्तास्तप्तकांचनभूषणाः। श्वपाकीनां च विद्यानां श्रिताः स्तंभं श्वपाकिनः ॥ १९ ॥
पर्णपत्रांशुकच्छन्नविचित्रमुकुटस्रजः। पार्वतेया इति ख्याताः पार्वतं स्तंभमाश्रिताः ॥ २० ॥
वंशीपत्रकृतोत्तंसाः सर्वर्तुकुसुमस्रजः। वंशस्तंभाश्रिताश्चैते खेटा वंशालया गताः ॥ २१ ॥
महाभुजगशोभांकसंदष्टवरभूषणाः। वृक्षमूलमहास्तंभमाश्रिता वार्क्षमूलिकाः ॥ २२ ॥
स्ववेशकृतसंचाराः स्वचिह्नकृतभूषणाः। समासेन समाख्याता निकायाः खचरोद्गताः ॥ २३ ॥
इति भार्योपदेशेन ज्ञातविद्याधरांतरः। शौरिर्यातो निजं स्थानं खेचराश्च यथायथं ॥ २४ ॥
शौरिर्मदनवेगां तामेकदा तु कुतश्चन। एहि वेगवतीत्याह साऽपि रुष्टाऽविशद्गृहं ॥ २५ ॥

प्रज्वाल्यात्रांतरे गेहात् शौरिं त्रिशिखरांगना। श्रित्वा मदनवेगाभां सूर्यनख्यहरच्छलात् ॥ २६ ॥
अंतरिक्षे मुमुक्षुस्तमद्राक्षीद् द्रागधोऽन्तरे। रिपुं मानसवेगाख्यमकस्मात्समुपस्थितं ॥ २७ ॥
विमुच्य नियति शौरिं मारणे विनियुज्य तं। यथेष्टं सा गता सोऽपि पपात तृणकूटके ॥ २८ ॥
गीयमानं नरैः श्रुत्वा जरासंधयशः सितं। ज्ञात्वा राजगृहं तुष्टः प्रविष्टः पुरमुत्तमं ॥ २९ ॥
द्यूते जित्वा हिरण्यस्य कोटिमत्र जनाय सः। त्यागशीलो ददौ सर्वां सर्वस्मै तामितस्ततः ॥३०॥
जरासंधस्य हंतारमीदृग्ना जनयिष्यति। इति नैमित्तिकादेशादीदृगन्विष्यते तदा ॥ ३१ ॥
दृष्ट्वा च तं तदाध्यक्षैर्भस्त्रारुद्धतनुश्च सः। नीत्वा मुक्तो गिरेरग्रान्म्रियतामिति तत्क्षणे ॥ ३२ ॥
ततः पतदसौ वेगाद्वेगवत्या धृतो बलाद्। नीयमानस्तया क्वापि चिंतामेतामुपागतः ॥ ३३ ॥
भारुंडैरंडजैः पूर्वं चारुदत्तो यथाऽऽहृतः। तथाऽहमपि नूनं तैर्दुरंतं किंनु मे भवेत् ॥ ३४ ॥
दुरंता बंधुसंबंधा दुरंता भोगसंपदः। दुरंताः कांतिकायाश्च तथापि स्वंतधीर्जनः ॥ ३५ ॥
पुण्यपापकृदेकोऽयं भोक्ता च सुखदुःखयोः। जायते म्रियते चात्मा तथापि स्वजनोन्मुखः ॥३६॥
त एव सुखिनो धीरास्त एव स्वहिते स्थिताः। विहाय भोगसंबंधान् ये स्थिता मोक्षवर्त्मनि ॥३७॥
भोगतृष्णोर्मिनिर्मग्ना वयं तु गुरुकर्मकाः। संसारसुखदुःखाप्तौ मुहुः कुर्मो विवर्तनं ॥ ३८ ॥

अवतार्यैष भस्त्रायाः समाकृष्य वहिः कृतः ॥ ३९ ॥
इत्यादि चिंतयन् वीरो वेगवेत्या गिरेस्तटे । परिष्वज्य स तां मेने स्वपरांगसुखासिकां ॥ ४० ॥
पतिं वेगवती दृष्ट्वा रुरोद विरहाकुला । हृते भर्त्तरि यद्वृत्तं सुखदुःखं निजास्पदे ॥ ४१ ॥
ततस्तेन प्रिया पृष्टा तस्मै सर्वं न्यवेदयत् । पर्यटंत्या चिरं क्षेत्रं भारताख्यमशेषतः ॥ ४२ ॥
द्व्योरन्वेषितः श्रेण्योर्यथारण्यपुरादिषु । वियोगमपि कांक्षंत्याः स्वस्याः स्थानमलक्षितं ॥ ४३ ॥
पार्श्वे मदनवेगायाः पत्युर्दर्शनमेतया । सूर्पणख्या हृतिं चाख्यत्खमुत्क्षिप्य जिघांसया ॥४४॥
श्रित्वा मदनवेगाया रूपं त्रिशिखभार्यया । तीर्थं पंचनदं चाद्रिं न्हीमंतमधितिष्ठसि ॥ ४५ ॥
अमुतोऽधित्यकातस्त्वमापत्य विधृतो मया । रेमे तत्र धुनीधीरध्वानहारिषु सानुषु ॥ ४६ ॥
इत्यावेदितवृत्तांतः स तया चंद्रवक्त्रया । धन्यां कन्यां यथा वन्यां नागपाशवशां वशां ॥४७॥
सोऽटन् यदृच्छयाऽद्राक्षीन्नागपाशवशां दृढं । व्यपासयदसौ पाशात्पापपाशाद् यथा यतिः ॥ ४८ ॥
तदार्द्रहृदयो नद्यां तामुद्यन्मुखकांतिकां । प्रसादात्तव मे नाथ ! सिद्धा विद्येत्यभाषत ॥ ४९ ॥
मुक्तबंधा च नत्वा सा तमचिंतितबांधवं । विद्युद्दंष्ट्रान्वयोत्थाहं वालचंद्रा नृपात्मजा ॥ ५० ॥
श्रृणु त्वं दक्षिणश्रेण्यां पुरे गगनवल्लभे । नागपाशैरहं बद्धा मोचिता भविता विभो ॥ ५१ ॥
साधयंती महाविद्यां नद्यां विद्याभृतारिणा ।

अन्ववायेस्मदीयेऽन्या कन्या केतुमतीत्यभूत् । मोचिताहमिवांकांडे पुंडरीकार्धचक्रिणा ॥ ५२ ॥
तस्यैव साऽभवत्पत्नी निःसपत्नी यथा तथा । अवश्यंभाविनी पत्नी तवाहमिति बुध्यतां ॥५३॥
त्वं गृहाण विभो विद्यां विद्याधरसुदुर्लभां । इत्युक्तोऽसौ ददद्देया वेगवत्यै ममेच्छया ॥ ५४ ॥
लब्धादेशा तथेत्युक्त्वा ततो वेगवतीमसौ । खमुत्क्षिप्य ययौ कन्या पुरं नगरवल्लभं ॥ ५५ ॥

विद्यादानं बालचंद्राभिधाना विद्यां दत्त्वा कन्यका वेगवत्यै ।
सद्यो जाता मुक्तशल्या च जैन्यो विद्याधर्यः साधयंत्यभ्युपेतं ॥ ५६ ॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे" हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ बालचंद्रादर्शनवर्णनो नाम षड्विंशः सर्गः ।

सप्तविंशः सर्गः ।

गौतमोऽत्रांतरे पृष्टः स्वस्थेन मगधेशिना । विद्युद्दंष्ट्रो मुने ! कोऽसौ कीदृगाचरणोऽपि वा ॥१॥
इत्युक्तो सोऽवदद्वंशे नमेर्गगनवल्लभे । विद्युदंष्ट्रोऽभवद् भर्त्ता श्रेण्योरद्भुतविक्रमः ॥ २ ॥
अपरेभ्यो विदेहेभ्यः सोऽन्यदानीय योगिनं । संजयंतमिहोदारमुपसर्गमकारयत् ॥ ३ ॥
हेतुना केन नाथेति प्रश्नितः कौतुकाद् गणी । पुराणं संजयंतस्य जगौ पापविनाशनं ॥ ४ ॥

इहापरविदेहेऽस्ति विषयो गंधमालिनी । वीतशोका पुरीहात्र वैजयंतोऽभवन्नृपः ॥ ५ ॥
सर्वश्रीरिति भार्यास्य स्वयं श्रीरिव रूपिणी । संजयंतजयंताख्यौ तस्याश्च तनयौ शुभौ ॥ ६ ॥
विहरन्नन्यदा यातः स्वयंभूस्तीर्थकृत्ततः । धर्मं श्रुत्वा पिता पुत्रौ ते त्रयोऽपि प्रवव्रजुः ॥ ७ ॥
तेषां विहरतां सार्धं पिहिताश्रवसूरिणा । संजातं वैजयंतस्य केवलं घातिघातिनः ॥ ८ ॥
चतुर्णिकायदेवेषु वंदमानेषु तं मुनिं । जयंतो वीक्ष्य धरणं निदानी धरणोऽभवत् ॥ ९ ॥
स्वपुर्याश्च मनोहर्याः श्मशाने भीमदर्शने । सप्ताहप्रतिमो योगी संजयंतोऽन्यदा स्थितः ॥ १० ॥
भद्रशाले वने स्त्रीभिर्विद्युद्दंष्ट्रोऽन्यदा चिरं । रंत्वाऽऽगच्छत्पुरं दृष्ट्वा संजयंतं यदृच्छया ॥ ११ ॥
पूर्ववैरवशात्क्रुद्धस्तमानीयात्र भारते । वैताढ्यदक्षिणोपांते गिरौ वरुणनामनि ॥ १२ ॥
हरिद्वती शरच्चंद्रवेगा गजवतीति च । तथा कुसुमवत्यन्या या सुवर्णवती च सा ॥ १३ ॥
पंचानां संगमे तासां प्रदोषसमये स तं । स्थापयित्वा समं गत्वा प्रत्यूषेऽक्षोभयत्खगान् ॥१४॥
राक्षसोऽद्य महाकायः स्वप्नेऽदर्शि मया निशि । क्षयकृत्स किलास्माकं निहन्मस्तं खगा लघु ॥१५॥
इति प्रणोद्यतैः साकमुद्यतैर्विधायुधैः । सोऽवधी निर्वकौ तीर्थे शीतले शीतलस्य सः ॥ १६ ॥
तच्छरीरस्य माहार्थं धरणेंद्रः समागतः । रुष्टो हृत्वाऽखिला विद्यास्तं हंतुं स समुद्यतः ॥ १७ ॥

आदित्याभस्तमागत्य लांतवेंद्रो न्यवारयत् । मा मा प्राणिवधं कार्षीर्धरणेंद्र! फणींद्र! भोः ॥१८॥
त्वमहं च खगेंद्रोऽयं संजयंतश्च संसृतौ । बद्धवैरा वयं सर्वे यथा भ्रांतास्तथा शृणु ॥ १९ ॥
अत्राऽस्ति भरतक्षेत्रे विषयः शकटश्रुतिः । पुरं सिंहपुरं तत्र सिंहसेनो नृपोऽभवत् ॥ २० ॥
रामदत्ता प्रिया तस्य कलागुणविभूषणा । धात्री निपुणमत्याख्या निपुणा निपुणेष्वपि ॥ २१ ॥
सत्यवादी नरेंद्रस्य श्रीभूत्याख्यः पुरोहितः । अलुब्ध इति स ख्यातः श्रीदत्ता तस्य माहिनी ॥२२॥
भांडशालाः समस्तासु दिशासु नगरस्य सः । कारयित्वा वणिग्वर्गविश्वासं कुरुतेतरां ॥ २३ ॥
वणिक् सुमित्रदत्तोऽस्ति पद्मखंडे पुरोधसि । रत्नानि पंच विन्यस्य यातः पोतेन तृष्णया ॥ २४ ॥
भिन्नपात्रः स चागत्य याचित्वा तान्यलब्धवान् । पुरोहितप्रमाणैश्च राजलोकैर्निराकृतः ॥ २५ ॥
प्रत्याशादग्धचित्तश्च नृपागारसमीपगं । उच्चैस्तरुं समारुह्य पूत्करोतीति नित्यशः ॥ २६ ॥
सिंहसेनो महाराजो रामदत्ता कृपावती । साधुलोकस्तथाऽन्योऽपि शृणोतु कृपया युतः ॥ २७ ॥
मासे पक्षेऽह्नि चामुष्मिन् श्रीभूतेः सत्यतो मया । पंचैवंविधरत्नानि हस्ते न्यस्तानि तान्यसौ ॥ २८ ॥
प्रदातुं नेच्छतीदानीमतिलुब्धमतिर्मम । इति प्रत्यूषवेलायां नित्यं पूत्कृत्य यात्यसौ ॥ २९ ॥
बहुष्वेवमतीतेषु मासेषु नृपमेकदा । रात्रौ प्रियाऽवदद्राजन्नन्यायोयमहो महान् ॥ ३० ॥

बलिनो दुर्बलाश्चापि लोके संति तदत्र किं । बलिनां दुर्बला हस्तैर्लभंते नैव जीवितुं ॥ ३१ ॥
दुर्बलस्य वराकस्य हृताऽन्यस्य बलीयसा । रत्नानि तानि दाप्यंतां यदि तेऽस्ति कृपा प्रभो ॥३२॥
राजा प्राह प्रिये ! वार्धौ भिन्नपात्रोयमत्रपः । अर्थनाशे गृही जातः प्रलपत्यतिदुःखितः ॥ ३३ ॥
इत्युक्ता सा जगौ राजन्नैषोऽर्थग्रहदूषितः । यतो नियमितालापस्तत्त्वतस्तत्परीक्ष्यतां ॥ ३४ ॥
इत्याकर्ण्य नृपोऽपृच्छत्तमुपांशु दिनानने । अपन्हुते स्म स द्रोही कुतो लुब्धस्य सत्यता ॥ ३५ ॥
ततो द्यूतच्छलेनैव स परीक्षितुमुद्यतः । राज्ञी तं तु पुराप्राक्षीत् रात्रौ भुक्तमलक्षिता ॥ ३६ ॥
गत्वा निपुणमत्या च राजपत्न्या निदेशतः । याचितानि ददौ तानि साभिज्ञानमपि प्रिया ॥३७॥
द्यूते निर्जितमादाय ब्रह्मसूत्रं ययाच सा । धात्री तथापि नो लेभे पत्यादेशो हि तादृशः ॥३८॥
पतिनामांकितां दृष्ट्वा मुद्रिकां तान्यदात्प्रिया । वचनाद्रामदत्ताया द्यूतं चाप्युपसंहृतं ॥ ३९ ॥
व्यामिश्राण्यपि सद्रत्नैः परकीयैरसौ वणिक् । स्वरत्नान्येवमादाय राजपूजामवाप्तवान् ॥ ४० ॥
परस्वहरणप्रीतः सर्वस्वहरणं द्विजः । गोमयादनमप्याप्य मल्लमुष्टिहतो मृतः ॥ ४१ ॥
अर्थध्यानाविलश्चासौ सर्पो गंधननामकः । भांडागारांतरे जज्ञे राज्ञो द्रोही हताशकः ॥ ४२ ॥
स्थापितोऽन्यः पदे तस्य द्विजो धम्मिल्लसंज्ञकः । मिथ्यादृष्टिरदृष्टार्थं प्रति प्रायः किलोद्यतः ॥ ४३ ॥

पद्मखंडपुरं गत्वा जैनीभूतोऽप्यसौ वणिक्। दानी चासीन्निदानी च दत्तापुत्रत्ववांछया॥ ४४॥
सुमित्रदत्तिका तस्य भार्या मृत्वा विरोधिनी। व्याघ्रीभूता चखादाद्रौ तं साधोर्नतये गतं॥४५॥
सोऽभवद्रामदत्तायाः पुत्रः स स्नेहबंधनः। सिंहचंद्र इतींद्रत्वमगणय्य(?)निदानतः॥ ४६॥
पूर्णचंद्र इतींद्राभः कनीयान् तस्य जातवान्। जातौ च तौ क्षितौ ख्यातौ सूर्याचंद्रमसौ यथा॥४७॥
भांडागारप्रविष्टं च सिंहसेनं स गंधनः। दष्टवान् दुष्टसर्पोऽसावेकदा वैरभावतः॥ ४८॥
मंत्रैर्गरुडदंडेन महागारुडिकेन तु। अगंधनादयः सर्पास्तदाहूय प्रनोदिताः॥ ४९॥
तिष्ठत्वेकोऽपराधी हि शेषा यांतु यथागतं। इत्युक्तो गंधनोऽतिष्ठद् यातास्त्वन्ये पृदाकवः॥५०॥
उपसंहर हे दुष्ट! स्वविसृष्टं विषं लघु। नोपसंहर्तुमिच्छा चेत्प्रविशाशु हुताशनं॥ ५१॥
इत्युक्तो नोपसंहृत्य विषं विषधरो रुषा। ज्वलत्कृशानुमाविश्य मृत्वाऽभूच्चमरी मृगी॥ ५२॥
सिंहसेनो मृतो जातः स हस्ती सल्लकीवने। शाखामृगस्तु धम्मिल्लः का वा मिथ्यादृशां गतिः॥५३॥
रामदत्तासुतौ राजयुवराजौ नयान्वितौ। शशासतुरिलां वेलावलयावधिकां विभू॥ ५४॥
पोदने पूर्णचंद्रो यो या हिरण्यवतीत्यसौ। पितरौ रामदत्ताया जिनशासनभावितौ॥ ५५॥
राहुभद्रमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्यावधिमैत्पिता। दत्तवत्यार्यिकापार्श्वे माताऽधत्तार्यिकाव्रतं॥ ५६॥

पूर्णचंद्रमुनेः श्रुत्वा रामदत्तांबिकाऽर्थिका । प्रवृत्तिं रामदत्तायां गत्वा बोधयतिस्म तां ॥ ५७ ॥
प्राव्रजद्रामदत्ता सा संसारभयवेदिनी । राहुभद्रगुरोरंते सिंहचंद्रोऽपि बोधितः ॥ ५८ ॥
पूर्णचंद्रस्तु राज्यस्थः प्रतापप्रणताहितः । भोगाशक्तो बभूवासौ सम्यक्त्वव्रतवर्जितः ॥ ५९ ॥
एकदा रामदत्ताऽर्या सिंहचंद्रं धृताघाधिं । पप्रच्छ चारणं नत्वा स्वमातृसुतजन्म सा ॥ ६० ॥
स प्राह भरतेऽत्रैव विषये कोशलाभिधे । बभूव बर्द्धकिग्रामे विप्रो नाम्ना मृगायणः ॥ ६१ ॥
ब्राह्मण्यस्य स्वभावेन मधुरा मधुराभिधा । सुता च वारुणी यूनां वारुणीव मदावहा ॥ ६२ ॥
मृत्वा मृगायणो राज्ञः साकेतेऽतिबलस्य सः । हिता हिरण्यवत्येषा श्रीमत्याश्च सुताऽभवत् ॥६३॥
मधुरा त्वं रामदत्ताऽभूः पूर्णचंद्रस्तु वारुणी । वणिक्सुमित्रदत्तोऽहं सिंहचंद्रस्तवात्मजः ॥ ६४ ॥
दष्टः श्रीभूतिपूर्वेण भुजगेन पिता गजः । संजातो ग्राहितो धर्मं मया स मदवारणः ॥ ६५ ॥
दुर्भुजंगचरी मृत्वा चमरी चामरातुरा । रौद्रः कुक्कुटसर्पोऽभूद् रूक्षपक्षपरिग्रहः ॥ ६६ ॥
सोपवासव्रतश्रांतः स विश्रांतमदः करी । ग्रस्तः कुक्कुटसर्पेण सहस्रारमगात्सुधीः ॥ ६७ ॥
विमाने श्रीप्रभे तत्र श्रीधरः श्रीधरोऽमरः । अप्सरोभिरमा भोगी धर्मेण रमतेऽधुना ॥ ६८ ॥
क्रोधाद् धमिल्लपूर्वेण मर्कटेन हतस्तदा । पापः कुक्कुटसर्पोऽगात्पृथिवीं बालुकाप्रभां ॥ ६९ ॥

म्लेच्छः शृगालदत्तस्तद्दंतिदंतास्थिमौक्तिकं। दत्तवान् धनमित्राय पूर्णचंद्राय वाणिजः ॥७०॥
दंतास्थिभिरयं तुष्टः कारयित्वा नृपासनं। हारभारं तु मुक्ताभिरथास्ते तद्विभर्त्ति तं ॥ ७१ ॥
अहो संसारवैचित्र्यं देहिनामिह मोहिनां। पितुरंगानि जायंते भोगांगानि परांगवत् ॥ ७२ ॥
निशम्य शमिनो वाच्यं रामदत्ता प्रमादिनं। तदशेषमुदाहृत्य पूर्णचंद्रमबोधयत् ॥ ७३ ॥
दानपूजातपःशीलसम्यक्त्वमनुपाल्य सः। कल्पे तस्मिन् विमानेऽभूद्वैडूर्यप्रभनामनि ॥ ७४ ॥
रामदत्ताऽपि सम्यक्त्वात्स्त्रैणमुत्सृज्य तत्र तु। प्रभंकरविमानेऽभूद्देवः सूर्यप्रभाभिधः ॥ ७५ ॥
सिंहचंद्रमुनिः सम्यगाराधितचतुष्टयः। ग्रैवेयकेऽहमिंद्रोऽभूत्स प्रीतिंकरसंज्ञके ॥ ७६ ॥
सूर्यप्रभसुरश्च्युत्वा जंबूद्वीपस्य भारते। वैताढ्यदक्षिणश्रेण्यां धरणीतिलके पुरे ॥ ७७ ॥
भूभृतोऽतिबलस्याभूत्सम्यक्त्वच्युतिदोषतः। सुलक्षणमहादेव्यां श्रीधराख्या शरीरजा ॥ ७८ ॥
अलकापतये दत्ता सा सुदर्शनभुभुजे। स वैडूर्यविमानेशस्तस्यां जाता यशोधरा ॥ ७९ ॥
दत्तायामुत्तरश्रेण्यां प्रभाकरपुरेशिने। सूर्यावर्त्ताय जातोऽस्यां सुतोऽसौ श्रीधरोऽमरः ॥ ८० ॥
तस्मै तु रश्मिवेगाय राज्यं दत्त्वा पिता ततः। मुनिचंद्रसमीपेऽसौ मोक्षार्थी तपसि स्थितः॥८१॥
गुणवत्यार्यिकापार्श्वे श्रीधरा सयशोधरा। सम्यग्दर्शनसंशुद्धा प्रव्रज्यां प्रत्यपद्यत ॥ ८२ ॥

…धर्मं श्रुत्वाऽभवद्यतिः॥ ८३ ॥
रश्मिवेगोऽन्यदा जातः सिद्धकूटं ववंदिषुः। हरिचंद्रमुनेस्तत्र धर्मं श्रुत्वाऽभवद्यतिः॥ ८४ ॥
कांचनाख्यगुहायां तं स्वाध्यायध्वनिपावनं। आर्यें ते वंदितुं याते रश्मिवेगं महामुनिं॥ ८५ ॥
वालुकाप्रभभूमेर्यो निर्यातो नारकश्चिरं। स संसृत्य गुहायां हि जातः सोऽजगरोऽत्र तु॥ ८६ ॥
कायोत्सर्गस्थितं साधुमुपसर्गनिरीक्षणात्। आर्ये च ते समर्यादे सोऽगिलद्विपुलोदरः॥ ८७ ॥
रश्मिवेगो मृतः कल्पे कापिष्ठे श्रेष्ठधीरभूत्। अर्कप्रभस्तथाऽत्रार्ये विमाने रुचके सुरौ॥ ८८ ॥
महाशत्रुरसौ मृत्वा रौद्रध्यानदुराशयः। पंकप्रभां भुवं प्राप्तः पापपंककलंकितः॥ ८९ ॥
प्रीतिंकरविमानेशः सिंहचंद्रचरश्च्युतः। अपराजितसुंदर्योः पुत्रश्चक्रपुरेऽजनि॥ ९० ॥
चक्रायुधाभिधानस्य चित्रमालाऽस्य भामिनी। तस्यामर्कप्रभश्च्युत्वा जातो वज्रायुधः सुतः॥ ९१ ॥
श्रीधरापूर्वको देवः पृथिवीतिलके पुरे। प्रियंकरातिवेगाभ्यां रत्नमालाऽभवत्सुता॥ ९२ ॥
वज्रायुधाय सा दत्ता तस्यां रत्नायुधः सुतः। जातो यशोधरापूर्वं सुरः पूर्वसुकर्मणः॥ ९३ ॥
चक्रायुधः श्रियं न्यस्य सुते वज्रायुधे तपः। पिहिताश्रवपादांते मृत्वांते निर्वृतिं श्रितः॥ ९४ ॥
वज्रायुधोऽपि विन्यस्य राज्यं रत्नायुधे तपः। दध्रे राज्यमदोन्मत्तः स च मिथ्यात्वमागतः॥ ९५ ॥
जलावगाहनायास्य राजहस्त्यन्यदा गतः। मुनिदर्शनतः स्मृत्वा जातिं तापः पिबत्यसौ॥ ९६ ॥

तस्य मेघनिनादस्य राज्ञा कृत्यमजानता। वज्रदत्तमुनिः पृष्टः कारणं प्रत्यभाषत ॥ ९६ ॥
चित्रकारपुरेऽत्राभूत्प्रीतिभद्रो नरेश्वरः। दयिता सुंदरी तस्य पुत्रः प्रीतिंकरस्तयोः॥ ९७ ॥
चित्रबुद्धिस्तथा मंत्री कमला तस्य कामिनी। विचित्रमतिरित्यासीत्तनयः सनयोऽनयोः ॥९८॥
अमात्यराजपुत्रौ तौ श्रुत्वा तु तपसः फलं। श्रुतसागरपादांते युवानौ तपसि स्थितौ ॥ ९९ ॥
तौ च निर्वाणधामानि पश्यंतौ कांतदर्शनौ। साकेतमन्यदा यातौ नानाविधतपोधनौ ॥ १०० ॥
गणिकां बुद्धिमेनाख्यां तत्र दृष्ट्वाऽतिरूपिणीं। भग्नः कर्मवशाद्भाग्यान्मंत्रिपुत्रस्त्वपत्रपः ॥१०१॥
राज्ञः स गंधमित्रस्य सूपकारपदे स्थितः। मांसपाकविशेषज्ञो लेभे तां गणिकां ततः ॥ १०२ ॥
स भुक्त्वाऽमाऽनया कामं सर्वतोऽविरतात्मकः। मांसाशनप्रियो मृत्वा सप्तमीं पृथिवीमितः॥१०३॥
उद्वर्त्याऽपि ततो भ्रांत्वा संसारं सारवर्जितं। जातः पापविशेषेण मारणो महावारणः ॥ १०४ ॥
साधुदर्शनयोगेन जातिस्मृतिमुपागतः। निंदन् मंदरुचिः कर्म गजोऽयमुपशांतवान् ॥ १०५ ॥
तदाकर्ण्य करींद्रोऽसौ नरेंद्रश्च यतेर्वचः। मिथ्याकलंकमुत्सृज्य जातौ श्रावकतायुजौ ॥ १०६ ॥
पंकप्रभाविनिर्यातो नारकोऽप्यभवत्पुनः। मंगीदारुणयोर्व्याधो नामकर्मातिदारुणः ॥ १०७ ॥
वने प्रियंगुखंडेऽसौ वज्रायुधमहामुनिं। व्याधो विव्याध योगस्थं सोऽपि सर्वार्थसिद्धिमैत्॥१०८॥

महातमःप्रभां प्राप्तो मृत्वा व्याधोऽतिदारुणः। दुःखमन्वभवत्सोऽस्यां घोरं मुनिवधोद्भवं॥१०९॥
मृत्वा श्रावकधर्मेण रत्नमालाच्युतेऽमरः। जातो रत्नायुधश्चापि तत्रैव सुरसत्तमः॥ ११० ॥
द्वीपे च धातकीखंडे पूर्वमेरोश्च पश्चिमे। विदेहे गंधिलादेशे राज्ञोऽयोध्यापतेः सुतौ॥ १११॥
अर्हद्दासस्य तौ देवौ सुव्रताजिनदत्तयोः। जातौ वीतभयौ सीरी चक्री चात्र विभीषणः॥११२॥
पृथ्वीं रत्नप्रभां यातो जीवितांते विभीषणः। अनिष्टचित्तमुनेस्त्वंते कृत्वा वीतभयस्तपः॥ ११३ ॥
यातः स लांतवेंद्रोऽहमादित्याभो मयाप्यसौ। नारको बोधितो गत्वा विभीषणचरस्ततः॥११४॥
जंबूद्वीपविदेहे यो विषयो गंधमालिनी। तत्र रौप्यगिरौ चारौ चारुखेचरगोचरः॥ ११५ ॥
प्राणी श्रीधर्मणः पूर्वं श्रीदत्तायामजायत। श्रीदामनामधेयोऽसौ मया मेरौ प्रबोधितः॥ ११६ ॥
अनंतमतिसंज्ञस्य गुरोः कृत्वातिशिष्यतां। स चंद्राभविमानेंद्रो ब्रह्मलोकेऽभवत्सुरः॥ ११७ ॥
व्याधपूर्वोऽपि सप्तम्या निसृत्य भुजगोऽभवत्। रत्नप्रभां प्रविश्यैत्य भ्रांत्वा तिर्यक्षु दुःखभाक्॥११८॥
स भूतरमणाटव्यामैरावत्यास्तटेऽभवत्। तोकं कनककेश्यां तु तापसस्य खमालिनः॥ ११९ ॥
स पंचाग्नितपः कुर्वन् मृगशृंगो मृगोपमः। चंद्राभं खेचरं दृष्ट्वा खेचरं तं यदृच्छया॥ १२० ॥
निदानी वज्रदंष्ट्रस्य विद्युद्दंष्ट्रोयमात्मजः। जातो विद्युत्प्रभागर्भे विद्याविद्योतितोद्यमः॥ १२१ ॥

वज्रायुधचरश्च्युत्वा जातः सर्वार्थसिद्धितः । संजयतः फणींद्रस्त्वं जयंतो ब्रह्मलोकतः ॥ १२२ ॥
एकजन्मापकारेण बहुजन्मसु वैरधीः । अवधीत् सिंहसेनं तं श्रीभूतिचरजीवकः ॥ १२३ ॥
यतोऽस्य घनवैरेण कोपविघ्नस्य को गुणः । जातः प्रत्युत जातोऽयं सौख्यविघ्नकृदात्मनः ॥१२४॥
उपलभ्य मतं जैनं गजो जन्मनि पंचमे । निर्वैरो निर्वृतो हे त्वं संसरत्येष वैरभाक् ॥ १२५ ॥
वैरबंधमिति ज्ञात्वा घोरसंसारवर्धनं । धरणेंद्र ! विमुंच त्वं तथा मिथ्यात्वमप्यरं ॥ १२६ ॥
इत्यादित्याभदेवेन धरणेंद्रः प्रबोधितः । मुक्तवैरः स सम्यक्त्वं जग्राह भवतारणं ॥ १२७ ॥
ततः खंडितविद्यास्ते छिन्नपक्षाः खगा यथा । खिन्नोद्यमास्तदेत्युक्ता धरणेंद्रेण खेचराः ॥१२८॥
प्रतिमां व्योमगाः सर्वे संजयतस्य पावनीं । शैले स्थापयतात्राशु पंचचापशतोच्छ्रयां ॥ १२९ ॥
तस्याश्चरणमूले वः पुरश्चरणकारिणां । कालेन महता क्लेशाद्विद्याः सिद्ध्यंतु नान्यथा ॥ १३० ॥
इतः प्रभृति च स्त्रीणां विद्युद्दंष्ट्रस्य संततौ । प्रज्ञप्तिरोहिणीगौर्यः सिध्यंतु न नृणां तु ताः ॥१३१॥
इत्युक्तमनुमन्यैते खगाः प्रणतिपूर्वकं । विद्याः स्वा लेभिरे भूयो यथास्वं च ययुः सुराः ॥१३२॥
खेचराः स्थापयांचक्रुस्तां यतेः प्रतियातनां । नानोपकरणां तत्र हेमरत्नमयीं गिरौ ॥ १३३ ॥
हृतविद्या यतस्तत्र ह्रीमंतस्तस्थुरानतः । विद्याधरास्ततः शैलं ह्रीमंतं तं जना जगुः ॥ १३४ ॥

भूभृतो रत्नवीर्यस्य मथुरायां पृथुश्रियः। स मेरुर्मेघमालायां लांतवेंद्रोऽभवत्सुतः ॥ १३५ ॥
अमितप्रभया तस्य प्रियया‍ऽलाभि भूपतेः। धरणेंद्रचरः पुत्रो मंदरश्चंद्रसुंदरः ॥ १३६ ॥
युवानौ तौ ततो भुक्त्वा कामभोगान् यथेप्सितान्। श्रेयसो जिनचंद्रस्य शिष्यतामुपजग्मतुः॥१३७॥
स मेरुर्मेरुनिष्कंपः प्राप्य केवलसंपदं। निर्ववौ तु गणेंद्रत्वं मंदरो मंदरोपमः ॥ १३८ ॥

संजयंतचरितं जगत्त्रये सुप्रसिद्धमतिभक्तिभावतः।
संभवंतु भुवि भव्यजंतवः संस्मरंतु जिनतां यियासवः ॥ १३९ ॥

इति अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ संजयंतपुराणवर्णनो नाम सप्तविंशः सर्गः।

अष्टाविंशः सर्गः।

अतः परं परं शौरेः शृणु श्रेणिक! चेष्टितं। वेगवत्या वियुक्तस्य पुण्यपौरुषयोगिनः ॥ १ ॥
पर्यटन्नटवीं वीरस्तापसाश्रममश्रमः। प्रविष्टोऽपश्यदाविष्टविकथान् तत्र तापसान् ॥ २ ॥
राजयुद्धकथासक्ताः यूयं किमिति तापसाः। तापसास्तपसा युक्तास्तपो वाक्संयमादिकं ॥ ३
इति पृष्टा जगुस्ते तं विशिष्टजनवत्सलाः। नवप्रव्रजिता वृत्तिं मौनीं विद्मो वयं न भोः ॥४॥

श्रावस्त्यामस्ति विस्तीर्णयशस्तीर्णमहार्णवः। एणीपुत्र इति क्षोणी–पतिरक्षीणपौरुषः ॥ ५ ॥
प्रियंगुसुंदरी तस्य दुहिता लोकसुंदरी। तस्याः स्वयंवरार्थं तु तेनाहूता वयं नृपाः ॥ ६ ॥
केनापि हेतुना कोऽपि न वृतो वृतया श्रिया। कन्यया वन्यहस्तिन्या वन्येतरगजो यथा ॥ ७ ॥
भूपाः संभूय भूयांसो विलक्षा लाभलक्षिताः। कन्यापित्रा ततः सत्रा सद्यो योद्धुं समुद्यताः ॥ ८ ॥
तेन भोः क्षुभितान्याशु सहस्राणि महीभुजां। संकोचितानि संग्रामे नेत्राणि रविणा यथा ॥ ९ ॥
तुंगाभिमानिनः केचिद् भंगांगीकरणक्षमाः। रणांगणगता भूपाः प्राणान् सद्यो हि तत्यजुः ॥ १० ॥
विश्वेऽप्यश्वरवात्तस्मात्सहस्रकरतो वयं। ध्वांतौघा इव भीता भोः प्रविष्टा गह्वरं वनं ॥ ११ ॥
कुरु धर्मोपदेशं भो धर्मतत्त्वमजानतां। त्वं वचोभिरलं मृष्टैर्दृष्टतत्त्वोऽभिलक्ष्यसे ॥ १२ ॥
पृष्टस्तथा तथा शौरिस्तेषां धर्मं द्विधाऽभ्यधात्। यतिश्रावकभेदज्ञाः श्रामण्यं ते यथा ययुः ॥ १३ ॥
प्रियंगुसुंदरी लाभलोभेन यदुनंदनः। श्रावस्तीं वस्तुविस्तारविश्रुतां तामशिश्रियत् ॥ १४ ॥
बाह्योद्याने च तत्रासौ कामदेवगृहेऽग्रतः। त्रिपादं कृत्रिमं हैमं महामहिषमैक्षत ॥ १५ ॥
पप्रच्छ विप्रमेकं भो किमेष माहिषस्त्रिपाद्। निर्मितो रत्ननिर्माणो भाव्यमत्र हि हेतुना ॥ १६ ॥
स प्राहैवमिहैवाभूत्पुर्यां भूपतिरार्यकः। इक्ष्वाकुर्जितशत्रुस्तत्पुत्रश्चापि मृगध्वजः ॥ १७ ॥

पपात पादयोस्तस्य कृपणो महिषोऽल्पकः ॥१८॥
श्रेष्ठी तु कामदत्तोऽत्र गोष्ठं द्रष्टुं गतोऽन्यदा । पंडारो दंडकस्तत्र पृष्टः कारणमब्रवीत् ॥ १९ ॥
ततश्चाश्चर्यकृत् कार्यं यथास्वं स्वामिनाऽमुना । पृष्टवान्तमहं पुनः ॥ २० ॥
उत्पन्नादिन एवास्योपरि करुणा मेऽभवत् । वनं दृष्ट्वा मुनिं नत्वा पृष्टवान्तमहं पुनः ॥ २० ॥
अस्योपरि किमर्थं मे करुणा महती मुने । स बभाण मुनिर्ज्ञानी शृणु गोपाल ! निश्चितं ॥ २१ ॥
एकस्यामेव चामुष्यां महिष्यामेष जातवान् । पंचकृत्वो वराकस्तु जातो जातो हतस्त्वया ॥२२॥
वारे षष्ठे तु तन्निष्ठः कनिष्ठस्य ममैषकः । सहसोत्थाय संत्रस्तः पादयोः पतितः शिशुः ॥ २३ ॥
कृपया स मयाऽत्रायं पुत्रवत्परिपालितः । जीवितार्थी तवेदानीं पतितः पादयोरिह ॥ २४ ॥
श्रुत्वैवं कृपया तेन समानीतः पुरीमसौ । अभयं राजलोकेभ्यो लब्ध्वाऽवर्द्धिष्ट भद्रकः ॥ २५ ॥
अन्यदाऽन्यभवोपात्तवैरबंधानुबंधतः । पादं चकर्त्त चक्रेण माहिषस्य मृगध्वजः ॥ २६ ॥
राज्ञा विज्ञाय चाज्ञप्तैर्मृगध्वजवधे रुषा । छद्मना मंत्रिणा नीत्वाऽरण्ये श्रामण्यमापितः ॥ २७ ॥
भद्रके भद्रभावेन मृते चाष्टादशेऽहनि । द्वाविंशे केवली जातः शुद्धध्यानान्मृगध्वजः ॥ २८ ॥
चतुर्णिकायदेवैः स मर्त्यैश्च कृतपूजनः । संपृष्टो वैरसंबंधः पित्रा नु जितशत्रुणा ॥ २९ ॥
मृगध्वजमुनिः प्राह देवदानवमानवैः । कथावर्णनसंतुष्टचित्तकर्णपुटैर्वृतः ॥ ३० ॥

प्रतिशत्रुस्त्रिपिष्टस्य द्रोह्यभूदलकापुरे । अश्वग्रीव इति ख्यातो विद्याधरमहेश्वरः ॥ ३१ ॥
सचिवस्तस्य निस्तीर्णतर्कमार्गमहार्णवः । हरिश्मश्रुवदस्पृश्यो हरिश्मश्रु इति श्रुतः ॥ ३२ ॥
नास्तिकैकांतवादी स प्रत्यक्षैकप्रमाणकः । प्रत्यक्षानुपलभ्यं यत्तन्नास्तीत्यभ्युपेतवान् ॥ ३३ ॥
चतुर्भूतसमूहेऽस्मिन् किण्वादौ मदशक्तिवत् । चैतन्यशक्तिरत्यंतमसत्यैव भवत्यसौ ॥ ३४ ॥
आत्मेति व्यवहारोऽत्र लोकस्य न विरुध्यते । न भूतव्यक्तिरिक्तोऽस्ति संसार्यनुपलब्धितः ॥३५॥
पुण्यापुण्यविधाता यो भोक्ता च सुखदुःखयोः । इष्टाऽज्ञैस्तस्य वा दृष्टेरभावात् पारलौकिकः ॥३६॥
नारकस्वर्गतिर्यंचविकल्पोऽज्ञविकल्पितः । भोगाधिष्ठात्रधिष्ठानः परलोको न विद्यते ॥३७॥
ज्ञानवृत्तिविशेषस्य शक्यो यश्च विनिश्चितः । मोक्षो भोक्तुरभावात्स न युक्तो निःप्रमाणकः ॥३८॥
भूतसंश्लेषजातस्य भूतविश्लेषनाशिनः । सुखिनश्चिद्विशेषस्य संयमो भोगनाशनः ॥ ३९ ॥
इत्येकांतकुतर्केण रंजितः सचिवः स च । आगमानुमितिज्ञेयो जीवाद्यर्थातिपरोचनः ॥ ४० ॥
परलोककथापोढदुःकथामूढमानसः । कामभोगैः कनिष्ठोऽभूत्कनिष्ठो धर्मदूषकः ॥ ४१ ॥
नास्तिकस्य तथा तस्य प्रेत्याभावापलापिनः । तीर्थकृच्चक्रवर्त्याद्दिमहापुरुषदूषिणः ॥ ४२ ॥
हरिश्मश्रोर्दुरीहस्य हरिकंठोऽपि नास्तिकः । धर्मकुंठोऽपि भावेन नित्याविष्टोऽवतिष्ठते ॥ ४३ ॥

विजयेन हरिश्मश्रुः प्राविशन्नरकं ततः ॥ ४४ ॥
अश्वग्रीवो हतो युद्धे त्रिपिष्टेन तमस्तमः । हरिश्मश्रुः पुना राजन् भद्रको महिषोऽधुना ॥४५॥
चिरं संसृत्य जातोऽहं हयग्रीवो मृगध्वजः । अकामनिजरातोऽभूल्लोहिताख्यो महासुरः ॥ ४६ ॥
पूर्वकोपानुबंधेन मयैव महिषो हतः । आस्तेऽयमत्र जातेन मित्रभावेन भावितः ॥ ४७ ॥
आगतो वंदनाभक्त्या देवभूत्याऽधुना युतः । विनियम्य महाराज ! शाम्यंतु शिवकांक्षिणः ॥ ४८ ॥
क्रोधानुबंधमित्येकं सत्त्वांधीकरणक्षमं । निःशल्यो लौल्यमुज्झित्वा रराज ससभाजनः॥४९॥
राजाद्याः प्राव्रजन् श्रुत्वा प्रशांतो महिषासुरः । यथास्वं स्थानमन्ये च सिद्धस्थानं मृगध्वजः ॥ ५० ॥
गत्वा केवलिनं नत्वा ससुरासुरमानवाः । स भजति दृष्टिविशुद्धिं जिनदृष्टपदार्थगोचरां भव्यजनः
महिषध्वजवृत्तं यः सततं शुद्धवृत्तमनसि धत्ते ।

इतिअरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ मृगध्वजमहिषोपाख्यानवर्णनो नाम अष्टाविंशः सर्गः ।

एकोनत्रिंशः सर्गः ।

मृगध्वजस्य प्रतिमां स न्यधान्महिषस्य च ॥१॥
कामदत्तो जिनागारपुरो लोकप्रवेशने । जिनागारे समस्तायाः प्रजायाः कौतुकाय सः ॥२
अत्रैव कामदेवस्य रतेश्च प्रतिमां व्यधात् ।

कामदेवरतिप्रेक्षाकौतुकेन जगज्जनः । जिनायतनमागत्य प्रेक्ष्य तत्प्रतिमाद्वयं ॥३॥
संविधानकमाकर्ण्य तद् भाद्रकमृगध्वजं । वहवः प्रतिपद्यंते जिनधर्ममहर्दिवं ॥४॥
प्रसिद्धं च गृहं जैनं कामदेवगृहाख्यया । कौतुकागतलोकस्य जातं जिनमताप्तये ॥५॥
व्यतिक्रांतेषु वहुषु संजातपुरुषेष्विह । कामदेवाभिधःश्रेष्ठी कामदत्तान्वयेऽधुना ॥६॥
रूपयौवनसंपूर्णा पूर्णचंद्रसमानना । कन्या वंधुमती तस्य वंधुलोकातिनंदिनी ॥७॥
आदिष्टः पितृपृष्टेन दैवज्ञेन नरो वरः । तस्याः स्मरगृहद्वारमुद्घाट्य स्मरपूजनः ॥८॥
एवंविधवचः श्रुत्वा तद्गृहद्वारमेत्य सः । द्वात्रिंशदर्गलादुर्गमुद्घाट्य सहसाऽविशत् ॥९॥
ततोऽभ्यर्च्य जिनेंद्रार्चाः सोऽर्चयत् सरतिस्मरं । चैत्यार्चनार्थमेतेन कामदेवेन वीक्षितः ॥१०॥
तेन नैमित्तिकादेशसंवादमुदितात्मना । दत्ता वंधुमती तस्यै वंधुराधरवंधुरा ॥११॥
कामदः कामदेवेन कामदेवस्य कामिनः । जामाता कामदेवाभः कोऽपि दत्त इतीदृशी ॥१२॥
वार्ता प्रादुरभूत्पुर्यामतस्तस्यामितोऽमुतः । राज्ञांतःपुरपौरैश्च दृष्टः स्वैरमसौ ततः ॥१३॥
प्रियंगुसुंदरी तं च कथंचिदवलोक्य सा । अनुरक्ता तथा जाता विरक्ताभूद् यथांऽभसि ॥१४॥
रहस्यावाह्य चापृच्छ्य तां स्वां वंधुमतीं सखीं । पत्युर्वल्लभिकाऽसि त्वं वैदग्ध्यं चाऽस्य कीदृशं॥१५॥

साऽस्यै मुग्धाऽवदत्तस्य विदग्धस्य विचेष्टितं । तथा यथा गता मोहं स्वसंवेद्यसुखासिकां ॥१६॥
साभिमानमुदस्यांतं तस्या द्रास्थमजीगमत् । तत्समागममिच्छाशु स्त्रीवधं वेत्यनुत्तरं ॥१७॥
अन्याय्यमुभयं चैतदिति संचित्य यादवः । व्याजेन केनचिद्दक्षः कालक्षेपमयोजयत् ॥१८॥
लब्धप्रत्याशया कन्या शौरिविन्यस्तधीरसौ । शयने निशि संपूर्णं मन्यमाना मनोरथं ॥१९॥
त्वंधुमत्युपगूढांगं सुप्तमंधकवृष्णिजं । ज्वलनप्रभनागश्री रात्रौ दिव्या व्यबोधयत् ॥२०॥
विबुद्धो देहभूषाभाभासिताखिलदिङ्मुखां । तां दृष्ट्वा नागचिन्हां स्त्रीं केयमत्रेत्यचिंतयत् ॥२१॥
आहूतश्च तया धीरः प्रियालापविदग्धया । अशोकवनितां नीत्वा नीत्याऽभाषि विनीतया ॥२२॥
शृणु त्वं धीर ! विश्रब्धो ममागमनकारणं । तर्प्येते श्रवणौ येन तवामृतरसेन वा ॥२३॥
आसीदमोघविक्रांतिः समाक्रांतारिमंडलः । अमोघदर्शनो नाम्ना नरेंद्रश्चंदने वने ॥२४॥
कांता चारुमतिश्चारुश्चारुचंद्रोऽस्य देहजः । नीतिपौरुषसंपन्नो नवयौवनभूषितः ॥२५॥
रंगसेना च गणिका कलागुणगणान्विता । सुता कामपताकाऽस्याः कामस्येव पताकिका ॥२६
प्राविक्षद्द् यागदीक्षायै क्षितिपो धर्ममोहितः । तापसः कौशिकाद्याश्च तदायाता जटाधराः ॥२७
नृत्यंत्या च नृपादेशात् तया कामपताकया । व्यक्तं कामपताकात्वं हरंत्या हृदयं नृणां ॥२८॥

शास्त्रकौशलतायुक्तो मूलपत्रफलाशनः । कौशिकः क्षुभितो यत्र तत्रान्यस्य तु का कथा ॥२९॥
यागकर्माणि निर्वृत्ते सा कन्या राजसूनुना । स्वीकृता तापसा भूपं भक्तं कन्यार्थमागताः ॥३०॥
कौशिकायात्र तैस्तस्यां याचितायां नृपोऽवदत् । कन्या सोढा कुमारेण यातेत्युक्तास्तु ते ययुः ॥३१॥
सर्पीभूयापि हंतव्यो मया त्वमपि भूपते । आक्रुश्य कौशिको यातः क्लिशितेनांतरात्मना ॥३२॥
अभिषिच्य नृपस्त्रस्तो धरित्रीधरणे सुतं । अव्यक्तगर्भया देव्या सहाभूत्तापसस्तथा ॥३३॥
तापस्यपि सुतां लेभे तापसाश्रमभूषिणीं । ऋषिदत्ताख्यया ख्यातां भूषितामप्यभिख्यया ॥३४॥
अणुव्रतानि सा लेभे चारणश्रमणांतिके । यौवनं च नवं यूनां मनोनयनबंधनं ॥३५॥
शांतायुधसुतः श्रीमान् श्रावस्तीपतिरेकदा । शीलायुध इति ख्यातस्तं यातस्तापसाश्रमं ॥३६॥
एकयैव कृतातिथ्यस्तया तापसकन्यया । रुच्याहारैर्मनोहारि स वल्कलकुचश्रिया ॥३७॥
अतिविश्रमतः प्रेम तयोरप्रतिरूपयोः । विभेद निजमर्यादां चिरं समनुपालितां ॥३८॥
गतो रहसि निःशंकां निःशंकस्तामसौ युवा । अरीरमद् यथाकामं कामपाशवशो वशां ॥३९॥
व्याजिज्ञपत् ततस्तं सा साध्वी साध्वसपूरिता । ऋतुमत्यार्यपुत्राहं यदि स्यां गर्भधारिणी ॥४०॥
तदा वद विधेयं मे किमिहाकुलचेतसः । पृष्टस्तथा स तामाह माऽऽकुला भूः प्रिये शृणु ॥४१॥

शीलायुधस्त्वयाऽवश्यं द्रष्टव्योऽहं सपुत्रया ॥४२॥
इक्ष्वाकुकुलजो राजा श्रावस्त्यामस्तशात्रवः । तावन्निजबलं प्राप्तं तापसाश्रमगोचरं ॥४३॥
इत्याश्वास्य रहस्येनामाश्लिष्य विरहासहः । याते नृपे तया पित्रोर्विनिगृह्य ततस्त्रपां ॥४४॥
दृष्ट्वा तुष्टेन तेनामा प्रविष्टो नगरीमसौ । अंतर्वत्नी रहः पत्नी निस्त्रपस्य नृपस्य सा ॥४५॥
निवेदितमिदं वृत्तं लोकवृत्तविदग्धया । प्रसूतिक्लेशतः सा च प्रसूतिसमनंतरं ॥ ४६ ॥
असूत सुतमुद्गीर्णमिव पित्रानुहारिणं । साऽहं सम्यक्त्वयोगेन भवप्रत्ययसावधिः ॥४७॥
मृता नागवधूर्जाता ज्वलनप्रभवल्लभा । आश्वास्य शोकसंतप्तौ पितरौ पृथुकं तकं ॥ ४८ ॥
कृपास्नेहवशात्प्राप्ता पितृपुत्रतपोवनं । पिता कौशिकपूर्वेण दंदशूकेन वैरिणा ॥ ४९ ॥
एणीस्वरूपिणी स्तन्यपानतोऽवर्द्धयत्ततः । धर्मोपदेशदानेन दुर्मोचक्रोधदूषितः ॥ ५० ॥
स दष्टोऽमोघमंत्रेण जीवितं प्रापितो मया । गताऽहं पुत्रमादाय तापसीवेषधारिणी ॥५१॥
मयाऽसौ ग्राहितो धर्ममयासीद् गतिमर्चितां । तनयस्तव राजेंद्र ! राजलक्षणराजितः ॥५२॥
सोपचारं नृपं दृष्ट्वा तमवोचं नयान्वितं । इत्युक्तेन तु तेनोक्तमपुत्रस्य कुतः सुतः ॥५३॥
गृहाण गृहिणीत्यक्तमेणीपुत्राख्यमेतकं । वृत्तं मया समस्तं तत्साभिज्ञानं ततोऽकाथि ॥५४॥
कथं वा तापसि ! प्राप्तो दारकोऽयं त्वया वद ।

देवीत्वं च निज येन स राजात्मजमग्रहीत् । वर्धमानस्य तस्याहं पुत्रस्नेहेन मोहिनी ॥५५॥
जातानुपालिनी नित्यं राज्ञश्चेप्सितदायिनी । एणीपुत्रमसौ राजा स्वराज्ये न्यस्य पंडितः ॥५६॥
प्रव्रज्य मुनिमार्गस्थः स्वर्गलोकमवाप्तवान् । जाता च तनया पश्चादेणीपुत्रस्य रूपिणी ॥५७॥
प्रियंगुसुंदरीनाम्ना प्रियंगुश्यामवर्तिनी । स्वयंवरविधौ धीरा प्रत्याख्यातवती च सा ॥५८॥
भूमौ राजसुतात्कामसौख्यभोगविरागिणी । अद्राक्षीद् वंधुमत्यामा त्वां सा राजगृहे यदा ॥५९॥
ततः परमधत्तांगमनंगशरशल्यितं । तद् विधस्व तया वीर ! वचनान्मम संगमं ॥६०॥
अदत्तेति न चाशंक्यं तुभ्यं दत्ता मया हि सा । अस्य राजकुलस्याहं प्रमाणं कार्यवस्तुनि ॥६१॥
अतो मया वितीर्णेयं वितीर्णा पितृबांधवैः । समागमस्तु वामस्तु देवतासुगृहे ततः ॥६२॥
श्वस्तन्यां कृतसंकेतो रजन्यां सुविनिश्चितः । अमोघदर्शनं देव ! देवतानामतो भवान् ॥६३॥
वरित्वा वरमादत्स्व यत् किंचिदिह वांछितं । इत्युक्तेनैव साऽवाचि वाचा विनयपूर्वया ॥६४॥
कृतस्मरणया देवि ! स्मर्तव्योऽमोघसंमिते । एवमुक्ता च तेनासावेवमस्त्विति देवता ॥६५॥
अंतर्धानमिता सोऽपि निजवासमुपागमत् । दैवतोक्तविधानेन देवताया गृहे ततः ॥६६॥
प्रियंगुसुंदरीं शौरी रहसि प्रत्यपद्यत । सा गंधर्वविवाहादिसहसन्मुखपंकजा ॥६७॥

रमिता यदुसूर्येण पद्मिनीव तदा बभौ । प्रियंगुसुंदरीसद्मन्यहान्यस्य बहून्यगुः ॥६८॥
अन्योन्यप्रेमबद्धस्य मिथुनस्य रहस्यतः । कृतं देवतया योगं राज्ञा ज्ञात्वाऽनुरूपयोः ॥६९॥
तोषिलोकप्रकाशार्थं तद्विवाहमकारयत् । ततः सर्वस्य लोकस्य विदितो यदुनंदनः ॥७०॥
रेमे प्रियंगुसुंदर्या सुंदर्या सह सुंदरः । रूपयौवनहारिण्या शच्येव कौशिको यथा ॥७१॥

स राजसुतया तया प्रथमबंधुमत्यापि च
प्रतीतगुणसंपदा गुणकलाकलापश्रिया ॥
क्रमेण रतिगोचरे रहसि सेव्यमानः पुरी-
मिमां जिनगृहार्चितां सुचिरमध्युवासार्चितः ॥७२॥

इत्यरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ बंधुमतीप्रियंगुसुंदरीलाभवर्णनो नाम एकोनत्रिंशः सर्गः ।

त्रिंशः सर्गः ।

अथ कार्तिकराकायां चिरक्रीडातिखेदकः । प्रियंगुसुंदरीगाढभुजबंधवशः प्रियः ॥१॥
सुखनिद्राप्रसुप्तोऽसौ विबुद्धश्च कुतश्चन । अद्राक्षीद् रूपिणीमेकां कन्यामन्यामिव श्रियं ॥२॥

अप्राक्षीत् पुंडरीकाक्षि ! का त्वमत्रेत्यसौ हि सा । ज्ञास्यसे हि कुमारेति तमाहूय विनिर्ययौ ॥३॥
व्यपनीय प्रियाश्लेषमेषोऽनुपदवीमयात् । रम्यहर्म्यतलासीना हेतुं साह निजागमे ॥४॥
आर्यपुत्र ! शृणु श्रीमान् समाधाय निजं मनः । वचो मदीयमप्राप्य वस्तुप्रापणकारणं ॥५॥
इहास्ति दक्षिणश्रेण्यां देशे गांधारनामनि । पुरं गंधसमृद्धाख्यं गंधाराख्यस्तु तत्पतिः ॥६॥
पृथिवीति महादेवी पृथिवीवास्य वल्लभा । सुता प्रभावती तस्य श्रीरिवाहं प्रभावती ॥७॥
गता मानसवेगस्य स्वर्णनाभपुरं परं । ज्ञात्वांगारवती वार्ता दुहितुः पृष्टवत्यहं ॥८॥
प्रवृत्तिर्वेगवत्यास्तु तत्सखीभिर्ममोदिता । संगमो यदुचंद्रेण चित्राया इव च त्वया ॥९॥
तत्रैव नगरे या सा शुद्धशीलविभूषणा । त्वन्नामग्रहणाहारा सोमश्रीरवतिष्ठते ॥१०॥
त्वद्वियोगमहादुःखपांडुगंडलकांतया । कांतया प्रहिता तेऽहं संदेशप्रापिणी तया ॥११॥
शीलप्राकाररक्षाऽहमलंघ्यानुनयैररेः । आर्यपुत्रावतिष्ठेयं शत्रुस्थाने कियच्चिरं ॥१२॥
रक्षिता शत्रुमात्राहं पुत्रतर्जनशीलया । प्राणिनी प्राणनाथोऽतो मोचनीया लघु त्वया ॥१३॥
अविराममवियोगाया मा कदाचिदिहैव मे । स्याद्विपत्तिरतो वीर ! मोपेक्षिष्ठाः कठोरधीः ॥१४॥
साश्रुलोचनयाऽजस्रमिति संदिष्टमिष्टया । निवेद्याऽसीत्कृतार्थाऽहं कृत्यं पत्यौ त्वयि स्थितं ॥१५॥

न चागम्यमगस्थानमिति चित्यं त्वया यतः। नेष्यं निमिषमात्रेण तत्र त्वाहं यथेप्सितं ॥१६॥
साभिज्ञानमभिज्ञोऽसौ तं निशम्य निशाम्य तां। प्राह प्रापय सौम्यास्ये सोमश्रीधाम मां द्रुतं॥१७॥
सा प्राप्तानुमतिः प्रीता खमुत्क्षिप्य प्रभावतीं । विद्याप्रभावसंपन्ना ययौ विद्युदिवोद्यता ॥ १८ ॥
अन्योन्यांगसमासंगात् संगतांगरुहौ च तौ । खमुल्लंघ्य लघु प्राप्तौ स्वर्णनाभपुरं वरं ॥ १९ ॥
प्रवेशितस्तया स्रस्तरसनांशुकया गृहं । अप्रकाशमसौ देवः सोमश्रियमवैक्षत ॥ २० ॥
प्रलंबालसकाम्लानकपोलवदनाश्रियं । स्वांतभ्रांतालिसम्लानिसपद्मामिव पद्मिनीं ॥ २१ ॥
देवदर्शनपर्यंतवेणीवंधेन संगतां । तनुना सेतुवंधेन धुनीमिव तदंतकं ॥ २२ ॥
तांबूलरागनिर्मुक्तकिंचिद्धूसरिताधरां । म्लानामीषत्परिम्लानपल्लवामिव वल्लरीं ॥ २३ ॥
अभ्युत्थितां विभुं वीक्ष्य पीनपांडुपयोधरां । तुष्टः सोमश्रियं दृष्ट्वा शारदीमिव स श्रियं ॥ २४ ॥
आलिलिंगतुरन्योऽन्यं गाढं रोमांचकर्कशौ । पुनर्विरहभीरुत्वादेकतामिव तौ गतौ ॥ २५ ॥
साधुसाधितकार्यां सा तामाश्लिष्य प्रभावतीं । सखीं प्राणसमां श्रव्यैर्वचनैरभ्यनंदयत् ॥ २६ ॥
रूपं नाम च तस्यासौ निजं कृत्वा प्रभावती । आपृच्छ्य दंपतीं मुक्त्वा ययावात्मीयमास्पदं २७
धाम्नि मानसवेगस्य परावर्त्तितरूपभृत् । सोमश्रिया सहाहानि न्यवसत्कतिचिद् यदुः ॥ २८ ॥

एकदा प्राग् विबुद्धाऽसौ प्रकृतिस्थाकृतिं पतिं। दृष्ट्वारुदद् द्विपद्भीत्या प्रमादपरिशंकिनी ॥२९॥
अपृच्छच्च विबुद्धोऽसौ किमर्थं रोदिषि प्रिये। आह रूपपरावृत्तिमपश्यंती तवेत्यसौ ॥ ३० ॥
मा भैषीरेष विद्यानां स्वभावः स्वयतां वपुः। अपसृत्याऽवतिष्ठंते संश्रयंते सुजाग्रतां ॥ ३१ ॥
इत्युक्त्वा सुपरावृत्तिरूपं पूर्ववदेव सः। वसुदेवोऽवसत्तत्र यथेष्टं प्रियया युतः ॥ ३२ ॥
ततो मानसवेगेन कथंचिदुपलक्षितः। वैजयंती पतिं पत्न्या वलसिंहमसौ श्रितः ॥ ३३ ॥
तस्य न्यायपरस्याग्रे व्यवहारे पराजितः। मायी मानसवेगोऽसौ विलक्षो योद्धुमुत्थितः ॥ ३४ ॥
सौरिपक्षतया केचित्खचराः समवस्थिताः। ततोऽभूदुग्रसंग्रामः सौरिमानसवेगयोः ॥ ३५ ॥
वेदाद् वेगवतीमात्रा जामात्रे धनुरर्पितं। दिव्यं दिव्यशरापूर्णं शरधिद्वयसंयुतं ॥ ३६ ॥
प्रज्ञप्तिश्च प्रभावत्या विज्ञाय लघु योजिता। तत्प्रभावादसौ संख्ये बबंध रिपुखेचरं ॥ ३७ ॥
तन्मात्रा याचितः सौरिः पुत्रभिक्षां दयापरः। सोमश्रीदर्शनं नीत्वा मुमोच खचराधिपं ॥३८॥
तेन मानसवेगेन बंधुभावमुपेयुषा। सपत्नीको विमानेन प्रापितः स महापुरं ॥ ३९ ॥
सोमश्री बंधुभिस्तत्र जाते तस्य समागमे। गतो मानसवेगोऽपि स्वस्थानं तद्वचःस्थितः ॥४०॥
श्रुतानुभूतवार्त्तादिप्रश्नप्रकथनात्मनोः। याति कामरसाक्षिप्रचेतसोः समयस्तयोः ॥ ४१ ॥

हरता नभसः क्षिप्रो गंगायामपतद् यदुः ॥ ४२ ॥
अश्वरूपधरेणासावेकदा सूर्पकारिणा। निरीक्ष्योन्मादिनीं नारीं नरास्थिमयशेखरां ॥ ४३ ॥
स तामुत्तीर्य संप्राप्तस्तापसाश्रममत्र च। परिभ्रमति विभ्रांता महोन्मादवशा वशा ॥४४॥
पप्रच्छ तापसं कंचित्कस्येयं युवतिर्वरा। नाम्ना केतुमतीयं च जितशत्रुनृपप्रिया ॥४५॥
तस्मै सोऽकथयद् राज्ञो जरासंघस्य देहजा। हतस्यास्यास्थिमालां च मालीकृत्याटति क्षितिं ॥४६॥
मंत्रवादिपरिव्राजा वराकी स्ववशीकृता। आवेशपूर्वकं तस्या स चक्रे ग्रहनिग्रहं ॥४७॥
इत्याकर्ण्य कृपायुक्तो महामंत्रप्रभावतः। पुरं राजगृहं नीतः परिवार्योपकार्यपि ॥४८॥
सौरिस्तदा नियुक्तैस्तु जरासंधस्य मानवैः। ब्रूत मे येन नीयेयं तद्राजपुरुषाः रुषा ॥४९॥
तानवोचदसौ राज्ञः कोऽपराधो मया कृतः। व्युदस्यति भवेत्सोऽत्र राजारिजनकः किल ॥५०॥
इत्युक्ता इत्यऽवोचंस्ते यो राजदुहितुर्ग्रहं। खमुत्क्षिप्यापनीतः प्राक् केनचित्खचरेण सः ॥५१॥
इत्यावेद्य वधस्थानं नीतो नीचैर्नरैर्वृतः। मां भगीरथनामानं त्वन्मनोरथपूरकं ॥५२॥
उक्तश्च वीर! विद्धि त्वं प्रभावत्याः पितामहं। इति प्रियवचोवाची निनाय खचराचलं ॥५३॥
प्रभावतीसमीपं त्वं मया नीतिज्ञ! नीयसे। प्रवेशितो महाभूत्या विद्याधरजनैर्वृतः ॥५४॥
प्राप्य गंधसमृद्धं च नगरं नगमूर्धनि।

प्रशस्ततिथिनक्षत्रयोगे योगकृते ततः । पितृबंधुजनैः शौरिप्रभावत्योः प्रहृष्टयोः ॥५५॥
प्रागेव मदनावेशपरस्परवशात्मकौ । वधूवरौ वरौ वृत्तौ भोगसागरवर्त्तिनौ ॥५६॥

संप्रयुक्तमपि वल्लभैः सदा विप्रयोजयति पापकृत्परं ।
पूर्वतोऽपि शतशोऽतिवल्लभैर्युज्यते तु जिनधर्मकृत्पुरा ॥५७॥

इति "अरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे" हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ प्रभावतीलाभवर्णनो नाम त्रिंशः सर्गः ।

अश्वग्रीवो हतो युद्धे त्रिपिष्टेन तमस्तमः । विजयेन हरिश्मश्रुः प्राविशन्नरकं ततः ॥ ४४ ॥
चिरं संसृत्य जातोऽहं हयग्रीवो मृगध्वजः । हरिश्मश्रुः पुना राजन् भद्रको महिषोऽधुना ॥४५॥
पूर्वकोपानुबंधेन मयैव महिषो हतः । अकामनिजरातोऽभूल्लोहिताख्यो महासुरः ॥ ४६ ॥
आगतो वंदनाभक्त्या देवभूत्याऽधुना युतः । आस्तेऽयमत्र जातेन मित्रभावेन भावितः ॥ ४७ ॥
क्रोधानुबंधमित्येकं सत्त्वांधीकरणक्षमं । विनियम्य महाराज ! शाम्यंतु शिवकांक्षिणः ॥ ४८ ॥
राजाद्याः प्राव्रजन् श्रुत्वा प्रशांतो महिषासुरः । निःशल्यो लौल्यमुज्झित्वा रराज ससभाजनः॥४९॥
गत्वा केवलिनं नत्वा ससुरासुरमानवाः । यथास्वं स्थानमन्ये च सिद्धस्थानं मृगध्वजः ॥ ५० ॥
महिषध्वजवृत्तं यः सततं शुद्धवृत्तमनसि धत्ते । स भजति दृष्टिविशुद्धिं जिनदृष्टपदार्थगोचरां भव्यजनः

इतिअरिष्टनेमिपुराणसंग्रहे हरिवंशे जिनसेनाचार्यकृतौ मृगध्वजमहिषोपाख्यानवर्णनो नाम अष्टाविंशः सर्गः ।

एकोनत्रिंशः सर्गः ।

कामदत्तो जिनागारपुरो लोकप्रवेशने । मृगध्वजस्य प्रतिमां स न्यधान्महिषस्य च ॥१॥
अत्रैव कामदेवस्य रतेश्च प्रतिमां व्यधात् । जिनागारे समस्तायाः प्रजायाः कौतुकाय सः ॥२